Sup. 60108/C

CHATURBHUJA MIŚRA

16 A2983

COLLEGE
OF
Fort William
1825

68948

THE

PREM SAGUR;

OR,

THE HISTORY OF KRISHNU,

ACCORDING TO THE 10th CHAPTER OF THE B,HAGUVUT,

OF

VYASUDEVU.

TRANSLATED INTO HINDEE

FROM THE

BRUJ B,HASHA,

OF

CHUTOORB,HOOJ MISR.

BY LULLOO LAL,

LATE B,HASHA MOONSHEE IN THE COLLEGE OF FORT WILLIAM.

CALCUTTA:

PRINTED AT THE HINDOOSTANEE PRESS,

1825.

WELLCOME LIBRARY INSTITUTE

किताब कालिज फोर्ट विलियम

College of Fort William

प्रेम सागर

PREM SAGUR.

INTRODUCTION.

श्रीगणेशायनमः

विघन विदारण बिरद वर बारण बदन बिकास,
बर दे बहु बाढ़े बिसद बानी बुद्धि बिलास.
युगल चरन जोवत जगत जपत रैन दिन तोहि,
जगमाता सरस्वति सुमिर युक्ति उक्ति दे मोहि.

एक समैं, ब्यासदेव कृत श्रीमत भागवत के दशमस्कंध की कथा को, चतुर्भुज मिश्रने, दोहे चौपाई में ब्रज भाषा किया; सो पाठशाला के लिये, श्रीमहाराजाधिराज, सकल गुन निधान, पुन्यवान, महाजान, मारकुइस वलिजलि गवरनर जनरल प्रतापी के राज में;

कबि पंडित मंडित किये नग भूषन पहिराय,
गाहि गाहि बिद्या सकल बस कीनी चित चाय.
दान रौर चहुं चक्र में चढ़े कबिन के चित्त,
आवत पावत लाल मनि हय हाथी बहु वित्त.

औ श्रीयुत गुन गाहक, गुनियन सुखदायक, जान गिलकिरिस्त महाशय की अज्ञा से, संबत् १८६० में श्रीलल्लूजी लाल कबि ब्राह्मन गुजराती सहस्र अवदीच आगरेवाले ने, जिसका सार ले, यामनी भाषा छोड़, दिल्ली आगरेकी खड़ी बोली में कह, नाम प्रेम सागर धरा; पर श्रीयुत जान गिलकिरिस्त महाशय के जानेसे बना अध बना छपा अध छपा रह गया था, सो अब श्रीमहाराजेश्वर,

अति दयाल, कृपाल, यशस्वी, तेजस्वी, गिलबर्ट लार्ड मिंटो प्रतापवान के राज में; औ श्रीगुनवान, सुखदान, कृपा निधान, भागवान, कपतान जान उलियम् टेलर प्रतापी की आज्ञा से; और श्रीयुत परम सुजान, दया सागर, परोपकारी, डाकतर उलियम हंटर नक्षत्री की सहायता से; औ श्री निपट प्रवीन, दयायुत, लिपटन अबराहाम लाकिट रतीवंत के कहे से, उसी कविने संवत १८६६ में पूर्ण कर छपवाया, पाठशाला के विद्यार्थियों के पढ़ने को.

CHAPTER. I.

अथ कथा आरंभ. महाभारत के अंत में जब श्री कृष्ण अंतरध्यान हुऐ, तब पांडव तो महा दुखी हो, हस्तिनापुर का राज परीक्षित को दे, हिमालय गलने गये; और राजा परीक्षित सब देस जीत, धर्म राज करने लगे. कितने ऐक दिन पीछे, ऐक दिन राजा परीक्षित आखेट. को गये, तो वहां देखा कि ऐक गाय और बैल दौड़े चले आते हैं, तिन के पीछे मूसल हाथ लिये ऐक सूद्र मारता आता है; जब वे पास पहुंचे, तब राजा ने सूद्र को बुलाय दुखपाय झुंझलायकर कहा, अरे तू कौन है? अपना बखानकर जो मारता है गाय औ बैल को जान कर, क्या अर्जुन को तैं ने दूर गया जाना, तिस से उसका धर्म नहीं पहिचाना? सुन, पंडु के कुल में ऐसा किसी को न पावेगा, कि जिस के सोंहीं कोई दीन को सतावेगा. इतना कह राजा ने खड़ग हाथ में लिया; वह देख डरकर खड़ा हुआ, फिर नरपति ने गाय और बैल को भी निकट बुलाके पूछा, कि तुम कौन हो मुझे बुझाकर कहो, देवता हो कै ब्राह्मन, और किस लिये भागे जाते हो, यह निधड़क कहो, मेरे रहते किसी की इतनी सामर्थ नहीं जो तुम्हें दुख दे.

इतनी बात सुनी, तब तो बैल सिर झुका बोला, महाराज! यह पाप रूप काले बरन डरावनी मूरत जो आप के सनमुख खड़ा है सो कलियुग है. इसी के आने से मैं भागा जाता हूं; यह गाय स्वरूप पिरथी है, सोभी इसी के डर से भाग चली है; मेरा नाम है धर्म, चार पांव रखता हूं, तप, सत, दया और सोच; सतयुग में मेरे चरन बीस बिस्वे थे, त्रेता में सोलह, द्वापर में बारह, अब कलियुग में चार बिस्वे रहे, इस लिये कलि के बीच में चल नहीं सकता. धरती बोली धर्मावतार! मुझ से भी इस युग में रहा नहीं जाता, क्योंकि सूद्र राजा हो अधिक अधर्म मेरे पर करेंगे, तिनका बोझ मैं न सह सकूंगी, इस भय से मैं भी भागती हूं. यह सुनते ही राजा ने क्रोधकर कलियुग से कहा, मैं तुझे अभी मारता हूं. वह घबराय राजा के चरनों पै गिर गिड़गिड़ाकर कहने लगा, पृथी नाथ! अब तो मैं तुम्हारी सरन आया, मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये, क्योंकि

तीन काल और चारों युग जो ब्रह्माने बनाए हैं सो किसी भांति मेटे न मिटेंगे. इतना बचन सुनतेही राजा परीक्षित ने कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर रहो, जूए, झूठ, मद की हाट, बेस्याके घर, हत्या, चोरी, और सोने में. यह सुन कलि ने तो अपने स्थान को प्रस्थान किया, और राजा ने धर्म को मन में रख लिया, पिरथी अपने रूप में मिलगई, राजा फिर नगर में आए और धर्म राज करने लगे.

कितने एक दिन बीते राजा फिर एक समैं आखेट को गये और खेलते खेलते प्यासे भये, सिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था, तिसने अपना औसर पा राजा को अज्ञान किया; राजा प्यास के मारे कहां आते हैं कि जहां लोमस ऋषि आसन मारे नैन मूंदे हरि का ध्यान लगाये तप कर रहे थे, तिन्हें देख परीक्षित मनमें कहने लगा, कि यह अपने तप के घमंड से मुझे देख आंख मूंद रहा है. ऐसी कुमति ठानि एक मरा सांप वहां पड़ा था सो धनुष से उठा ऋषि के गले में डाल अपने घर आया, मुकुट उतारतेही राजा को ज्ञान हुआ तो सोच कर कहने लगा, कि कंचन में कलियुग का बास है, यह मेरे सीस पर था; इसी से मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प ले ऋषि के गले में डाल दिया, सो मैं अब समझा कि कलियुग ने मुझ से अपना पलटा लिया, इस महा पापसे मैं कैसे छूटूंगा, बरन धन जन स्त्री और राज मेरा क्यों न गया सब आज, न जानूं किस जन्म में यह अधर्म जायगा जो मैं ने ब्राह्मन को सताया है.

राजा परीक्षित तो यहां इस अथाह सोच सागर में डूब रहे थे, और जहां लोमस ऋषि थे तहां कितने एक लड़के खेलते हुए जा निकले, मरा सांप उन के गले में देख अचंभे रहे, और घबरा कर आपस में कहने लगे कि भाइ, कोई इन के पुत्र से जाके कह दे जो उपबन में कौशिकी नदी के तीर ऋषियों के बालकों में खेलता है. एक सुनते ही दौड़ा वहीं गया जहां शृंगी ऋषि छोकरों के साथ खेलता था; कहा बंधु तुम यहां क्या खेलते हो! कोई दुष्ट मरा हुआ काला नाग तुम्हारे पिता के कंठ में डाल गया है. सुनतेही शृंगी ऋषि के नैन लाल हो आये, दांत पीस पीस लगा थर थर कांपने, और क्रोध कर कहने, कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी, धन के मद से अंधे हो भये हैं दुख दानी, अब मैं उस को दूं श्राप, वही मीच पावेगा आप. ऐसे कह शृंगी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले, राजा परीक्षित को श्राप दिया कि यही सर्प सातवें दिन तुझे डसेगा.

इस भांति राजा को श्राप, अपने बाप के पास आ गले से सांप निकाल कहने लगा, हे पिता! तुम अपनी देह संभलो, मैं ने उसे श्राप दिया है जिसने आप के गले में मरा सर्प डाला था. यह

बचन सुनतेही लोमस ऋषि ने चैतन्य हो नैन उघाड़ अपने ज्ञान ध्यान से बिचार कर कहा, अरे पुत्र! तूने यह क्या किया, क्यौं श्राप राजा को दिया, जिसके राज में थे हम सुखी, कोई पसु पंछी भी न था दुखी, ऐसा धर्म राज था कि जिस में सिंह गाय ऐक साथ रहते और आपस में कुछ न कहते; अरे पुत्र! जिन के देस में हम बसे, क्या हुआ तिनके हंसे, मरा हुआ सांप डाला था उसे श्राप क्यौं दिया, तनक दोष पर ऐसा श्राप, तैंने किया बड़ाही पाप, कुछ बिचार मन में नहीं किया, गुन छोड़ा औगुनहीं लिया! साध को चाहिये सील सुभाव से रहे, आप कुछ न कहे, और की सुन ले, सब का गुन ले ले, औगुन तज दे.

इतना कह लोमस ऋषि ने ऐक चेले को बुलाके कहा तुम राजा परीक्षित को जाके जतादो जो तुम्हें शृंगी ऋषि ने श्राप दिया है; भला लोग तो दोष देहींगे, पर वह सुन सावधान तो हो. इतना बचन गुरू का मान चेला चला चला वहां आया जहां राजा बैठा सोच करता था, आतेही कहा महाराज! तुम्हें शृंगी ऋषि ने यह श्राप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा, अब तुम अपना कारज करो जिस से कर्म की फांसी से छूटो. सुनतेही राजा प्रसन्नता से खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा, कि मुझ पर ऋषिने बड़ी कृपा की जो श्राप दिया, क्यौं कि मैं माया मोह के अपार सोच सागर में पड़ा था, सो निकाल बाहर किया. जब मुनि का शिष बिदा हुआ, तब राजा ने आप तो बैराग लिया और जनमेजय को बुलाय राज पाट देकर कहा, बेटा! गौ ब्राह्मन की रक्षा कीजो और प्रजा को सुख दीजो. इतनी कह आये रनवास, देखी नारी सबी उदास; राजा को देखतेही रानियां पांओं पर गिर रो रो कहने लगीं, महाराज! तुम्हारा बियोग हम अबला न सह सकेंगी, इस से तुम्हारे साथ जी दें तो भला. राजा बोले सुनो, स्त्री को उचित है जिस में अपने पति का धर्म रहे सो करे, उत्तम काज में बाधा न डाले.

इतना कह धन जन कुटुंब और राज की माया तज निरमोही हो अपना जोग साधने को गंगा के तीर पर जा बैठा; इस को जिसने सुना वह हाय हाय कर पछताय पछताय बिन रोये न रहा. और यह समाचार जब मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृंगी ऋषि के श्राप से मरने को गंगा तीर पर आ बैठा है, तब व्यास, बशिष्ट, भरद्वाज, कात्यायन, परासर, नारद, बिस्वामित्र, बामदेव, यमदग्नि आदि अठासी सहस्र ऋषि आऐ और आसन बिछाय पांत पांत बैठ गये, अपने अपने शास्त्र बिचार बिचार अनेक अनेक भांति के धर्म राजा को सुनाने लगे; कि इतने में राजा की श्रद्धा देख, पोथी कांख में लिये दिगंबर भेष, श्री सुकदेव जी भी आन पहुंचे; उन को देखतेही जितने मुनि थे सब के सब उठ खड़े हुऐ, और राजा परीक्षित भी हाथ बांध खड़ा हो बिनती कर कहने लगा,

कृपा निधान! मुझ पर बड़ी दया की जो इस समैं आपने मेरी सुध ली. इतनी बात कही तद शुकदेव मुनि भी बैठे तो राजा ऋषियों से कहने लगे कि महाराजो! शुकदेव जी व्यास जीके तो बेटे, और पराशर जीके पोते, तिन को देख तुम बड़े बड़े मुनीस होके उठे, सो तो उचित नहीं, इसका कारन कहो जो मेरे मन का संदेह जाय. तब पराशर मुनि बोले, राजा! जितने हम बड़े बड़े ऋषि हैं, पर ज्ञान में शुक से छोटे ही हैं, इस लिये सब ने शुक का आदर मान किया, किसी ने इस आस पर, कि ये तारन तरन हैं; क्योंकि जब से जन्म लिया है तबही से उदासी हो बन बास करते हैं; औ राजा तेरा भी कोई बड़ा पुन्य उदै हुआ जो शुकदेव जी आये, ये सब धर्मों से उत्तम धर्म कहेंगे, जिस से तू जन्म मरन से छूट भव सागर पार होगा. यह बचन सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी को दंडवत कर पूछा, महाराज! मुझे धर्म समझायके कहो, किस रीति से कर्म के फंदे से छूटूंगा, सात दिन में क्या करूंगा, अधर्म है अपार, कैसे भव सागर हूंगा पार.

श्री शुकदेव जी बोले राजा, तू थोड़े दिन मत समझ, मुक्ति तो होती है एकही घड़ी के ध्यान में; जैसे षट्टांगुल राजा को नारद मुनि ने ज्ञान बताया था, और उसने दोही घड़ी में मुक्ति पाई थी; तुम्हें तो सात दिन बहुत हैं, जो एक चित हो करो ध्यान, तो सब समझोगे अपने हीं ज्ञान से, कि क्या है देह, किस का है बास, कौन करता है इस में प्रकाश. यह सुन राजा ने हरषके पूछा, महाराज! सब धर्मों से उत्तम धर्म कौन सा है, सो कृपा कर कहो. तब शुकदेव जी बोले, राजा! जैसे सब धर्मों में बैष्णव धर्म बड़ा है, तैसे पुरानों में श्री भागवत, जहां हरि भक्त यह कथा सुनावैं हैं तहां हीं सब तीर्थ औ धर्म आवैं हैं; जितने हैं पुरान, पर नहीं है कोई भागवत के समान, इस कारन मैं तुझे बारह स्कंध महा पुरान सुनाता हूं, जो व्यास मुनि ने मुझे पढ़ाया है, तू श्रद्धा समेत आनंद से चित दे सुन. तब तो राजा परीक्षित सप्रेम सुनने लगे, और शुकदेव जी नेम से सुनाने.

नौ स्कंध कथा जब मुनि ने सुनाई, तब राजा ने कहा दीन दयाल! अब दया कर श्री कृष्णावतार की कथा कहिये; क्योंकि हमारे सहायक औ कुल पूज्य वेही हैं. शुकदेव जी बोले, राजा! तुम ने मुझे बड़ा सुख दिया जो यह प्रसंग पूछा; सुनो, मैं प्रसन्न हो कहता हूं. यदु कुल में पहले भजमान नाम राजा थे, तिन के पुत्र पृथिकु, पृथिकु के बिदूरथ, तिनके सूरसेन, जिन्हों ने नौखंड पृथी जीतके जस पाया. उन की स्त्री का नाम मरिष्या, तिसके दस लड़के और पांच लड़कियां, तिन में बड़े पुत्र बसुदेव, जिनकी स्त्री के आठवें गर्भ में श्री कृष्णचंद्र जीने जन्म लिया. जब बसुदेव

जी उपजे थे, तब देवताओं ने सुरपुर में आनंद के बाजन बजाये थे; और सूरसेन की पांच पुत्रियों में सब से बड़ी कुंती थी, जो पंडु को ब्याही थी, जिस की कथा महाभारत में गाई है; और बसुदेव जी पहले तो रोहन नरेस की बेटी रोहनी को ब्याह लाये, तिस पीछे सत्रह. जब अठारह पटरानी हुईं, तब मथुरा में कंस की बहन देवकी को ब्याहा; तहां आकाश बानी भई कि इस लड़की के आठवें गर्भ में कंस का काल उपजेगा. यह सुन कंस ने बहन बहनेऊ को ऐक घर में मूंद दिया, और श्री कृष्ण ने वहांहीं जन्म लिया. इतनी कथा सुनते ही राजा परीक्षित बोले, महाराज! कैसे जन्म कंस ने लिया, किस ने तिसे महा बर दिया, और कौन रीति से कृष्ण उपजे आय, फिर किस बिधिसे गोकुल पहुंचे जाय, यह तुम मुझे कहो समझाय.

श्री शुकदेव जी बोले, मथुरा पुरी का आहुक नाम राजा, तिनके दो बेटे, ऐक का नाम देवक, दूसरा उग्रसेन. कितने ऐक दिन पीछे उग्रसेन ही वहां का राजा हुआ, जिसकी ऐकही रानी, तिस का नाम पवनरेखा, सो अति सुंदरी और पतिब्रता थी, आठों पहर स्वामी की आज्ञा ही में रहे. ऐक दिन कपड़ों से भई, तो पति की आज्ञा ले सखी सहेली को साथ कर रथ में चढ़ बन में खेलने को गई; वहां घने घने बृक्षों में भांति भांति के फूल फूले हुऐ; सुगंध सनी मंद मंद ठंढी ठंढी पवन बह रही; कोकिल, कपोत, कीर, मोर, मीठी मीठी मनभावन बोलियां बोल रहे; और ऐक ओर पर्वत के नीचे यमुना न्यारी ही लहरें ले रही थी, कि रानी इस समैं को देख रथ से उतरकर चली तो अचानक ऐक ओर अकेली भूलके जा निकली; वहां द्रुमलिक नाम राक्षस भी संयोग से आ पहुंचा, वह इस के जोबन औ रूप की छबि को देख छक रहा, और मन में कहने लगा कि इस से भोग किया चाहिये. यह ठान तुरत राजा उग्रसेन का स्वरूप बन, रानी के सोंहीं जा बोला, तू मुझ से मिल. रानी बोली, महाराज! दिन को काम केलि करनी जोग नहीं, क्योंकि इस में सील और धर्म जाता है, क्या तुम नहीं जानते जो ऐसी कुमति बिचारी है!

जद पवनरेखा ने इस भांति कहा, तद तो द्रुमलिक ने रानी को हाथ पकड़ खैंच लिया, और जो मन माना सो किया. इस छल से भोग करके जैसा था तैसा ही बनगया; तब तो रानी अति दुख पाय पछतायकर बोली, अरे अधर्मी, पापी चंडाल! तूने यह क्या अंधेर किया जो मेरा सत खो दिया; धिक्कार है तेरे माता पिता औ गुरू को, जिसने तुझे ऐसी बुद्धि दी, तुझ सा पूत जन्ने से तेरी मा बांझ क्यों न हुई, अरे दुष्ट! जो नर देह पाकर किसी का सत भंग करते हैं, सो जन्म जन्म नरक में पड़ते हैं. द्रुमलिक बोला, रानी! तू स्राप मत दे मुझे, मैंने अपने धर्म का फल दिया है तुझे; तेरी कोख बंध देख मेरे मन में बड़ी चिंता थी सो गई; आज से हुई गर्भ की आस, लड़का होगा दसवें

मार; और मेरी देह के सुभाव से तेरा पुत्र नौ खंड पृथ्वी को जीत राज करेगा, औ कृष्ण से लड़ैगा; मेरा नाम प्रथम कालनेम था, तब बिष्णु से युद्ध किया था; अब जन्म ले आया तो द्रुमलिक नाम बताया, तुज को पुत्र दे चला, तू अपने मन में किसी बात की चिंता मत करे. इतनी बात कह जब कालनेम चला गया, तब रानी को भी कुछ सोच समज कर धीरज भया.

जैसी हो होतव्यता, तैसी उपजे बुद्धि.

होनहार हिरदे बसे, बिसर जाय सब सुद्धि.

इतने में सब सखी सहेली आन मिलीं, रानी का सिंगार बिगड़ा देख एक सहेली बोल उठी, इतनी बेर तुम्हें कहां लगी और यह क्या गति ऊई? पवनरेखा ने कहा, सुनो सहेली! तुम ने इस बन में तजी अकेली; एक बंदर आया तिस ने मुझे अधिक सताया, तिस के डर से मैं अबतक थरथर कांपती हूं. यह बात सुनकर तो सबकी सब घबराईं, औ रानी को झट रथ पर चढ़ा घर लाईं. जब दस महीने पूजे, तब पूरे दिनों लड़का ऊआ, तिस समैं एक बड़ी आंधी चली कि जिस के मारे लगी धरती डोलने; अंधेरा ऐसा ऊआ जो दिन की रात हो गई, और लगे तारे टूट टूट गिरने, बादल गरजने, औ बिजली कड़कने.

ऐसे माघ सुदी तेरस बृहस्पति बार को कंस ने जन्म लिया, तब राजा उग्रसेन ने प्रसन्न हो सारे नगर के मंगलामुखियों को बुलाय मंगलाचार करवाये, और सब ब्राह्मन, पंडित, जोतषियों को भी अति मान सनमान से बुलवा भेजा; वे आये, राजाने बड़ी आवभक्ति से आसन देदे बैठाये; तब जोतषियों ने लग्न साध मुहूर्त बिचारकर कहा, पृथीनाथ! यह लड़का कंस नाम तुम्हारे बंस में उपजा, सो अति बलवंत हो राक्षसों को ले राज करेगा, और देवता और हरि भक्तों को दुख दे आपका राज ले निदान हरिके हाथ मरेगा.

इतनी कथा कह सुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा, राजा! अब मैं उग्रसेन के भाई देवक की कथा कहता हूं, कि उस के चार बेटे थे और छः बेटियां, सो छओं बसुदेव को ब्याह दीं; सातवीं देवकी ऊई, जिसके होने से देवताओं को प्रसन्नता भई; और उग्रसेन के भी दस पुत्र, पर सब से कंस ही बड़ा था; जब से जन्मा, तब से यह उपाय करने लगा कि नगर में जाय छोटे छोटे लड़कों को पकड़ पकड़ लावे, औ पहाड़ की खोह में मूंद मूंद मार मार डाले; जो बड़े होंय तिनकी छाती पै चढ़ गला घोंट जी निकाले; इस दुख से कोई कहीं न निकलने पावे, सब कोई अपने अपने लड़के को छिपावे; प्रजा कहे दुष्ट यह कंस, उग्रसेन का नहीं है बंस; कोई महा पापी जन्म ले आया है जिसने सारे नगर को सताया है. यह बात सुन उग्रसेन ने विसे बुलाकर बऊत सा समझाया, पर इस का

कहना विस के जी में कुछ भी न आया; तब दुख पाय पछतायके कहने लगा कि ऐसे पूत होने से मैं अपूत क्यों न हुआ.

कहते हैं, जिस समैं घर में कपूत आता है, तिसी समैं जस और धर्म जाता है. जब कंस आठ बर्ष का भया, तब मगध देस पर चढ़ गया. वहां का राजा जरासिंधु बड़ा जोधा था, तिस से मिल इन्ने मल्ल युद्ध किया तो उनने कंस का बल लख लिया, तब हार मान अपनी दो बेटियां ब्याह दीं; यह ले मथुरा में आया और उग्रसेन से बैर बढ़ाया. एक दिन कोपकर अपने पिता से बोला कि तुम राम नाम कहना छोड़ दो औ महादेव का जप करो. विसने कहा मेरे तो करता दुखहरता वेई हैं जो विनको ही न भजूंगा तो अधर्मी हो कैसे भव सागर पार हूंगा. यह सुन कंस ने खुनसा बाप को पकड़कर सारा राज लेलिया, और नगर में यों डौंडी फेरदी कि कोई यज्ञ, दान, धर्म, तप, औ राम का नाम करने न पावे. ऐसा अधर्म बढ़ा कि गौ, ब्राह्मन, हरिके भक्त, दुख पाने लगे, और धरती अति बोझों मरने. जब कंस सब राजाओं का राज ले चुका, तब एक दिन अपना दल ले राजा इंद्र पर चढ़ चला, तहां मंत्री ने कहा महाराज! इंद्रासन बिन तप किये नहीं मिलता, आप बल का गर्ब न करिये, देखो गर्ब ने रावन कुंभकरन को कैसा खो दिया कि जिनके कुल में एक भी न रहा.

इतनी कथा कह सुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे, कि राजा! जद पृथ्वी पर अति अधर्म होने लगा, तद दुखपाय घबराय गाय का रूप बन रांभती देव लोक में गई, और इंद्र की सभा में जा, सिर झुकाय, उसने अपनी सब पीर कही, कि महाराज! संसार में असुर अति पाप करने लगे, तिनके डर से धर्म तो उठ गया, औ मुझे आज्ञा हो तो नरपुर छोड़ रसातल को जाऊं. इंद्र सुन सब देवताओं को साथ ले ब्रह्मा के पास गये; ब्रह्मा सुन सब को महादेव के निकट ले गये; महादेव भी सुन सब को साथ ले वहां गये जहां क्षीर समुद्र में नारायन सो रहे थे. विन को सोता जान, ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र, सब देवताओं को साथ ले खड़े हो, हाथ जोड़, बिनती कर, वेदस्तुति करने लगे; महाराजाधिराज! आप की महिमा कौन कह सके, मछ रूप हो वेद डूबते निकाले; कछ स्वरूप बन पीठ पर गिरि धारन किया; बराह बन भूमि को दांत पै रखलिया; बावन हो राजा बलि को छला; परसराम औतार ले क्षत्रियों को मार पृथ्वी कश्यप मुनि को दी; रामावतार लिया तब महादुष्ट रावन को बध किया; और जब जब दैत्य तुम्हारे भक्तों को दुख देते हैं, तब तब आप विनकी रक्षा करते हैं; नाथ! अब कंस के सताने से पृथ्वी अति ब्याकुल हो पुकार करती है, विसकी बेग सुध लीजे, असुरों को मार साधों को सुख दीजे.

ऐसे गुन गाय देवताओं ने कहा, तब आकाश बानी हुई, सो ब्रह्मा देवताओं को समझाने लगे,

यह जो बानी भई सो तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम सब देवी देवता ब्रजमंडल जाय मथुरा नगरी में जन्म लो, पीछे चार स्वरूप धर हरि भी औतार लेंगे बसुदेव के घर देवकी की कोख में, और बाल लीला कर नंद जसोदा को सुख देंगे; इस रीति से ब्रह्मा ने जब बुझाके कहा, तब तो सुर, मुनि किन्नर, और गंधर्व सब अपनी अपनी स्त्रियों समेत जन्म ले ले ब्रज मंडलमें आये, यदुबंसी औ गोप कहाये; और जो चारों वेद की ऋचायें थीं, सो ब्रह्मा से कहने गईं कि हम भी गोपी हो ब्रज में औतार ले बासुदेव की सेवा करें. इतनी कह वे भी ब्रज में आईं, औ गोपी कहलाईं. जब सब देवता मथुरा पुरी में आचुके, तब क्षीर समुद्र में हरि बिचार करने लगे, कि पहले तो लछमन होंय बलराम, पीछे बासुदेव हो मेरा नाम; भरत, प्रद्युम्न; सत्रुघ्न, अनिरुद्ध; और सीता रुक्मिनी का अवतार लें. इति.

CHAPTER. II.

इतनी कथा सुनाय, श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, हे महाराज! कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज करने लगा, औ उग्रसेन दुख भरने. देवक जो कंस का चाचा था, तिसकी कन्या देवकी जब ब्याहन जोग हुई, तब तिन्ने जा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें; वह बोला, सूरसेन के पुत्र बसुदेव को दीजिये. इतनी बात सुननेही देवकने एक ब्राह्मन को बुलाय, सुभ लग्न ठहराय, सूरसेन के घर टीका भेज दिया; तब तो सूरसेन भी बड़ी धूमधाम से बरात बनाय, सब देस देस के नरेस साथ ले मथुरा में बसुदेव को ब्याहन आये.

बरात नगर के निकट आई सुन, उग्रसेन देवक और कंस अपना दल साथ ले, आगे बढ़, नगर में लेगये; अति आदर मान से अगौनी कर जनवासा दिया, खिलाय पिलाय सब बरातियों को मढे के नीचे लेजा बैठाया, और वेदकी बिधि से कंस ने बसुदेव को कन्या दान दिया. तिसके यौतुक में पंद्रह सहस्र घोड़े, चार सहस्र हाथी, अठारह सै रथ, दास दासी अनेक दे, कंचन के थाल बस्त्र आभूषन रतन जटित से भर भर अनगिनत दिये, और सब बरातियों को भी अलंकार समेत बागे पहराय, सब मिल पहुंचावन चले. तहां आकाश बानी हुई कि अरे कंस! जिसे तू पहुंचावने चला है, तिस का आठवां लड़का तेरा काल उपजेगा, तिसके हाथ तेरी मीच है.

यह सुनते ही कंस डरकर कांप उठा, औ क्रोध कर देवकी को झोंटे पकड़ रथ से नीचे खैंच लाया; खड़्ग हाथ में ले दांत पीस पीस लगा कहने, जिस पेड़ को जड़ ही से उखाड़िये, तिस में फूल फल काहेको लगेगा, अब इसी को मारूं तो निर्भय राज करूं. यह देख सुन बसुदेव मन में

कहने लगे, इस मूरख ने दिया संताप, जानता नहीं है पुन्य औ पाप,. जो मैं अब क्रोध करता हूं तो काज बिगड़ेगा, तिस से इस समैं क्षमा करनी जोग है. कहा है,

जो बैरी खैंचे तरवार, करे साध तिसकी मनुहार.
समझ मूढ़ सोई पछताय, जैसे पानी आग बुझाय.

यह सोच समझ बसुदेव कंस के सोहीं जा हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगे, कि सुनो पृथीनाथ! तुम सा बली संसार में कोई नहीं, और सब तुम्हारी छांह तले बसते हैं; ऐसे सूर हो स्त्री पर शस्त्र करो, यह अति अनुचित है, औ बहन के मारने से महा पाप होता है, तिस पर भी मनुष अधर्म तो करे जो जाने कि मैं कभी न मरूंगा. इस संसार की तो यही रीति है, इधर जन्मा, उधर मरा; करोड़ जतन से पाप पुन्य कर कोई इस देह को पोखे, पर यह कभी अपनी न होयगी; और धन, जोबन, राज, भी न आवेगा काज; इस से मेरा कहा मान लीजे, औ अपनी अबला अधीन बहन को छोड़ दीजे. इतना सुन वह अपना काल जान घबराकर और भी झुंझलाया, तब बसुदेव सोचने लगे, कि यह पापी तो असुर बुद्धि लिये अपने हठ की टेक पर है, जिस में इस के हाथ से यह बचे सो उपाय किया चाहिये. ऐसे बिचार मन में कहने लगे, अब तो इस से यों कह देवकी को बचाऊं कि जो पुत्र मेरे होगा सो तुम्हें दूंगा; पीछे किसने देखी है, लड़काई न होय, कै यही दुष्ट मरे, यह औसर तो टले; फेर समझी जायगी. इस भांति मन में ठान, बसुदेव ने कंस से कहा महाराज! तुम्हारी मृत्यु इस के पुत्र के हाथ न होयगी, क्योंकि मैंने एक बात ठहराई है कि देवकी के जितने लड़के होंगे तितने मैं तुम्हें ला दूंगा, यह बचन मैंने तुम को दिया. ऐसी बात जब बसुदेव ने कही, तब समझ के कंस ने मानली; औ देवकी को छोड़ कहने लगा, हे बसुदेव! तुम ने अच्छा बिचार किया जो ऐसे भारी पाप से मुझे बचालिया. इतना कह बिदा दी, वे अपने घर गये.

कितने एक दिन मथुरा में रहते भये जब पहला पुत्र देवकी के हुआ, तब बसुदेव ले कंस पै गये और रोता हुआ लड़का आगे धरदिया; देखते ही कंस ने कहा बसुदेव! तुम बड़े सत बादी हो, मैंने सो आज जाना, क्योंकि तुम ने मुझ से कपट न किया, निरमोही हो अपना पुत्र ला दिया; इस से डर नहीं है कुछ मुझे, यह बालक मैंने दिया तुझे. इतना सुन बालक ले दंडवत कर बसुदेव जी तो अपने घर आये, और तिसी समैं नारद मुनि जी ने जाय कंस से कहा राजा! तुम ने यह क्या किया जो बालक उलटा फेर दिया! क्या तुम नहीं जानते कि बासुदेव की सेवा करने को सब देवताओं ने ब्रज में आय जन्म लिया है, और देवकी के आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार भूमि का भार उतारेंगे. इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीर खैंच गिनवाईं; जब

आठही आठ गिनती में आई, तब डरकर कंस ने लड़के समेत बसुदेव जी को बुला भेजा. नारद मुनि तो यों समझाय बुझाय चले गये, और कंस ने बसुदेव से बालक ले मारडाला. ऐसे जब पुत्र होय तब बसुदेव ले आवे, औ कंस मार डाले. इसी रीति से छः बालक मारे, तब सातवें गर्भ में शेष रूप जो श्री भगवान, तिन्हों ने आ बास लिया. यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा, महाराज! नारद मुनि जी ने जो अधिक पाप करवाया, तिसका ब्यौरा समझाकर कहो, जिससे मेरे मनका संदेह जाय. श्री शुकदेव जी बोले, राजा! नारद जी ने तो अच्छा बिचार कि यह अधिक अधिक पाप करे तो श्री भगवान तुरंतही प्रगट होवें. इति

CHAPTER. III.

फेर शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा! जैसे गर्भ में आये हरी, और ब्रह्मादिक ने गर्भस्तुति करी, औ देवी जिस भांति बलदेव जी को गोकुल लेगई, तिसी रीति से कथा कहता हूं. एक दिन राजा कंस अपनी सभा में आय बैठा, और जितने दैत्य उसके थे तिनको बुलाकर कहा, सुनो सब देवता पृथी में जन्म ले आये हैं, तिन्हों में कृष्ण भी औतार लेगा; यह भेद मुझ से नारद मुनि समझायके कह गये हैं, इस से अब उचित यही है कि तुम जाकर सब यदुबंसियों का ऐसा नास करो जो एक भी जीता न बचे.

यह आज्ञा पा सबके सब दंडवत कर चले, नगर में आ ढूंढ़ ढूंढ़ पकड़ पकड़ लगे बांधने, खाते, पीते, खड़े, बैठे, सोते, जागते, चलते, फिरते, जिसे पाया तिसे न छोड़ा, घेरके एक ठौर लाये, और जला जला, डबो डबो, पटक पटक, दुख दे दे, सब को मार डाला. इसी रीति से छोटे बड़े भयावने भांति भांति के भेष बनाये, नगर नगर गांव गांव गली गली घर घर खोज खोज लगे मारने, और यदुबंसी दुख पाय पाय देस छोड़ छोड़ जी ले ले भागने.

तिसी समैं बसुदेव की जो और स्त्रियां थीं, सो भी रोहनी समेत मथुरा से गोकुल में आईं, जहां बसुदेव जी के परम मित्र नंदजी रहते थे; तिन्हों ने अति हित से आसा भरोसा दे रक्खा; वे आनन्द से रहने लगीं. जब कंस देवताओं को यों सताने, औ अति पाप करने लगा, तब विष्णुने अपनी आंखों से एक माया उपजाई, सो हाथ बांध सनमुख आई. तिससे कहा, तू अभी संसार में जा औतार ले मथुरा पुरीके बीच, जहां दुष्ट कंस मेरे भक्तों को दुख देता है, और कश्यप अदिति जो बसुदेव देवकी हो ब्रज में गये हैं, तिनको मूंद रक्खा है. छः बालक तो तिनके कंसने मार डाले, अब सातवें गर्भ में लक्ष्मन जी हैं, तिन्हें देवकी की कोख से निकाल, गोकुल में ले जाकर

इस रीति से रोहनी के पेट में रख दीजो कि कोई दुष्ट न जाने, और सब वहां के लोग तेरा जस बखाने.

इस भांति माया को समझा, श्री नारायन बोले, कि तू तो पहले जाकर यह काज करके नंद के घर में जन्म ले, पीछे बसुदेव के यहां औतार ले, मैं भी नंद के घर आता हूं. इतना सुनते ही माया झट मथुरा में आई, और मोहनी का रूप बन बसुदेव के गेह में बठ गई,

जो छिपाय गर्भ हर लिया, जाय रोहनी को सो दिया.
जाने सब पहला आधान, भये रोहनी के भगवान.

इस रीति से सावन सुदी चौदस बुधबार को बलदेव जी ने गोकुल में जन्म लिया, और माया ने बसुदेव देवकी को जा सपना दिया, कि मैं ने तुम्हारा पुत्र गर्भ से लेजाय रोहनी को दिया है, सो किसी बात की चिंता मत कीजो. सुनते ही बसुदेव देवकी जाग पड़े, और आपस में कहने लगे, कि यह तो भगवान ने भला किया, पर कंस को इसी समैं जताया चाहिये, नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुख दे. यों सोच समझ रखवालों से बुलाकर कहा, जिन्हों ने कंस को जा सुनाया कि महाराज! देवकी का गर्भ अधूरा गया, बालक कुछी न पूरा भया. सुनते ही कंस घबराकर बोला कि तुम अब की बेर चौकसी करियो; क्योंकि मुझे आठवेंईं गर्भ का डर है जो आकाश बानी कहगई है.

इतनी कथा कह, श्री शुकदेव जी बोले, हे राजा! बलदेव जी तो यों प्रगटे, और जब श्री कृष्ण देवकी के गर्भ में आये, तभी माया ने जा नंद की नारी जसोदा के पेट में बास लिया; दोनों आधान से थीं कि एक पर्व में देवकी यमुना न्हाने गई, वहां संयोग से जसोदा भी आन मिली तो आपस में दुख की चरचा चली; निदान जसोदाने देवकी को बचन दे कहा कि तेरा बालक मैं रक्खूंगी, अपना तुझे दूंगी. ऐसे बचन दे, यह अपने घर आई, औ वह अपने; आगे जद कंसने जाना कि देवकी का आठवां गर्भ रहा, तद जा बसुदेव का घर घेरा; चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी, और बसुदेव को बुलाकर कहा कि अब तुम मुझ से कपट मत कीजो, अपना लड़का लादीजो, तब मैंने तुम्हारा ही कहना मान लिया था.

ऐसे कह, बसुदेव देवकी को बेड़ी औ हथकड़ी पहिराय, एक कोठे में मूंदकर, ताले पर ताले दे, निज मंदिर में आ, मारे डरके उपास कर सो रहा, फिर भोर होतेही वहीं गया जहां बसुदेव देवकी थे. गर्भ का प्रकाश देख कहने लगा, कि इसी यम गुफा में मेरा काल है, मार तो डालूं, पर अपजस से डरता हूं, क्योंकि अति बलवान हो स्त्री को हनना जोग नहीं, भला इसके

तुमही को मारूंगा. यों कह, बाहर आ, गज, सिंह, स्वान, औ आपने बड़े बड़े जोधा वहां चौकी को रक्खे, और आप भी नित चौकसी कर आवे, पर एक पल भी कल न पावे; जहां देखे तहां आठ पहर चौंसठ घड़ी कृष्ण रूप कालही दृष्टि आवे; तिसके भय से भावित हो रात दिन चिंता में गंवावे.

इधर कंस की तो यह दसा थी, उधर बसुदेव औ देवकी पूरे दिनों महा कष्ट में श्री कृष्णही को मनाते थे, कि इस बीच भगवान ने आ तिन्हें स्वप्न दिया, और इतना कह तिनके मनका सोच दूर किया, जो हम बेगही जन्म ले तुम्हारी चिंता मेटते हैं, तुम अब मत पछिताओ. यह सुन बसुदेव देवकी जाग पड़े, तो इतने में ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रादि सब देवता अपने बिमान अधर में छोड़, अलख रूप बन, बसुदेव के गेह में आये, औ हाथ जोड़ जोड़ बेद गाय गाय गर्भस्तुति करने लगे. तिस समैं तिनको तो किसी ने न देखा, पर बेद की धुनि सब ने सुनी. यह अचरज देख सब रखवाले अचंभे रहे, और बसुदेव देवकी को निहचै हुआ कि भगवान बेगही हमारी पीर हरेंगे. इति

CHAPTER. IV.

श्री सुकदेव जी बोले, राजा! जिस समैं श्री कृष्णचंद जन्म लेने लगे, तिस काल सबही के जी में ऐसा आनंद उपजा कि दुख नाम को भी न रहा, हरष से लगे बन उपबन हरे हो हो फूलने फलने; नदी नाले सरोवर भरने; तिन पर भांति भांति के पंछी कलोलें करने; और नगर नगर गांव गांव घर घर मंगलाचार होने; ब्राह्मन यज्ञ रचने; दसों दिसा के दिगपाल हरषने; बादल ब्रजमंडल पर फिरने; देवता अपने अपने बिमानों में बैठे आकाश से फूल बरसावने; बिद्याधर, गंधर्ब, चारन, ढोल, दमामे, भेर, बजाय बजाय गुन गाने. और एक ओर उर्बसी आदि सब अपसरा नाच रही थीं, कि ऐसे समैं भादों बदी अष्टमी बुधबार रोहनी नक्षत्र में आधी रात श्री कृष्ण ने जन्म लिया, और मेघबरन, चंदमुख कंवलनैन हो, पीतांबर काछे, मुकुट धरे, बैजंती माल औ रतन जटित आभूषन पहरे, चतुर्भुज रूप किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लिये, बसुदेव देवकी को दरसन दिया; देखतेही अचंभे हो तिन दोनों ने ज्ञान से बिचार तो आदि पुरुष को जाना, तब हाथ जोड़ बिनती कर कहा, हमारे बड़े भाग जो आपने दरसन दिया और जन्म मरन का निवेड़ा किया.

इतना कह पहली कथा सब सुनाई, जैसे जैसे कंस ने दुख दिया था; तहां श्री कृष्णचंद बोले, तुम अब किसी बात की चिंता मन में मत करो, क्योंकि मैं ने तुम्हारे दुख के दूर करने ही को औतार

लिया है; पर इस समैं मुझे गोकुल पहुंचा दो और इसी बिरियां जसोदा के लड़की हुई है सो कंस को ला दो, अपने आने का कारन कहता हूं सो सुनो.

नंद जसोदा तप कस्यो, मोही सों मन लाय,
देख्यौ चाहत बाल सुख, रहौं कछूदिन जाय.

फिर कंस को मार आन मिलूंगा, तुम अपने मन में धीर धरो. ऐसे बसुदेव देवकी को समझाय, श्री कृष्ण बालक बन रोने लगे, और अपनी माया फैलादी, तब तो बसुदेव देवकी का ज्ञान गया औ जाना कि हमारे पुत्र भया; यह समझ दस सहस्र गाय मन में संकल्प कर लड़के को गोद में उठा छाती से लगा लिया; उसका मुंह देख देख दोनों लंबी सांसें भर भर आपस में लगे कहने, जो किसी रीत से इस लड़के को भगा दीजे तो कंस पापी के हाथ से बचे, बसुदेव बोले, —

बिधना बिन राखै नहीं कोई, कर्म लिखा सोई फल होई.
तब करजोर देवकी कहै, नंद मित्र गोकुल में रहै.
पीर जसोदा हरै हमारी, नारि रोहनी तहां तिहारी.

इस बालक को वहां ले जाओ; यों सुन बसुदेव अकुलाकर कहने लगे, कि इस कठिन बंधन से छूट कैसे लेजाऊं. जों इतनी बात कही तों सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ी; चारों ओरके किवाड़ उघड़ गये; पहरुए अचेत नींद बस भयें; तब तो बसुदेव जी ने श्री कृष्ण को सूप में रख सिर पर धर लिया, और झट पट ही गोकुल को प्रस्थान किया.

ऊपर बरसे देव, पीछे सिंह जु गुंजरै,
सोचत है बसुदेव, यमुना देखि प्रवाह अति

नदी के तीर खड़े हो बसुदेव बिचारने लगे, कि पीछे तो सिंघ बोलता है, औ आगे अथाह यमुना बह रही है, अब क्या करूं. ऐसे कह भगवान का ध्यान धर यमुना में पैठे; जों जों आगे जाते थे तों तों नदी बढ़ती थी, जब नाक तक पानी आया तब तो वे निपट घबराये. इनको व्याकुल जान, श्री कृष्णने अपना पांव बढ़ाय हुंकार दिया, चरन छूतेही यमुना थाह हुई, बसुदेव पार हो नंद की पौर पर जा पहुंचे, वहां किवाड़ खुले पाये, भीतर धसके देखें तो सब सोये पड़े हैं. देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि जसोदा को लड़की के होने की भी सुध न थी. बसुदेव जी ने कृष्ण को तो जसोदा के ढिंग सुला दिया, और कन्या को ले चट अपना पंथ लिया. नदी उतर फिर आये तहां, बैठी सोचती थी देवकी जहां, कन्या दे वहां की कुशल कही, सुनते ही देवकी प्रसन्न हो बोली, हे स्वामी! हमें कंस अब मार डाले तौभी कुछ चिंता नहीं, क्योंकि इस दुष्टके हाथ से पुत्र तो बचा.

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे, कि जब बसुदेव लड़की को ले आये, तब किवाड़ जों के तों भिड़ गये, औ दोनों ने हथकड़ियां बेड़ियां पहरलीं. कन्या रोउठी, रोने की धुन सुन पहरुए जागे तो अपने अपने शस्त्र ले ले सावधान हो लगे तुपक छोड़ने. तिनका शब्द सुन लगे हाथी चिंघाड़ने, सिंह दहाड़ने, औ कुत्ते भोंकने. तिसी समैं अंधेरी रात के बीच बरसते में एक रखवाले ने आ हाथ जोड़ कंस से कहा, महाराज! तुम्हारा बैरी उपजा, यह सुन कंस मूर्छित हो गिरा. इति

CHAPTER. V.

बालक का जन्म सुनते ही कंस डरता कांपता उठ खड़ा हुआ, और खड़्ग हाथ में ले गिरता पड़ता दौड़ा; छुटे बालों, पसीने में डूबा, धुकुड़ पुकुड़ करता, जा बहन के पास पहुंचा. जब उसके हाथ से लड़की छीन ली, तब वह हाथ जोड़ बोली, ऐ भैया! यह कन्या है भानजी तेरी, इसे मत मार, यह पेट पोंछन है मेरी. मारे हैं बालक, तिनका दुख मुझे अति सताता है, उन काज कन्या को मार क्यों पाप बढ़ाता है! कंस बोला, जीती लड़की नदूंगा तुझे, जो ब्याहेगा इसे सो मारेगा मुझे. इतना कह बाहर आ ज्योंहीं चाहे कि फिराय कर पत्थर पर पटके, त्योंहीं हाथ से छूट कन्या आकाश को गई, और पुकारके यह कह गई, अरे कंस! मेरे पटकनें से क्या हुआ, तेरा बैरी कहीं जन्म ले चुका, अब तू जीता न बचेगा.

यह सुन कंस अछता पछता वहां आया जहां बसुदेव देवकी थे, आते ही उनके हाथ पांव की हथकड़ी बेड़ी काट दीं और बिनती कर कहने लगा कि मैंने बड़ा पाप किया जो तुम्हारे पुत्र मारे, यह कलंक कैसे छूटेगा, किस जन्म में मेरी गति होगी, तुम्हारे देवता झूठे हुए, जिन्होंने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ में लड़का होगा, सो न हो लड़की हुई, वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई, अब दयाकर मेरा दोष जीमें मत रक्खो; क्योंकि कर्म का लिखा कोई मेट नहीं सकता, इस संसार में आये से जीना, मरना, संयोग, बियोग, मनुष का नहीं छुटता; जो ज्ञानी हैं सो मरना जीना समान ही जानते हैं, और अभिमानी मित्र शत्रु कर मानते हैं; तुम तो बड़े साध सत बादी हो जो हमारे हेतु अपने पुत्र ले आये.

ऐसे कह जब कंस बार बार हाथ जोड़ने लगा, तब बसुदेव जी बोले, महाराज! तुम सच कहते हो, इस में तुम्हारा कुछ दोष नहीं, बिधना ने यही हमारे कर्म में लिखा था. यों सुन कंस प्रसन्न हो अति हित से बसुदेव देवकी को अपने घर ले आया, भोजन करवाय, बागे पहराय, बड़े

आदर भाव से दोनों को फेर वहीं पहुंचाय दिया; और मंत्री को बुलाके कहा, कि देवी कह गई है, तेरा बैरी जग में जन्मा, इस से अब देवताओं को जहां पाओ तहां मारो, क्योंकि विन्होंई ने मुझ से झूठी बात कही थी कि आठवें गर्भ में तेरा शत्रु होगा. मंत्री बोला, महाराज! विनका मारना क्या बड़ी बात है, वे तो जन्म के भिखारी हैं, जद आप कोपियेगा तभी वे भाग जांयगे; विनकी क्या सामर्थ है जो तुम्हारे सनमुख हों. ब्रह्मा तो आठ पहर ज्ञान ध्यान में रहता है; महादेव भांग धतूरा खाय; इंद्र का कुछ तुम पर न बसाय; रहा नारायन सो संग्राम नहीं जाने, लक्ष्मी के साथ रहता है सुख माने.

कंस बोला, नारायन को कहां पावें औ किस बिधि जीतें सो कहो, मंत्रीने कहा, महाराज! जो नारायन को जीता चाहते हो तो जिनके घर में आठ पहर है विनका बास, तिनही का अब करो बिनास. ब्राह्मन, बैस्नव, जोगी, जती, तपसी, सन्यासी, बैरागी, आदि जितने हरि के भक्त हैं, तिन में लड़के से ले बूढ़े तक ऐक भी जीता न रहै; यह सुन कंस ने प्रधान से कहा, तुम सब को जा मारो; आज्ञा पाकर मंत्री अनेक राक्षस साथ ले बिदा हो नगर में जा लगा गौ, ब्राह्मन, बालक, औ हरिभक्तों को छल बल कर ढूंढ ढूंढ मारने. इति

CHAPTER. VI.

इतनी कथा कह श्रीसुकदेव जी बोले, राजा, ऐक समैं नंद जसोदाने पुत्र के लिये बड़ा तप किया, तहां श्री नारायन ने आप बर दिया कि हम तुम्हारे यहां जन्म ले जांयगे. जब भादों बदी अष्टमी बुधवार को आधी रातके समैं श्री कृष्न आये, तब जसोदा ने जागते ही पुत्र का मुख देख, नंद को बुला, अति आनंद माना, औ अपना जीतब सुफल जाना. भोर होते ही उठके नंद जी ने पंडित औ जोतषियों को बुला भेजा; वे अपनी अपनी पोथी पत्रे ले ले आऐ, तिन को आसन दे दे आदर मान से बैठाऐ. विन्हों ने शास्त्र की बिधि से संबत्, महीना, तिथ, दिन, नक्षत्र, जोग, करन, ठहराय, लगन बिचार, महूर्त साधके कहा, महाराज! हमारे शास्त्र के बिचार में तो ऐसा आता है कि यह लड़का दूसरा बिधाता हो, सब असुरों को मार, ब्रज का भार उतार, गोपीनाथ कहावेगा, सारा संसार इसी का जस गावेगा.

यह सुन नंद जी ने कंचन के सींग, रूपे के खुर, तांबे की पीठ समेत, दो लाख, गौ, पाटंबर उढ़ाय संकल्प कीं, और अनेक दान कर ब्राह्मनों को दछना दे दे असीस ले ले बिदा किया. तब नगर के सब मंगलामुखियों को बुलाया; वे आय आय अपना अपना गुन प्रकाश करने लगे, बजंत्री

बजाने, नर्त्तक नाचने, गायक गाने, ढाढ़ी ढाढ़िन जस बखानने; और जितने गोकुल के गोप ग्वाल थे वेभी अपनी नारियों के सिर पर दहेंड़ियां लिवाये, भांति भांति के भेष बनाये, नाचते गाते नंद को बधाई देन आये; आतेही ऐसा दधिकांदौं किया कि सारे गोकुल में दही दही कर दिया; जब दधिकांदौं खेल चुके, तब नंद जी ने सब को खिलाय, पिलाय, बागे पहराय, तिलक कर, पान दे, बिदा किया.

इसी रीति से कई दिन तक बधाई रही; इस बीच नंद जी से जिस जिस ने जो जो आय आय मांगा सो सो पाया. बधाई से निचिंत हो नंद जी ने सब ग्वालों को बुलायके कहा, भाइयो! हमने सुना है कि कंस बालक पकड़ मंगवाता है, न जानिये कोई दुष्ट कुछ बात लगा दे, इससे उचित है कि सब मिल भेंट ले चलें औ बरसौड़ी दे आवें. यह बचन मान सब अपने अपने घर से दूध, दही, माखन, औ रुपये लाये, गाड़ों में लाद लाद नंद के साथ हो गोकुल से चल मथुरा आये; कंस से भेंटकर भेंट दी, कौड़ी कौड़ी चुकाय बिदा हो जुहार कर अपनी बाट ली.

ज्योंहीं यमुना तीर पै आये, त्योंहीं समाचार सुन बसुदेव जी आ पहुंचे, नंद जी से मिल कुशल क्षेम पूछ कहने लगे, तुमसा सगा औ मित्र हमारा संसार में कोई नहीं, क्योंकि जब हमें भारी बिपत भई, तब गर्भवती रोहनी तुम्हारे यहां भेज दी; जिसके लड़का हुआ, सो तुमने पाल बड़ा किया; हम तुम्हारा गुन कहां तक बखानें; इतना कह फेर पूछा, कहो राम कृष्ण औ जसोदा रानी आनंद से हैं? नंद जी बोले, आपकी कृपा से सब भले हैं, और हमारे जीवन मूल तुम्हारे बलदेव जी भी कुशल से हैं, कि जिनके होते तुम्हारे पुन्य प्रताप से हमारे पुत्र हुआ, पर एक तुम्हारेई दुख से हम दुखी हैं. बसुदेव कहने लगे, मित्र! बिधाता से कुछ न बसाय, कर्म की रेख किसी से मेटी न जाय, इस से संसार में आय दुख पीर पाय, कौन पछताय; ऐसे ज्ञान जनायके कहा,

तुम घर जा[illegible] आपने, कीने कंस उपद्रव घने,
बालक ढूंढ मंगाए नीच, हुई साध परजा की मीच.

तुम तो सब यहां चले आये हो, और राक्षस ढूंढते फिरते हैं, न जानिये कोई दुष्ट जाय गोकुल में उपाध मचावे. यह सुनते ही नंद जी अकुलाकर सब को साथ लिये सोचते मथुरा से गोकुल को चले. इति

CHAPTER. VII.

श्री शुकदेव जी बोले हे राजा! कंस का मंत्री तो अनेक राक्षस साथ लिये मारता फिरता ही था, कि कंसने पूतना नाम राक्षसी को बुलाकर कहा, तू जा जदुबंसियों के जितने बालक पावे तितने मार. यह सुन वह प्रसन्न हो दंडवत कर चली तो अपने जी में कहने लगी,

भये पूत हैं नंदकै, सूनों गोकुल गांउं,
छलकर अबही आनिहों गोपी व्हैकै जांउं.

यह कह, सोलह सिंगार, बारह आभरन कर; कुचमें बिष लगाय, मोहनी रूप बन, कपट किये, कंवल का फूल हाथ में लिये, बन ठनके ऐसे चली कि जैसे सिंगार किये लक्ष्मी अपने कंत पै जाती हो, गोकुल में पहुंच हंसती हंसती नंद के मंदिर बीच गई. इसे देख सब की सब मोहित हो भूली सी रहीं. यह जा जसोदा के पास बैठी और कुशल पूछ असीस दी, कि बीर तेरा कान्ह जीओ कोट बरस. ऐसे प्रीत बढ़ाय लड़के को जसोदा के हाथ से ले गोद में रख जों दूध पिलावने लगी, तों श्री कृष्ण दोनों हाथों से चूंची पकड़ मुंह लगाय, लगे प्रान समेत पै पीने; तब तो अति ब्याकुल हो पूतना पुकारी, कैसा जसोदा तेरा पूत, मानुष नहीं यह है जमदूत; जेवरी जान मैंने सांप पकड़ा, जो इसके हाथ से बच जीती जाऊंगी तो फेर गोकुल में कभी न आऊंगी. यों कह भाग गांव के बाहर आई, पर कृष्ण ने न छोड़ा, निदान तिसका जी लिया. वह पछाड़ खाय ऐसे गिरी जैसे आकाश से बज्र गिरे. अति शब्द सुन रोहनी औ जसोदा रोती पीटती वहीं आईं, जहां पूतना दो कोस में मरी पड़ी थी; और तिनके पीछे सब गांव उठ धाया, देखें तो कृष्ण तिसकी छाती पर चढ़े दूध पी रहे हैं; झट उठाय, मुख चूंब, हृदे से लगाय; घर ले आईं; गुनियों को बुलाय झाड़ फूंक करने लगीं; और पूतना के पास गोपी ग्वाल खड़े आपस में कह रहे थे, कि भाई! इसके गिरने का धमका सुन हम ऐसे डरे हैं जो छाती अबतक धड़कती है, न जानिये बालक की क्या गति हुई होगी.

इतने में मथुरा से नंद जी आये तो देखते क्या हैं कि एक राक्षसी मरी पड़ी है, औ ब्रजबासियों की भीड़ घेरे खड़ी है; पूछा यह उपाध कैसे हुई? वे कहने लगे, महाराज! पहले तो यह अति सुंदरी हो तुम्हारे घर असीस देती गई, इसे देख सब ब्रज नारी भूल रहीं, यह कृष्ण को ले दूध पिलाने लगी, पीछे हम नहीं जानते क्या गति हुई. इतना सुन नंद जी बोले, बड़ी कुशल भई जो बालक बचा, औ यह गोकुल पर न गिरी, नहीं तो एक भी जीता न रहता, सब इसके नीचे दब मरते. यों कह नंद जी तो घर आय दान पुन्य करने लगे, और ग्वालों ने फरसे, फावड़े, कुदाल,

कुल्हाड़ों से काट काट पूतनाके हाड़ गोड़ तो गढ़े खोद खोद गाड़ दिये, और मास चाम इकठाकर फूंक दिया. जिसके जलने से ऐक ऐसी सुगंध फैली कि जिस ने सारे संसार को सुगंध से भर दिया.

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने सुकदेव जी से पूछा, महाराज! वह राक्षसी महा मलीन मद मास खानेवाली, जिसके शरीर से सुगंध कैसे निकली, सो कृपाकर कहो. मुनि बोले राजा! श्री कृष्णचंद्र ने दूध पी जिसे मुक्ति दी, इस कारन सुगंध निकली. इति

CHAPTER. VIII.

श्री सुकदेव मुनि बोले,

जिहि नक्षत्र मोहन भये सो नक्षत्र पर्‍यो आइ,

चाह बधाये रीति सब करत जसोदा माइ.

जब सत्ताईस दिन के हरि हुऐ, तब नंद जी ने सब ब्राह्मन औ ब्रज बासियों को नोता भेज दिया. वे आऐ, तिन्हें आदर मान कर बैठाया. आगे ब्राह्मनों को तो बहुत सा दान दे बिदा किया, और भाईयों को बागे पहराय, षट रस भोजन कराने लगे. तिस समैं जसोदा रानी परेसती थी; रोहनी टहल करती थी; ब्रजबासी हंस हंस खारहे थे; गोपियां गीत गा रही थीं, सब आनंद में ऐसे मगन थे कि कृष्ण की सुरत किसू को भी नहीं. और कृष्ण ऐक भारी छकड़े के नीचे पालने में अचेतसोते थे, कि इस में भूखे हो जगे, पांव के अंगूठें मुंह में दे रोवन लगे, औ हिलक हिलक चारों ओर देखने. किसी औसर उड़ता हुआ, ऐक राक्षस आ निकला; कृष्ण को अकेला देख अपने मन में कहने लगा, कि यह तो कोई बड़ा बली उपजा है, पर आज मैं इस से पूतना का बैर लूंगा. यों ठान सकट में आन बैठा, तिसी से उसका नाम सकटासुर हुआ. जब गाड़ा चड़चड़ाय कर हिला, तब श्री कृष्ण ने बिलकते बिलकते ऐक ऐसी लात मारी कि वह मरगया, और छकड़ा टूक टूक हो गिरा, तो जितने बासन दूध दही के थे सब फूट चूर हुऐ, औ गोरस की नदी सी बह निकली. गाड़े के टूटने, औ भांडों के फटने का शब्द सुन सब गोपी ग्वाल दौड़ आऐ; आतेही जसोदा ने कृष्ण को उठाय मुंह चूंब छाती से लगालिया. यह अचरज देख सब आपस में कहने लगे, आज बिधना ने बड़ी कुशल की जो बालक बच रहा, औ सकट ही टूट गया.

इतनी कथा सुनाय, श्री सुकदेव बोले, हे राजा! जब हरि पांच महीने के हुऐ, तब कंस ने तृनावर्त को पठाया, वह बगूला हो गोकुल में आया. नंद रानी कृष्ण को गोद में लिये आंगन के बीच बैठी थी, कि ऐका ऐकी कृष्ण ऐसे भारी हुऐ जो जसोदा ने मारे बोझ के गोद से नीचे उतारे.

इतने में ऐक ऐसी आंधी आई, कि दिन की रात हो गई, औ लगे पेड़ उखड़ उखड़ गिरने; छप्पर उड़ने. तब व्याकुल हो जसोदा जी श्री कृष्ण को उठाने लगीं, पर वे न उठे. ज्योंहीं तिन के शरीर से इनका हाथ अलगा ऊआ, त्योंही तृनावर्त आकाश को ले उड़ा, और मन में कहने लगा, कि आज इसे बिन मारे न रहूंगा.

वह तो कृष्ण को लिये वहां यह बिचार करता था; यहां जसोदा जी ने जब आगे न पाया, तब ऐ ऐ कृष्ण कृष्ण कर पुकारने लगीं. तिनका शब्द सुन सब गोपी ग्वाल आऐ, साथ हो ढूंढने को धाये; अंधेरे में अटकल से टटोल टटोल चलते थे, तिस पर भी ठोकरें खाय गिर गिर पड़ते थे.

ब्रज बन गोपी ढूंढत डोलैं, इत रोहनी जसोदा बोलैं,
नंद मेघ धुनि करै पुकार, टेरैं गोपी गोप अपार.

जद श्री कृष्ण ने नंद जसोदा समेत सब ब्रजबासी अति दुखित देखे, तद तृनावर्त को फिराय, आंगन में ला, सिला पर पटका, कि तिसका जी देह से निकल सटका. आंधी थंभ गई, उजाला ऊआ, सब भूले भटके घर आये; देखें तो राक्षस आंगन में मरा पड़ा है, श्री कृष्ण छाती पर खेल रहे हैं. आते ही जसोदाने उठाय, कंठ से लगालिया, और बऊत सा दान ब्राह्मनों को दिया. इति

CHAPTER. IX.

श्री सुकदेव जी बोले, हे राजा! ऐक दिन बसुदेव जीने गर्ग मुनिको, जो बड़े जोतिषी औ यदुबंसियों के परोहित थे बुला कर कहा, कि तुम गोकुल जा लड़के का नाम रख आओ.

गई रोहनी गर्भ सों भयौ पूत है ताहि, ।
किती आयु कैसौ बली कहा नाम ता आहि. ।

और नंद जी के पुत्र ऊआ है, सो भी तुम्हें बुलाय गये हैं. सुनते ही गर्ग मुनि प्रसन्न हो चले, औ गोकुल के निकट जा पऊंचे. तिसी समैं किसी ने नंद जी से आ कहा कि जदुबंसियों के परोहित गर्ग मुनि जी आते हैं. यह सुन नंद जी आनंद से ग्वाल बाल संग कर भेट ले उठ धाऐ, और पाटंबर के पांवड़े डालते बाजे गाजे से ले आऐ, पूजा कर, आसन पर बैठाय, चरनामृत ले, स्त्री पुरुष हाथ जोड़ कहने लगे, महाराज! बड़े भाग हमारे जो आपने दया कर दरसन दे घर पवित्र किया; तुम्हारे प्रताप से दो पुत्र ऊऐ हैं, ऐक रोहनीके, ऐक हमारे, कृपा कर तिनका नाम धरिये. गर्ग मुनि बोले, ऐसे नाम रखना उचित नहीं, क्योंकि जो यह बात फैले कि गर्ग मुनि गोकुल

में लड़कों के नाम धरने गये हैं, औ कंस सुन पावे तो वह यही जानेगा कि देवकी के पुत्र को बसुदेव के मित्र के यहां कोई पहुंचाय आया है, इसी लिये गर्ग परोहित गया है, यह समझ मुझे पकड़ मंगावेगा और न जानिये तुम पर भी क्या उपाध लावे, इससे तुम फैलाव कुछ मत करो, चुपचाप घर में नाम धरवाओ

नंद बोले गर्ग जी! तुम ने सच कहा. इतना कह घर के भीतर ले जाय बैठाया; तब गर्ग मुनि ने नंद जी से दोनोंकी जन्म तिथि औ समैं पूछ, लग्न साध, नाम ठहराय कहा, सुनों नंद जी! बसुदेव की नारी रोहनी के पुत्र के तो इतने नाम होंयगे, संकर्षन, रेवतीरमन, बलदाऊ, बलराम, कालिंदीभेदन, हलधर, औ बलबीर. और कृष्ण रूप जो तुम्हारा लड़का है, तिसके नाम तो अनगिनत हैं, पर किसी समैं बसुदेव के यहां जन्मा, इससे बासुदेव नाम हुआ, औ मेरे बिचार में आता है कि ये दोनों बालक तुम्हारे चारों युग में जब जन्मे हैं तब साथ ही जन्मे हैं.

नंद जी बोले, इनके गुन कहो. गर्ग मुनि ने उत्तर दिया, ये दूसरे बिधाता हैं, इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती, पर मैं यह जानता हूं कि कंस को मार भूमि का भार उतारेंगे. ऐसे कह गर्ग मुनि चुपचुपाते चलेगये, औ बसुदेव को जा सब समाचार कहे.

आगे दोनों बालक गोकुल में दिन दिन बढ़ने लगे, और बाल लीला कर कर नंद जसोदा को सुख देने; नीले पीले झगुले पहने, माथे पर छोटी छोटी लटूरियां बिखरी हुई, ताइत गंडे बांधे, कठले गले में डाले, खिलौने हाथों में लिये खेलते; आंगन के बीच घुटनों चल चल गिर गिर पड़ें, और तोतली तोतली बातें करें; रोहनी औ जसोदा पीछे लगी फिरें, इस लिये कि मत कहीं लड़के किसी से डर ठोकर खा गिरें. जब छोटे छोटे बछड़ों औ बछियाओं की पूंछ पकड़ पकड़ उठें, और गिर गिर पड़ें, तब जसोदा औ रोहनी अति प्यार से उठाय छाती से लगाय दूध पिलाय भांति भांति के लाड़ लड़ावें.

जब श्री कृष्ण बड़े भये, तो एक दिन ग्वाल बाल साथ ले ब्रज में दधि माखन की चोरी को गये,

सूने घर में ढूंढें जाय, जो पावें सो देंय लुटाय,

जिन्हें घर में सोते पावें, तिनकी धरी ढंकी दहेंड़ी उठा लावें; जहां छींके पर रक्खा देखें, तहां पीढ़ी पर पटड़ा, पटड़े पै उलूखल धर, साथी को खड़ा कर, उसके ऊपर चढ़ उतार लें, कुछ खावें, लुटावें, औ लुढ़ाय दें. ऐसे गोपियों के घर घर नित चोरी कर आवें.

एक दिन सबने मता किया, और गेह में मोहन को आने दिया; जों घर भीतर पैठ, चाहें

कि माखन दही चुराय, तों जाय पकड़कर कहा, दिन दिन आते थे निस भोर, अब कहां जाओगे माखन चोर. यों कह जब सब गोपी मिल कन्हैया को लिये जसोदा के पास उलाहना देने चलीं, तब श्री कृष्ण ने ऐसा छल किया कि जिसके लड़के का हाथ तिसे पकड़ा दिया, और आप दौड़ अपने ग्वाल बालों का संग लिया. वे चली चली नंदरानी के निकट आय, पाओं पड़ बोलीं, जो तुम बिलग न मानो तो हम कहैं, जैसी कुछ उपाध कृष्ण ने ठानी है.

दूध दह्यौ माखन मह्यौ, बचे नहीं ब्रज मांझ,
ऐसी चोरी करतु है, फिरतु भोर अरु सांझ.

जहां कहीं धरा ढका पाते हैं, तहां से निधड़क उठा लाते हैं, कुछ खाते हैं, औ लुटाते हैं; जो कोई इनके मुख में दही लगा बतावे, तिसे उलट कर कहते हैं, तूनेई तो लगाया है. इस भांति नित चोरी कर आते थे, आज हमने पकड़ पाया सो तुम्हें दिखाने लाईं हैं. जसोदा बोलीं, बीर! तुम किसका लड़का पकड़ लाईं, कल से तो घरके बाहर भी नहीं निकला मेरा कुंवर कन्हाइ; ऐसाही सच बोलती हो. यह सुन औ अपना ही बालक हाथ में देख, वे हंसकर लजाय रहीं. तहां जसोदा जी ने कृष्ण को बुलायके कहा, पुत्र! तुम किसू के यहां मत जाओ, जो चाहिये सो घर में से ले खाओ.

सुनकै कान्ह कहत तुतराय, मत मैया तू इन्हैं पतियाय,
ये झूठी गोपी झूठौ बोलें, मेरे पीछे लागी डोलें.

कहीं दोहनी बछड़ा पकड़ातीं हैं, कभी घर की टहल करातीं हैं, मुझे द्वारे रखवाली बैठाय अपने काज को जाती हैं; फिर झूठ मूठ आय तुम से बातें लगाती हैं. यों सुन गोपी हरि मुख देख देख मुसकुराकर चली गईं.

आगे एक दिन कृष्ण बलराम सखाओं के संग बाखल में खेलते थे, कि जों कान्ह ने मट्टी खाई, तों एक सखा ने जसोदा से जा लगाई, वह क्रोध कर हाथ में छड़ी ले उठ धाई. मा को रिस भरी आती देख, मुंह पोंछ, डरकर खड़े हो रहे; इन्होंने जातेही कहा, क्यौंरे तूने माटी क्यौं खाई! कृष्ण डरते कांपते बोले, मा! तुझसे किसने कहा? ये बोलीं, तेरे सखाने. तब मोहन ने कोप कर सखा से पूछा, क्यौंरे मैं ने मट्टी कब खाई है! वह भयकर बोला, भैया! मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता, क्या कहूंगा. जों कान्ह सखा से बतराने लगे, तों जसोदा ने उन्हें जा पकड़ा, तहां कृष्ण कहने लगे, मैया! तू मत रिसाय, कहीं मनुष भी मट्टी खाते हैं! वह बोली, मैं तेरी अटपटी बात नहीं सुनती, जो तू सच्चा है तो अपना मुख दिखा. जों श्री कृष्ण ने मुख खोला, तों उस में

तीन लोक दृष्ट आये. तद जसोदा को ज्ञान ऊआ तो मन में कहने लगी, कि मैं बड़ी मूरख हूं, जे त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हूं.

इतनी कथा कह, श्री सुकदेव राजा परीक्षित से बोले, हे राजा! जब नंदरानी ने ऐसा जाना, तब हरि ने अपनी माया फैलाई. इतने में मोहन को जसोदा प्यार कर कंठ लगाय घर ले आई. इति

CHAPTER. X.

ऐक दिन दही मथने की बिरियां जान, भोरही नंदरानी उठी, और सब गोपियों को जगाय बुलाया; वे आय घर झाड़, बुहार, लीप, पोत, अपनी अपनी मथनियां ले ले दही मथने लगीं. तहां नंद महरि भी ऐक बड़ासा कोरा चरूआ ले, ईंडुऐ पर रख, चौकी बिछा, नेती और रई मंगाय, टटकी टटकी दहैड़ियां बाछ बाछ राम कान्ह के लिये बिलोवन बैठी. तिस समैं नंद के घर में ऐसा शब्द दही मथने का हो रहाथा, कि जैसे मेघ गरजता हो. इतने में कान्ह जागे तो रो रो मा मा कर पुकारन लागे; जब विनका पुकारना किन्हूने न सुना, तब आपही जसोदा के निकट आऐ, औ आखें डबडबाय, अनमने हो, ठुसक ठुसक तुतलाय तुतलाय कहने लगे, कि मा! तुझे कै बेर बुलाया, पर मुझे कलेऊ देन न आई, तेरा काज अबतक नहीं निबड़ा. इतना कह मचल पड़े. रई चरूऐ से निकाल देमी हाथ डाल लगे माखन काढ़ काढ़ फेंकने, अंग लथेड़ने, और पांव पटक पटक आंचल खैंच खैंच रोने. तब नंदरानी घबराय झुंझलायके बोली! बेटा यह क्या चाल निकाली,

चल उठ तुझे कलेऊ दूं, कान्ह कहे अब मैं नहि लूं.
पहिले क्यौं नहिं दीना मा, अब तो मेरी लेहै बला.

निदान जसोदा ने फुसलाय प्यार से मुंह चूंब गोद में उठालिया, और दधि माखन रोटी खाने को दिया. हरि हंस हंस खाते थे, नंदमहरि आंचल की ओट किये खिला रही थी, इस लिये कि मत किसी की दीठ लगे.

इस बीच ऐक गोपी ने आ कहा, कि तुम तो यहां बैठी हो, वहां चूल्हे पर से सब दूध उफन गया. यह सुनते ही झट कान्ह को गोद से उतार उठ धाई, औ जाके दूध बचाया. यहां कान्ह दही मही के भाजन फोड़, रई तोड़, माखन भरी कमोरी ले, ग्वाल बालों में दौड़ आऐ; ऐक उलूखल औंधा धरा पाया तिसपर जा बैठे, औ चारों ओर सखाओं को बैठाय लगे आपस में हंस हंस बांट बांट माखन खाने.

इस में जसोदा दूध उतार आय देखे तो आंगन औ तिबारे में दही मही की कीच हो रही है; तब तो सोच समझ हाथ में छड़ी ले निकली, और ढूंढ़ती ढूंढ़ती वहां आई जहां श्री कृष्ण मंडली बनाये माखन खाय खिलाय रहे थे. जातेही पीछे से जो कर गह्यो, तो हरि मा को देखतेही रोकर हाहा खाय लगे कहने, कि मा! गोरस किसने लुढ़ाया, मैं नहीं जानूं, मुझे छोड़ दे. ऐसे दीन बचन सुन जसोदा हंसकर हाथ से छड़ी डाल, और आनंद में मगनहो, रिसके, मिस कंठ लगाय, घर लाय, कृष्ण को उलूखल से बांधने लगी. तब श्री कृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बांधे, वही छोटी होय. जसोदा ने सारे घर की रस्सियां मंगाईं, तौभी बांधे न गये; निदान मा को दुखित जान आप ही बंधाई दिये. नंदरानी बांध, गोपियों को खेलने की सौंह दे फिर घर की टहल करने लगी. इति

CHAPTER. XI.

श्री सुकदेव जी बोले, हे राजा! श्री कृष्णचंद को बंधे बंधे पूर्व जन्म की सुधि आई, कि कुबेर के बेटों को नारद ने श्राप दिया है, तिन का उद्धार किया चाहिये. यह सुन राजा परीक्षित ने सुकदेव जी से पूछा, महाराज! कुबेर के पुत्रों को नारद मुनि ने कैसे श्राप दिया था, सो समझाय कर कहो. सुकदेव मुनि बोले, कि नल कूबर नाम कुबेर के दो लड़के कैलास में रहें, सो शिव की सेवा कर कर अति धनवान हुए. एक दिन स्त्रियां साथ ले वे बन बिहार को गये, वहां जाय मद पी मदमाते भये; तब नारियों समेत नंगेहो गंगा में न्हाने लगे, और गलबहियां डाल डाल अनेक अनेक भांति की कलोलें करने, कि इतने में तहां नारद मुनि आ निकले. तिन्हें देखते ही रंडियों ने तो निकल कपड़े पहने, औ वे मतवारे वहीं खड़े रहे; तिन की दसा देख नारद जी मन में कहने लगे, कि इनको धनका गर्व हुआ है, इसी से मदमाते हो काम क्रोध को सुख कर मानते हैं. निरधन मनुष को अहंकार नहीं होता, औ धनवान को धर्म अधर्म का बिचार. कहा है, मूरख झूठी देह से नेह कर भूलें; संपत कुटुंब देखके फूलें; और साध न धन मद मन में आनें; संपत बिपत एक सम मानें. इतना कह नारद मुनि ने तिन्हें श्राप दिया, कि इस पाप से तुम गोकुल में जा बृक्ष हो; जब श्री कृष्ण अवतार लेंगे, तब तुम्हें मुक्ति देंगे. ऐसे नारद मुनि ने तिन्हें श्रापा था, तिसी से वे गोकुल में आ रूख हुए, तब तिनका नाम यमलार्जुन हुआ.

इतनी कथा कह सुकदेव जी बोले, महाराज! इसी बात की सुरत कर श्री कृष्ण ओखली को घसीटे घसीटे वहां ले गये, जहां यमलार्जुन पेड़ थे, जातेही तिन दो तरवर के बीच उलूखल को आड़ा

उन्ने ऐक ऐसा झटका मार कि वे दोनों जड़ से उखड़ पड़े, औ तिन में से दो पुरुष अति सुंदर निकल हाथ जोड़ स्तुति कर कहने लगे, हे नाथ! तुम बिन हम से महा पापियों की सुध कौन ले. श्री कृष्ण बोले, सुनो, नारद मुनि ने तुम पर बड़ी दया की जो गोकुल में मुक्ति दी, तिन्हीं की कृपासे तुमने मुझे पाया, अब बर मांगो जो तुम्हारे मन में हो.

यमलार्जुन बोले, दीनानाथ! यह नारद जी की ही कृपा है जो आप के चरन परसे, और दरसन किया, अब हमें किसी बस्तु की इच्छा नहीं; पर इतना ही दीजे जो सदा तुम्हारी भक्ति हृदे में रहे. यह सुन बर दे हंसकर श्री कृष्णचंद ने तिन्हें बिदा किया. इति

CHAPTER. XII.

श्री शुकदेव मुनि बोले, राजा! जब वे दोनों तरु गिरे, तब तिनका शब्द सुन नंदरानी घबराकर दौड़ी वहां आई, जहां कृष्ण को उलूखल से बांध गई थी, और तिनके पीछे सब गोपी ग्वाल भी आये. जद कृष्ण को वहां न पाया, तद व्याकुल हो जसोदा मोहन मोहन पुकारती औ कहती चली; कहां गया बांधा था माई, कहीं किसी ने देखा मेरा कुँवर कन्हाई! इतने में सोहीं से आ ऐक बोली ब्रज नारी, कि दो पेड़ गिरे तहां बचे मुरारी. यह सुन सब आगे जाय देखें तो सच ही बृक्ष उखड़े पड़े हैं, औ कृष्ण तिनके बीच ओखली से बंधे सुकड़े बैठे हैं; जाते ही नंदमहरि ने उलूखल से खोल कान्ह को ऐकर गले लगा लिया, और सब गोपियां डर जान लगीं चुटकी ताली देदे हंसाने. तहां नंद उपनंद आपस में कहने लगे, कि ये जुगान जुग के रूख जमेजुरे कैसे उखड़ पड़े, यह अचंभा जी में आता है, कुछ भेद इनका समझा नहीं जाता. इतना सुनके ऐक लड़के ने पेड़ गिरने का ब्योरा जों का तों कहा पर किसी के जी में न आया. ऐक बोला, ये बालक इस भेद को क्या समझें; दूसरे ने कहा, कदाचित यही हो, हरि की गति कौन जाने. ऐसे अनेक अनेक भांति की बातें कर श्री कृष्ण को लिये सब आनंद से गोकुल में आये, तब नंद जीने बहुत सा दान पुन्य किया.

कितने ऐक दिन बीते, कृष्ण का जन्म दिन आया, तो जसोदा रानी ने सब कुटुंब को नोत बुलाया, और मंगलाचार कर बरस गांठ बांधी. जद सब मिलि जेंवन बैठे, तद नंदराय बोले, सुनो भाइयो! अब इस गोकुल में रहना कैसे बने, दिन दिन होने लगे उपद्रव घने; चलो कहीं ऐसी ठौर जावें, जहां तृन जल का सुख पावें. उपनंद बोले, बृंदाबन जाय बसिये तो आनंद से रहिये. यह बचन सुन नंद जी ने सब को खिलाय पिलाय पान दे बैठाय, त्योंहीं ऐक जोतषी को बुलाय,

यात्रा का महूर्त पूछा. तिसने बिचारके कहा, इस दिशा की यात्रा को कल का दिन अति उत्तम है; बांऐ जोगिनी, पीछे दिसाशूल, औ सनमुख चंद्रमा है, आप निस्संदेह भोरही प्रस्थान कीजे.

यह सुन तिस समैं तो सब गोपी ग्वाल अपने अपने घर गये, पर सबेरे ही अपनी अपनी वस्तु-भाव गाड़ों पै लाद लाद आ इकठे भये; तब कुटुब समेत नंद जी भी साथ हो लिये, और चले चले नदी उतर सांझ समैं आ पहुंचे; वृंदादेबी को मनाय वृंदाबन बसाया, तहां सब सुख चैन से रहने लगे.

जद श्री कृष्ण पांच बरस के हुऐ, तद मा से कहेने लगे कि मैं बछड़े चरावने जाऊंगा, तू बलदाऊ से कहदे जो मुझे बन में अकेला न छोड़े. वह बोली, पूत! बछड़े चरावनेवाले बहुत हैं दास तुम्हारे, तुम मत पलं ओट हो मेरे नैन आगे से प्यारे. कान्ह बोले, जो मैं बन में खेलने जाऊंगा, तो खानेको खाऊंगा, नहीं तो नहीं. यह सुन जसोदा ने ग्वाल बालों को बुलाय कृष्ण बलराम को सौंपकर कहा, कि तुम बछड़े चरावने दूर मत जाइयो, और सांझ नहोते दोनों को संग ले घर आइयो, बन में इन्हें अकेले मत छोड़ियो, साथही साथ रहियो, तुम इनके रखवाले हो. ऐसे कह कलेऊ दे राम कृष्ण को तिसके संग कर दिया.

वे जाय यमुना के तीर बछड़े चराने लगे, और ग्वाल बालों में खेलने; कि इतने में कंस का पठाया कपट रूप किये बछासुर आया. तिसे देखते ही सब बछड़े डर जिधर तिधर भागे, तब श्री कृष्ण ने बलदेव जी को सैन से जताया, कि भाई! यह कोई राक्षस आया. आगे जों वह चरता चरता घात करने को निकट पहुंचा, तों श्री कृष्ण ने पिछले पांव पकड़ फिरायकर ऐसा पटका कि तिसका जी घट से निकल सटका.

बछासुर का मरना सुन कंस ने बकासुर को भेजा. वह वृंदाबन में आय अपनी घात लगाय, यमुना के तीर पर्बत सम जा बैठा. तिसे देख मारे भयके ग्वाल बाल कृष्ण से कहने लगे, कि भैया! यह तो कोई राक्षस बगुला बन आया है, इसके हाथ से कैसे बचेंगे.

ये तो इधर कृष्ण से यों कहते थे, औ उधर वह जी में यह बिचारता था, कि आज इसे बिना मारे न जाऊंगा. इतने में जों श्री कृष्ण उसके निकट गये, तों तिसने इन्हें चोंच में उठाय मुंह मूंद लिया. ग्वाल बाल ब्याकुल हो चारों ओर देख देख रोरो पुकार पुकार लगे कहने, हाय हाय! यहां तो हलधर भी नहीं है, हम जसोदा से क्या जाय कहेंगे. इनको अति दुखित देख श्री कृष्ण ऐसे तत्ते हुऐ कि वह मुख में रख न सका. जों तिसने इन्हें उगला, तों इन्होंने उसे चोंच पकड़ ठोंठ पांव तले दबाय चीरडाला, और बछड़े घेर सखाओं को साथ ले हंसते खेलते घर आऐ. इति.

CHAPTER. XIII.

श्री शुकदेव बोले, सुनो महाराज! प्रात होतेही एक दिन श्री कृष्ण बछड़े चरावन बन को चले, तिनके साथ सब ग्वाल बाल भी अपने अपने घर से छाक लेले होलिये, और द्वार में आय छाक धर बछरू चरने को छोड़, लगे खड़ी गेरू से तन चीत चीत, बनके फल फूलों के गहने बनाय बनाय पहन पहन खेलने, औ पशु पंछियों की बोली बोल बोल भांति भांति के कुतूहल करकर नाचने गाने.

इतने में कंस का पठाया अघासुर नाम राक्षस आया, सो अति बड़ा अजगर हो मुंह पसार बैठा; और सब सखा समेत श्री कृष्ण भी खेलते खेलते वहीं जा निकले, जहां वह घात लगाये मुंह बाये बैठा था. दूर से उसे देख ग्वाल बाल आपस में लगे कहने, कि भाई! यह तो कोई बड़ा पहाड़ है कि जिस की कंदरा इतनी बड़ी है. ऐसे कहते औ बछड़े चराते उसके पास पहुंचे, तब एक लड़का उस का मुख खुला देख बोला, भाई! यह तो कोई अति भयावनी गुफा है, इस के भीतर न जावेंगे, हमें देखते ही भय लगता है, फिर तोख नाम सखा बोला, चलो इस में धस चलें, कृष्ण साथ रहते हम क्या डरें; जो कोई असुर होगा तो बकासुर की रीत से मारा जायगा.

यों सब सखा खड़े बातें करतेही थे कि उसने एक ऐसी लंबी सांस खेंची जो बछड़ों समेत सब ग्वाल बाल उड़के उसके मुख में जा पड़े. विष भरी तत्ती भाफ जों लगी तों लगे व्याकुल हो बछड़े रंभने, औ सखा पुकारने कि हे कृष्ण प्यारे बेग सुध ले, नहीं तो सब जल मरते हैं. उनकी पुकार सुनते ही आतुर हो श्री कृष्ण भी उसके मुख मे बड़ गये, उनने प्रसन्न हो मुंह मूंद लिया. तहां श्री कृष्ण ने अपना शरीर इतना बढ़ाया, कि उस का पेट फट गया, सब बछरू औ ग्वाल बाल निकल पड़े, तिस समय आनंदकर देवताओं ने फूल औ अमृत बरसाय सबकी तपत हर ली; तब ग्वाल बाल श्री कृष्ण से कहने लगे, कि भैया! इस असुर को मार आज तो तूने भले बचाये, नहीं सब मर चुके थे. इति

CHAPTER. XIV.

श्री शुकदेव बोले हे राजा! ऐसे अघासुर को मार श्री कृष्णचंद बछड़े घेर, सखाओं को साथ ले आगे चले. कितनी एक दूर जाय कदम की छांह में खड़े हो बंसी बजाय सब ग्वाल बालों को बुलाय कहा, भैया! यह भली ठौर है, इसे छोड़ आगे कहां जांय, बैठो यहीं छाकें खांय. सुनते ही उन्हों ने बछड़े तो चरने को हांक दिये, और आक, ढाक, बड़, कदम, कंवल के पात लाय, पत्तल, दोने, बनाय, झाड़ बुहार, श्री कृष्ण के चारों ओर पांति की पांति बैठ गये, औ अपनी अपनी छाकें खोल खोल लगे आपस में परोसने.

जब परोस चुके, तब श्री कृष्णचंद ने सब के बीच खड़े हो पहले आप कौर उठाय खाने की आज्ञा दी. वे खाने लगे, तिन में मोर मुकुट धरे, बनमाल गरे, लकुट लिये, त्रिभंगीछब किये, पीतांबर पहने, पीत पट ओढ़े, हंस हंस श्री कृष्ण भी अपनी छाक से सब को खिलाते थे, और ऐक ऐक के पनवारे से उठाय उठाय चाख चाख खट्टे मीठे तीते चरपरे का स्वाद कहते जाते थे, औ जिस मंडली में ऐसे सुहावने लगते थे कि जैसे तारों में चंद्रमा. तिस समैं ब्रह्मा आदि सब देवता अपने अपने बिमानों में बैठे, आकाश से ग्वाल मंडली का सुख देख रहे थे, कि तिन में से आय ब्रह्मा सब बछड़े चुराय ले गया; और यहां ग्वाल बालों ने खाते खाते चिंता कर श्री कृष्ण से कहा, भैया! हम तो निचिंताई से बैठे खाय रहे हैं, न जानिये बछड़े कहां निकल गये होंयगे,

तब ग्वालन सों कहत कन्हाई, तुम सब जेंवत रहियो भाई.
जिन कोऊ उठै करै औसेर, सब के बछरा ल्याऊं घेर.

ऐसे कह कितनी ऐक दूर बन में जाय जब जाना कि यहां से बछड़े ब्रह्मा हर ले गया, तब श्री कृष्ण वैसे ही और बनाय लाये. यहां आय देखें तो ग्वाल बालों को भी उठाय ले गया है; फिर इन्हों ने वेभी जैसे थे तैसे ही बनाये, और सांझ हुई जान सब को साथ ले बृंदाबन आये; ग्वाल बाल अपने अपने घर गये, पर किसीने यह भेद न जाना कि ये हमारे बालक औ बछड़े नहीं, बरन और छिन छिन दिन माया बढ़ती चली.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव बोले महाराज! वहां ब्रह्मा ग्वाल बाल बछड़ों को ले जाय ऐक पर्बत की कंदरा में भर, जिसके मुंह पर पत्थर की सिला धर भूल गया; और यहां श्री कृष्णचंद नित नई नई लीला करते थे. इस में ऐक बरष बीत गया तद ब्रह्मा को सुध हुई तो मन में कहने लगा कि मेरा तो ऐक पल भी नहीं हुआ, पर नर का बरष हो गया, इस से अब चल देखा चाहिये कि ब्रज में ग्वाल बाल बछड़ों बिन क्या गति भई.

यह बिचार उठकर वहां आया, जहां कंदरा में सब को मूंद गया था. सिला उठाय देखे तो लड़के औ बछड़े घोर निद्रा में सोये पड़े हैं. वहां से चल बृंदाबन में आय बालक औ बछरू सब जों के तों देख अचंभे हो कहने लगा, कैसे ग्वाल बच्छ यहां आये, कै ये कृष्ण नये उपजाये! इतना कह फिर कंदरा को देखने गया; जितने में वह वहां से देख कर आवे, तितने बीच यहां श्री कृष्णचंद्र ने ऐसी माया करी कि जित्ने ग्वाल बाल औ बछड़े थे सब चतुर्भुज हो गये, और ऐक ऐक के आगे ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र, हाथ जोड़े खड़े हैं.

देख बिरंच चित्त कौ भयौ, भूल्यौ ज्ञान ध्यान सब गयौ.
जनो पषान देवी चैामुखी, भई भक्ति पूजा बिन दुखी.

औ डरकर नैन मूंद लगा थरथर कांपने. जब अंतरजामी श्री कृष्णचंद ने जाना कि ब्रह्मा अति व्याकुल है, तब सब का अंस हर लिया, और आप अकेलेई रह गये, ऐसे कि जैसे भिन्न भिन्न बादल ऐक हो जाय. इति

CHAPTER. XV.

श्री शुकदेव जी बोले, हे राजा! जद श्री कृष्ण ने अपनी माया उठा ली, तद ब्रह्मा को अपने शरीर का ज्ञान हुआ, तो ध्यान कर भगवान के पास आ अति गिड़गिड़ाय, पाओं पड़, बिनती कर, हाथ बांध, खड़ा हो, कहने लगा, कि हे नाथ! तुमने बड़ी कृपा करी, जो मेरा गर्व दूर किया, इसी से अंधा हो रहा था; ऐसी बुद्धि किस की है जो बिन दया तुम्हारी तुम्हारे चरित्रों को जाने; माया तुम्हारी ने सब को मोहा है; ऐसा कौन है जो तुम्हें मोहे; तुम सब के करता हो; तुम्हारे रोम रोम में मुजसे ब्रह्मा अनेक पड़े हैं, मैं किस गिनती में हूं, दीन दयाल! अब दया कर अपराध क्षमा कीजे, मेरा दोष चित्त में न लीजे.

इतना सुन श्री कृष्णचंद मुसकुराये, तद ब्रह्मा ने सब ग्वाल बाल औ बछड़े सोते के सोते ला दिये, आर लज्जित हो स्तुति कर अपने स्थान को गया; जैसी मंडली आगे थी तैसीही बनगई; बरस दिन बीता सो किसीने न जाना. जों ग्वाल बालकों की नींद गई, तों कृष्ण बछरू घेर लाये, तब तिन से लड़के बोले, भैया! तू तो बछड़े बेग ले आया, हम भोजन करने भी न पाये.

सुनत बचन हंस कहत बिहारी, मोकों चिंता भई तिहारी.
निकट चरत इकठौरे पाऐ, अब घर चलौ भोर के आऐ.

ऐसे आपस में बतराय बछरू ले सब हंसते खेलते अपने घर आये. इति

CHAPTER. XVI.

श्री शुकदेव बोले, महाराज! जब श्री कृष्ण आठ बरस के हुऐ, तब ऐक दिन तिन्होंने जसोदा से कहा कि मा! मैं गाय चरावन जाऊंगा, तू बाबा से समझायकर कह जो मुझे ग्वालों के साथ पठाय दे. सुनते ही जसोदा नंद जी से कहा, तिन्होंने शुभ महूर्त ठहराये ग्वाल बालों को बुलाय, कातिक सुदी आठैं को राम कृष्ण से खरक पुजवाय बिनती कर ग्वालों से कहा, कि भाइयो! आज से गो चरावन अपने साथ राम कृष्ण को भी ले जाया करो; पर इनके पास ही रहियो, बन में अकेले न छोड़ियो. ऐसे कह छाक दे, कृष्ण बलराम को दही का तिलक कर, सब के संग बिदा किया. वे

मगन हो ग्वाल बालों समेत गायें लिये बन में पहुंचे. तहां बन की छबि देख श्री कृष्ण बलदेव जी से कहने लगे, दाऊ! यह तो अति मनभावनी सुहावनी ठौर है, देखो कैसे बृक्ष झुक झुक रहे हैं, औ भांति भांति के पशु पंछी कलोलें करते हैं. ऐसे कह एक ऊंचे टीले पर जा चढ़े, और लगे दुपट्टा फिराय फिराय कारी, गोरी, पीरी, धौरी, धूमरी, भूरी, नीली, कह कह पुकारने. सुनतेही सब गायें रंभातीं हांकतीं दौड़ आईं. तिस समैं ऐसी सोभा हो रही थी, कि जैसे चारों ओर से बरन बरन की घटा घिर आई होय.

फिर श्री कृष्णचंद गौ चरने को हांक, भाई के साथ छाक खाय, कदम की छांह में एक सखा की जांघ पै सिर धर सोये. कितनी एक बेर में जो जागे तो बलराम जी से कहा, दाऊ! सुनो खेल यह करैं, न्यारे कटक बांधकै लरैं. इतना कह आधी आधी गायें औ ग्वाल बाल बंट लिये. तब बन के फल फूल तोड़, झोलियों में भर भर लगे तुरही, भेर, भोंपू, डफ, ढोल, दमामे, मुखही से बजाय बजाय लड़ने, औ मार मार पुकारने. ऐसे कितनी एक बेर तक लड़े, फिर अपनी अपनी टोली निराली ले गायें चराने लगे.

इस बीच बलदेव जी से सखाने कहा, महाराज! यहां से थोड़ी सी दूर पर एक ताल बन है, तिस में अमृत समान फल लगे हैं, तहां गाधे के रूप एक राक्षस रखवाली करता है. इतनी बात सुनते ही बलराम जी ग्वाल बालों समेत तिस बन में गये, और लगे ईंट, पत्थर, डेले, लाठियां, मार मार फल झाड़ने. शब्द सुनकर धेनुक नाम खर रेंकता आया, औ तिसने आतेही फिरकर बलदेव जी की छाती में एक दुलत्ती मारी, तब इन्हों ने तिसे उठायकर दे पटका, फिर वह लोट, पोटके उठ और धरती खूंद खूंद कान दबाय, हट हट दुलत्तियां झाड़ने लगा. ऐसे बड़ी बेर लग लड़ता रहा, निदान बलराम जी ने तिसकी दोनों पिछली टांगें पकड़ फिरायकर एक ऊंचे पेड़ पर फेंका, सो गिरते ही मर गया, औ साथ उसके वह रूख भी टूट पड़ा; दोनों के गिरने से अति शब्द हुआ और सारे बन के बृक्ष हाल उठे.

देखि दूर सों कहत मुरारी, हाले रूख शब्द भयो भारी.
तब हि सखा हलधर के आये, चलहु कृष्ण तुम बेग बुलाये.

एक असुर मारा है सो पड़ा है. इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्ण भी बलराम जी के पास आ पहुंचे; तब धेनुक के साथी जितने राक्षस थे सो सब चढ़ आये. तिन्हें श्री कृष्णचंद जी ने सहज ही मार गिराया; तब तो सब ग्वाल बालों ने प्रसन्न हो निधड़क फल तोड़ मन मानती झोलियां भर लीं; और गायें घेर लाय श्री कृष्ण बलदेव जी से कहा महाराज! बड़ी बेर से आये हैं, अब

घर को चलिये. इतना बचन सुनते ही दोनों भाई गायें लिये ग्वाल बालों समेत हंसते खेलते सांझ को घर आये, और जो फल लाये थे सो सारे बृंदाबन में बंटवाए. सब को बिदा दे आप सोये, फिर भोर के तड़के उठते ही श्री कृष्न ग्वाल बालों को बुलाय, कलेऊ कर, गायें ले, बन को गये, और गौ चराते चराते कालीदह जा पहुंचे. वहां ग्वालों ने गायों को यमुना में पानी पिलाया औ आप भी पिया, जों जल पी ऊपर उठे, तों गायों समेत मारे बिष के सब लोट गये. तब श्री कृष्न जी ने अमृत की दृष्ठ से देख सबों को जिवाया. इति

CHAPTER. XVII.

श्री शुकदेव जी बोले, महाराज! ऐसे सबों रक्षा कर श्री कृष्न ग्वाल बालों के साथ गेंदतड़ी खेलने लगे; और जहां काली था तहां चार कोस तक यमुना का जल विसके बिषसे खौलता था, कोई पशु पंछी वहां नजा सकता; जो भूलकर जाता सो लपट से झुलस दह में गिर पचता, औ तीर में कोई रूख भी न उपजता. एक अविनाशी कदम तट पर था, सोई था. राजाने पूछा, महाराज! वह कदम कैसे बचा? मुनि बोले, किसी समैं अमृत चोंच में लियें गरुड़ विस पेड़ पर आ बैठा था, तिसके मुंह से एक बूंद गिरी थी, इस लिये वह रूख बचा.

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा, महाराज! श्री कृष्नचंद जी काली का मारना जी में ठान, गेंद खेलते खेलते कदम पर जा चढ़े, औ जों नीचे से सखा ने गेंद चलाई तों जमुना में गिरी, विसके साथ श्री कृष्न भी कूदे. इनके कूदने का शब्द कान से सुनकर वह लगा बिष उगलने, औ अग्नि सम फुंकारें मार मार कहने, कि यह ऐसा कौन है जो अब लग दह में जीता है! कहीं अखै बृक्ष तो मेरा तेज न सहिके टूट पड़ा, कै कोई बड़ा पशु पंछी आया है जो अबतक जल में आहट होता है!

यों कह वह एक सौ दसों फनों से बिस उगलता था, औ श्री कृष्न पैरते फिरते थे. तिस समैं सखा रोरो हाथ पसार पसार पुकारते थे; गायें मुंह बायें चारों ओर रंभती हूंकती फिरती थीं; ग्वाल न्यारेही कहते थे, श्याम! बेग निकल आइये, नहीं तुम बिन घर जाय हम क्या उत्तर देंगे. ये तो यहां दुखित हो यों कह रहे थे, इस में किसीने बृंदाबन में जा सुनाया कि श्री कृष्न कालीदह में कूद पड़े. यह सुन रोहनी जसोदा औ नंद गोपी गोप समेत रोते पीटते उठ धाये, और सब के सब गिरते पड़ते कालीदह आये. तहां श्री कृष्न को नदेख ब्याकुल हो नंदरानी दररानी गिरन चली

पानी में, तब गोपियों नें बीच ही आ पकड़ औ ग्वाल बाल नंद जी को थांभे ऐसे कह रहे थे,

छांड महा बन या बन आये, तौहू दैत्यनि अधिक सताये.

बज़त कुशल असुरन तें परी, अब क्यौं दह तें निकसैं हरी.

कि इतने में पीछे से बलदेव जी भी वहां आये औ सब ब्रजबासियों को समझाकर बोले, अभी आवेंगे कृष्ण अबिनाशी, तुम काहे को होते हो उदासी.

आज साथ आयौ मैं नाहीं, मो बिन हरि पैठे दह मांहीं.

इतनी कथा कह, श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे, कि महाराज! इधर तो बलराम जी सब को यों आसा भरोसा देते थे, औ उधर श्री कृष्ण जों पैरकर उसके पास गये, तों वह आ इनके सारे शरीर से लिपट गया. तब श्री कृष्ण ऐसे मोटे ज़ये कि उसे छोड़तेही बन आया. फिर जों जों वह फुंकारें मार मार इन पर फन चलाता था, तों तों ये अपने को बचाते थे; निदान ब्रजबासियों को अति दुखित जान श्री कृष्ण एकाएकी उचक उसके सिर पर जा चढ़े.

तीन लोक कौ बोझ ले, भारी भये मुरारि,

फन फन पर नाचत फिरैं, बाजे पग पट तारि.

तब तो मारे बोझ के काली मरने लगा, औ फन पटक पटक उसने जीभें निकाल दीं, तिन से लोहू की धारें बह चलीं. जद बिष औ बल का गर्ब गया, तद उन्ने मन में जाना कि आदि पुरुष ने औतार लिया, नहीं इतनी किस में सामर्थ है जो मेरे बिष से बचे. यह समझ जीव की आस तज सिथल हो रहा, तद नाग पत्नी ने आय हाथ जोड़ सिर निवाय बिनती कर श्री कृष्णचंद से कहा, महाराज! आपने भला किया जो इसे दुख दिया, अति अभिमानी का गर्ब दूर किया; अब इसके भाग जागे, जो तुम्हारा दरसन पाया; जिन चरनों को ब्रह्मा आदि सब देवता जप तप कर ध्यावते हैं, सोई पद काली के सीस पर बिराजते हैं

इतना कह फिर बोली महाराज! मुझ पर दया कर इसे छोड़ दीजे, नहीं तो इसके साथ मुझे भी बध कीजे; क्योंकि स्वामी बिन स्त्री को मरना ही भला है, औ जो बिचारिये तो इसका भी कुछ दोष नहीं, यह जाति स्वभाव है कि दूध पिलाये बिष बढ़े.

इतनी बात नाग पत्नी से सुन, श्री कृष्णचंद उस पर से उतर पड़े, तब प्रनाम कर हाथ जोड़ काली बोला, नाथ! मेरा अपराध क्षमा कीजे, मैंने अनजाने आप पर फन चलाये; हम अधम जाति सर्प, हमें इतना ज्ञान कहां जो तुम्हें पहचानें. श्री कृष्ण बोले, भला जो ज़आ सो ज़आ, पर अब तुम यहां न रहो, कुटुंब समेत रैनक दीप में जा बसो.

यह सुन काली ने डरते कांपते कहा, कृपा नाथ! वहां जाऊं तो गरुड़ मुझे खाजायगा, तिसी के भय से मैं यहां भाग आया हूं. श्री कृष्ण बोले, अब तू निरभय चला जा, हमारे पद के चिन्ह तेरे सिर पर देख तुझ से कोई न बोलेगा. ऐसे कह श्री कृष्णचंद्र ने तिसी समैं गरुड़ को बुलाय, काली के मन का भय मिटाय दिया, तब काली ने धूप, दीप, नैवेद्य समेत बिधि से पूजाकर, बहुत सी भेंट श्री कृष्ण के आगे धर, हाथ जोड़, बिनती कर, बिदा होय कहा,

चार घरी नाचे मो माथा, यह मन प्रीति रखियो नाथा.

यों कह दंडवत कर काली तो कुटुंब समेत रैनक दीप को गया, औ श्री कृष्णचंद जल से बाहर आये. इति ✦ •

CHAPTER. XVIII.

इतनी कथा सुन, राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा, महाराज! रैनक दीप तो भली ठौर थी, काली वहां से क्यौं आया, औ किस लिये यमुना में रहा, यह मुझे समझाकर कहो जो मेरे मन का संदेह जाय. श्री शुकदेव बोले, राजा! रैनक दीप में हरि का बाहन गरुड़ रहता है, सो अति बलवंत है, तिस से वहां के बड़े बड़े सर्पों ने हार मान तिसे एक सांप नित देना किया; एक रूख पर धर आवें, वह आवे औ खाजाय. एक दिन कद्रू नागनी का पुत्र काली अपने बिष का घमंड कर गरुड़ का भक्ष खाने गया; इतने में वहां गरुड़ आया औ दोनों में अति युद्ध हुआ; निदान हार मान काली अपने मन में कहने लगा, कि अब इसके हाथ से कैसे बचूं, और कहां जाऊं. इतना कह सोचा कि वृंदाबन में यमुना के तीर जा रहूं तो बचूं; क्यौंकि यह वहां नहीं जा सकता; ऐसे बिचार काली वहीं गया. फिर राजा परीक्षित ने शुकदेव से पूछा, कि महाराज! वह वहां क्यौं नहीं जा सकता था सो भेद कहो. शुकदेव जी बोले, राजा! किसी समय यमुना के तट सौभरि ऋषि बैठे तप करते थे, तहां गरुड़ ने जाय एक मछली मार खाई, तब ऋषि ने क्रोधकर उसे यह श्राप दिया कि तू इस ठौर फिर आवेगा तो जीता न रहेगा. इस कारन वह वहां न जासकता था, और जब से काली वहां गया, तभी से तिस स्थान का नाम कालीदह हुआ.

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी बोले, हे राजा! जब श्री कृष्णचंद निकले, तब नंद जसोदा ने आनंदकर बहुत सा दान पुन्य किया; पुत्र का मुख देख नैनों को सुख दिया; औ सब ब्रजबासियों के भी जी में जी आया. इस बीच सांझ हुई तो आपस में कहने लगे, कि अब दिन

भर के हारे, थके, भूखे, प्यासे, घर कहां जांयगे, रातको रात यहीं काटें, भोर हुए बृंदाबन चलेंगे; यह कह सब सोय रहे.

आधी रात बीत जब गई, भारी कारी आंधी भई.
दावा अग्नि लगी चहुं ओर, अति झर बरें बृक्ष बन ढोर.

आग लगते ही सब चौंक पड़े, और घबराकर चारों ओर देख देख हाथ पसार पसार लगे पुकारने, कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! इस आग से बेग बचाओ, नहीं तो यह क्षन भर में सब को जलाय भस्म करती है. जब नंद जसोदा समेत ब्रजबासियों ने ऐसे पुकार की, तब श्री कृष्णचंद जी ने उठते ही वह आग पल में पी, सब के मन की चिंता दूर की. भोर होतेही सब बृंदाबन आये, घर घर आनंद मंगल हुए बधाये. इति

CHAPTER. XIX.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव बोले, महाराज! अब मैं ऋतु बरनन करता हूं, कि जैसे जैसे श्री कृष्णचंद ने तिनमें लीला करी सो चित दे सुनो. प्रथम ग्रीषम ऋतु आई, तिसने आतेही सब संसार का सुख ले लिया, और धरती आकाश को तपाय अग्नि सम किया, पर श्री कृष्ण के प्रताप से बृंदाबन में सदा बसंतही रहै. जहां घनी घनी कुंजों के बृक्षों पर बेलें लहलहा रहीं; बरन बरन के फूल फूले हुए, तिन पर भौंरों के झुंड के झुंड गूंज रहे. आंबों की डालियों पै कोयल कुहुक रहीं; ठंढी ठंढी छाहों में मोर नाच रहे; सुगंध लिये मीठी मीठी पवन बह रही; और एक ओर बन के, यमुना न्यारी ही सोभा दे रही थी; तहां कृष्ण बलराम गायें छोड़ सब सखा समेत आपस में अनूठे अनूठे खेल खेल रहे थे, कि इतने में कंस का पठाया ग्वाल का रूप बनाय, प्रलंब नाम राक्षस आया, जिसे देखते ही श्री कृष्णचंद ने बलदेव जी को सैन से कहा,

अपनौ सखा नहीं बलबीर, कपट रूप यह असुर शरीर.
याके बध कौ करौ उपाय, ग्वाल रूप मार्यौ नहिं जाय.
जब यह रूप धरे आपनौ, तब तुम याहि ततक्षन हनौ.

इतनी बात बलदेव जी को जताय, श्री कृष्ण जी ने प्रलंब को हंसकर पास बुलाय, हाथ पकड़के कहा,

सबते नीकौ भेष तिहारौ, भलो कपट बिन मित्र हमारौ.

यों कह जिसे साथ ले आधे ग्वाल बाल बांट लिये, और आधे बलराम जी को दे, दो लड़कों को

बैठाय, लगे फल फूलों का नाम पूछने, औ बताने. इसमें बताते बताते श्री कृष्ण हारे, बलदेव जीते, तब श्री कृष्ण की ओर वाले बलदेव के साथियों को कांधों पर चढ़ाय ले चले; तहां प्रलंब बलराम जी को सब से आगे ले भागा, औ बन में जाय उसने अपनी देह बढ़ाई. तिस समैं तिस काले काले पहाड़ से पर बलदेव जी ऐसे सोभायमान थे, जैसे स्याम घटा पै चांद; औ कुंडल की दमक बिजली सी चमकती थी; पसीना मेह सा बरसता था. इतनी कथा कथ श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, महाराज! कि जों अकेला पाय वह बलराम जी को मारने को हुआ, तोंही उन्हों ने मारे घूंसों के तिसे मार गिराया. इति

CHAPTER. XX.

श्री सुकदेव जी बोले, हे राजा! जब प्रलंब को मारके चले बलराम, तभी सोंही से सखाओं समेत आन मिले घनस्याम; और जो ग्वाल बाल बन में गायें चराते थे, वे भी असुर मारा सुन गायें छोड़ उधर देखने को गये, तोंलों इधर गायें चरती चरती डाभ कांस से निकल, मूंज बन में बड़ गईं, वहां से आय दोनों भाई यहां देखें तो एक भी गाय नहीं.

बिछुरी गैयां बिछुरे ग्वाल, भूले फिरें मूंज बन ताल.
रूखनि चढ़े परस्पर टेरैं, लैलै नाम पिछोरी फेरैं.

इस में किसी सखा ने आय हाथ जोड़ श्री कृष्ण से कहा, कि महाराज! गायें सब मूंज बन में पैठ गईं, तिन के पीछे ग्वाल बाल प्यारे ढूंढ़ते भटकते फिरते हैं. इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्णने कदम पर चढ़, ऊंचे सुर से जो बंसी बजाई, तो सुन ग्वाल बाल औ सब गायें मूंज बन को फाड़कर ऐसे आन मिलीं, जैसे सावन भादों की नदी तुंग तरंग को चीर समुद्र में जा मिले. इस बीच देखते क्या हैं, कि बन चारों ओर से दहड़ दहड़ जलता चला आता है. यह देख ग्वाल बाल औ सखा अति घबराय भयखायकर पुकारे, हे कृष्ण! हे कृष्ण! इस आग से बेग बचाओ, नहीं तो अभी छिन एक में सब जल मरते हैं. कृष्ण बोले तुम सब अपनी आंखें मूंदो. जद तिन्हों ने नैन मूंदे, तद श्री कृष्ण जी ने पल भर में आग बुझाय एक और माया करी, कि गायों समेत सब ग्वाल बालों को भांडीर बन में ले आय कहा कि अब आंखें खोल दो.

ग्वाल खोल दृग कहत निहारि, कहां गई वह अग्नि मुरारि.
कब फिर आये बन भंडीर, होत अचंभौ यह बल बीर.

ऐसे कह गायें ले सब मिल कृष्ण बलराम के साथ वृंदाबन आए, औ सबों ने अपने अपने घर

जाय कहा कि आज बन में बलराम जी ने प्रलंब नाम राक्षस को मारा, और मूंज बन में आग लगी थी सो भी हरि के प्रताप से बुझ गई.

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी ने कहा, हे राजा! ग्वाल बालों के मुख से यह बात सुन सब ब्रजबासी देखने को तो गये, पर तिन्होंने कृष्ण चरित्र का कुछ भेद न पाया. इति

CHAPTER. XXI.

श्री शुकदेव मुनि बोले, कि महाराज! ग्रीषम की अति अनीति देख, नृप पावस प्रचंड, पृथ्वी के पशु पक्षी जीव जंतु की दया बिचार, चारों ओर से दल बादल साथ ले लड़ने को चढ़ आया; तिस समैं घन जो गरजता था, सोई तो धौंसा बाजता था; और बरन बरन की घटा जो घिरआईं थीं, सोई सूर, बीर, रावत थे; तिनके बीच बीच बिजली की दमक, शस्त्र की सी चमक थी; बग पांत ठौर ठौर ध्वजा सी फहराय रही थीं; दादुर मोर कड़खैतों कीसी भांति जस बखानते थे; औ बड़ी बड़ी बूंदों की झड़ी बानों कीसी झड़ी लगी थी. इस धूम धाम से पावस को आते देख, ग्रीषम खेत छोड़ अपना जीव ले भागा, तब मेघ पिया ने बरस पृथ्वी को सुख दिया. उसने जो आठ महीने पति के बियोग में जोग किया था, तिसका भोग भर लिया; कुच गिर सीतल हुए, औ गर्भ रहा, तिस में से अठारह भार पुत्र उपजे, सो भी फल फूल भेट ले ले पिता को प्रनाम करने लगे. उस काल बृंदाबन की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी, कि जैसे सिंगार किये कामिनी; और जहां तहां नदी नाले सरवर भरे हुए, तिन पर हंस सारस सुरस सोभा दे रहे; ऊंचे ऊंचे रूखों की डालियां झूम रहीं, उन में पिक, चातक, कपोत, कीर, बैठे कोलाहल कर रहे थे, औ ठांव ठांव रूखे कुसुंभे जोड़े पहरे, गोपी ग्वाल झूलों पै झूल झूल ऊंचे सुरों से मलारैं गाते थे; तिनके निकट जाय जाय श्री कृष्ण बलराम भी बाल लीला कर कर अधिक सुख दिखाते थे. इस आनंद से बरषा ऋतु बीती, तब श्री कृष्ण ग्वाल बालों से कहने लगे कि भैया! अब तो सुख दाई सरद ऋतु आई,

सबकौ सुख भारी अब जान्यौं, स्वाद सुगंध रूप पहिचान्यौं।
निसि नक्षत्र उज्जल आकाश, मनिहु निर्गुन ब्रह्म प्रकाश।
चार मास जो बिरमे गेह, भये सरद तिन तजे सनेह।
अपने अपने काजनि धाये, भूप चढ़े तकि देस पराये।

CHAPTER. XXII.

श्री शुकदेव जी बोले, कि हे महाराज! इतनी बात कह श्री कृष्णचंद फिर ग्वाल बाल साथ ले लीला करने लगे; और जब लग कृष्ण बन में धेनु चरावें, तब लग सब गोपी घर में बैठीं हरि का

जस गावैं. ऐक दिन श्री कृष्ण ने बन में बेनु बजाई, तो बंसी की धुन सुन सारी ब्रज युवती हड़बड़ाय उठ धाईं, औ ऐक ठौर मिलकर बाट में आ बैठीं; तहां आपस में कहने लगीं, कि हमारे लोचन सुफल तब होंगे जब कृष्ण के दरसन पावैंगे; अभी तो कान्ह गायों के साथ बन में नाचते गाते फिरते हैं, सांज समय इधर आवैंगे, तब हमें दरसन मिलेंगे. यों सुन ऐक गोपी बोली.

सुनो सखी! वह बेनु बजाई, बांस बंस देखौ अधिकाई.

इस में इतना क्या गुन है जो दिन भर श्री कृष्ण के मुंह लगी रहती है, और अधरामृत पी आनंद बरस घन सी गाजती है; क्या हम से भी यह प्यारी, जो निस दिन लिये रहते हैं बिहारी,

मेरे आगे की यह गढ़ी, अब भई सौत बदन पर चढ़ी.

जब श्री कृष्ण इसे पीतांबर से पोंछ बजाते हैं, तब सुर, मुनि, किन्नर, औ गंधर्व अपनी अपनी स्त्रियों को साथ ले बिमानों पर बैठ बैठ हौंसकर सुनने को आते हैं, औ सुनकर मोहित हो जहांके तहां चित्र से रह जाते हैं; ऐसा इसने क्या तप किया है जो सब इसके आधीन होते हैं.

इतनी बात सुन ऐक गोपी ने उत्तर दिया, कि पहले तो इसने बांस के बंस में उपज हरि का सुमरन किया, पीछे घाम, सीत, जल, ऊपर लिया; निदान टूक टूक हो देह जलाय धुंआं पिया.

इस से तप करते हैं कैसा, सिद्ध ऊई पाया फल ऐसा.

यह सुन कोई ब्रज नारि बोलीं, कि हम को बेनु क्यों न रची ब्रजनाथ, जो निसि दिन हरि के रहतीं साथ. इतनी कथा सुनाय श्री सुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि महाराज! जबतक श्री कृष्ण धेनु चराय बनसे न आवैं, तबतक नित गोपी हरि के गुन गावैं. इति

CHAPTER. XXIII.

श्री सुकदेव मुनि बोले, कि सरद ऋतु के जाते ही हेमंत ऋतु आई, औ अति जाड़, पाला, पड़ने लगा; तिस काल ब्रज बाला आपस में कहने लगीं, कि सुनो सहेली! अगहन के न्हान से जन्म जन्म के पातक जाते हैं, और मन की आस पूजती है, यों हमने प्राचीन लोगों के मुख से सुना है. यह बात सुन सब के मन में आई, कि अगहन न्हाइये, तो निस्संदेह श्री कृष्ण बर पाइये.

ऐसे बिचार, भोर होते ही उठ, वस्त्र आभूषन पहर, सब ब्रजबाला मिल, यमुना न्हान आईं; स्नान कर, सूरज को अरघ दे, जल से बाहर आय, माटी की गौर बनाय, चंदन, अक्षत, फूल, फल, चढ़ाय, धूप, दीप, नैवेद्य, आगे धर, पूजाकर, हाथ जोड़, सिर नाय, गौर को मनायके बोलीं, हे देवी! हम तुम से बार बार यही बर मांगती हैं, कि श्री कृष्ण हमारे पति होंय. इस बिधि से

गोपी नित न्हावें, दिन भर ब्रत कर सांज को दही भात खा भूमि पर सोवें, इस लिये कि हमारे ब्रत का फल शीघ्र मिले.

ऐक दिन सब ब्रज बाला मिल स्नान को औघट घाट गईं, औ वहां जाय चीर उतार, तीर पर धर, नग्न हो, नीर में पैठ, लगीं हरि के गुन गाय गाय जल क्रीड़ा करने; तिसी समैं श्री कृष्ण भी बंसी बट की छांह में बैठे धेनु चरवाते थे. दैवी इनके गाने का शब्द सुन, वेभी चुपचाप चले आये, और लगे छिपकर देखने. निदान देखते देखते जो कुछ उनके जी में आई, तो सब वस्त्र चुराय कदम पर जा चढ़े, औ गठड़ी बांध आगे धर ली. इतने में गोपी जो देखें तो तीर पै चीर नहीं, तब घबराकर चारों ओर उठ उठ लगीं देखने, औ आपस में कहने, कि अभी तो यहां ऐक चिड़िया भी नहीं आई, बसन कौन हर लेगया माई. इस बीच ऐक गोपीने देखा, कि सिर पर मुकुट, हाथ में लकुट, केसर तिलक दिये, बनमाल हिये, पीतांबर पहरे, कपड़ों की गठड़ी बांधे, मौन साधे, श्री कृष्ण कदंब पै चढ़े छिपे ऊपरे बैठे हैं. वह देखते ही पुकारी, सखी! वे देखो हमारे चित चोर चीर चोर कदंब पर पोट लिये बिराजते हैं. यह बचन सुन, औ सब युवती कृष्ण को देख लजाय, पानी में पैठ, हाथ जोड़ सिर नाय, बिनती कर, हाहा खाय बोलीं,

दीन दयाल, हरन दुख प्यारे! दीजे मोहन! चीर हमारे.
ऐसे सुनके कहैं कन्हाई, यों नहिं दूंगा नंद दुहाई.
ऐक ऐक कर बाहर आओ, तो तुम अपने कपड़े पाओ.

ब्रजबाला रिसायके बोलीं, यह तुम भली सीख सीखे हो, जो हमसे कहते हो नंगी बाहर आओ; अभी अपने पिता बंधु से जाय कहें, तो वे तुम्हें चोर चोर कर आय गहें; औ नंद जसोदा को जा सुनावें, तो वे भी तुम को सीख भली भांति से सिखावें; हम करती हैं किसी की कान, तुमने मेटी सब पहचान.

इतनी बात के सुनते ही, क्रोध कर, श्री कृष्ण जी ने कहा, कि अब चीर तभी पाओगी जब तिन को लिवा लाओगी, नहीं तो नहीं. यह सुन डरकर गोपी बोलीं, दीन दयाल! हमारी सुध के लिवैया, पति के रखैया तो आप हैं, हम किसे लावेंगीं; तुम्हारेही हेतु नेम कर मगसिर मास न्हाती हैं. कृष्ण बोले, जो तुम मन लगाय मेरे लिये अगहन न्हाती हो तो लाज औ कपट तज आय अपने चीर लो. जद श्री कृष्णचंद ने ऐसे कहा, तद सब गोपी आपस में सोच बिचारकर कहने लगीं, कि चलो सखी! जो मोहन कहते हैं सोई मानें, क्योंकि ये हमारे तन मन की सब जानते हैं, इनसे लाज क्या. यों आपस में ठान, श्री कृष्ण की बात मान, हाथ से कुच देह दुराय, सब युवती नीरसे

निकल, सिर नैाढ़ाय, जब सनमुख तीर पर जा खड़ी ऊई, तब श्री कृष्ण हंसके बोले, कि अब तुम हाथ जोड़ जोड़ आगे आओ तो मैं वस्त्र दूं. गोपी बोलीं,

काहे कपट करत नंदलाल, हम सूधी भोरी ब्रज बाल.
परी ठगोरी सुधि बुधि गई, ऐसी तुम हरि लीला ठई.
मन संभारिकै करिहैं लाज, अब तुम कछू करो ब्रजराज!

इतनी बात कह, जद गोपियों ने हाथ जोड़े, तो श्री कृष्णचंद जी ने वस्त्र दे उनके पास आय कहा, कि तुम अपने मन में कुछ इस बात का बिलग मत्त मानो, यह मैंने तुम्हें सीख दी है; क्योंकि जल में बहुत देवता का बास है, इससे जो कोई नग्न हो जल में न्हाता है, तिसका सब धर्म बह जाता है; तुम्हारे मन की लगन देख मगन हो मैंने यह भेद तुम से कहा, अब अपने घर जाओ, फिर कातिक महीने में आय मेरे साथ रास कीजियो.

श्री शुकदेव मुनि बोले, कि महाराज! इतना बचन सुन प्रसन्न हो, संतोष कर, गोपी तो अपने घरों को गईं; औ श्री कृष्ण बंसीबट में आय, गोप गाय ग्वाल बाल सखाओं को संग ले आगे चले, तिस समैं चारों ओर सघन बन देख देख बृक्षों की बड़ाई कहने लगे, कि देखो ये संसार में आ अपने पर कितना दुख सह लोगों को सुख देते हैं; जगत में ऐसेही परकाजियों का आना सुफल है. यों कह आगे बढ़ यमुना के निकट जा पऊंचे. इति.

CHAPTER. XXIV.

श्री शुकदेव जी बोले, कि जब श्री कृष्ण यमुना के पास पऊंच रुख तले लाठी टेक खड़े ऊए, तब सब ग्वाल बाल औ सखाओंने आय, कर जोड़ कहा, कि महाराज! हमें इस समैं बड़ी भूख लगी है, जोकुछ छाक लाये थे सो खाई, पर भूख न गई. कृष्ण बोले, देखो वह जो धुआं दिखाई देता है, मथुरिये कंस के डर से छिपके यज्ञ करते हैं, उनके पास जा हमारा नाम ले दंडवत कर हाथ बांध खड़े हो, दूर से भोजन ऐसे दीन हो मांगियो, जैसे भिखारी आधीन हो मांगता है.

यह बात सुन ग्वाल चले चले वहां गये, जहां माथुर बैठे यज्ञ कर रहे थे. जातेही उन्हों ने प्रनामकर निपट आधीनता से कर जोड़के कहा महाराज! आप को दंडवत कर हमारे हाथ श्री कृष्णचंद जी ने यह कहला भेजा है, कि हम को अति भूख लगी है, कुछ कृपा कर भोजन भेज दीजे. इतनी बात ग्वालों के मुख से सुन मथुरिये क्रोधकर बोले, तुम तो बड़े मूर्ख हो जो हम से अभी यह बात कहते हो; बिन होम होचुके किसी को कुछ न देंगे; सुनों जब यज्ञ कर लेंगे,

और कुछ बचेगा सो बांट देंगे. फिर ग्वालों ने उनसे गिड़गिड़ाके बहुतेरा कहा कि महाराज! घर आये भूखे को भोजन करवाने से बड़ा पुन्य होता है, पर वे इनके कहने को कुछ ध्यान में न लाये, बरन इनकी ओर से मुंह फेर आपस में कहने लगे,

बड़े मूढ़ पशु पालक नीच, मांगत भात होम के बीच.

तब ये वहां से निरस हो, अछताय पछताय श्री कृष्ण के पास आय बोले, महाराज! भीख मांग मान महत गंवाया, तौभी खाने को कुछ हाथ न आया, अब क्या करें. श्री कृष्ण जीने कहा, कि अब तुम तिनकी स्त्रियों से जा मांगो, वे बड़ी दयावंत धरमात्मा हैं, उनकी भक्ति देखियो, वे तुम्हें देखते ही आदर मान से भोजन देंगीं. यों सुन वे फिर वहां गये, जहां वे बैठीं रसोई करती थीं. जाते ही उनसे कहा, कि बन में श्री कृष्ण को धेनु चराते क्षुधा भई है, सो हमें तुम्हारे पास पठाया है, कुछ खाने को होय तो दो. इतना बचन ग्वालों के मुख से सुनते ही वे सब प्रसन्न हो कंचन के थालों में षट रस भोजन भर लेले उठ धाईं, औ किसी की रोकी न रुकीं.

ऐक मथुरनी के पति ने जो नजाने दिया, तो वह ध्यान कर देह छोड़ सब से पहले ऐसे जा मिली कि जैसे जल जल में जा मिले; औ पीछे से सब चली चली वहां आईं, जहां श्री कृष्णचंद ग्वाल बाल समेत बृक्ष की छांह में सखा के कांधे पर हाथ दिये, त्रिभंगी छवि किये, कंवल का फूल कर लिये खड़े थे; आते ही थाल आगे धर, दंडवत कर, हरि मुख देख देख, आपस में कहने लगीं, कि सखो! येई हैं नंदकिशोर, जिन का नाम सुन सुन ध्यान धरती थीं, अब चंद्मुख देख लोचन सुफल कीजे, औ जीतब का फल लीजे. ऐसे बतरथ, हाथ जोड़, बिनती कर, श्री कृष्ण से कहने लगीं, कि कृपानाथ! आप की कृपा बिन तुम्हारा दरसन कब किसी को होता है, आज धन्य भाग हमारे जो दरसन पाया, औ जन्म जन्म का पाप गंवाया,

मूरख बिप्र कृपन अभिमानी, श्री मद लोभ मोह मति सानी.
ईश्वर को मानुष कर माने, माया अंध कहा पहिचाने.
जप तप यज्ञ जाहि हित कीजे, तावौं कहा न भोजन दीजे.

महाराज! वही धन्य है धन जन लाज, जो आवे तुम्हारे काज, औ सोई है तप जप ज्ञान, जिस में आवे तुम्हारा नाम. इतनी बात सुन श्री कृष्णचंद उनकी क्षेम कुशल पूछ कहने लगे कि,

मत तुम मुझको करो प्रनाम, मैं हूं नंद महर का स्याम.

जो ब्राह्मन की स्त्री से आप को पुजवाते हैं, सो क्या संसार में कुछ बड़ाई पाते हैं; तुम ने हमें भूखे जान दया कर बन में आन सुध ली, अब हम यहां तुम्हारी क्या पहुनाई करें.

वृंदाबन घर दूर हमारा, किस बिधि आदर करें तुम्हारा.

जो वहां होते तो कुछ फूल फल ला आगे धरते, तुम हमारे कारन दुख पाय जंगल में आईं, औ यहां हम से तुम्हारी टहल कुछ न बन आई, इस बात का पछतावाही रहा. ऐसे शिष्टाचार कर फिर बोले, तुम्हें आये बड़ी बेर भई, अब घर को सिधारिये; क्योंकि ब्राह्मन तुम्हारे तुम्हारी बाट देखते होंगे, इस लिये कि स्त्री बिन यज्ञ सुफल नहीं. यह बचन श्री कृष्ण से सुन, वे हाथ जोड़ बोलीं, महाराज! हमने आप के चरन कंवल से स्नेह कर कुटुंब की माया सब छोड़ी; क्योंकि जिनका कहा न मान हम उठ धाईं, तिनके यहां अब कैसे जांय; जो वे घर में न आने दें तो फिर कहां बसें, इससे आप की सरन में रहें सो भला; और नाथ! एक नारि हमारे साथ तुम्हारे दरसन की अभिलाषा किये आवती थी, विसके पति ने रोक रक्खा, तब उस स्त्री ने अकुलाकर अपना जीव दिया. इस बात के सुनते ही हंसकर श्री कृष्णचंद ने विसे दिखाया जो देह छोड़ आई थी. कहा कि सुनो, जो हरि से हित करता है, तिसका बिनास कभी नहीं होता, यह तुम से पहले आ मिली है.

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! विसको देखते ही तो एक बार सब अचंभे रहीं, पीछे ज्ञान हुआ, तद हरि गुन गाने लगीं. इस बीच श्री कृष्णचंद ने भोजन कर, उनसे कहा, कि अब स्थान को प्रस्थान कीजे, तुम्हारे पति कुछ न कहेंगे. जब श्री कृष्ण ने विन्हें ऐसे समझाय बुझायके कहा, तब वे बिदा हो, दंडवत कर, अपने घर गईं; औ विनके स्वामी सोच बिचारके पछताय पछताय कह रहे थे, कि हमने कथा पुरान में सुना है, जो किसी समै नंद जसोदा ने पुत्र के निमित्त बड़ा तप किया था, तहां भगवान ने आ उन्हें यह बर दिया, कि हम यदु कुल में औतार ले तुम्हारे यहां आवेंगे. वेई जन्म ले आये हैं, जिन्हों ने ग्वाल बालों के हाथ भोजन मंगवाय भेजा था, हमने यह क्या किया जो आदि पुरुषने मांगा औ भोजन न दिया.

यज्ञ धर्म जा कारन ठये, तिनके सनमुख आज न भये.
आदि पुरुष हम मानुष जान्यौ, नहीं बचन ग्वालन का मान्यौ.
हम मूरख पापी अभिमानी, कीनी दया न हरि गति जानी.

धिक्कार है हमारी मति को, औ इस यज्ञ करने को, जो भगवान को पहचान सेवा न करी; हम से नारी ही भलीं, कि जिन्हों ने जप, तप, यज्ञ, बिन किये साहस कर, जा श्री कृष्ण के दरसन किये, औ अपने हाथों विन्हें भोजन दिया. ऐसे पछताय, मथुरियों ने अपनी स्त्रीयों के सनमुख हाथ जोड़ कहा, कि धन्य भाग तुम्हारे, जो हरि का दरसन कर आईं, तुम्हारा ही जीवन सुफल है. इति

CHAPTER. XXV.

श्री शुकदेव जी बोले, कि हे राजा! जैसे श्री कृष्णचंद ने गिर गोवर्धन उठाया, औ इंद्र का गर्व हरा, अब सोई कथा कहता हूं तुम चित दे सुनो; कि सब ब्रजबासी बरसवें दिन, कातिक बदी चौदस को न्हाय धोय, केसर चंदन से चौक पुराय, भांति भांति की मिठाई औ पकवान धर, धूप दीप कर, इंद्र की पूजा किया करें. यह रीति उनके यहां परंपरा से चली आती थी. एक दिन वही दिवस आया, तब नंद जी ने बहुतसी खाने की सामा बनवाई, औ सब ब्रजबासियों के भी घर घर सामग्री भोजन की हो रही थी. तहां श्री कृष्ण ने आ मा से पूछा, कि माजी! आज घर घर में पकवान मिठाई जो हो रही है, सो क्या है? इसका भेद मुझे समझाकर कहो, जो मेरे मन की दुबधा जाय. जसोदा बोली, कि बेटा! इस समै मुझे बात कहने का अवकाश नहीं, तुम अपने पिता से जा पूछो, वे बुझाय कर कहेंगे. यह सुन नंद उपनंद के पास आय, श्री कृष्ण ने कहा, कि पिता! आज किस देवता के पूजने की ऐसी धूम धाम है, कि जिनके लिये घर घर पकवान मिठाई हो रही है; वे कैसे भक्ति मुक्ति बर के दाता हैं, तिनका नाम औ गुन कहो जो मेरे मन का संदेह जाय.

नंदमहर बोले, कि पुत्र! यह भेद तू ने अबतक नहीं समझा, कि मेघों के पति जो हैं सुरपति, तिन की पूजा है, जिन की कृपा से संसार में रिद्धि सिद्धि मिलती है, औ तृन, जल, अन्न, होता है; बन उपबन फूलते फलते हैं; तिन से सब जीव, जंतु, पशु, पक्षी, आनंद में रहते हैं. यह इंद्र पूजा की रीति हमारे यहां पुरुषाओं के आगे से चली आती है, कुछ आज ही नई नहीं निकाली. नंद जी से इतनी बात सुन श्री कृष्णचंद बोले, हे पिता! जो हमारे बड़ों ने जाने अन जाने इंद्र की पूजा की तो की, पर अब तुम जान बूझकर धर्म का पंथ छोड़ ऊबट बाट क्यों चलते हो; इंद्र के मानने से कुछ नहीं होता, क्योंकि वह भक्ति मुक्ति का दाता नहीं, औ तिससे रिद्धि सिद्धि किसने पाई है, यह तुमहीं कहो तिसने किसे बर दिया है.

हां ऐक बात यह है, कि तप यज्ञ करने से देवताओं ने अपना राजा बनाय, इंद्रासन दे रक्खा है, इससे कुछ परमेश्वर नहीं हो सकता. सुनो, जब असुरों से बार बार हारता है, तब भागके कहीं जा छिपकर अपने दिन काटता है; ऐसे कायर को क्यों मानो, अपना धर्म किस लिये नहीं पहचानो; इंद्र का किया कुछ नहीं हो सकता; जो कर्म में लिखा है सोई होता है; सुख संपत दारा, भाई, बंधु, येभी सब अपने धर्म कर्म से मिलते हैं, औ आठ मास जो सूरज जल सोखता है सोई चार महीने बरसाता है, तिसी से पृथ्वी में तृन, जल, अन्न, होता है, और ब्रह्मा ने जो चारों

बरन बनाये हैं, ब्राह्मन, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, तिनके पीछे भी ऐक ऐक कर्म लगा दिया है, कि ब्राह्मन तो बेद बिद्या पढ़े; क्षत्री सब की रक्षा करे; वैश्य खेती बनज; औ शूद्र इन तीनों की सेवा में रहे.

पिता! हम बैश्य हैं, गायें बढ़ीं, इससे गोकुल हुआ, तिसी से नाम गोप पड़ गया. हमारा यही कर्म है कि खेती बनज करें, औ गौ ब्राह्मन की सेवा में रहें; बेद की आज्ञा है कि अपनी कुल रीति न छोड़िये; जो लोग अपना धर्म तज और का धर्म पालते हैं सो ऐसे हैं, जैसे कुल बधू हो पर पुरुष से प्रीति करे, इससे अब इंद्र की पूजा छोड़ दीजै, औ बन पर्वत की पूजा कीजै; क्योंकि हम बनबासी हैं, हमारे राजा वेई हैं, जिनके राज में हम सुख से रहते हैं, तिन्हें छोड़ और को पूजना हमें उचित नहीं, इससे अब सब पकवान मिठाई अन्न ले चलो, और गोवर्द्धन की पूजा करो.

इतनी बात के सुनते ही, नंद उपनंद उठकर वहां गये, जहां बड़े बड़े गोप अथाई पर बैठे थे. इन्होंने जातेही सब श्री कृष्ण की कही बातें विन्हें सुनाईं. वे सुनते ही बोले, कि कृष्ण सच कहता है, तुम बालक जान उसकी बात मत टालो; भला तुमहीं बिचारो कि इंद्र कौन है, और हम किस लिये विसे मानते हैं, जो पालता है उसकी तो पूजा ही भुलाई.

हमें कहा सुरपति सों काज, पूजैं बन सरिता गिरि राज.

ऐसे कह फिर सब गोपों ने कहा,

भलौ मतौ कान्हर कियौ तजिये सिगरे देव,
गोवर्द्धन पर्वत बड़ो, ता की कीजै सेव.

यह बचन सुनतेही नंद जी ने प्रसन्न हो गांव में ढंढोरा फिरवाय दिया, कि कल हम सारे ब्रजबासी चलकर गोवर्द्धन की पूजा करेंगे; जिस जिस के घर में इंद्र पूजा के लिये पकवान मिठाई बनी है, सो सब लेले भोर ही गोवर्द्धन पै जाइयो. इतनी बात सुन सकल ब्रजबासी दूसरे दिन भोर के तड़के ही उठ, स्नान ध्यान कर, सब सामग्री झालों, परातों, थालों, डलों, हंडों, चरुओं में भर, गाड़ों, बहंगियों, पर रखवाय रखवाय, गोवर्द्धन को चले; तिसी समैं नंद उपनंद भी कुटुंम समेत सामा ले सब के साथ हो लिये, और बाजे गाजे से चले चले सब मिल गोवर्द्धन पहुंचे.

वहां जाय पर्वत के चारों ओर झाड़ बुहार जल छिड़क, घेवर, बाबर, जलेबी, लड्डू, खुरमें, इमरती, फेनी, पेड़े, बरफी, खाजे, गूंझे, मठड़ी, सीरा, पूरी, कचौरी, सेव, पापड़, पकौड़ी आदि पकवान और भांति भांति के भोजन, बिंजन, संधाने, चुन चुन रख दिये, इतने कि जिनसे पर्वत छिप गया, औ ऊपर फूलों की माला पहराय, बरन बरन के पाटंबर तान दिये.

तिस समैं की शोभा बरनी नहीं जाती; गिरि ऐसा सुहावना लगता था, जैसे किसी ने गहने कपड़े पहराय, नख सिख से सिंगार होय; और नंद जी ने पुरोहित बुलाय, सब ग्वाल बालों को साथ ले, रोली, अक्षत, पुष्प, चढ़ाय, धूप, दीप, नैवेद्य कर, पान, सुपारी, दक्षिना धर, वेद की बिधि से पूजा की, तब श्री कृष्ण ने कहा, कि अब तुम शुद्ध मन से गिरिराज का ध्यान करो तो वे आय दरसन दे भोजन करें.

श्री कृष्ण से यों सुनते ही नंद जसोदा समेत सब गोपी गोप कर जोड़, नैन मूंद, ध्यान लगाय, खड़े हुए; तिस काल नंदलाल उधर तो अति मोटी भारी दूसरी देह धर, बड़े बड़े हाथ पांव कर, कंवल नैन, चंद्रमुख हो, मुकुट धरे, बनमाल गरे, पीत बसन औ रतन जटित आभूषन पहरे, मुंह पसारे, चुपचाप परवत के बीच से निकले; और इधर आप ही अपने दूसरे रूप को देख सब से पुकारके कहा, देखो, गिरिराज ने प्रगट होय दरसन दिया, जिनकी पूजा तुमने जी लगाय करी है. इतना बचन सुनाय, श्री कृष्णचंद जी ने गिरिराज को दंडवत की; उन की देखा देखी सब गोपी गोप प्रनाम कर आपस में कहने लगे, कि इस भांति इंद्र ने कब दरसन दिया था; हम बृथा उसकी पूजा किया किये, और क्या जानिये पुरुषाओं ने ऐसे प्रत्यक्ष देव को छोड़ क्यों इंद्र को माना था, यह बात समझी नहीं जाती.

यों सब बतराय रहे थे, कि श्री कृष्ण बोले, अब देखते क्या हो, जो भोजन लाये हो सो खिलाओ. इतना बचन सुनते ही, गोपी गोप षट रस भोजन थाल परातों में भर भर उठाय उठाय लगे देने, औ गोवर्द्धन नाथ हाथ बढ़ाय बढ़ाय ले ले भोजन करने; निदान जितनी सामग्री नंद समेत सब ब्रजबासी ले गये थे, सो खाई, तब वह मूरत पर्वत में समाई. इस भांति अद्भुत लीला कर श्री कृष्णचंद सब को साथ ले, पर्वत की परिक्रमा दे, दूसरे दिन गोवर्द्धन से चल, हंसते खेलते बृंदाबन आये; तिस काल घर घर आनंद मंगल बधाये होने लगे, औ ग्वाल बाल सब गाय बछड़ों को रंग रंग उनके गले में गंडे घंटालियां घूंघरू बांध बांध न्यारेही कुतूहल कर रहे थे. इति

CHAPTER. XXVI.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले,

सुरपति की पूजा तजी, करी पर्वत की सेव.
तबहि इंद्र मन कोपिकै, सबै बुलाये देव.

जब सारे देवता इंद्र के पास गये, तब वह उनसे पूछने लगा, कि तुम मुझे समझाकर कहो,

कल ब्रज में पूजा किस की थी. इस बीच नारद जी आय पहुंचे तो इंद्र से कहने लगे, कि सुनो महाराज! तुम्हें सब कोई मानता है, पर एक ब्रजबासी नहीं मानते, क्योंकि नंद के एक बेटा हुआ है, तिसी का कहा सब करते है, विन्होंने तुम्हारी पूजा मेट कल सब से पर्वत पुजवाया. इतनी बात के सुनते ही इंद्र क्रोधकर बोला, कि ब्रजबासियों के धन बढ़ा है, इसी से विन्हें अति गर्ब हुआ है.

जप तप यज्ञ तज्यौ ब्रत मेरै, काल दरिद्र बुलायौ नेरै.
मानुष कृष्ण देव कै मानै, ताकी बातें सांची जानै.
वह बालक मूरख अज्ञान, बहु बादी राखै अभिमान.
अब हों उनकौ गर्ब परिहरैं, पसु खोऊं लक्ष्मी बिन करैं.

ऐसे बकझक खिजलायकर, सुरपति ने मेघपति को बुलाय भेजा; वह सुनते ही डरता कांपता हाथ जोड़ सनमुख आ खड़ा हुआ; विसे देखते ही इंद्र तेह कर बोला, कि तुम अभी अपना सब दल साथ ले जाओ, औ गोवर्द्धन पर्वत समेत ब्रज मंडल को बरस बहाओ, ऐसा कि कहीं गिरि का चिन्ह औ ब्रज औ ब्रजबासियों का नाम न रहे.

इतनी आज्ञा पाय, मेघपति दंडवत कर, राजा इंद्र से बिदा हुआ, और उसने अपने स्थान पर आय बड़े बड़े मेघों को बुलायके कहा, सुनो, महाराज की आज्ञा है, कि तुम अभी जाय ब्रज मंडल को बरसके बहा दो. यह बचन सुन, सब मेघ अपने अपने दल बादल ले ले मेघपति के साथ हो लिये. विसने आतेही ब्रजमंडल को घेर लिया, औ गरज गरज बड़ी बड़ी बूंदों से लगा मूसलाधार जल बरसावने, औ उंगली से गिरि को बतावने.

इतनी कथा कथ, श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! जब ऐसे चहुंओर से घनघोर घटा अखंड जल बरसाने लगीं, तब नंद जसोदा समेत सब गोपी ग्वाल बाल भय खाय भींगते थरथर कांपते, श्री कृष्ण के पास जाय पुकारे, कि हे कृष्ण! इस महा प्रलय के जल से कैसे बचेंगे; तब तो तुमने इंद्र की पूजा मेट पर्वत पुजवाया, अब बेग उस को बुलाइये जो आय रक्षा करे, नहीं तो क्षन भर में नगर समेत सब डूब मरते हैं. इतनी बात सुन, और सब को भयातुर देख, श्री कृष्णचंद्र बोले, कि तुम अपने जीमें किसी बात की चिंता मत करो, गिरिराज अभी आय तुम्हारी रक्षा करते हैं. यों कह गोवर्द्धन को तेज से तपाय अग्नि सम किया, औ बायें हाथ की अंगुली पर उठाय लिया. तिस काल सब ब्रजबासी अपने ढोरों समेत आ उसके नीचे खड़े हुए, औ श्री कृष्णचंद्र को देख देख अचरज कर आपस में कहने लगे.

है कोउ आदि पुरुष औतारी, देवन हू कौ देव मुरारी.
मोहन मानुष कैसो भाई, अंगुरी पर क्यौं गिरि ठहराई.

इतनी कथा कह, श्री सुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहने लगे! कि उधर तो मेघपति अपना दल लिये क्रोध करकर मूसलाधार जल बरसाता था, औ इधर पर्वत पै गिर छनाक तवे की बूंद हो जाता था. यह समाचार सुन, इंद्र भी कोप कर आप चढ़ आया, और लगातार उसी भांति सात दिन बरसा, पर ब्रज में हरि प्रताप से ऐक बूंद भी न पड़ी. जब सब जल निबड़ा, तब मेघों ने आ हाथ जोड़ कहा, कि हे नाथ! जितना महाप्रलय का जल था सबका सब हो चुका, अब क्या करें. यों सुन इंद्र ने अपने ज्ञान ध्यान से बिचारा, कि आदि पुरुषने औतार लिया, नहीं तो किस में इतनी सामर्थ थी जो गिरि धारन कर ब्रज की रक्षा करता. ऐसे सोच समझ अछता पछता मेघों समेत इंद्र अपने स्थान को गया, और बादल उघड़ प्रकाश हुआ; तब सब ब्रजबासियों ने प्रसन्न हो श्री कृष्ण से कहा, महाराज! अब गिरि उतार धरिये, मेघ जाता रहा. यह बचन सुनते ही, श्री कृष्णचंद ने पर्वत जहां का तहां रखदिया. इति

CHAPTER. XXVII.

श्री सुकदेव बोले, कि जद हरि ने गिरि कर से उतार धरा, तिस समै सब बड़े बड़े गोप तो इस अद्भुत चरित्र को देख यों कह रहे थे, कि जिस की शक्ति ने इस महाप्रलय से आज ब्रजमंडल बचाया, तिसे हम नंद सुत कैसे कहेंगे; हां किसी समय नंद जसोदा ने महा तप किया था, इसी से भगवान ने आ इनके घर जन्म लिया है; औ ग्वाल बाल आय आय श्री कृष्ण के गले मिल मिल पूछने लगे, कि भैया! तूने इस कोमल कमल से हाथ पर कैसे ऐसे भारी पर्वत का बोझ संभाला; औ नंद जसोदा करुना कर पुत्र को हृदय लगाय, हाथ दाब, उंगली चटकाय, कहने लगे, कि सात दिन गिरि कर पर रक्खा, हाथ दुखता होयगा; और गोपी जसोदा के पास आय पिछली सब कृष्ण की लीला गाय कहने लगीं,

यह जो बालक पूत तिहारे, चिर जीवौ ब्रज कौ रखवारे.
दानव दैयत असुर संहारे, कहां कहां ब्रज जन न उबारे.
जैसी कही गर्ग ऋषि राई, सोइ सोइ बात होति है आई. इति

CHAPTER. XXVIII.

श्री सुकदेव मुनि बोले कि महाराज! भोर होतेही सब गायें औ ग्वाल बालों को संगकर, अपनी अपनी छाक ले, कृष्ण बलराम बैन बजाते औ मधुर मधुर सुर से गाते जो धेनु चरावन बन को

चले, तों राजा इंद्र सकल देवताओं को साथ लिये, कामधेनु को आगे किये, ऐरावत हाथी पर चढ़, सुरलोक से चला चला वृंदाबन में आय, बन की बाट ऐक खड़ा हुआ; जद श्री कृष्णचंद उसे दूर से दिखाई दिये, तद गज से उतर नंगे पाओं गले में कपड़ा डाले थरथर कांपता आ श्री कृष्ण के चरनों पर गिरा, और पछताय पछताय ऐसे कहने लगा, कि हे ब्रजनाथ! मुज पर दया करो,

मैं अभिमान गर्व अति किया, राजस तामस में मन दिया.
धन मद कर संपति सुख माना, भेद न कुछी तुम्हारा जाना.
तुम परमेस्वर सब के ईस, और दूसरै को जगदीस.
ब्रह्मा रुद्र आदि बर दाई, तुम्हरी दई संपदा पाई.
जगत पिता तुम निगम निवासी, सेवत नित कमला भई दासी.
जन के हेत लेत औतार, तब तब हरत भूमि कौ भार.
दूर करौ सब चूक हमारी, अभिमानी मूरख हों भारी.

जब ऐसे दीन हो इंद्र ने स्तुति करी, तब श्री कृष्णचंद दयाल हो बोले, कि अब तो तू कामधेनु के साथ आया, इस से तेरा अपराध क्षमा किया, पर फिर गर्व मत कीजो, क्योंकि गर्व करने से ज्ञान जाता है, औ कुमति बढ़ती है, उसी से अपमान होता है.

इतनी बात श्री कृष्ण के मुख से सुनते ही, इंद्र ने उठकर बेद की बिधि से पूजा की, और गोबिंद नाम धर चरनामृत ले परिक्रमा करी. तिस समय गंधर्व भांति भांति के बाजे बजा बजा श्री कृष्ण का जस गाने लगे, औ देवता अपने बिमानों में बैठे आकाश से फूल बरसावने; उस काल ऐसा समां हुआ कि मानो फेरकर श्री कृष्ण ने जन्म लिया. जब पूजा से निचंत हो इंद्र हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा हुआ, तब श्री कृष्ण ने आज्ञा दी, कि अब तुम कामधेनु समेत अपने पुर जाओ. आज्ञा पाते ही कामधेनु औ इंद्र बिदा होय, दंडवत कर, इंद्रलोक को गये; और श्री कृष्णचंद गौ चराय सांज हुऐ सब ग्वाल बालों को लिये वृंदाबन आऐ; उन्होंने अपने अपने घर जाय जाय कहा, आज हमने हरि प्रताप से इंद्र का दरसन बन में किया.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, राजा! यह जो श्री गोबिंद कथा मैंने तुम्हें सुनाई, इसके सुनने औ सुनाने से संसार में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदारथ मिलते हैं. इति

CHAPTER. XXIX.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! ऐक दिन नंद जी ने संयम कर ऐकादशी ब्रत किया; दिन तो स्नान ध्यान भजन जप पूजा में काटा, औ रात्रि जागरन में बिताई; जब छः घड़ी रैन रही,

औ द्वादशी भई, तब उठके देह शुद्ध कर, भोर हुआ जान, धोती अंगोछा झारी ले, यमुना न्हान चले, तिनके पीछे कई एक ग्वाल भी हो लिये; तीर पर जाय, प्रनाम कर, कपड़े उतार, नंद जी ज्यों नीर में पैठे, त्यों बरुन के सेवक जो जल की चौकी देते थे, कि कोई रात को न्हाने न पावे, तिन्होंने जा बरुन से कहा, कि महाराज! कोई इस समैं यमुना में न्हाय रहा है, हमें क्या आज्ञा होती है. बरुन बोला, तिसे अभी पकड़ लाओ. आज्ञा पातेही सेवक फिर वहां आये, जहां नंद जी स्नान कर जल में खड़े जप करते थे. आतेही अचानक नागफांस डाल नंद जी को बरुन के पास ले गये; तब नंद जी के साथ जो ग्वाल गये थे, तिन्हों ने आय, श्री कृष्ण से कहा, कि महाराज! नंदराय जी को बरुन के गन यमुना तीर से पकड़, बरुन लोक को ले गये. इतनी बात के सुनते ही, श्री गोबिंद क्रोध कर उठ धाये, औ पल भर में बरुन के पास जा पहुंचे. इन्हें देखते ही वह उठ खड़ा हुआ, और हाथ जोड़ बिनती कर बोला,

सुफल जन्म है आज हमारै, पायौ यदुपति दरस तुम्हारै.
कीजे दोष दूर सब मेरे, नंद पिता इस कारन घेरे.
तुमकौं सब के पिता बखाने, तुम्हरे पिता नहीं हम जाने.

रात को न्हाने देख, अनजाने गन पकड़ लाये; भला इसी मिस मैंने दरसन आप के पाये, अब दया कीजे, मेरा दोष चित्त में न लीजे. ऐसे अति दीनता कर, बहुत सी भेट लाय, नंद औ श्री कृष्ण के आगे धर, जद बरुन हाथ जोड़, सिर नाय, सनमुख खड़ा हुआ, तद श्री कृष्ण भेट ले पिता को साथ कर वहां से चल वृंदाबन आये. इनको देखते ही सब ब्रजबासी आय मिले; तिस समैं बड़े बड़े गोपों ने नंदराय से पूछा, कि तुम्हें बरुन के सेवक कहां ले गये थे? नंद जी बोले, सुनो, ज्यों वे यहां से पकड़ मुझे बरुन के पास ले गये, त्योंहीं पीछे से श्री कृष्ण पहुंचे; इन्हें देखते ही वह सिंहासन से उतर, पाओं पर गिर, अति बिनती कर कहने लगा, नाथ! मेरा अपराध क्षमा कीजे, मुझ से अनजाने यह दोष हुआ, सो चित्त में न लीजे. इतनी बात नंद जी के मुख से सुनते ही गोप आपस में कहने लगे, कि भाई! हमने तो यह तभी जाना था जब श्री कृष्णचंद ने गोवर्द्धन धारन कर ब्रज की रक्षा करी, कि नंद महर के घर में आदि पुरुष ने आय औतार लिया है.

ऐसे आपस में बतराय, फिर सब गोपों ने हाथ जोड़ श्री कृष्ण से कहा, कि महाराज! आपने हमें बहुत दिन भरमाया, पर अब सब भेद तुम्हारा पाया, तुम्हीं जगत के करता, दुख हरता हो, त्रिलोकी नाथ! दया कर अब हमें बैकुंठ दिखाइये. इतना बचन सुन श्री कृष्ण जी ने छिन भर में बैकुंठ रच तिन्हें ब्रज ही में दिखाया. देखते ही ब्रजबासियों को ज्ञान हुआ, तो कर जोड़ सिर झुकाय

बोले, हे नाथ! तुम्हारी महिमा अपरंपार है. हम कुछ कह नहीं सकते; पर आप की कृपा से आज हमने यह जाना कि तुम नारायन हो, भूमि का भार उतारने को संसार में जन्म ले आए हो.

श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! जब ब्रजबासियों ने इतनी बात कहीं, तभी श्री कृष्नचंद ने सब को मोहित कर, जो बैकुंठ की रचना रची थी सो उठाय ली, औ अपनी माया फैलाय दी, तो सब गोपों ने सपना सा जाना, और नंद जी ने भी माया के बस हो श्री कृष्न को अपना पुत्रही कर माना. इति

CHAPTER. XXX.

इतनी कथा सुनाय श्री सुकदेव जी बोले,

जैसे हरि गोपिन सहित कीनौ रास बिलास,
सो पंचाध्याई कहों जैसी बुद्धि प्रकास.

जब श्री कृष्न जी ने चीर हरे थे, तब गोपियों को यह बचन दिया था कि हम कार्त्तिक महीने में तुम्हारे साथ रास करेंगे, तभी से गोपी रास की आस किये मन में उदास रहैं, औ नित उठ कातिक मास ही को मनाया करैं; दैवी उनके मनाते मनाते सुखदाई सरद ऋतु आई.

लाग्यौ जब तें कातिक मास, घाम सीत बरषा कौ नास.
निर्मल जल सरवर भर रहे, फूले कंवल होय उहउहे.
कुमद चकोर कंत कामिनी, फूलहिं देख चंद्र जामिनी.
चकई मलिन कंवल कुम्हिलाने, जे निज मित्र भानु कौं माने.

ऐसे कह, श्री सुकदेव मुनि फिर बोले कि पृथ्वीनाथ! एक दिन श्री कृष्नचंद कार्त्तिकी पून्यो की रात्रि को घर से निकल बाहर आय, देखें तो निर्मल आकाश में तारे छिटक रहे हैं; चांदनी दसों दिसा में फैल रही है; सीतल सुगंध सहित मंद गति पौन बह रही है; औ एक ओर सघन बन की छबि अधिक ही सोभा दे रही है. ऐसा समा देखते ही उनके मन में आया, कि हमने गोपियों को यह बचन दिया है जो सरद ऋतु में तुम्हारे साथ रास करेंगे, सो पूरा किया चाहिये. यह बिचार कर, बन में जाय, श्री कृष्न ने बांसुरी बजाई; बंसी की धुनि सुनि सब ब्रज युवती बिरह की मारी कामातुर हो अति घबराईं; निदान कुटुंब की माया छोड़, कुल कान पटक, गृह काज तज, हड़बड़ाय उलटा पुलटा सिंगार कर उठ धाईं. एक गोपी जो अपने पति के पास से जों उठ चली, तों उसके पति ने बाट में जा रोका, औ फेरकर घर ले आया, जाने न दिया, तब तो

वह हरि का ध्यान कर देह छोड़ सब से पहले जा मिली, तिसके चित की प्रीति देख श्री कृष्णचंद ने तुरंत मुक्ति गति दी.

इतनी कथा सुन, राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा कि कृपा नाथ! गोपी ने श्री कृष्ण जी को ईश्वर जानके तो नहीं माना, केवल बिषय की बासना कर भजा, वह मुक्त कैसे हुई, सो मुझे समझाके कहो जो मेरे मन का संदेह जाय. श्री शुकदेव मुनि बोले, धर्मावतार! जो जन श्री कृष्णचंद की महिमा अनजाने भी गुन गाते हैं, सो भी निस्संदेह भक्ति मुक्ति पाते हैं; जैसे कोई बिन जाने अमृत पियेगा, वह भी अमर हो जियेगा, औ जानके पियेगा, तिसे भी गुन होगा. यह सब जानते हैं कि पदारथ का गुन औ फल बिन हुए रहता नहीं; ऐसे ही हरि भजन का प्रताप है, कोई किसी भाव से भजो मुक्त होयगा; कहा है,

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम,
मन काचे नाचै बृथा, सांचे रचे राम.

औ सुनो, जिन जिनने जैसे जैसे भाव से श्री कृष्ण को मानके मुक्ति पाई सो कहता हूं, कि नंद जसोदादि ने तो पुत्र कर बूझा; गोपियों ने जार कर समझा; कंस ने भय कर भजा; ग्वाल बालों ने मित्र कर जपा; पांडवों ने प्रीतम कर जाना; सिसुपाल ने शत्रु कर माना; यदुबंसियों ने अपना कर ठाना; औ जोगी जती मुनियों ने ईश्वर कर ध्याया; पर अंत में मुक्ति पदारथ सबही ने पाया; जो एक गोपी प्रभु का ध्यान कर तरी तो क्या अचरज हुआ.

यह सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव मुनि से कहा, कि कृपा नाथ! मेरे मन का संदेह गया, अब कृपा कर आगे कथा कहिये. श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! जिस काल सब गोपियां अपने अपने झुंड लिये, श्री कृष्णचंद, जगत उजागर, रूप सागर से धायकर जाय मिलीं, कि जैसे चौमासे की नदियां बल कर समुद्र को जाय मिलें. उस समैं के बनाव की सोभा बिहारी लाल की कुछ बरनी नहीं जाती, कि सब सिंगार करे, नटवर भेष धरे, ऐसे मन भावने सुंदर सुहावने लगते थे, कि ब्रज युवती हरि छबि देखते ही थकि रहीं. तब मोहन तिनकी क्षेम कुशल पूछ, रूखे हो बोले, कहो रात समैं भूत प्रेत की बिरियां भयावनी बाट काट, उलटे पुलटे वस्त्र आभूषन पहने, अति घबराई; कुटुंब की माया तज इस महा बन में तुम कैसे आई; ऐसा साहस करना नारी को उचित नहीं. स्त्री को कहा है कि कायर, कुमत, कूढ़, कपटी, कुरूप, कोढ़ी, काना, अंधा, लूला, लंगड़ा, दरिद्री, कैसाही पति हो, पर इसे उस कौं सेवा करनी जोग है, इसी में उसका कल्यान है, औ जगत में बड़ाई; कुलवंती पतिब्रता का धर्म है कि पति को छिन भर न छोड़े, और जो स्त्री अपने

पुरुष को छोड़ पर पुरुष के पास जाती है, सो जन्म जन्म नर्क बास पाती है. ऐसे कह फिर बोले, कि सुनो, तुम ने आय सघन बन, निर्मल चांदनी, औ यमुना तीर की सोभा देखी, अब घर जाय मन लगाय कंत की सेवा करो, इसी में तुह्मारा सब भांति भला है. इतना बचन श्री कृष्ण के मुख से सुनते ही, सब गोपी ऐक बार तो अचेत हो अपार सोच सागर में पड़ीं, पीछे

नीचे चितै उसासैं लईं, पद नखनें भौं खोदत भईं.
यों दृग सों छूटी जल धार, मानहुं टूटे मोती हार.

निदान दुख से अति घबराय ऐसे कहने लगीं, कि अहो कृष्ण! तुम बड़े ठग हो, पहले तो बंसी बजाय अचानक हमारा ज्ञान ध्यान मन धन हर लिया, अब निर्दय होय कपट कर कर्कस बचन कह, प्रान लिया चाहते हो; यों सुनाय पुनि बोलीं,

लोग कुटुंब घर पति तजे, तजी लोग की लाज,
हैं अनाथ कोऊ नहीं, राखि सरन ब्रजराज!

और जो जन तुम्हारे चरनों में रहते हैं, सो धन तन लाज बड़ाई नहीं चाहते, तिनके तो तुम्हीं हो जन्म जन्म के कंत, हे प्रान रूप भगवंत!

करि हैं कहा जाय हम गेह, अरझें प्रान तुम्हारे नेह.

इतनी बात के सुनते ही, श्री कृष्णचंद ने मुसकुराय, सब गोपियों को निकट बुलायके कहा, जो तुम रची हो इस रंग, तो खेलो रास हमारे संग. यह बचन सुन, दुख तज, गोपी प्रसन्नता से चारों ओर घिर आईं, औ हरि मुख निरख निरख लोचन सुफल करने लगीं.

ठाढ़े बीच जु स्याम घन इहिं छबि कामिनि केलि,
मनहुं नीलगिरि तरे तें उलही कंचन बेलि.

आगे श्री कृष्ण जी ने अपनी माया को आज्ञा की, कि हम रास करेंगे, उसके लिये तू ऐक अच्छा स्थान रच, औ यहां खड़ी रह, जो जो जिस जिस वस्तु की इच्छा करे, सो सो ला दीजो. महाराज! तिसने सुनते ही यमुना के तीर जाय, ऐक कंचन का मंडलाकार बड़ा चैांतरा बनाय, मोती हीरे जड़, उसके चारों ओर सपल्लव केले के खंभ लगाय, तिन में बंदनवार औ भांति भांति के फूलों की माला बांध, आ श्री कृष्णचंद से कहा; ये सुनते ही प्रसन्न हो सब ब्रजयुवतियों को साथ ले, यमुना तीर को चले; वहां जाय देखा तो चंद्र मंडल से रास मंडल के चैांतरे की चमक चैागुनी सोभा दे रही है; उसके चारों ओर रेती चांदनी सी फैल रही है; सुगंध समेत शीतल मीठी मीठी पैान चल रही है; औ ऐक ओर सघन बन की हरियाली उजाली रात में अधिक छबि ले रही है.

इस समैं को देखते ही सब गोपी मगन हो उसी स्थान के निकट मानसरोवर नाम ऐक सरोवर था, जिसके तीर जाय, मन मानते सुथरे बस्त्र आभूषन पहन, नख सिख से सिंगार कर, अच्छे बाजे बीन पखावज आदि सुर बांध बांध ले आई, औ लगीं प्रेम मद माती हो, सोच संकोच तज, श्री कृष्ण के साथ मिल बजाने, गाने, नाचने. उस समैं श्री गोबिंद गोपियों की मंडली के मध्य ऐसे सुहावने लगते थे जैसे तारा मंडल में चंद्र.

इतनी कथा कह, श्री सुकदेव जी बोले, सुनौ महाराज! जब गोपियों ने ज्ञान विवेक छोड़ रस में हरि को मन से बिषई पति कर माना, औ अपने आधीन जाना, तब श्री कृष्णचंद ने मन में बिचार कि,

अब मोहि इन अपने बस जान्यौ, पति बिषई सम मन में आन्यौ.
भई अज्ञान लाज तजि देह, लपटहिं पकरहिं कंत सनेह.
ज्ञान ध्यान मिलकै बिसरयौ, छांडि जाउं इनि गर्ब बढ़ायौ.

देखूं मुज बिन पीछे बन में क्या करती हैं, और कैसे रहती हैं. ऐसे बिचार, श्री राधिका को साथ ले, श्री कृष्णचंद अंतरध्यान हुऐ. इति

CHAPTER. XXXI.

श्री सुकदेव मुनि बोले, कि महाराज! ऐकाऐकी श्री कृष्णचंद को न देखते ही, गोपियों की आंख आगे अंधेरा हो गया, औ अति दुख पाय ऐसे अकुलाई, जैसे मनि खोय सर्प घबराता है. इस में ऐक गोपी कहने लगी,

कहौ सखी मोहन कहां गये हमें छिटकाय,
मेरे गरे भुजा धरे रहे हुते उर लाय.

अभी तो हमारे संग हिले मिले रस बिलास कर रहे थे, इतने ही में कहां गये, तुम में से किसीने भी जाते न देखा. यह बचन सुन, सब गोपी बिरह की मारी निपट उदास हो, हाय मार बोलीं,

कहां जांय कैसी करैं कासों कहैं पुकारि,
है कित कछू न जानिये क्यौं कर मिले मुरारि.

ऐसे कह, हरि मद माती होय, सब गोपी लगीं चारों ओर ढूंढ ढूंढ, गुन गाय गाय, ऐसे, यों पुकारने,

हम को क्यौं छोड़ी ब्रजनाथ! सरबस दिया तुम्हारे साथ.

जब वहां न पाया, तब आगे जाय आपस में बोलीं, सखी! यहां तो हम किसी को नहीं देखतीं, किस से पूछें कि हरि किधर गये. यों सुन एक गोपी ने कहा, सुनो आली! एक बात मेरे जी में आई है, कि ये जितने इस बन में पसु पक्षी औ बृक्ष हैं सो सब ऋषि मुनि हैं, ये कृष्न लीला देखने को औतार ले आये हैं, इन्हीं से पूछो, ये यहां खड़े देखते हैं, जिधर हरि गये होंगे तिधर बता देंगे. इतना बचन सुनते ही सब गोपी बिरह से ब्याकुल हो क्या जड़ क्या चैतन्य लगीं एक एक से पूछने,

हे बड़ पीपल पाकड़ बीर! लह्यो पुन्य कर उच्च शरीर.
पर उपकारी तुमहीं भये, बृक्ष रूप पृथ्वी पर लये.
घाम सीत बरसा दुख सहौ, काज पराये ठाढ़े रहौ.
बकला फूल मूल फल डार, तिन सों करत पराई सार.
सब का मन धन हर नंद लाल, गये इधर को कहो दयाल.
हे कदंब अंब कचनारि! तुम कहुं देखे जात मुरारि.
हे असोक चंपा करबीर! जात लखे तुम ने बलबीर.
हे तुलसी अति हरि की प्यारी! तन तें कहूं न राखत न्यारी.
फूली आज मिले हरि आय, हम हूं को किन देत बताय.
जाती जुही मालती माई! इत है निकसे कुंवर कन्हाई.
मृगनि पुकारि कहैं ब्रज नारी, इत तुम जात लखे बनवारी.

इतना कह श्री सुकदेव जी बोले, कि महाराज! इसी रीत से सब गोपी पसु पक्षी द्रुम बेलि से पूछती पूछती, श्री कृष्नमय हो, लगीं पूतना बध आदि सब श्री कृष्न की करी हुई बाल लीला करने, औ ढूंढने; निदान ढूंढते ढूंढते कितनी एक दूर जाय देखैं तो श्री कृष्नचंद के चरन चिन्ह, कंवल, जब, ध्वजा, अंकुस समेत, रेत पर जगमगाय रहे हैं. देखते ही ब्रज युवती, जिस रज को सुर नर मुनि खोजते हैं, तिस रज को दंडवत कर, सिर चढ़ाय, हरि के मिलने की आस धर, वहां से बढ़ीं, तो देखा, जो उन चरन चिन्हों के पास पास एक नारी के भी पांव उपड़े हुए हैं. उन्हें देख अचरज कर, आगे जाय, देखैं तो एक ठौर कोमल पातों के बिछौने पर सुंदर जड़ाऊ दरपन पड़ा है, लगीं उससे पूछने; जब बिरह भरा वह भी न बोला, तब तिन्हों ने आपस में पूछा, कहो आली! यह क्यों कर लिया. तिसी समैं जो पिय प्यारी के मन की जानती थी, उसने उत्तर दिया, कि सखी! जब प्रीतम प्यारी की चोटी गूंधन लगे, औ सुंदर बदन बिलोकने में अंतर हुआ, तिस

बिरियां प्यारी ने दरपन हाथ में ले, पिय को दिखाया; तद श्री मुख का प्रतिबिंब सनमुख आया. यह बात सुन गोपियां कुछ न कोपियां; बरन कहने लगीं, कि उसने शिव पार्बती को अच्छी रीति से पूजा है, औ बड़ा तप किया है, जो प्रान पति के साथ ऐकांत में निधड़क बिहार करती है. महाराज! सब गोपी तो इधर बिरह मद माती बकजक ऋखझख ढूंढती फिरती ही थीं, कि उधर श्री राधिका जी हरि के साथ अधिक सुख मान, प्रीतम को अपने बस जान, आप को सब से बड़ा ठान, मन में अभिमान आन बोलीं, प्यारे! अब मुज से चला नहीं जाता, कांधे चढ़ाय ले चलिये. इतनी बात के सुनते ही, गर्व प्रहारी, अंतरजामी, श्री कृष्नचंद्र ने मुसकुराय, बैठकर कहा कि आइये, हमारे कांधे चढ़ लीजिये. जद वह हाथ बढ़ाय चढ़ने को झुई, तद श्री कृष्न अंतरध्यान झुऐ; जों हाथ बढ़ाये थे, तों हाथ पसारे खड़ी रह गई, ऐसे कि जैसे घन से मान कर दामिनी बिछड़ रही हो; कै चंद्र से चंद्रिका रूस पीछे रह गई हो; औ गोरे तन की जोति छूट छिति पर छाय के छवि दे रही थी, कि मानो सुंदर कंचन की भूमि पै खड़ी है; नैनों से जल की धार बह रही थी; औ सुबास के बस जो मुख पास भंवर आय आय बैठते थे, तिन्हें भी उड़ाय न सकती थी; औ हाय हाय कर बन में बिरह की मारी इस भांति रो रही थी अकेली, कि जिसके रोने की धुन सुन सब रोते थे पसु पंछी औ द्रुम बेली, और यों कह रही थी,

हाहा नाथ! परम हितकारी, कहां गये स्वछंद बिहारी!
चरन सरन दासी मैं तेरी, कृपा सिंधु लीजे सुध मेरी.

कि इतने में सब गोपी भी ढूंढती ढूंढती उसके पास जा पहुंचीं, औ तिसके गले लग लग सबों ने मिल मिल ऐसा सुख माना कि जैसे कोई महा धन खोय मध्य आधा धन पाय सुख माने; निदान सब गोपी भी तिसे अति दुखित जान, साथ ले महा बन में पैठीं, औ जहां लग चांदना देखा, तहां लग गोपियों ने बन में श्री कृष्नचंद को ढूंढा; जब सघन बन के अंधेरे में बाट न पाई, तब वे सब वहां से फिर, धीरज धर, मिलने की आस कर, यमुना के उसी तीर पर आय बैठीं, जहां श्री कृष्नचंद ने अधिक सुख दिया था. इति

CHAPTER. XXXII.

श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! सब गोपी यमुना तीर पर बैठ, प्रेम मद माती हो, हरि के चरित्र और गुन गाने लगीं, कि प्रीतम! जब से तुम ब्रज में आऐ, तब से नये नये सुख यहां आनकर छाऐ; लक्ष्मी ने कर तुम्हारे चरन की आस, किया है अचल आयके बास; हम गोपी

हैं दासी तुम्हारी, बेग सुध लीजे दयाकर हमारी; जद से सुंदर सांवली सलोनी मूरति हे हेरी, तद से भई हैं बिन मोल की चेरी; तुम्हारे नैन बानों ने हने हैं हिय हमारे, सो प्यारे! किस लिये लेखे नहीं है तुम्हारे; जीव जाते हैं हमारे अब करुना कीजे; तज कर कठोरता बेग दरसन दीजे; जो तुम्हें मारना हीं था तो हम को बिखधर आग औ जल से किस लिये बचाया, तभी मरने क्यौं न दिया; तुम केवल जसोदा सुत नहीं हो, तुम्हें तो ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रादि सब देवता बिनती कर लाये हैं संसार की रक्षा के लिये.

हे प्रान नाथ! हमें एक अचरज बड़ा है, कि जो अपनों हीं को मारेगे, तो करेंगे किस की रखवाली. प्रीतम! तुम अंतरजामी होय, हमारे दुख हर, मन की आस क्यौं नहीं पूरी करते, क्या अबलाओं पर ही सूरता धारी है, हे प्यारे! जब तुम्हारी मंद मुसक्यानि युत प्यार भरी चितवन, औ भृकुटी की मरोर, नैनों की मटकन, ग्रीवा की लटक, औ बातों की चटक, हमारे जिय में आती है, तब क्या क्या न दुख पाती हैं; और जिस समैं तुम गौ चरावन जाते थे बन में, तिस समैं तुम्हारे कोमल चरन का ध्यान करने से बन के कंकर कांटे आ कसकते थे हमारे मन में; भोर के गये सांझ को फिर आते थे, तिस पर भी हमें चार पहर चार युग से जनाते थे; जद सनमुख बैठ सुंदर बदन निहारती थीं, तद अपने जीमें बिचारती थीं, कि ब्रह्मा कोई बड़ा मूरख है जो पलक बनाई है, हमारे इकटक देखने में बाधा डालने को.

इतनी कथा कह, श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! इसी रीत से सब गोपी बिरह की मारीं श्री कृष्णचंद के गुन औ चरित्र अनेक अनेक प्रकार से गाय गाय हारीं, तिस पर भी न आये बिहारी; तब तो निपट निरास हो, मिलने की आस कर, जीने का भरोसा छोड़, अति अधीरता से अचेत हो, गिरकर ऐसे रोय पुकारीं कि सुनकर चर अचर भी दुखित भये भारी. इति

CHAPTER. XXXIII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जद श्री कृष्णचंद अंतरजामी ने जाना जो अब ये गोपियां मुज बिन जीती न बचेंगीं,

तब तिनहीं में प्रगट भये नंद नंदन यौं,
दृष्ट बंध कर छिपे फेर प्रगटै नटबर ज्यौं.
आये हरि देखे जबै, उठीं सबै यों चेत,
प्रान परे ज्यौं मृतक में, इंद्री जगें अचेत.

बिन देखे सब कौ मन व्याकुल ह्वो गयौ,
मानो मनमथ भुवंग सबनि डसिकै गयौ.
पीर खरी पिय जान पहुँचे आइकै,
अमृत बेलनि सींच लई सब ज्याइकै.
मनहुं कमल निसि मलिन हैं, ऐसें ही ब्रज बाल,
कुंडल रबि छबि देखिकै, फूले नैन बिसाल.

इतनी कथा कथ श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! श्री कृष्णचंद आनंद कंद को देखतेही सब गोपियां एकाएकी बिरह सागर से निकल, उनके पास जाय, ऐसे प्रसन्न हुईं, कि जैसे कोई अथाह समुद्र में डूब थाह पाय प्रसन्न होय, और चारों ओर से घेरकर खड़ी भईं, तब श्री कृष्ण उन्हें साथ लिये वहां आये जहां पहले रास बिलास किया था; जातेही एक गोपी ने अपनी ओढ़नी उतारके श्री कृष्ण के बैठने को बिछा दी; जों वे उस पर बैठे, तों कई एक गोपी क्रोध कर बोलीं कि महाराज! तुम बड़े कपटी बिराना मन धन ले जानते हो, पर किसी का कुछ गुन नहीं मानते. इतना कह आपस में कहने लगीं,

गुन छांडै औगुन गहै, रहै कपट मन माय,
देखो सखी बिचारिकै, तासों कहा बसाय.

यह सुन एक तिनमें से बोली, कि सखी! तुम अलगी रहो, अपने कहे कुछ सोभा नहीं पातीं, देखो मैं कृष्ण ही से कहाती हूं. यों कह तिसने मुसकुरायके श्री कृष्ण से पूछा कि महाराज! एक बिन गुन किये गुन मान ले; दूसरा किये गुन का पलटा दे; तीसरा गुन के पलटे औगुन करै; चौथा किसी के किये गुन को भी मन में न धरै; इन चारों में कौन भला है औ कौन बुरा, यह तुम हमें समझाके कहो. श्री कृष्णचंद बोले, कि तुम सब मन दे सुनौ, भला औ बुरा मैं बुझाकर कहता हूं. उत्तम तो वह है जो बिन किये करे, जैसे पिता पुत्र को चाहता है; और किये पर करने से कुछ पुन्य नहीं, सो ऐसे है जैसे बांट के हेत गौ दूध देती है; गुन को औगुन माने, तिसे शत्रु जानिये; सब से बुरा कृतघ्नी जो किये को मेटे.

इतना बचन सुनते ही जब गोपियां आपस [illegible]क का मुंह देख हंसने लगीं, तब तो श्री कृष्णचंद घबराकर बोले [illegible] सुनौ, मैं इन [illegible]नती में नहीं, जो तुम जानके हंसती हो; बरन मेरी तो यह रीति है, कि जो मुझ से जिस [illegible] की इच्छा [illegible]रता है, तिसके मन की बांछा पूरी करता हूं; कदाचित तुम कहो कि जो तुम्हारी यह चाल है तो हमें बन में ऐसे क्यों छोड़ गये,

इसका कारन यह है कि मैंने तुम्हारी प्रीति की परिक्षा ली, इस बात का बुरा मत मानो, मेरा कहा सच्चा ही जानो. यों कह फिर बोले,

अब हम परचौ लियौ तिहारै, कीनो सुमिरन ध्यान हमारै.
मोही सों तुम प्रीत बढ़ाई, निर्धन मनो संपदा पाई.
ऐसें आई मेरे काज, छांडी लोक वेद की लाज.
जों बैरागी छांडे गेह, मन दे हरि सों करे सनेह.
कहा तिहारी करें बड़ाई, हम पै पलटौ दियौ न जाई.

जो ब्रह्मा के सौ बरस जियें तौभी हम तुम्हारे ऋन से उतरन न होंय. इति

CHAPTER. XXXIV.

श्री शुकदेव मुनि बोले, राजा! जब श्री कृष्णचंद ने इस ढब से रस के बचन कहे, तब तो सब गोपियां रिस छोड़ प्रसन्न हो, उठ, हरि से मिल, भांति भांति के सुख मान, आनंद मगन हो, कुतूहल करने लगीं, तिस समैं,

कृष्ण जोगमाया ठई, भये अंस बहु देह,
सब कौं सुख चाहत दियौ, लीला परम सनेह.

जितनी गोपियां थीं तितनी ही शरीर श्री कृष्णचंद ने धर, उसी रास मंडल के चौंतरे पर सब को साथ ले, फिर रास बिलास का आरंभ किया.

दै दै गोपी जोरे हाथ, तिनके बीच बीच हरि साथ.
अपनी अपनी ढिग सब जाने, नहीं दूसरे कौं पहिचाने.
अंगुरिन में अंगुरी कर दिये, प्रफुलित फिरें संग हरि लिये.
बिच गोपी बिच नंदकिशोर, सघन घटा दामिनि चहुंओर.
श्याम कृष्ण गोरी ब्रज बाला, मानहुं कनक नीलमनि माला.

महाराज! इसी रीति से खड़े होय, गोपी और कृष्ण लगे अनेक अनेक प्रकार के यंत्रों के सुर मिलाय मिलाय, कठिन कठिन राग अलाप अलाप, बजाय बजाय, गाने, औ तीखी, चोखी, आड़ी, डौढ़ी, दुगन, तिगन की तानें, उपजें, ले ले, बोल बताय बताय नाचने; औ आनंद में ऐसे मगन हुए कि उनको तन मन की भी सुध नथी. कहीं इनका अंचल उघड़ जाता था; कहीं उनका मुकुट खिसल; इधर मोतियों के हार टूट टूट गिरते थे, उधर बनमाल; पसीने की बूंदें माथों पर

मोतियों की लड़ी सी चमकती थी; औ गोपियों के गोरे गोरे मुखड़ों पर अलकें यों बिथर रहीथीं, कि जैसे अमृत के लोभ से संपोलिये उड़कर चांद को जा लगे होंय; कभी कोई गोपी श्री कृष्ण की मुरली के साथ मिलकर झील में गाती थी; कभी कोई अपनी तान अलगही ले जाती थी; औ जब कोई बंसी को छेंक उस की तान समुची ज्यों की त्यों गले से निकालती थी, तब हरि ऐसे भूल रहते थे कि ज्यों बालक दरपन में अपना प्रतिबिंब देख भूल रहैं.

इसी छब से गाय गाय, नाच नाच, अनेक अनेक प्रकार के हाव भाव कटाक्ष करकर, सुख लेते देते थे, औ परस्पर रीझ रीझ, हंस हंस, कंठ लगाय लगाय, वस्त्र आभूषन निछावर कर रहे थे. उस काल ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र आदि सब देवता औ गंधर्व अपनी अपनी स्त्रियों समेत बिमानों में बैठे रास मंडली का सुख देख देख आनंद से फूल बरसावते थे; औ उनकी स्त्रियां वह सुख लख हौंस कर मन में कहती थीं कि जो जन्म लें ब्रज में जातीं; तो हम भी हरि के साथ रास बिलास करतीं; औ राग रागनियों का ऐसा समां बंधा हुआ था, कि जिसे सुनके पौन पानी भी न बहता था; औ तारा मंडल समेत चंद्रमा थकित हो किरनों से अमृत बरसाता था. इस में रात बढ़ी तो छः महीने बीत गये, औ किसी ने न जाना, तभी से उस रैन का नाम ब्रह्मरात्रि हुआ.

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी बोले, पृथ्वी नाथ! रास लीला करते करते जो कुछ श्री कृष्णचंद्र के मन में तरंग आई, तो गोपियों को लिये यमुना तीर पै जाय, नीर में पैठ, जल क्रीड़ा कर, श्रम मिटाय, बाहर आय, सब के मनोरथ पूरे कर बोले, कि अब चार घड़ी रात रही है, तुम सब अपने घर जाओ. इतना बचन सुन, उदास हो, गोपियों ने कहा, नाथ! आपके चरन कंवल छोड़के घर कैसे जांय, हमारा लालची मन तो कहा मानताही नहीं. श्री कृष्ण बोले, कि सुनो, जैसे जोगी जन मेरा ध्यान धरते हैं, तैसे तुम भी ध्यान कीजियो, मैं तुम्हारे पास जहां रहोगी तहां रहूंगा. इतनी बात के सुनते ही, संतोष कर, सब बिदा हो, अपने अपने घर गईं, औ यह भेद उनके घरवालों में से किसीने न जाना कि ये यहां न थीं.

इतनी कथा सुन, राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव मुनि से पूछा, कि दीन दयाल! यह तुम मुझे समझाकर कहो जो श्री कृष्णचंद्र तो असुरों को मार पृथ्वी का भार उतारने, औ साध संत को सुख दे धर्म का पंथ चलाने के लिये औतार ले आये थे, तिन्होंने पराई स्त्रियों के साथ रास बिलास क्यों किया, यह तो कुछ लंपट का कर्म है, जो बिरानी नारी से भोग करे. शुकदेव जी बोले,

सुन राजा यह भेद न जान्यौं, मानुष सम परमेश्वर मान्यौं.
जिनके सुमिरे पातक जात, तेजवंत पावन हैं गात.

जैसे अग्नि मांज कछु परै, सोऊ अग्नि होयवै जो.

सामर्थी क्या नहीं करते, क्योंकि वे तो करके कर्म की हानि करते हैं, जैसे शिव जी ने बिष लिया, औ खाके कंठ को भूषन दिया, औ काले सांप का किया हार, कैान जाने उनका ब्यैाहार; वेतो अपने लिये कुछ भी नहीं करते, जो जिनका भजन सुमिरन कर कोई वर मांगता है तैसाही तिस को देते हैं.

उन की तो यह रीति है, कि सब से मिले दृष्ट आते हैं, औ ध्यान कर देखिये तो सबही से ऐसे अलग जनाते हैं, जैसे जल में कंवल का पात. और गोपियों की उतपत्ति तो मैं तुम्हें पहलेही सुना चुका हूं; कि देवी औ बेद की ऋचाएें हरि का दरस परस करने को ब्रज में जन्म ले आई हैं, औ इसी भांति श्री राधिका भी ब्रह्मा से बर पाय श्री कृष्णचंद की सेवा करने को जन्म ले आई, औ प्रभु की सेवा में रही.

इतना कह, श्री शुकदेव जी बोले महाराज! कहा है, कि हरि के चरित्र मान लीजे, पर उनके करने में मन न दीजे. जो कोई गोपी नाथ का जस गाता है, सो निर्भय अटल परम पद पाता है; औ जैसा फल होता है अठसठ तीरथ के न्हाने में, तैसा ही फल मिलता है श्री कृष्ण जस गाने में. इति

CHAPTER. XXXV.

श्री शुकदेव मुनि कहने लगे कि राजा! जैसे श्री कृष्ण जी ने बिद्याधर को तारा, और शंखचूड़ को मारा, सो प्रसंग कहता हूं, तुम जी लगाय सुनो. ऐक दिन नंद जी ने सब गोप ग्वालों को बुलायके कहा कि भाईयो! जब कृष्ण का जन्म ज़ुआ था, तब मैंने कुल देवी अंबिका की यह मानता करी थी, कि जिस दिन कृष्ण बारह बरस का होगा, तिस दिन नगर समेत बाजे गाजे से जाकर पूजा करूंगा, सो दिन उसकी कृपा से आज देखा, अब चलकर पूजा किया चाहिये.

इतना बचन नंद जी के मुख से सुनते ही, सब गोप ग्वाल उठ धाए, औ झटपट ही अपने अपने घरों से पूजा की सामग्री ले आए. तद तो नंदराय भी पुजापा औ दूध दही मांखन सगड़ें बहंगियों में रखवाय, कुटुंब समेत उनको साथ हो लिये, औ चले चले अंबिका के स्थान पर पज़ुंचे. वहां जाय सरस्वती नदी में न्हाय, नंद जी ने पुरोहित बुलाय, सब को साथ ले, देवी के मंदिर में जाय, शास्त्र की रीति से पूजा की, औ जो पदारथ चढ़ाने को ले गये थे, सो आगे धर, परिक्रमा दे, हाथ जोड़, बिनती कर, कहा कि मा! आपकी कृपा से कान्ह बारह बरस का ज़ुआ.

ऐसे कह, दंडवत कर, मंदिर के बाहर आय, सहस ब्राह्मन जिमाए. इस में अबेर जो हुई, तो सब ब्रजबासियों समेत, नंद जी तीरथ ब्रत कर, वहां ही रहे. रात को सोते थे, कि एक अजगर ने आय नंदराय का पांव पकड़ा, औ लगा निगलने; तब तो वे देखते ही भय खाय, घबरायके लगे पुकारने, हे कृष्ण! हे कृष्ण! बेग सुध ले, नहीं तो यह मुझे निगले जाता है. उनका शब्द सुनते ही सारे ब्रजबासी स्त्री क्या पुरुष नींद से चौंक, नंद जी के निकट जाय, उजाला कर, देखें तो एक अजगर उनका पांव पकड़े पड़ा है. इतने में श्री कृष्णचंद जी ने पहुंच, सब के देखते ही जों उस की पीठ में चरन लगाया, तों हीं वह अपनी देह छोड़, सुंदर पुरुष हो, प्रनाम कर, सनमुख हाथ जोड़ खड़ा हुआ. तब श्री कृष्ण ने उससे पूछा कि तू कौन है; औ किस पाप से अजगर हुआ था सो कह. वह सिर झुकाय, बिनती कर बोला, अंतरजामी! तुम सब जानते हो मेरी उतपत्ति, कि मैं सुदरसन नाम बिद्याधर हूं, सुरपुर में रहता था, औ अपने रूप गुन के आगे गर्ब से किसी को कुछ न गिनता था.

एक दिन बिमान में बैठ फिरने को निकला, तो जहां अंगिरा ऋषि बैठे तप करते थे, तिनके ऊपर हो सौ बेर आया गया; एक बेर जों उन्होंने बिमान की परछांई देखी, तों ऊपर देख क्रोध कर मुझे स्राप दिया, कि रे अभिमानी! तू अजगर सांप हो.

इतना बचन उनके मुख से निकला कि मैं अजगर हो नीचे गिरा. तिस समैं ऋषि ने कहा था कि तेरी मुक्ति श्री कृष्णचंद के हाथ होगी, इसी लिये मैंने नंदराय जी के चरन आन पकड़े थे जो आप आयके मुझे मुक्ति करें, सो कृपानाथ! आपने आय कृपा कर मुझे मुक्ति दी. ऐसे कह, बिद्याधर तो परिक्रमा दे, हरि से आज्ञा ले, दंडवत कर, बिदा हो, बिमान पर चढ़ सुर लोक को गया, औ यह चरित्र देख सब ब्रजबासियों को अचरज हुआ; निदान भोर होते ही देवी का दरसन कर सब मिल बृंदाबन आए.

इतनी कथा सुनाय, श्री सुकदेव मुनि बोले, कि पृथ्वीनाथ! एक दिन हलधर औ गोबिंद गोपियों समेत चांदनी रात को आनंद से बन में गाय रहे थे, कि इस बीच कुबेर का सेवक संखचूड़ नाम यक्ष, जिसके सीस में मनि औ अति बलवान था, सो आ निकला; देखे तो एक ओर सब गोपियां कुतूहल कर रही हैं, औ एक ओर कृष्ण बलदेव मगन हो मत्रवत गाय रहे हैं; कुछ इसके जीमें जो आई तो सब ब्रज युवतियों को घेर आगे धर ले चला, तिस समैं भय खाय पुकारीं ब्रजबाम, रक्षा करो कृष्ण बलराम!

इतना बचन गोपियों के मुख से निकलते ही सुनकर, दोनों भाई रूख उखाड़ हाथों में ले यों

दौड़ आये, कि मानौ गज माते सिंह पर उठ धाये; औ वहां जाय, गोपियों से कहा, कि तुम किसी से मत डरो, हम आन पहुंचे. इनको काल समान देखते ही, यक्ष भयमान हो, गोपियों को छोड़, अपना प्रान ले भागा. उस काल नंदलाल ने बलदेव जी को तो गोपियों के पास छोड़ा, औ आप जाय उसके झोंटे पकड़ पछाड़ा, निदान तिरछा हाथ कर उसका सिर काट, मनि ले, आन बलराम जी को दिया. इति

CHAPTER. XXXVI.

श्री शुकदेव मुनि बोले. राजा! जबतक हरि बन में धेनु चरावें, तबतक सब ब्रज युवतियां नंदरानी के पास आय बैठकर प्रभु का जस गावें; जो लीला श्री कृष्ण बन में करें, सो गोपियां घर बैठी उचारें.

सुनै सखी बाजति है बैन, पशु पक्षी पावत हैं चैन.
पति संग देवी थकी बिमान, मगन भई हैं धुनि सुन कान.
करतें परहिं चुरी मूंदरी, बिह्वल मन तन की सुध हरी.
तब हीं ऐक कहै ब्रज नारि, गरजनि मेघ तजी अति हारि.
गावत हरि आनंद अडोल, भौंह नचावत पानि कपोल.
पिय संग मृगी थकी सुनि बेनु, यमुना फिरी घिरी तहां धेनु.
मोहे बादर छैयां करें, मानौ छत्र कृष्ण पर धरें.
अब हरि सघन कुंज कौं धाये, पुनि सब बंसीबट तर आये.
गायन पाछें डोलत भये, घेर हुई जल प्यावन गये.
सांझ भई अब उलटे हरी, रांभति गाय बेनु धुनि करी.

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! इसी रीति से नित गोपियां दिन भर हरि के गुन गावें, औ सांझ समय आगे जाय श्री कृष्णचंद आनंद कंद से मिल सुख मान ले आवें; औ तिस समैं जसोदा रानी भी रज मंडित पुत्र का मुख प्यार से पोंछ कंठ लगाय सुख माने. इति

CHAPTER. XXXVII.

श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! ऐक दिन श्री कृष्ण बलराम सांझ समैं धेनु चरायके बन से घर को आते थे, इस बीच ऐक असुर अति बड़ा बैल बन आय गायों में मिला

आकाश लौं देह तिनि धरी, पीठ कड़ी पाथर सी करी.
बड़े सींग तीछन दोउ खरे, रक्त नैन अति ही रिस भरे.
पूंछ उठाय डकारतु फिरै, रहि रहि भूतल गोबर करै.
फड़कै कंध हिलावै कान, भजे देव सब छोड़ बिमान.
खुर सों खोदे नदी करारे, पर्वत उथल पीठ सों डारे.
सब कौं त्रास भयो तिहि काल, कंपहि लोकपाल दिगपाल.
पृथ्वी हलै शेष थरहरै, तिय औ धेनु गर्भ भू परै.

उसे देखते ही सब गायें तो जिधर तिधर फैल गईं, औ ब्रजबासी दौड़ वहां आए, जहां सब के पीछे कृष्ण बलराम चले आते थे. प्रनाम कर कहा, महाराज! आगे एक अति बड़ा बैल खड़ा है, उससे हमें बचाओ. इतनी बात के सुनते ही अंतरजामी श्री कृष्णचंद बोले, कि तुम कुछ मत डरो उससे, वह बृषभ का रूप बनकर आया है नीच, हम से चाहता है अपनी मीच. इतना कह, आगे जाय, उसे देख बोले बनवारी, कि आव हमारे पास कपट तन धारी, तू और किसू को क्यों डराता है, मेरे निकट किस लिये नहीं आता; जो बैरी सिंह का कहावता है, सो मृग पर नहीं धावता; देख मैं हीं हूं काल रूप गोबिंद, मैंने तुज से बहुतों को मारके किया है निकंद.

यों कह फिर ताल ठोक ललकारे, आ मुज से संग्राम कर. यह बचन सुनते ही असुर ऐसे क्रोध कर धाया, कि मानौ इंद्र का बज्र आया. जों जों हरि उसे हटाते थे, त्यों त्यों वह संभल संभल बढ़ा आता था. एक बार जो उन्हों ने विसे दे पटका, तोंहीं खिजलाकर उठा, औ दोनों सींगों में उसने हरि को दबाया; तब तो श्री कृष्ण जी ने भी फुरती से निकल, झट पांव पर पांव दे, उसके सींग पकड़ यों मड़ोड़ा, कि जैसे कोई भींगे चीर को निचोड़े; निदान वह पछाड़ खाय गिरा, औ उसका जी निकल गया. तिस समै सब देवता अपने अपने बिमानों में बैठ आनंद से फूल बरसावने लगे, औ गोपी गोप कृष्ण जस गाने. इस बीच श्री राधिका जी ने आ हरि से कहा, कि महाराज! बृषभ रूप जो तुमने मारा इसका पाप हुआ, इससे अब तुम तीरथ न्हाय आओ, तब किसी को हाथ लगाओ. इतनी बात के सुनते ही प्रभु बोले, कि सब तीरथों को मैं ब्रजही में बुला लेता हूं. यों कह, गोवर्द्धन के निकट जाय, दो औंडे कुंड खुदवाए, तहीं सब तीरथ देह धर आए, औ अपना अपना नाम कह कह उन में जल डाल डाल चले गये. तब श्री कृष्णचंद उन में स्नान कर, बाहर आय, अनेक गौ दान दे, बहुत से ब्राह्मन जिमाय, शुद्ध हुए, औ विसी दिन से कृष्ण कुंड राधा कुंड करके वे प्रसिद्ध हुए.

यह प्रसंग सुनाय, श्री शुकदेव मुनि बोले, कि महाराज! ऐक दिन नारद मुनि जी कंस के पास आऐ, औ उसका कोप बाढ़ाने को जब उन्हों ने बलराम औ स्याम के होने, औ माया के आने, औ कृष्ण के जाने का भेद, समझाकर कहा, तब कंस क्रोध कर बोला, नारद जी! तुम सच कहते हो.

प्रथम दियै सुत आनिकै, मन परतीत बढ़ाय,
ज्यों ठग कछू दिखाइकै, सर्बस ले भजि जाय.

इतना कह वसुदेव को बुलाय पकड़ बांधा, औ खांडे पर हाथ रख अकुलाकर बोला,

मिला रहा कपटी तू मुझे, भला साध जाना मैं तुझे.
दिया नंद के कृष्ण पठाय, देवी हमें दिखाई आय.
मन में कुछी कही मुख और, आज अवश्य मारूं इहिं ठौर.
मित्र सगा सेवक हित कारी, करै कपट सो पापी भारी.

मुख मीठा मन बिष भरा, रहै कपट के हेत,
आप काज पर द्रोहिया, उससे भला जु प्रेत.

ऐसे बकझक, फिर कंस नारद जी से कहने लगा, कि महाराज! हमने कुछ इसके मन का भेद न पाया, ऊआ लड़का औ कन्या को ला दिखाया; जिसे कहा अधूरा गया, सोई जा गोकुल में बलदेव भया. इतना कह, क्रोध कर, होठ चबाय, खड्ग उठाय, ज्यों चाहा कि बसुदेव को मारूं, त्यों नारद मुनि ने हाथ पकड़कर कहा, राजा! बसुदेव को तो तू रख आज, औ जिस में कृष्ण बलदेव आवें सो कर काज. ऐसे समझाय बुझाय जब नारद मुनि चले गये, तब कंस ने बसुदेव देवकी को तो ऐक कोठरी में मूंद दिया, औ आप भयातुर हो केसी नाम राक्षस को बुलाके बोला,

महाबली तू साथी मेरा, बड़ा भरोसा मुज को तेरा.
ऐक बार तू ब्रज में जा, राम कृष्ण हनि मुझे दिखा.

इतना बचन सुनते ही केसी तो आज्ञा पा, बिदा हो, दंडवत कर, बृंदाबन को गया; औ कंस ने साल, तुसाल, चानूर, अरिष्ट, व्योमासुर आदि जितने मंत्री थे सब को बुला भेजा. वे आऐ, तिन्हें समझाकर कहने लगा, कि मेरा बैरी पास आय बसा है, तुम अपने जी में सोच बिचार करके मेरे मन का सूल जो खटकता है निकालो. मंत्री बोले, पृथ्वीनाथ! आप महाबली हो, किससे डरते हो, राम कृष्ण का मारना क्या बड़ी बात है, कुछ चिंता मत करो, जिस छल बल से वे यहां आवें, सोई हम मता बतावें:

पहले तो यहां भली भांति से ऐक ऐसी सुंदर रंगभूमि बनवावें, कि जिस की सोभा सुनते ही

देखने को नगर नगर गांव गांव के लोग उठ धावें, पीछे महादेव का यज्ञ करवाओ, औ होम के लिये बकरे भैंसे मंगवाओ. यह समाचार सुन सब ब्रज बासी भेट लावेंगे, तिनके साथ राम कृष्ण भी आवेंगे; उन्हें तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा, कै कोई और ही बली पौर पै मार डालेगा. इतनी बातके सुनते ही,

कहै कंस मन लाय, भलौ मतौ मंत्री कियौ.

लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दये.

फिर सभा कर अपने बड़े बड़े राक्षसों से कहने लगा, कि जब हमारे भानजे राम कृष्ण यहां आवें, तब तुम में से कोई उन्हें मार डालियो, जो मेरे जी का खटका जाय. तिन्हें यों समझाय, पुनि महावत को बुलाके बोला, कि तेरे बस में मतवाला हाथी है, तू द्वार पर लिये खड़ा रहियो, जद वे दोनों आवें औ बार में पांव दें, तद तू हाथी से चिरवा डालियो, किसी भांति भागने न पावें; जो तिन दोनों को मारेगा, सो मुंह मांगा धन पावेगा.

ऐसे सब को सुनाय समझाय बुझाय, कातिक बदी चौदस को शिव का यज्ञ ठहराय, कंस ने सांझ समैं अक्रूर को बुलाय, अति आवभगति कर, घर भीतर ले जाय, एक सिंहासन पर अपने पास बैठाय, हाथ पकड़, अति प्यार से कहा, कि तुम यदुकुल में सब से बड़े, ज्ञानी, धरमात्मा, धीर, हो, इस लिये तुम्हें सब जानते मानते हैं, ऐसा कोई नहीं जो तुम्हें देख सुखी न होय, इस से जैसे इंद्र का काज बावन ने जा किया, जो छलकर बलि का सारा राज ले लिया, औ राजा बलि को पाताल पठाया, तैसे तुम हमारा काम करो तो एक बेर वृंदाबन जाओ, और देवकी के दोनों लड़कों को जों बने तों छल बलकर यहां ले आओ. कहा है, जो बड़े हैं, सो आप दुख सह करते हैं पराया काज, तिस में तुम्हें तो है हमारी सब बात की लाज; अधिक क्या कहेंगे, जैसे बने तैसे उन्हें ले आओ, तो यहां सहज ही में मारे जांयगे; कै तो देखते ही चानूर पछाड़ेगा, कै गज कुबलिया पकड़ चीर डालेगा; नहीं तो मैंहीं उठ मारूंगा, अपना काज अपने हाथ संवारूंगा; औ उन दोनों को मार पीछे उग्रसेन को हनूंगा; क्योंकि वह बड़ा कपटी है, मेरा मरना चाहता है. फिर देवकी के पिता देवक को आग से जलाय पानी में डबोऊंगा, साथ ही उसके बसुदेव को मार, हरि भक्तों को जड़ से खोऊंगा, तब निकंटक राज कर, जुरासिंधु जो मेरा मित्र है प्रचंड, उसके त्रास से कांपते हैं नौ खंड, औ नरकासुर, बानासुर, आदि बड़े बड़े महाबली राक्षस जिसके सेवक हैं, तिससे जा मिलूंगा, जो तुम राम कृष्ण को ले आओ.

इतनी बातें कहकर कंस फिर अक्रूर को समझाने लगा कि तुम वृंदाबन में जाय नंद के यहां कहियो जो शिव का यज्ञ है, धनुष धरा है, औ अनेक अनेक प्रकार के कुतूहल वहां होयगे. यह

सुन नंद उपनंद गोपों समेत बकरे भैंसे ले भेट देने लावेंगे, तिनके साथ देखने को कृष्ण बलदेव भी आवेंगे. यह तो मैंने तुम्हें उनके लावने का उपाय बताय दिया, आगे तुम सज्ञान हो, जो और उकत बनि आवे सो करि कहियो, अधिक तुम से क्या कहूं. कहा है,

होय बिचित्र बसीठ, जाहि बुद्धि बल आपनौ,
पर कारज पर ढीठ, करहि भरोसौ ता तनौ.

इतनी बात के सुनते ही, पहले तो अक्रूर ने अपने जीमें बिचारा, कि जो मैं अब इसे कुछ भली बात कहूंगा तो यह न मानेगा, इससे उत्तम यही है कि इस समैं इसके मन भाती सुहाती बात कहूं. ऐसे और भी ठौर कहा है, कि वही कहिये जो जिसे सुहाय. यों सोच बिचार अक्रूर हाथ जोड़ सिर झुकाय बोला, महाराज! तुमने भला मता किया, यह बचन हमने भी सिर चढ़ाय मान लिया, होनहार पर कुछ बस नहीं चलता; मनुष अनेक मनोरथ कर धावता है, पर करम का लिखा ही फल पावता है; सोचते हैं और, होता है और, किसीके मन का चीता होता नहीं; आगम बांध तुमने यह बात बिचारी है, न जानिये कैसी होय, मैंने तुम्हारी बात मान ली, काल भोर को जाऊंगा, औ राम कृष्ण को ले आऊंगा. ऐसे कह, कंस से बिदा हो, अक्रूर अपने घर आया. इति

CHAPTER. XXXVIII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जों श्री कृष्णचंद ने केसी को मारा, औ नारद ने जाय स्तुति करी, पुनि हरिने व्योमासुर को हना, तों सब चरित्र कहता हूं, तुम चित दे सुनौ. कि भोर होते ही केसी अति ऊंचा भयावना घोड़ा बन बृंदाबन में आया, और लगा लाल लाल आंखें कर नथने चढ़ाय, कान पूंछ उठाय, टाप टाप, भूं खोदने, औ हींस हींस कांधा कंपाय कंपाय लातें चलाने.

उसे देखते ही ग्वाल बालों ने भय खाय भाग श्री कृष्ण से जा कहा; वे सुनके वहां आये, जहां वह था, औ विसे देख लड़ने को फेंट बांध, ताल ठोक, सिंह की भांति गरजकर बोले, अरे! जो तू कंस का बड़ा प्रीतम है, औ घोड़ा बन आया है तो और के पीछे क्यों फिरता है, आ मुझ से लड़ जो तेरा बल देखूं. दीप पतंग की भांति कब तक फिरेगा, तेरी मृत्यु तो निकट आन पहुंची है. यह बचन सुन, केसी कोपकर अपने मन में कहने लगा, कि आज इसका बल देखूंगा, औ पकड़ ईख की भांति चबाय कंस का कारज कर जाऊंगा.

इतना कह, मुंह बायके ऐसे दौड़ा, कि मानो सारे संसार को खा जायगा; आते ही पहले जो उनने श्री कृष्ण पर मुंह चलाया, तो उन्होंने एक बेर तो धकेलकर पीछे को हटाया, जब दूसरी बेर वह फिर संभलके मुख फैलाय धाया, तब श्री कृष्ण ने अपना हाथ उसके मुंह में डाल, लोह लाठ सा कर ऐसा बढ़ाया, कि जिसने विसके दसों द्वार जा रोके, तब तो केसी घबराकर जी में कहने लगा, कि अब देह फटती है, यह कैसी भई, अपनी मृत्यु आप मुंह में ली; जैसे मछली बंसी को निगल प्रान देती है, तैसे मैंने भी अपना जीव खोया.

इतना कह उसने बहुतेरे उपाय हाथ निकालने को किये, पर एक भी काम न आया; निदान सांस रुककर पेट फट गया, तो पछाड़ खायके गिरा, तब उसके शरीर से लोहू नदी की भांति बह निकला. तिस समैं ग्वाल बाल आय आय देखने लगे, औ श्री कृष्णचंद आगे जाय बन में एक कदम की छांह तले खड़े हुए.

इस बीच बीन हाथ में लिये नारद मुनि जी आन पहुंचे, प्रनाम कर, खड़े होय, बीन बजाय, श्री कृष्णचंद की भूत भविष्य की सब लीला औ चरित्र गायके बोले, कि कृपा नाथ! तुम्हारी लीला अपरंपार है, इतनी किस में सामर्थ है जो आप के चरित्रों को बखाने; पर तुम्हारी दया से मैं इतना जानता हूं, कि आप भक्तों को सुख देने के अर्थ, औ साधों की रक्षा के निमित्त, औ दुष्ट असुरों के नाश करने के हेतु, बार बार औतार ले संसार में प्रगट हो, भूमि का भार उतारते हो.

इतना बचन सुनते ही, प्रभू ने नारद मुनि को तो बिदा दी, वे दंडवत कर सिधारे; औ आप सब ग्वाल बाल सखाओं को साथ लिये, एक बड़ के तले बैठ, पहले तो किसी को मंत्री, किसी को प्रधान, किसी को सेनापति बनाय, आप राजा हो राज रीति से खेल खेलने लगे, औ पीछे आंख मिचौली. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ!

मारयौ केसी भोरही, सुनी कंस यह बात,
ब्योमासुर सौं कहत है, खंखत कंपत गात.
अरि कंदन ब्योमासुर बली, तेरी जग में कीरति भली.
ज्यौं रम के पवन कौ पूत, त्यौं हीं तू मेरे यम दूत.
बसुदेव के पूत हनि ल्याव, आज काज मेरौ करि आव.

यह सुन, कर जोड़, ब्योमासुर बोला महाराज! जो बसायगी सो करूंगा आज, मेरी देह है आपही के काज; जो जी के लोभी हैं, तिन्हें स्वामी के अर्थ जी देते आती है लाज, सेवक औ स्त्री को तो इसी में जस धरम है जो स्वामी के निमित्त प्रान दे. ऐसे कह कृष्ण बलदेव पर बीड़ा उठाय,

कंस को प्रनाम कर, व्योमासुर बृंदाबन को चला. बाट में जाय ग्वाल का भेष बनाय चला चला वहां पऊंचा, जहां हरि ग्वाले बाल सखाओं के साथ आंख मिचौली खेल रहे थे. जातेही दूर से जब उसने हाथ जोड़ श्री कृष्णचंद से कहा, महाराज! मुझे भी अपने साथ खिलाओ, तब हरि ने उसे पास बुलाकर कहा, तू अपने जी में किसी बात की हौंस मत रख, जो तेरा मन माने सो खेल हमारे संग खेल. यों सुन वह प्रसन्न हो बोला, कि बृक मेंढे का खेल भला है. श्री कृष्णचंद ने मुसकुरायके कहा बऊत अच्छा, तू बन भेड़िया, औ सब ग्वाल बाल होवें मेंढे. सुनते ही फूलकर व्योमासुर तो त्यारी ऊआ, औ ग्वाल बाल बने मेंढे, मिलकर खेलने लगे.

जिस समैं वह असुर ऐक ऐक को उठा ले जाय, औ पर्वत की गुफा में रख, उसके मुंह पर आड़ी सिला धर मूंदके चला आवे. ऐसे जब सब को वहां रख आया, औ अकेले श्री कृष्ण रहे, तब ललकारकर बोला कि आज कंस का काज सारूंगा, औ सब यदुबंसियों को मारूंगा. यों कह ग्वालका भेष छोड़ सचमुच भेड़िया बन जो हरि पर झपटा, तो उन्होंने उसको पकड़ गला घोंट मारे घूंसों के यों मार पटका, कि जैसे यज्ञ के बकरे को मार डालते हैं. इति

CHAPTER. XXXIX.

श्री सुकदेव मुनि बोले कि महाराज! कार्त्तिक बदी द्वादशी को तो केसी औ व्योमासुर मारा गया; और त्रयोदशी को भोर के तड़केही, अक्रूर कंस के पास आय बिदा हो रथ पर चढ़ अपने मन में यों बिचारता बृंदाबन को चला, कि ऐसा मैंने क्या जप, तप, यज्ञ, दान, तीरथ, ब्रत, किया है, जिस के पुन्य से यह फल पाऊंगा. अपने जाने तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया, सदा कंस की संगति में रहा, भजन का भेद कहां पाऊं. हां अगले जन्म कोई बड़ा पुन्य किया हो, उस धर्म के प्रताप का यह फल हो तो हो, जो कंस ने मुझे श्री कृष्णचंद आनंद कंद के लेने को भेजा है, अब जाय उनका दरसन पाय जन्म सुफल करूंगा.

हाथ जोरिकै पायन परि हौं, पुनि पग रेनु सीस पर धरि हौं.
पाप हरन जेई पग आहि, सेवत श्री ब्रह्मादिक ताहि.
जे पग काली के सिर परे, जे पग कुच चंदन सों भरे.
नाचे रास मंडली आछै, जे पग डोलें गायन पाछै.
जा पग रेनु अहिल्या तरी, जा पग तें गंगा नीसरी.
बलि छलि कियौ इंद्र को काज, ते पग हौं देखोंगौ, आज.

मो कौं सगुन होत हैं भले, मृग के झुंड दाहने चले.

महाराज! ऐसे बिचार, फिर अक्रूर अपने मन में कहने लगा, कि कहीं मुझे वे कंस का दूत तो न समझें. फिर आपही सोचा कि जिनका नाम अंतरजामी है, वे तो मन की प्रीति मानते हैं, औ सब मित्र शत्रु को पहचानते हैं, ऐसा कभी न समझेंगे; बरन मुझे देखते ही गले लगाय दया कर अपना कोमल कंवल सा कर मेरे सीस पर धरेंगे, तब मैं उस चंद्र बदन की सोभा इकटक निरख अपने नैन चकोरों को सुख दूंगा, कि जिस का ध्यान ब्रह्मा रुद्र इंद्र आदि सब देवता सदा करते हैं.

इतनी कथा सुनाय, श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! इसी भांति सोच बिचार करते, रथ हांके, इधर से तो अक्रूर जी गये, औ उधर बन से गौ चराय, ग्वाल बाल समेत कृष्ण बलदेव भी आये; तो इनसे उनसे वृंदाबन के बाहर ही भेट भई. हरि छबि दूर से देखते ही अक्रूर रथ से उतर, अति अकुलाय दौड़ उनके पांओं पर जा गिए, औ ऐसा मगन हुआ कि मुंह से बोल न आया, महा आनंद कर नैनों से जल बरसावने लगा; तब श्री कृष्ण जी उसे उठाय अति प्यार से मिल हाथ पकड़ घर लिवाय ले गये. वहां नंदराय अक्रूर जी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले, औ बहुत सा आदर मान किया, पांव धुलवाय आसन दिया.

लिये तेल मरदनियां आये, उबटि सुगंध चुपरि अन्हवाये.
चौका पटा जसोदा दियौ, षट रस रुचि सों भोजन कियौ.

जब अचायके पान खाने बैठे, तब नंद जी उनसे कुशल क्षेम पूछ बोले, कि तुम तो यदुबंसियों में बड़े साध हो, सदा अपनी बड़ाई से रहे हो, कहो अब कंस दुष्ट के पास कैसे रहते हो, औ वहां के लोगों की क्या गति है, सो सब भेद कहो. अक्रूर जी बोले,

जब तें कंस मधुपुरी भयौ, तब तें सबही कौं दुख दयौ.
पूछौ कहा नगर कुसरात, परजा दुखी होत है गात.
जौलौं है मथुरा में कंस, तौलौं कहां बचै यदुबंस.
पसु मेंढे छेरीन कौ, ज्यौं खटीक रिपु होइ,
त्यौं परजा कौ कंस है, दुख पावैं सब कोइ.

इतना कह फिर बोले, कि तुम तो कंस का ब्योहार जानते हो, हम अधिक क्या कहेंगे. इति

CHAPTER. XL.

श्री सुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ! जब नंद जी बातें कर चुके, तब अक्रूर को कृष्ण बलराम सैन से बुलाय अलग ले गये.

आदर कर पूछी कुशलात, कहौ काका मथुरा की बात.
हैं बसुदेव देवकी नीके, राजा बैर पस्यौ तिनहीं के.
अति पापी है मामा कंस, जिन खोयौ सिगरौ यदुबंस.

कोई यदुकुल का महा रोग जन्म ले आया है, तिसी ने सब यदुबंसियों को सताया है, औ सच पूछो तो बसुदेव देवकी हमारे लिये इतना दुख पाते हैं, जो हमें न छिपाते तो वे इतना दुख न पाते. यों कह कृष्ण फिर बोले,

तुमसों कहा चलत उनि कह्यौ, तिनकौ सदा रहनी हौं रह्यौ.
करत होंयगे सुरत हमारी, संकट में पावत दुख भारी.

यह सुन अक्रूर जी बोले, कि कृपानाथ! तुम सब जानते हो, क्या कहूंगा कंस की अनीति, जिस की किसी से नहीं है प्रीति. बसुदेव औ उग्रसेन को नित मारने का बिचार किया करता है, पर वे आज तक अपनी प्रारब्ध से बच रहे हैं; और जद से नारद मुनि आय आप के होने का सब समाचार बुझायके कह गये हैं, तद से बसुदेव जी को बेड़ी हथकड़ी दे महा दुख में रक्खा है; औ कल उसके यहां महादेव का यज्ञ है, औ धनुष धरा है, सब कोई देखने को आवेंगे, सो तुम्हें बुलाने को मुझे भेजा है; यह कहकर, कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नंदराय को यज्ञ की भेंट सुद्धां लिवाय लाओ, सो मैं तुम्हें लेने को आया हूं. इतनी बात अक्रूर जी से सुन, राम कृष्ण ने आ नंदराय से कहा,

कंस बुलाये हैं सुनौ तात, कही अक्रूर काका यह बात.
गोरस मेंढे छेरी लेउ, धनुष यज्ञ है ताकौं देउ.
सब मिल चलौ साथ आपने, राजा बोले रहत न बने.

जब ऐसे समझाय बुझायकर श्री कृष्णचंद जी ने नंद जी से कहा, तब नंदराय जी ने उसी समैं ढंढोरिये को बुलवाय, सारे नगर में यों कह डौंडी फिरवाय दी, कि कल सबेरे ही सब मिल मथुरा को जांयगे, राजा ने बुलाया है. इस बातके सुन्ने से भोर होतेही भेंट ले ले सकल ब्रजबासी आन पहुंचे, औ नंद जी भी दूध, दही, माखन, मेंढे, बकरे, भैंसे ले; सगड़ जुतवाय उनके साथ हो लिये, और कृष्ण बलदेव भी अपने ग्वाल बाल सखाओं को साथ ले रथ पर चढ़े,

आगे भये नंद उपनंद, सब पाछैं हलधर गोबिंद.

श्री सुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ! एकाएकी श्री कृष्णचंद का चलना सुन, सब ब्रज की गोपियां अति घबराय, व्याकुल हो, घर छोड़, हड़बड़ाय उठ धाईं, और कुढ़ती झखती गिरती पड़ती वहां आईं, जहां श्री कृष्णचंद का रथ था. आतेही रथ के चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड़ बिनती

कर कहने लगीं, हमें किस लिये छोड़ते हो ब्रजनाथ! सर्बस दिया है तुम्हारे हाथ; साध की तो प्रीति कभी घटती नहीं, कर कीसी रेखा सदा रहती है, औ मूढ़ की प्रीति नहीं ठहरती, जैसे बालू की भीति. ऐसा तुम्हारा क्या अपराध किया है, जो हमें पीठ दिये जाते हो. यों श्री कृष्णचंद को सुनाय फिर गोपियां अक्रूर को ओर देख बोलीं,

यह अक्रूर क्रूर है भारी, जानी कछू न पीर हमारी.
जा बिन छिन सब होति अनाथ, ताहि ले चल्यौ अपने साथ.
कपटी क्रूर कठिन मन भयौ, नाम अक्रूर बृथा किन दयौ.
हे अक्रूर कुटिल मति हीन! क्यौं दाहत अबला आधीन.

ऐसे कड़ी कड़ी बातें सुनाय, सोच संकोच छोड़, हरि का रथ पकड़, आपस में कहने लगीं, मथुरा की नारियां अति चंचल, चतुर, रूप, गुन भरी हैं, उनसे प्रीति कर गुन औ रस के बस हो वहां हीं रहेंगे बिहारी, तब काहे को करेंगे सुरत हमारी; उन्हीं के बड़े भाग हैं, जो प्रीतम संग रहेंगीं; हमारे जप तप करने में ऐसी क्या चूक पड़ी थी, जिस से श्री कृष्णचंद बिछड़ते हैं. यों आपस में कह, फिर हरि से कहने लगीं, कि तुम्हारा तो नाम है गोपीनाथ, किस लिये नहीं ले चलते हमें अपने साथ.

तुम बिन छिन छिन कैसें कटै, पलक ओट भये छाती फटै.
हित लगाय क्यौं करत बिछोह, निठुर निर्दई धरत न मोह.
ऐसे तहां जपैं सुंदरी, सोचैं दुख समुद्र में परी.
चाहि रहीं इकटक हरि ओर, ठगी मृगी सी चंद चकोर.
परहिं नैन तें आंसू टूट, रहीं बिथुरि लट मुख पर छूट.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि राजा! उस समै गोपियों की तो यह दसा थी, जो मैंने कही; औ जसोदा रानी ममता कर पुत्र को कंठ लगाय रो रो अति प्यार से कहती थीं, कि बेटा! जै दिन में तुम वहां से फिर आओ, तै दिन के लिये कलेऊ ले जाओ, तहां जाय किसी से प्रीति मत कीजो, बेग आय अपनी जननी को दरसन दीजो. इतनी बात सुन, श्री कृष्ण रथ से उतर, सब को समझाय बुझाय, मा से बिदा होय, दंडवत कर, असीस ले, फिर रथ पर चढ़ चले; तिस काल इधर से तो गोपियों समेत जसोदा जी अति अकुलाय रो रो कृष्ण कृष्ण कर पुकारती थीं, औ उधर से श्री कृष्ण रथ पर खड़े पुकार पुकार कहते जाते थे, कि तुम घर जाओ, किसी बात की चिंता मत करो, हम पांच चार दिन में हीं फिर कर आते हैं.

ऐसे कहते कहते, औ देखते देखते, जब रथ दूर निकल गया, औ धूली आकाश तक छाई, जिस में रथ की ध्वजा भी न दी दिखाई, तब निरास हो ऐक बेर तो सब की सब नीर बिन मीन की भांति तड़फड़ाय मूर्छा खाय गिरीं, पीछे कितनी ऐक बेर के चेत कर उठीं, औ अवध की आस मन में धर, धीरज कर, उधर जसोदा जी तो सब गोपियों को ले बृंदाबन को गई, औ इधर श्री कृष्णचंद सब समेत चले चले यमुना तीर पर आ पहुंचे; तहां ग्वाल बालों ने जल पिया, औ हरि ने भी ऐक बड़ की छांह में रथ खड़ा किया. जद अक्रूर जी न्हाने का बिचार कर रथ से उतरे, तद श्री कृष्णचंद ने नंदराय से कहा, कि आप सब ग्वाल बालों को ले आगे चलिये, चचा अक्रूर स्नान कर लें तो पीछे से हम भी आ मिलते हैं.

यह सुन, सब को ले नंद जी आगे बढ़े, औ अक्रूर जी कपड़े खोल, हाथ पांव धोय, आचमन कर, तीर पर जाय, नीर में पैठ, डुबकी ले, पूजा, तर्पन, जप, ध्यान कर, फिर चुभकी मार, आंख खोल, जल में देखें तो वहां रथ समेत श्री कृष्ण दृष्ट आऐ,

पुनि उन देख्यौ सीस उठाय, तिहिं ठां बैठे हैं यदुराय.
करै अचंभौ हिये बिचारि, वे रथ ऊपर दूर मुरारि.
बैठे दोऊ बर की छांह, तिनहीं कौं देखों जल मांह.
बाहर भीतर भेद न लहों, साचौ रूप कौन सों कहों.

महाराज! अक्रूर जी तो ऐकही मूरत बाहर भीतर देख देख सोचते ही थे, कि इस बीच पहले तो श्री कृष्णचंद जी ने चतुर्भुज हो, शंख चक्र गदा पद्म, धारन कर, सुर, मुनि, किन्नर, गंधर्व, आदि सब भक्तों समेत जल में दरसन दिया, औ पीछे शेषशाई हो, तो अक्रूर देख और भी भूल रहा. इति

CHAPTER. XLI.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! पानी में खड़े खड़े अक्रूर को कितनी ऐक बेर में प्रभु का ध्यान करने से ज्ञान हुआ, तो हाथ जोड़ प्रनाम कर, कहने लगा, कि करता हरता तुम्हीं हो भगवंत, भक्तों के हेतु संसार में आय धरते हो भेष अनंत; और सुर नर मुनि तुम्हारे अंस हैं, तुम हीं से प्रगट हो, तुम्हीं में ऐसे समाते हैं, जैसे जल सागर से निकल सागर में समाता है; तुम्हारी महिमा है अनूप, कौन कह सके, सदा रहते हो बिराट सरूप; सिर स्वर्ग, पृथ्वी पांव, समुद्र पेट, नाभि आकाश, बादल केस, बृक्ष रोम, अग्नि मुख, दसों दिसा कान, नैन चंद्र औ भानु, इंद्र भुजा,

बुद्धि ब्रह्मा, अहंकार रुद्र, गरजन बचन, प्रान पवन, जल बीर्य्य, पलकलगाना रात दिन, इस रूप से सदा बिराजते हो, तुम्हें कौन पहचान सके. इस भांति स्तुति कर अक्रूर ने प्रभु के चरन का ध्यान धर कहा, कृपानाथ! मुझे अपनी सरन में रक्खो. इति

CHAPTER. XLII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जद श्री कृष्णचंद ने नटमाया की भांति जल में अनेक रूप दिखाय हर लिये, तद अक्रूर जी ने नीर से निकल, तीर पर आ, हरि को प्रनाम किया; तिस काल नंदलाल ने अक्रूर से पूछा कि कका! सीत समैं जल के बीच इतनी बेर क्यों लगी, हमें यह अति चिंता थी तुम्हारी, कि चचा ने किस लिये बाट चलने की सुधि बिसारी, क्या कुछ अचरज तो जा कर नहीं देखा, यह समझायके कहो, जो हमारे मन की दुबधा जाय.

सुनि अक्रूर कहै जोरे हाथ, तुम सब जानतहौ ब्रज नाथ!
भलौ दरस दीनौं जल माहिं; कृष्ण चरित कौ अचरज नाहिं.
मोहि भरोसौ भयौ तिहारे, बेग नाथ मथुरा पग धारे.

अब यहां बिलंब न करिये, शीघ्र चल कारज कीजे. इतनी बात के सुनते ही, हरि झट रथ पर बैठ अक्रूर को साथ ले चल खड़े हुए, औ नंद आदि जो सब गोप ग्वाल आगे गये थे, उन्होंने जा मथुरा के बाहर डेरे किये, औ कृष्ण बलदेव की बाट देख देख अति चिंता कर आपस में कहने लगे, इतनी अबेर न्हाते क्यों लगी, और किस लिये अबतक नहीं आये हरी, कि इस बीच चले चले आनंद कंद श्री कृष्णचंद भी जाय मिले. उस समैं हाथ जोड़ सिर झुकाय बिनती कर अक्रूर जी बोले कि ब्रजराज! अब चलके मेरा घर पवित्र कीजे, औ अपने भक्तों को दरस दिखाय सुख दीजे. इतनी बात सुनते ही हरि ने अक्रूर से कहा,

पहले सोध कंस कौं देउ, तब अपनौ दिखाऐौ गेहु.
सब की बिनती कहौ जुजाय, सुनि अक्रूर चले सिर नाय.

चले चले कितनी एक बेर में रथ से उतरकर वहां पहुंचे, जहां कंस सभा किये बैठा था. इनको देखते ही सिंहासन से उठ नीचे आय अति हित कर मिला, औ बड़े आदर मान से हाथ पकड़ ले जाय सिंहासन पर अपने पास बैठाय, इनकी कुशल क्षेम पूछ बोला, जहां गये थे वहां की बात कहो.

सुनि अक्रूर कहै समझाय, ब्रज की महिमा कही न जाय.

कहा नंद की करें बड़ाई, बात तुम्हारी सीस चढ़ाई.
राम कृष्ण दोऊ हैं आये, भेंट सबै ब्रजबासी लाये.
डेरा किये नदी के तीर, उतरे गाढ़ा भारी भीर.

यह सुन कंस प्रसन्न हो बोला, अक्रूर जी! आज तुमने हमारा बड़ा काम किया जो राम कृष्ण को ले आये, अब घर जाय बिश्राम करो.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! कंस की आज्ञा पाय, अक्रूर जी तो अपने घर गये; वह सोच बिचार करने लगा; और जहां नंद उपनंद बैठे थे, तहां उनसे हलधर औ गोबिंद ने पूछा, जो हम आप की आज्ञा पावें तो नगर देख आवें. यह सुन पहले तो नंदराय जी ने कुछ खाने को मिठाई निकाल दी, उन दोनों भाइयों ने मिलकर खाय ली, पीछे बोले, अच्छा जाओ देख आओ, पर बिलंब मत कीजो.

इतना बचन नंद महर के मुख से निकलते ही, आनंद कर दोनों भाई अपने ग्वाल बाल सखाओं को साथ ले नगर देखने चले; आगे बढ़ देखें तो नगर के बाहर चारों ओर बन उपबन फूल फल रहे हैं; तिन पर पंछी बैठे अनेक अनेक भांति की मन भावन बोलियां बोलते हैं; औ बड़े बड़े निर्मल जल भरे सरोवर हैं, उन में कंवल खिले हुए, जिन पर भौंरों के झुंड के झुंड गूंज रहे; औ तीर में हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे; सीतल सुगंध सनी मंद पौन बह रही; औ बड़ी बड़ी बाड़ियों की बाड़ों पर पनवाड़ियां लगी हुई; बीच बीच बरन बरन के फूलों की क्यारियां कोसों तक फूली हुई; ठौर ठौर इंदारों बावड़ियों पर रहट परोहे चल रहे; माली मीठे सुरों से गाय गाय जल सींच रहे.

यह सोभा बन उपबन की निरख, हरष, प्रभु सब समेत मथुरा पुरी में पैठे; वह पुरी कैसी है कि जिस के चहुं ओर तांबे का कोट, औ पक्की चुआन चौड़ी खाई; स्फटिक के चार फाटक, तिन में अष्ट धातु किवाड़ कंचन खचित लगे हुए; औ नगर में बरन बरन के राते पीले हरे धौले पंचखने सतखने मंदिर ऊंचे ऐसे कि घटा से बातें कर रहे; जिनके सोने के कलस कलसियों की जोति बिजली सी चमक रही; ध्वजा पताका फहराय रहीं; जाली झरोखों मोखों से धूप की सुगंध आय रही; द्वार द्वार पर केले के खंभ औ सुबरन कलस सपल्लव भरे धरे हुए; तोरन बंदनवार बंधी हुई; घर घर बाजन बाज रहे; औ एक ओर भांति भांति के मनिमय कंचन के मंदिर राजा के न्यारे ही जगमगाय रहे; तिनकी सोभा कुछ बरनी नहीं जाती. ऐसी जो सुंदर सुहावनी मथुरा पुरी, तिसे श्री कृष्ण बलदेव ग्वाल बालों को साथ लिये देखते चले.

परी धूम मथुरा नगर, आवत नंद कुमार,
सुनि धाये पुर लोग सब, गृह को काज बिसार.

और जो मथुरा की सुंदरी, सुनत कान अति आतुर खरी.
कहैं परस्पर बचन उचारि, आवत हैं बलभद्र मुरारि.
तिन्हें अक्रूर गये हे लैन, चलहु सखी अब देखहिं नैन.
कोउ खात न्हात तें भजै, गुहत सीस कोउ उठि तजै.
काम केलि पिय की बिसरावै, उलटे भूषन बसन बनावै.
जैसें हीं तैसें उठि धाईं, कृष्ण दरस देखन कों आईं.

लाज कान डर डार, कोउ खिरकिन कोउ अटन पर,
कोउ खरी दुवार, कोउ दौरी गलियन फिरत.

ऐसें जहां तहां खड़ी नारि, प्रभुहिं बतावैं बांह पसारि.
नील बसन गोरे बलराम, पीतांबर ओढ़े घनस्याम.
ये भानजे कंस के दोउ, इनतें असुर बचौ नहीं कोउ.
सुनत हुती पुरुषारथ जिनकों, देखहु रूप नैन भरि तिनकों.
पूरब जन्म सुकृत कोउ कीनौं, सो बिधि यह दरसन फल दीनौं.

इतनी कथा कह, श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! इसी रीत से सब पुरबासी क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह दरसन कर मगन होते थे, और जिस हाट बाट चौहटे में हो सब समेत कृष्ण बलराम निकलते थे, तहीं अपने अपने कोठों पर खड़े इन पर चोवा चंदन छिड़क छिड़क आनंद से वे फूल बरसावते थे; और ये नगर की सोभा देख देख ग्वाल बालों से यों कहते जाते थे, भैया! कोई भूलियो मत, औ जो कोई भूले तो पिछले डेरों पर जाइयो. इस में कितनी एक दूर जायके देखते क्या हैं, कि कंस के धोबी धोये कपड़ों की लादियां लादे, पोटें मोटें लिये, मद पिये, रंग राते, कंस जस गाते, नगर के बाहर से चले आते हैं; उन्हें देख श्री कृष्णचंद ने बलदेव जी से कहा कि भैया! इनके सब चीर छीन लीजिये, औ आप पहर ग्वाल बालों को पहराय बचें सो लुटाय दीजिये. भाई को यों सुनाय सब समेत धोबियों के पास जाय हरि बोले,

हमकों उज्जल कपरा देहु, राजहि मिलि आवैं फिर लेहु.
जो पहिरावनि नृप सों पै हैं, ता में तें कछु तुम कों दै हैं.

इतनी बात के सुनते ही तिनमें से जो बड़ा धोबी था सो हंसकर कहने लगा,

ऐसैं घरी बनाय, ह्वै आवौ न्रप द्वार लैं,
तब लीजो पट आय, जो चाहो सो दीजियो.

बन बन फिरत चरावत गैया, अहीर जाति कामरी उढ़ैया.
नट कौ भेष बनायकै आये, न्रप अंबर पहरन मन भाये.
जुरिकै चले न्रपति के पास, पहिरावनि लैवे की आस.
नैक आस जीवन की जोऊ, खोवन चहत अबहि पुनि सोऊ.

यह बात धोबी की सुनकर हरि नें फिर मुसकुराय कहा, कि हम तो सूधी चाल सें मांगतें हैं, तुम उलटी क्यों समझते हो, कपड़े देने से कुछ तुम्हारा न बिगड़ेगा, बरन जस लाभ होगा. यह बचन सुन रजक झुंझलाकर बोला, राजा के बागे पहरने का मुंह तो देखो; मेरे आगे से जा, नहीं अभी मार डालता हूं. इतनी बात के सुनते ही क्रोध कर श्री कृष्णचंद ने तिरछा कर ऐक हाथ मारा कि विस का सिर भुट्टा सा उड़ गया; तब जितने उसके साथी औ टहलुऐ थे सब के सब पोटें मोटें लादियां छोड़ अपना जीव ले भागे, औ कंस के पास जा पुकारे; यहां श्री कृष्ण जी ने सब कपड़े ले लिये, औ आप पहन, भाई को पहराय, ग्वाल बालों को बांट, रहे सो लुटाय दिये. तिस समैं ग्वाल बाल अति प्रसन्न हो हो लगे उलटे पुलटे वस्त्र पहनने.

कटि कस पग पहरैं झंगा, सूथन में लें बांह,
बसन भेद जाने नहीं, हंसत कृष्ण मन मांह.

जों वहां सें आगें बढ़े तों ऐक सूजी ने आय दंडवत कर, खड़े होय, कर जोड़के कहा, महाराज! मैं कहने को तो कंस का सेवक कहलाता हूं, पर मन से सदा आप ही का गुन गाता हूं, दया कर कहिये तो बागे पहराऊं, जिससे तुम्हारा दास कहाऊं.

इतनी बात उसके मुख से निकलते ही, अंतरजामी श्री कृष्णचंद नें विसे अपना भक्त जान निकट बुलायके कहा, तू भले समैं आया, अच्छा पहराय दे. तब तो उसने झट पट ही खोल उधेड़, कतर, छांट, सीकर ठीक ठाक बनाय, चुन चुन राम कृष्ण समेत सब को बागे पहराय दिये; उस काल नंदलाल विसे भक्ति दे साथ ले आगे चले.

तहां सुदामा माली आयौ, आदर कर अपने घर लायौ.
सबही कों माला पहराई, माली के घर भई बधाई. इति

CHAPTER. XLIII.

श्री शुकदेव जी बोले कि पृथीनाथ! माली की लगन देख, मगन हो, श्री कृष्णचंद उसे भक्ति पदारथ दे, वहां से आगे जाय देखें तो सोंहीं गली में एक कुबड़ी केसर चंदन से कटोरियां भरे, थाली के बीच धरे, लिये हाथ में खड़ी है. उससे हरि ने पूछा, तू कौन है, औ यह कहां ले चली है? वह बोली, दीन दयाल! मैं कंस की दासी हूं, मेरा नाम है कुबजा, नित चंदन घिस कंस को लगाती हूं, औ मन से तुम्हारे गुन गाती हूं; तिसी के प्रताप से आज आपका दरसन पाय जन्म स्वार्थक किया, औ नैनों का फल लिया; अब दासी का मनोरथ यह है जो प्रभु की आज्ञा पाऊं, तो चंदन अपने हाथों चढ़ाऊं.

उस की अति भक्ति देख हरि ने कहा, जो तेरी इसी में प्रसन्नता है तो लगाव. इतना बचन सुनते ही, कुबजा ने बड़े एवचाव से चित लगाय, जब राम कृष्ण को चंदन चरचा, तब श्री कृष्णचंद ने उसके मन की लाग देख दयाकर पांव पर पांव धर, दो उंगली ठोढ़ी के तले लगाय उचकाय विसे सीधा किया. हरि का हाथ लगते ही वह महा सुंदरि हुई, औ निपट बिनती कर प्रभु से कहने लगी, कि कृपा नाथ! जों आप ने कृपा कर इस दासी की देह सूधी की, तोंहीं दयाकर अब चलके घर पवित्र कीजे, औ बिश्राम ले दासी को सुख दीजे. यह सुन, हरि उसका हाथ पकड़ मुसकुरायके कहने लगे,

तैं श्रम दूर हमारै कियौ, मिलकै सीतल चंदन दियौ.
रूप सील गुन सुंदरि नीकी, तो सों प्रीति निरंतर जी की.
आय मिलेंगे कंसहि मारि, यों कह आगे चले मुरारि.

औ कुबजा अपने घर जाय, केसर चंदन से चौक पुराय, हरि के मिलने की आस मन में रख, मंगलाचार करने लगी.

आवें तहां मथुरा की नारि, करैं अचंभौ कहैं निहारि.
धनि धनि कुबजा तेरै भाग, जाकों बिधना दियौ सुहाग.
ऐसौ कहा कठिन तप कियौ, गोपी नाथ भेट भुज लियौ.
हम नीके नहिं देखे हरी, तो कों मिले प्रीति अति करी.
ऐसें तहां कहत सब नारि, मथुरा देखत फिरत मुरारि.

इस बीच नगर देखते देखते सब समेत प्रभु धनुष पौर पर जा पहुंचे. इन्हें अपने रंग राते माते आते देखते ही पौरिये रिसायके बोले, इधर किधर चले आते हो गंवार! दूर खड़े रहो, यह है

राजद्वार. द्वारपालों की बात सुनी अन सुनी कर हरि सब समेत दौने वहां चले गये, जहां तीन ताड़ लंबा अति मोटा भारी महादेव का धनुष धरा था. जातेही झट उठाय चढ़ाय सहज सुभावही खैंच यों तोड़ डाला कि ज्यों हाथी गांडा तोड़ता है.

इस में सब रखवाले जो कंस के बिठाये धनुष की चौकी देते थे, सो चढ़ आये, प्रभुने उन्हें भी मार गिराया. तिस समैं पुरबासी तो यह चरित्र देख बिचारकर निसंक हो आपस में यों कहने लगे, कि देखो राजा ने घर बैठे अपनी मृत्यु आप बुलाई है, इन दोनों भाइयों के हाथ से अब जीता न बचेगा; और धनुष टूटने का अति शब्द सुन कंस भय खाय अपने लोगों से पूछने लगा, कि यह महा शब्द काहेका हुआ. इस बीच कितने एक लोग राजा के जो दूर खड़े देखते थे, वे मूड़ फिकार यों जा पुकारे कि महाराज की दुहाई! राम कृष्ण ने आय नगर में बड़ी धूम मचाई; शिव का धनुष तोड़ सब रखवालों को मार डाला.

इतनी बात के सुनते ही कंस ने बहुत से जोधाओं को बुलाके कहा, तुम इनके साथ जाओ, औ कृष्ण बलदेव को छल बल कर अभी मार आओ. इतना बचन कंस के मुख से निकलते ही, ये अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले वहां गये, जहां वे दोनों भाई खड़े थे. इन्होंने तिन्हें ज्यों ललकारा, त्यों तिन्होंने इन सब को भी आय मार डाला; जद हरि ने देखा, कि यहां कंस का सेवक अब कोई नहीं रहा, तद बलराम जी से कहा कि भाई! हमें आये बड़ी बेर हुई, डेरे पर चला चाहिये, क्योंकि बाबा नंद हमारी बाट देख देख भावना करते होंयगे. यों कह सब ग्वाल बालों को साथ ले प्रभू बलराम समेत चलकर वहां आये, जहां डेरे पड़े थे. आते ही नंदमहर से तो कहा कि पिता! हम नगर में जाय भला कुतूहल देख आये, औ गोप ग्वालों को अपने बागे दिखलाये.

तब लखि नंद कहै समुझाय, कान्ह तुम्हारी टेव न जाय.
ब्रज बन नहीं हमारे गांव, यह है कंस राय की ठांव.
यहां जिन कछू उपद्रव करौ, मेरी सीख पूत मन धरौ.

जद नंदराय जी ऐसे समझाय चुके, तद नंदलाल बड़े लाड़ से बोले कि पिता! भूख लगी है, जो हमारी माता ने खाने को साथ कर दिया है सो दीजिये. इतनी बात के सुनते ही उन्हों ने जो पदारथ खाने का साथ आया था सो निकाल दिया; कृष्ण बलदेव ने ले ग्वाल बालों के साथ मिलकर खाय लिया. इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! इधर तो ये आय परमानंद से ब्यालू कर सोये, औ उधर श्री कृष्ण की बातें सुन सुन कंस के चित में अति चिंता हुई, तो न उसे बैठे चैन था न खड़े, मन ही मन कुढ़ता था, अपनी पीर किसी से न कहता था. कहा है,

ज्यों काठहि घुन खात है, कोऊ न जाने पीर,
त्यों चिंता चित में भये, बुधि बल घटत शरीर.

निदान अति घबराया, तब मंदिर में जाय सेज पर सोया, पर उसे मारे डरके नींद न आई.

तीन पहर निस जागत गई, लागी पलक नींद छिन भई.
तब सपनौ देख्यौ मन मांह, फिरे सीस बिन धर की छांह.
कब हूं नगन रेत में न्हाय, धावै गदहा चढ़ बिष खाय.
बसे मसान भूत संग लिये, रक्त फूल की माला हिये.
बरन रूख देखै चहुं ओर, तिन पर बैठे बाल किशोर.

महाराज! जब कंस ने ऐसा सपना देखा, तब तो वह अति व्याकुल हो चौंक पड़ा, औ सोच बिचार करता उठकर बाहर आया, अपने मंत्रियों को बुलाय बोला, तुम अभी जाओ, रंगभूमि को झड़वाय छिड़कवाय संवारो, और नंद उपनंद समेत सब ब्रज बासियों को औ बसुदेव आदि यदुबंसियों को रंगभूमि में बुलाय बिठाओ, औ सब देस देस के जो राजा आये हैं तिन्हें भी; इतने में मैं भी आता हूं.

कंस की आज्ञा पाय मंत्री रंगभूमि में आये, उसे झड़वाय छिड़कवाय तहां पाटंबर छाय बिछाय, ध्वजा पताका तोरन बंदनवार बंधवाय, अनेक अनेक भांति के बाजे बजवाय, सब को बुलाय भेजा; वे आये, औ अपने अपने मंच पर जाय जाय बैठे. इस बीच राजा कंस भी अति अभिमान भरे अपने मचान पर आय बैठा. उस काल देवता बिमानों में बैठे आकाश से देखने लगे. इति

CHAPTER. XLIV.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! भोर ही जब नंद उपनंद आदि सब बड़े बड़े गोप रंगभूमि की सभा में गये, तब श्री कृष्णचंद जी ने बलदेव जी से कहा कि भाई! सब गोप आगे गये, अब बिलंब न करिये, शीघ्र ग्वाल बाल सखाओं को साथ ले रंगभूमि देखने चलिये.

इतनी बात के सुनते ही बलराम जी उठ खड़े हुए, औ सब ग्वाल सखाओं से कहा कि भाइयो! चलो रंगभूमि की रचना देख आवें. यह बचन सुनते ही तुरत सब साथ हो लिये; निदान श्री कृष्ण बलराम नटबर भेष किये, ग्वाल बाल सखाओं को साथ लिये, चले चले रंगभूमि की पौर पर आय खड़े हुए, जहां दस सहस्र हाथियों का बलवाला मतवाला गज कुबलिया खड़ा झूमता था.

देखि मतंग द्वार मतवारौ, गजपाल हि बलराम पुकारौ.
सुनो महावत बात हमारी, लेऊ द्वार तें गज तुम टारी.

जान देऊ हमकों नृपपास, नातर ह्वै है गज कौ नास.
कहे देत नहिं दोष हमारै, मत जानि हरि कों तू बारे.

ये त्रिभुवन पति हैं, दुष्टों को मार भूमि का भार उतारने को आये हैं. यह सुन महावत क्रोध कर बोला, मैं जानता हूं, गौ चरायके त्रिभुवन पति भये हैं, इसी से यहां आय बड़े सूर की भांति अड़े खड़े हैं; धनुष का तोड़ना न समझियो, मेरा हाथी दस सहस्र हाथियों का बल रखता है, जबतक इससे न लड़ोगे तबतक भीतर न जाने पाओगे; तुमने तो बहुत बली मारे हैं, पर आज इसके हाथ से बचोगे तब मैं जानूंगा कि तुम बड़े बली हो.

तबै कोपि हलधर कह्यौ, सुन रे मूढ़ कुजात,
गज समेत पटकौं अबहि, मुख संभारि कहु बात.
नेकु न लगि है बार, हाथी मरि जै है अबहि,
तो सों कहत पुकार, अजहु मान मेरौ कह्यौ.

इतनी बात के सुनते ही झुंझलाकर गजपाल ने गज पेला; जों वह बलदेव जी पर टूटा, तों इन्होंने हाथ घुमाय एक थपेड़ा ऐसा मारा, कि वह सूंड सकोड़ चिंघाड़ मार पीछे हटा. यह चरित्र देख कंस के बड़े बड़े जोधा जो खड़े देखते थे, सो अपने जियों से हार मान मन हीं मन कहने लगे, कि इन महा बलवानों से कौन जीत सकेगा; औ महावत भी हाथी को पीछे हटा जान, अति भय मान, जी में बिचार करने लगा, कि जो ये बालक न मारे जांय, तो कंस भी मुझे जीता न छोड़ेगा. यों सोच समझ उसने फिर अंकुस मार हाथी को तत्ता किया, औ इन दोनों भाइयों पर हूल दिया. उसने आते ही सूंड से हरि को पकड़ पछाड़ खुनसाय जों दांतों से दबाया, तों प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाय दांतों के बीच बच रहे.

डरपि उठे तिहि काल सब, सुर मुनि पुर नर नारि,
दुहूं दसन बिच ह्वै कढ़े, बल निधि प्रभु दै तारि.
उठे गजहि के साथ, बहुरि ख्याल हीं हांकि दै,
तुरतहिं भये सनाथ, देखि चरित सब स्याम के.

हांक सुनत अति कोप बढ़ायौ, झटकि सूंड बहुरै गज धायौ.
रहे उदर तर दबकि मुरारि, गये जानि गज रह्यौ निहारि.
पाछैं प्रगट फेर हरि टेर्यौ, बलदाऊ आगे तें घेर्यौ.
लागे गजहिं खिलावन दोऊ, भैचक रहे देख सब कोऊ.

महाराज! उसे कभी बलराम सूंड पकड़ खैंचते थे, कभी स्याम पूंछ पकड़; और जब वह इन्हें पकड़ने को आता था, तब ये अलग हो जाते थे. कितनी एक बेर तक उससे ऐसे खेलते रहे, जैसे बछड़ों के साथ बालकपन में खेलते थे; निदान हरि ने पूंछ पकड़ फिराय उसे दे पटका, औ मारे घूंसों के मार डाला; दांत उखाड़ लिये, तब उसके मुंह से लोहू नदी की भांति बह निकला. हाथी के मरते ही महावत ललकार कर आया, प्रभुने उसे भी हाथी के पांव तले झट मार गिराया, औ हंसते हंसते दोनों भाई नटबर भेष किये, एक एक दांत हाथी का हाथ में लिये, रंगभूमि के बीच जा खड़े हुए. उस काल नंदलाल को जिन जिन ने जिस जिसभाव से देखा, उस उस को तिसी तिसी भाव से दृष्ट आए; मल्लोंने मल्ल माना; राजाओं ने राजा जाना; देवताओं ने अपना प्रभु बूझा; ग्वाल बालोंने सखा; नंद उपनंद ने बालक समझा; औ पुर की युवतियों ने रूप निधान; औ कंसादिक राक्षसों ने काल समान देखा. महाराज! इनको निहारते ही कंस अति भयमान हो पुकारा, अरे मल्लो! इन्हें पछाड़ मारो, कै मेरे आगे से टालो.

इतनी बात जों कंस के मुंह से निकली, तों सब मल्ल गुरु सुत चेले संग लिये, बरन बरन के भेष किये, ताल ठोक ठोक भिड़ने को श्री कृष्ण बलराम के चारों ओर घिर आए; जैसे वे आए, तैसे येभी संभल खड़े हुए; तब उनमें से इन की ओर देख चतुराई कर चानूर बोला, सुनों आज हमारे राजा कुछ उदास हैं, इससे जी बहलाने को तुम्हारा युद्ध देखा चाहते हैं; क्योंकि तुमने बन में रह सब बिद्या सीखी है, और किसी बात का मन में सोच न कीजे, हमारे साथ मल्ल युद्ध कर अपने राजा को सुख दीजे.

श्री कृष्ण बोले, राजा जी ने बड़ी दयाकर हमें बुलाया है आज, हम से क्या सरेगा इनका काज; तुम अति बली गुनवान, हम बालक अजान, तुम से हाथ कैसे मिलावें. कहा है, ब्याह बैर औ प्रीति समान से कीजे, पर राजा जी से कुछ हमारा बस नहीं चलता, इससे तुम्हारा कहा मानते हैं, हमें बचा लीजो, बल कर पटक न दीजो; अब हमें तुम्हें उचित है, जिस में धर्म रहे सो कीजिये, औ मिलकर अपने राजा को सुख दीजिये.

सुनि चानूर कहै भय खाय, तुम्हरी गति जानी नहिं जाय.
तुम बालक मानुस नहिं दोऊ, कीने कपट बली हो कोऊ.
खेलत धनुष खंड दै कर्यौ, मार्यौ तुरत कुबलिया तर्यौ.
तुम सों लरे हानि नहिं होइ, या बातें जाने सब कोइ. इति

CHAPTER. XLV.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि पृथ्वीनाथ! ऐसे कितनी एक बातें कर, ताल ठोक, चानूर तो श्री कृष्ण के सोंहीं हुआ, औ मुष्टक बलराम जी से आय भिड़ा, इनसे उनसे मल्लयुद्ध होने लगा.

सिर सों सिर, भुज सों भुजा, दृष्ट दृष्ट सों जोरि,
चरन चरन गहि झपटकै, लपटत झपट झकोरि.

उस काल सब लोग इन्हें उन्हें देख देख आपस में कहने लगे, कि भाइयो! इस सभा में अति अनीति होती है, देखो कहां ये बालक रूप निधान, कहां ये सबल मल्ल बज्र समान; जो बरजें तो कंस रिसाय, न बरजें तो धर्म जाय, इससे अब यहां रहना उचित नहीं, क्यौंकि हमारा कुछ बस नहीं चलता.

महाराज! इधर तो ये सब लोग यों कहते थे, औ उधर श्री कृष्ण बलराम मल्लों से मल्लयुद्ध करते थे; निदान इन दोनों भाइयों ने उन दोनों मल्लों को पछाड़ मारा. जिनके मरते ही सब मल्ल आय टूटे, प्रभु ने पल भर में तिन्हें भी मार गिराया. तिस समैं हरि भक्त तो प्रसन्न हो बाजन बजाय बजाय जैजैकार करने लगे, औ देवता आकाश से अपने बिमानों में बैठे कृष्ण जस गाय गाय फूल बरसावने; और कंस अति दुख पाय, व्याकुल हो रिसाय, अपने लोगों से कहने लगा, अरे! बाजे क्यौं बजाते हो, तुम्हें क्या कृष्ण की जीत भाती है.

यों कह बोला, ये दोनों बालक बड़े चंचल हैं, इन्हें पकड़ बांध सभा से बाहर ले जाओ, औ देवकी समेत उग्रसेन बसुदेव कपटी को पकड़ लाओ; पहले उन्हें मार पीछे इन दोनों को भी मार डालो. इतना बचन कंस के मुख से निकलते ही, भक्तों के हितकारी मुरारी सब असुरों को छिन भर में मार उछलके वहां जा चढे, जहां अति ऊंचे मंच पर झिलम पहने, टोप दिये, फरी खांडा लिये, बड़े अभिमान से कंस बैठा था. वह इनको काल समान निकट देखते ही भय खाय उठ खड़ा हुआ, औ लगा थरथर कांपने.

मन से तो चाहा कि भागूं, पर मारे लाज के भाग न सका, फरी खांडा संभाल लगा चोट चलाने. उस काल नंदलाल अपनी घात लगाये उसकी चोट बचाते थे, औ सुर, नर, मुनि गंधर्व, यह महा युद्ध देख देख भयमान हो यों पुकारते थे, हे नाथ! हे नाथ! इस दुष्ट को बेग मारो. कितनी एक बेर तक मंच पर युद्ध रहा; निदान प्रभु ने सब को दुखित जान, उसके केस पकड़, मंच से नीचे पटका, औ ऊपर से आपभी कूदे, कि उसका जीव घट से निकल सटका, तब सब सभा के लोग पुकारे, श्री कृष्णचंद ने कंस को मारा. यह शब्द सुन सुर नर मुनि सब को अति आनंद हुआ.

करि अस्तुति पुनि पुनि हरष, बरख सुमन सुर बृंद,
मुदित बजावत दुंदुभी, कहि जैजै नंद नंद.
मथुरा पुर नर नारि, अति प्रफुलित सबकौ हियौ,
मनहुं कुमुद बन चारु, बिकसित हरि ससिमुख निरखि.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जीने राजा परीक्षित से कहा, कि धर्मावतार! कंस के मरते ही जो अति बलवान आठ भाई उसके थे, सो लड़ने को चढ़ आये, प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया. जब हरि ने देखा कि अब यहां राक्षस कोई नहीं रहा, तब कंस की लोथ को घसीट, यमुना तीर पर ले आये, औ दोनों भाइयों ने बैठ बिश्राम लिआ, तिसी दिन से उस ठौर का नाम बिश्रांत घाट हुआ.

आगे कंस का मरना सुन, कंस की रानियां द्यौरानियों समेत अति व्याकुल हो रोती पीटती वहां आईं, जहां यमुना के तीर दोनों बीर मृतक लिये बैठे थे; औ लगीं अपने पति का मुख निरख निरख, सुख सुमिर सुमिर, गुन गाय गाय, व्याकुल हो हो, पछाड़ खाय खाय, मरने; कि इस बीच करुना निधान कान्ह करुना कर उनके निकट जाय बोले.

माई सुनहुं शोक नहिं कीजै, मामा जू कों पानी दीजै.
सदा न कोऊ जीवत रहै, झूठो सो जो अपनौ कहै.
मात पिता सुत बंधु न कोई, जन्म मरन फिरही फिर होई.
जौलौं जासों सनमंद रहै, तौही लौं मिलिकै सुख लहै.

महाराज! जद श्री कृष्णचंद ने रानियों को ऐसे समझाया, तद विन्होंने वहां से उठ, धीरज धर, यमुना तीर पै आ, पति को पानी दिया, औ आप प्रभु ने अपने हाथ कंस को आग दे उस की गति की. इति

CHAPTER. XLVI.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि हे राजा! रानियां तो द्यौरानियों समेत वहां से न्हाय धोय रोय राज मंदिर को गईं; औ श्री कृष्ण बलराम बसुदेव देवकी के पास आय, उनके हाथ पांव की हथकड़ियां बेड़ियां काट, दंडवत कर, हाथ जोड़, सनमुख खड़े हुए. तिस समैं प्रभु का रूप देख बसुदेव देवकी को ज्ञान हुआ, तो उन्हों ने अपने जी में निहचै कर जाना कि ये दोनों बिधाता हैं, असुरों को मार भूमि का भार उतारने को संसार में औतार ले आये हैं.

जब बसुदेव देवकी ने यों जी में जाना, तब अंतरजामी हरि ने अपनी माया फैलाय दी, उसने

उनकी यह मति हर ली; फिर तो इन्होंने इन्हें पुत्र कर समझा, कि इतने में श्री कृष्णचंद अति दीनता कर बोले,

तुम बहु दिवस सह्यो दुख भारी, करत रहे अति सुरत हमारी.

इस में हमारा कुछ अपराध नहीं; क्योंकि जब से आप हमें गोकुल में नंद के यहां रख आये, तब से परबस थे, हमारा बस नथा, पर मन में सदा यह आता था, कि जिन के गर्भ में दस महीने रह जन्म लिया, उसे न कभी कुछ सुख दिया, न हमहीं माता पिता का सुख देखा, वृथा जन्म पराये यहां खोया; जिन्होंने हमारे लिये अति बिपति सही, हम से कुछ उनकी सेवा न भई; संसार में सामर्थी वेई हैं, जो मा बाप की सेवा करते हैं; हम उनके ऋनी रहे, टहल न कर सके.

पृथ्वीनाथ! जब श्री कृष्ण जी ने अपने मन का खेद यों कह सुनाया, तब अति आनंद कर उन दोनों ने इन दोनों को हिलकर कंठ लगाया, औ सुख मान पिछला दुख सब गंवाया. ऐसे मात पिता को सुख दे दोनों भाई वहां से चले चले उग्रसेन के पास आये, और हाथ जोड़ कर बोले,

नाना जू अब कीजे राज, शुभ नक्षत्र नीकौ दिन आज.

इतना हरि मुख से निकलते ही राजा उग्रसेन उठकर आ श्री कृष्णचंद के पाओं पर गिर कहने लगे, कि कृपानाथ! मेरी बिनती सुन लीजिये, जैसे आपने सब असुरों समेत कंस महा दुष्ट को मार भक्तों को सुख दिया, तैसेहीं सिंहासन पै बैठ अब मथुरा का राज कर प्रजा पालन कीजिये. प्रभु बोले महाराज! यदुबंसियों को राज का अधिकार नहीं, इस बात को सब कोई जानता है; जब राजा जजाति बूढ़े भये, तब अपने पुत्र यदु को उन्होंने बुलाकर कहा, कि अपनी तरुन अवस्था मुझे दे, औ मेरा बुढ़ापा तू ले. यह सुन उसने अपने जी में बिचारा, कि जो मैं पिता को युवा अवस्था दूंगा, तो यह तरुन हो भोग करैगा, इस में मुझे पाप होगा, इससे नहीं करना ही भला है. यों सोच समझके उसने कहा, कि पिता! यह तो मुझ से न हो सकेगा. इतनी बात के सुनतेही राजा जजाति ने क्रोधकर यदु को श्राप दिया, कि जा तेरे बंस में राजा कोई न होगा.

इस बीच पुर नाम उनका छोटा बेटा सनमुख आ हाथ जोड़ बोला, पिता! अपनी बृद्ध अवस्था मुझे दो, औ मेरी तरुनाई तुम लो. यह देह किसी काम की नहीं; जो आप के काम आवै तो इससे उत्तम क्या है. जब पुर ने यों कहा, तब राजा जजाति प्रसन्न हो, अपनी बृद्ध अवस्था दे उस की युवा अवस्था ले बोले, कि तेरे कुल में राज गादी रहेगी. इससे नाना जी! हम यदुबंसी हैं, हमें राज करना उचित नहीं.

करौ बैठ तुम राज, दूर करहु संदेह सब.
हम करि हैं सब काज, जो आयसु दै हौ हमैं.
जो न मानिहै आन तुम्हारी, ताहि दंड करिहैं हम भारी.
और कछू चित सोच न कीजै, नीति सहित परजहि सुख दीजै.
यादव जिते कंस के त्रास, नगर छांडिकै गये प्रवास.
तिनकौं अब कर खोज मंगाओ, सुख दै मथुरा मांझ बसाओ.
बिप्र धेनु सुर पूजन कीजै, इनकी रक्षा में चित दीजै.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव मुनि बोले कि धर्मावतार! महाराजाधिराज भक्त हित कारी श्री कृष्णचंद ने उग्रसेन को अपना भक्त जान, ऐसे समझाय, सिंहासन पर बिठाय, राज तिलक दिया, औ छत्र फिरवाय दोनों भाईयों ने अपने हाथों चंवर किया.

उस काल सब नगर के बासी अति आनंद में मगन हो धन्य धन्य कहने लगे, औ देवता फूल बरसावने. महाराज! यों उग्रसेन को राज पाट पर बिठाय, दोनों भाई बहुत से वस्त्र आभूषन अपने साथ लिवायें; वहां से चले चले नंदराय जी के पास आये, औ सनमुख हाथ जोड़ खड़े हो, अति दीनता कर बोले, हम तुम्हारी क्या बड़ाई करें, जो सहस्र जीभ होय तोभी तुम्हारे गुन का बखान हम से न हो सके; तुम ने हमें अति प्रीति कर अपने पुत्र की भांति पाला, सब लाड़ प्यार किया; औ जसोदा मैया भी बड़ा स्नेह करतीं, अपना हित हमहीं पर रखतीं, सदा निज पुत्र समान जानतीं, कभी मन से भी हमें पराया कर न मानतीं.

ऐसे कह फिर श्री कृष्णचंद बोले, कि हे पिता! तुम यह बात सुनकर कुछ बुरा मत मानों, हम अपने मन की बात कहते हैं, कि माता पिता तो तुम्हें हीं कहेंगे, पर अब कुछ दिन मथुरा में रहेंगे, अपने जात भाइयों को देख यदु कुल की उत्पत्ति सुनेंगे, औ अपने माता पिता से मिल उन्हें सुख देंगे; क्योंकि तिन्होंने हमारे लिये बड़ा दुख सहा है, जो हमें तुम्हारे वहां न पहुंचा आते, तो वे दुख न पाते. इतना कह, वस्त्र आभूषन नंदमहर के आगे धर, प्रभू ने निरमोही हो कहा,

मैया सों पालागन कहियो, हम पै प्रेम करे तुम रहियो.

इतनी बात श्री कृष्ण के मुंह से निकलते ही नंदराय तो अति उदास हो लगे लंबी सांसें लेने, औ ग्वाल बाल बिचार कर मनहीं मन यों कहने, कि यह अचंभे की बात कहते हैं, इससे ऐसा समझ में आता है, कि अब ये कपटकर जाया चाहते हैं, नहीं तो ऐसे निठुर बचन न कहते. महाराज! निदान उनमें से सुदामा नाम सखा बोला, भैया कन्हैया! अब मथुरा में तेरा क्या काम है,

जो निठुराई कर पिता को छोड़ यहां रहता है. भला किया कंस को मारा, सब काम संवारा, अब नंद के साथ हो लीजिये, औ बृंदाबन में चल राज कीजिये; यहां का राज देख मन में मत ललचाओ, वहां का सा सुख न पाओगे.

सुनौं, राज देख मूरख भूलते हैं, औ हाथी घोड़े देख फूलते हैं. तुम बृंदाबन छोड़ कहीं मत रहो, वहां सदा बसंत ऋतु रहती है; सघन बन औ यमुना की सोभा मन से कभी नहीं बिसरती. भाई! जो वह सुख छोड़, हमारा कहा न मान, मात पिता की माया तज, यहां रहोगे, तो इस में तुम्हारी क्या बड़ाई होगी. उग्रसेन की सेवा करोगे, औ रात दिन चिंता में रहोगे; जिसे तुमने राज दिया, उसी के आधीन होना होगा, यह अपमान कैसे सहा जायगा, इससे अब उत्तम यही है कि नंदराय को दुख न दीजे, इनके साथ हो लीजे.

ब्रज बन नदी बिहार बिचारै, गायन कौं मन तें न बिसारै.
नहीं छांडि हैं हम ब्रज नाथ, चलिहैं सबै तिहारे साथ.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! ऐसे कितनी ऐक बातें कह, दस बीसेक सखा श्री कृष्न बलराम जी के साथ रहे, औ जिन्होंने नंदराय से बुझाकर कहा, कि आप सब को ले निस्संदेह आगे बढ़िये, पीछे से हम भी इन्हें साथ लिये चले आते हैं. इतनी बात के सुनतेही उठे,

ब्याकुल सबै अहीर, मानहुं पन्नग के डसे,
हरि मुख लखत अधीर, ठाढ़े काढ़े चित्र से.

उस समैं बलदेव जी नंदराय को अति दुखित देख समझाने लगे, कि पिता! तुम इतना दुख क्यों पाते हो, थोड़ेऐक दिनों में यहां का काज कर हम भी आते हैं; आप को आगे इस लिये बिदा करते हैं कि माता हमारी अकेली ब्याकुल होती होंगी, तुम्हारे गये से उन्हें कुछ धीरज होगा. नंद जी बोले कि बेटा! ऐक बार तुम मेरे साथ चलो, फिर मिलकर चलेआइयो.

ऐसे कह अति बिकल हो, रहे नंद गहि पाय,
भई छीन दुति मंद मति, नैनन जल न रहाय.

महाराज! जब माया रहित श्री कृष्नचंद जी ने ग्वाल बालों समेत नंदमहर को महा ब्याकुल देखा, तब मन में बिचारा कि ये मुज से बिछड़ेंगे तो जीते न बचेंगे; त्यों हीं उन्होंने अपनी उस माया को छोड़ा, जिस ने सारे संसार को भुला रक्खा है; उसने आतेही नंद जी को सब समेत अज्ञान किया. फिर प्रभु बोले कि पिता! तुम इतना क्यों पछताते हो, पहले यही बिचारो जो मथुरा औ बृंदाबन में

अंतर ही क्या है, तुम से हम कहीं दूर तो नहीं जाते जो इतना दुख पाते हो; वृंदाबन के लोग दुखी होंगे, इस लिये तुम्हें आगे भेजते हैं.

जद ऐसे प्रभु ने नंदमहर को समझाया, तद वे धीरज धर, हाथ जोड़ बोले, प्रभु! जो तुम्हारे ही जी में यों आया तो मेरा क्या बस है, जाता हूं, तुम्हारा कहा टाल नहीं सकता. इतना बचन नंद जी के मुख से निकलते ही, हरि ने सब गोप ग्वाल बालों समेत नंदराय को तो वृंदाबन बिदा किया, औ आप कोई एक सखाओं समेत दोनों भाई मथुरा में रहे; उस काल नंद सहित गोप ग्वाल,

चले सकल मग सोचत भारी, | हारे सर्बस मनहुं जुआरी.
काहू सुधि काहू सुधि नाहीं, | लटपट चरन परत मग मांहीं.
जात वृंदाबन देखत मधुबन, | बिरह बिथा बाढ़ी व्याकुल तन.

इसी रीत से जों तों कर वृंदाबन पहुंचे; इनका आना सुनतेही जसोदा रानी अति अकुलाकर दौड़ी आईं, औ राम कृष्ण को न देख महा व्याकुल हो नंद जी से कहने लगीं,

अहो कंत सुत कहां गंवाये, बसन आभूषन लीने आये.
कंचन फैंक काच घर राख्यौ, अमृत छांडि मूढ़ बिष चाख्यौ.
पारस पाय अंध जों डारै, फिरि गुन सुनहिं कपारहि मारै.

ऐसे तुमने भी पुत्र गंवाये, औ बसन आभूषन उसके पलटे ले आये, अब तिन बिन धन ले क्या करेंगे, हे मूरख कंत! जिनके पलक ओट भये छाती फटे, कहो उन बिन दिन कैसे कटे; जब उन्होंने तुम से बिछुड़ने को कहा, तब तुम्हारा हिया कैसे रहा!

इतनी बात सुन नंद जी ने बड़ा दुख पाया, औ नीचा सिर कर यह बचन सुनाया, कि सच है, ये वस्त्र अलंकार श्री कृष्ण ने दिये, पर मुझे यह सुध नहीं जो किस ने लिये; और मैं कृष्ण की बात क्या कहूंगा, सुन कर तू भी दुख पावेगी.

कंस मार मो पै फिर आये, प्रीति हरन कहि बचन सुनाये.
बसुदेव के पुत्र वे भये, कर मनुहार हमारी गये.
हों तब महरि अचंभे रह्यौ, पोषन भरन हमारे कह्यौ.
अब न महरि हरि सों सुत कहिये, ईश्वर जानि भजन करि रहिये.

जिसे तो हमने पहले ही नारायन जाना था, पर माया बस पुत्र कर माना. महाराज! जद नंदराय जी ने सच सच बातें श्री कृष्ण की कही कह सुनाईं, तिस समैं माया बस हो जसोदा रानी कभी तो प्रभु को अपना पुत्र जान, मन ही मन पछताय, व्याकुल हो हो रोती थीं, औ कभी ज्ञान कर

ईश्वर जान, उनका ध्यान धर, गुन गाय गाय, मन का खेद खोती थीं; औ इसी रीति से सब बृंदाबन बासी क्या स्त्री क्या पुरुष हरि के प्रेम रंग राते, अनेक अनेक प्रकार की बातें करते थे, सो मेरी सामर्थ नहीं जो मैं बरनन करूं, इससे अब मथुरा की लीला कहता हूं, तुम चित दे सुनो.

कि जब हलधर औ गोबिंद नंदराय को बिदाकर बसुदेव देवकी के पास आये, तब उन्होंने इन्हें देख दुख भुलाय ऐसे सुख माना, कि जैसे तपी तप कर अपने तप का फल पाय सुख माने. आगे बसुदेव जी ने देवकी से कहा कि कृष्न बलदेव पराये यहां रहे हैं, इन्होंने तिनके साथ खाया पिया है, औ अपनी जात का ब्यौहार भी नहीं जानते, इससे अब उचित है कि पुरोहित को बुलाय पूछें, औ वह कहें सो करें. देवकी बोली, बहुत अच्छा.

तद बसुदेव जी ने अपने कुल पूज गर्ग मुनि जी को बुला भेजा, वे आये. उनसे इन्होंने अपने मन का संदेह सब कहके पूछा, कि महाराज! अब हमें क्या करना उचित है सो दया कर कहिये. गर्ग मुनि बोले, पहले सब जात भाइयों को नैाता बुलाइये, पीछे जात कर्म कर राम कृष्न का जनेउ दीजे.

इतना बचन पुरोहित के मुख से निकलते ही, बसुदेव जी ने नगर में नैाता भेज सब ब्राह्मन औ यदुबंसियों को नोत बुलाया; वे आये, तिन्हें अति आदर मान कर बिठाया.

उस काल पहले तो बसुदेव जी ने बिधि से जात कर्म कर जन्म पत्री लिखवाय, दस सहस्र गैां, सोने के सींग, तांबे की पीठ, रूपे के खुर समेत, पाटंबर उढ़ाय, ब्राह्मनों को दीं, जो श्री कृष्न जी के जन्म समै संकल्पी थीं; पीछे मंगलाचार करवाय, वेद की बिधि से सब रीति भांति कर, राम कृष्न का यज्ञोपबीत किया, औ उन दोनों भाइयों को कुछ दे बिद्या पढ़ने को भेज दिया.

वे चले चले अवंतिका पुरी का एक सांदीपन नाम ऋषि महा पंडित औ बड़ा ज्ञानवान काशीपुरी में था, उसके यहां आये, दंडवत कर हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो अति दीनता कर बोले,

हम पर कृपा करो ऋषि राय, बिद्या दान देहु मन लाय.

महाराज! जब श्री कृष्न बलराम जी नें सांदीपन ऋषि से यों दीनता कर कहा, तब तो तिन्होंने इन्हें अति प्यार से अपने घर में रक्खा, औ लगे बड़ी कृपा कर पढ़वाने. कितने एक दिनों में ये चार बेद, उपबेद, छः शास्त्र, नैा व्याकरन, अठारह पुरान, मंत्र, जंत्र, तंत्र, आगम, जोतिष, बैदिक, कोक, संगीत, पिंगल, पढ़, चैादह बिद्या निधान हुए; तब एक दिन दोनों भाइयों ने हाथ जोड़ अति बिनती कर, गुरु से कहा कि महाराज! कहा है, जो अनेक जन्म औतार ले बहुतेरा कुछ दीजिये तैाभी बिद्या का पलटा न दिया जाय; पर आप हमारी शक्ति देख गुरु दक्षिना की आज्ञा कीजे, तो हम यथा शक्ति दे असीस ले अपने घर जांय.

इतनी बात श्री कृष्ण बलराम के मुख से निकलते ही, सांदीपन ऋषि वहां से उठ, सोच बिचार करता घर भीतर गया, औ उस ने अपनी स्त्री से इनका भेद यों समझाकर कहा, कि ये राम कृष्ण जो दोनें बालक हैं, सो आदि पुरुष अविनाशी हैं, भक्तों के हेतु अवतार ले भूमि का भार उतारने के। संसार में आये हैं, मैंने इनकी लीला देख यह भेद जाना; क्योंकि जो पढ़ पढ़ फिर फिर जन्म लेते हैं, सो भी बिद्या रूपी सागर की थाह नहीं पाते; औ देखो इस बाल अवस्था से थोड़े ही दिनों में ये ऐसे अगम अपार समुद्र के पार हो गये; ये जो किया चाहैं सो पल भर में कर सकते हैं. इतना कह फिर बोले.

इन पै कहा मांगिये नारि, सुनके सुंदरि कहैं बिचारि.
मृतक पुच मांगौ तुम जाय, जो हरि हैं तो दैहैं ल्याय.

ऐसे घर में से बिचार कर, सांदीपन ऋषि स्त्री सहित बाहर आय, श्री कृष्ण बलदेव जी के सनमुख कर जोड़ दीनता कर बोले, महाराज! मेरे एक पुच था, तिसे साथ ले मैं कुटुंब समेत एक पर्ब में समुद्र न्हान गया था; जों वहां पहुंच कपड़े उतार सब समेत तीर में न्हाने लगा, तों एक सागर की बड़ी लहर आई, तिस में मेरा पुच बह गया, सो फिर न निकला, किसी मगर मच्छ ने निगल लिया, जिसका दुख मुझे बड़ा है, जो आप गुरु दक्षिना दिया चाहते हैं तो वही सुत ला दीजे, औ हमारे मन का दुख दूर कीजे.

यह सुन श्री कृष्ण बलराम गुरु पत्नी औ गुरु को प्रनाम कर, रथ पर चढ़ उनके पुच लाने के निमित्त समुद्र की ओर चले, औ चले चले कितनी एक बेर में तीर पर जा पहुंचे, कि इन्हें क्रोधवान आते देख सागर भयमान हो, मनुष शरीर धारन कर, बहुत सी भेंट ले, नीर से निकल तीर पर डरता कांपता इनके सोंहीं आ खड़ा हुआ, औ भेंट रख दंडवत कर, हाथ जोड़, सिर निवाय, अति बिनती कर बोला,

बड़ौ भाग प्रभु दरसन दयौ, कौन काज इत आवन भयौ.

श्री कृष्णचंद बोले, हमारे गुरु देव यहां कुनबे समेत न्हाने आये थे, तिसके पुच को जो तू तरंग से बहाय ले गया है, तिसे ला दे, इसी लिये हम यहां आये हैं.

सुन समुद्र बोल्यौ सिर नाय, मैं नहिं लीनैां वाहि बहाय.
तुम सबही के गुरु जगदीस, राम रूप बांध्यौ हो ईस.

तभी से मैं बहुत डरता हूं, औ अपनी मर्य्याद से रहता हूं. हरि बोले, जो तूने नहीं लिया तो यहां से और कौन उसे ले गया. समुद्र ने कहा, कृपानाथ! मैं इसका भेद बताता हूं कि एक

संखासुर नाम असुर संख रूप मुज में रहता है, सो सब जलचर जीवों को दुख देता है, औ जो कोई तीर पै न्हाने को आता है तिसे पकड़कर ले जाता है; कदाचित वह आप के गुरु सुत को लेगाया होय तो मैं नहीं जानता, आप भीतर पैठ देखिये.

यों सुन कृष्ण धसे मन लाय, मांझ समंदर पहुंचे जाय.
देखत ही संखासुर मास्यौ, पेट फाड़के बाहर डास्यौ.
तामें गुरु को पुत्र न पायौ, पछताने बलभद्र सुनायौ.

कि भैया! हमने इसे बिन काज मारा. बलराम जी बोले, कुछ चिंता नहीं, अब आप इसे धारन कीजे. यह सुन हरि ने उस संख को अपना आयुध किया. आगे दोनों भाई वहां से चले चले यम की पुरी में जा पहुंचे, जिसका नाम है संयमनी, औ धर्म राज जहां का राजा है.

इन को देखतेही धर्मराज अपनी गादी से उठ आगे आय अति आवभगति कर ले गया; सिंहासन पर बैठाय, पांव धो, चरनामृत ले बोला, धन्य यह ठौर, धन्य यह पुरी, जहां आकर प्रभु ने दरसन दिया, औ अपने भक्तों को कृतारथ किया; अब कुछ आज्ञा कीजे जो सेवक पूरन करै. प्रभु ने कहा कि हमारे गुरु पुत्र को ला दे.

इतना बचन हरि के मुख से निकलते ही, धर्मराज गट जाकर बालक को ले आया, और हाथ जोड़ बिनती कर बोला, कि कृपानाथ! आप की कृपा से यह बात मैंने पहले ही जानी थी कि आप गुरु सुत के लेने को आवेंगे, इस लिये मैंने यत्नकर रक्खा है, इस बालक को आज तक जन्म नहीं दिया. महाराज! ऐसे कह धर्म राज ने बालक हरि को दिया; प्रभु ने ले लिया, औ तुरंत उसे रथ पर बैठाय वहां से चल कितनी एक बेर में ला गुरु के सोंही खड़ा किया, औ दोनों भाइयों ने हाथ जोड़के कहा, गुरुदेव! अब क्या आज्ञा होती है?

इतनी बात सुन, औ पुत्र को देख, संदीपन ऋषि ने अति प्रसन्न हो श्री कृष्ण बलराम जी को बहुत सी आसीसें देकर कहा,

अब हों मागों कहा मुरारी, दीनी मोहि पुत्र सुख भारी.
अति जस तुम सो शिष्य हमारो, कुशल क्षेम अब घरहि पधारो.

जब ऐसे गुरु ने आज्ञा की, तब दोनों भाई बिदा हो, दंडवत कर, रथ पर बैठ, वहां से चले चले मथुरा पुरी के निकट आये. इन का आना सुन राजा उग्रसेन बसुदेव समेत नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष सब उठ धाये, औ नगर के बाहर आय भेंट कर अति सुख पाय बाजे गाजे से पाटंबर के पांवड़े डालते प्रभु को नगर में ले गये. उस काल घर घर मंगलाचार होने लगे, औ बधाई बाजने. इति

CHAPTER. XLVII.

श्री शुकदेव जी बोले कि पृथीनाथ! जों श्री कृष्नचंद ने वृंदाबन की सुरत करी, तों मैं सब लीला कहता हूं, तुम चित दे सुनौ. कि ऐक दिन हरि ने बलराम जी से कहा कि भाई! सब वृंदाबन बासी हमारी सुरत कर अति दुख पाते होंगे; क्योंकि जो हमने उनसे अवध की थी सो बीत गई, इससे अब उचित है कि किसी को वहां भेज दीजे जो जाकर उन का समाधान कर आवै.

यों भाई से मता कर हरि ने ऊधो को बुलायके कहा, कि अहो ऊधो! ऐक तो तुम हमारे बड़े सखा हो, दूजे अति चातुर ज्ञानवान, औ धीर; इस लिये हम तुम्हें वृंदाबन भेजा चाहते हैं, कि तुम जाकर नंद जसोदा औ गोपियों को ज्ञान दे, उनका समाधान कर आओ, औ माता रोहिनी को ले आओ. ऊधो जी ने कहा, जो आज्ञा.

फिर श्री कृष्नचंद बोले, कि तुम प्रथम नंदमहर औ जसोदा जी को ज्ञान उपजाय, उनके मन का मोह मिटाय, ऐसे समझायकर कहियो जो वे मुझे निकट जान दुख तजें, औ पुत्र भाव छोड़ ईश्वर मान भजें; पीछे तिन गोपियों से कहियो, जिन्होंने मेरे काज छोड़ी है लोक बेद की लाज, रात दिन लीला जस गाती हैं, औ अवध की आस किये प्रान मुट्ठी में लिये हैं, कि तुम कंत भाव छोड़ हरि को भगवान जान भजो, औ बिरह दुख तजो.

महाराज! ऐसे ऊधो को कह दोनों भाइयों ने मिलकर ऐक पाती लिखी, जिस में नंद जसोदा समेत गोप ग्वाल बालों को तो यथा जोग दंडवत, प्रनाम, आशीरबाद लिखा, औ सब ब्रज युवतियों को जोग का उपदेस लिख ऊधो के हाथ दी, औ कहा, यह पाती तुम हीं पढ़ सुनाइयो, जैसे बने तैसे उन सब को समझाय शीघ्र आइयो.

इतना संदेसा कह, प्रभु ने निज वस्त्र, आभूषन, मुकुट पहराय, अपने हीं रथ पर बैठाय, ऊधो जी को वृंदाबन बिदा किया. ये रथ हांके कितनी ऐक बेर में मथुरा से चले चले वृंदाबन के निकट जा पहुंचे, तो वहां देखते क्या हैं, कि सघन सघन कुंजों के पेड़ों पर भांति भांति के पक्षी मनभावन बोलियां बोल रहे हैं; औ जिधर तिधर धौली, पीली, भूरी, काली, गायें घटा सी फिरती हैं; औ ठौर ठौर गोपी गोप ग्वाल बाल श्री कृष्न जस गाय रहे हैं.

यह शोभा निरख हरषते, औ प्रभू का बिहार स्थल जान प्रनाम करते, ऊधो जी जों गांव के खेड़े गये, तों किसी ने दूर से हरि का रथ पहिचान पास आय इनका नाम पूछ नंदमहर से जा कहा, कि महाराज! श्री कृष्न का भेष किये, उन्हीं का रथ लिये, कोई ऊधो नाम मथुरा से आया है.

इतनी बात के सुनते ही नंदराय जैसे गोप मंडली के बीच अथाई पर बैठे थे; तैसे ही उठ

आये, औ तुरंत ऊधो जी के निकट आये; राम कृष्ण का संगी जान अति हितकर मिले, औ कुशल क्षेम पूछ बड़े आदर मान से घर लिवाय ले गये. पहले पांव धुलवाय आसन बैठने को दिया, पीछे षट रस भोजन बनवाय ऊधो जी की पहुनई की. जब वे रुच से भोजन कर चुके, तब ऐक सुथरी उज्जल फेन सी सेज बिछवा दी; तिस पर पान खाय जाय उन्होंने पौढ़कर अति सुख पाया, औ मारग का श्रम सब गंवाया. कितनी ऐक बेर में जो ऊधो जी सोके उठे, तो नंदमहर उनके पास जा बैठे, औ पूछने लगे कि कहो ऊधो जी! सूरसेन पुत्र हमारे परम मित्र बसुदेव जी कुटुंब सहित आनंद से हैं, औ हमसे कैसी प्रीति रखते हैं; यों कह फिर बोले,

कुशल हमारे सुत की कहो, जिनके संग सदा तुम रहो.
कब हूं वे सुधि करत हमारी, उन बिन दुख पावत हम भारी.
सब ही सों आवन कह गये, बीती अवध बहुत दिन भये.

नित उठ जसोदा दही बिलोय माखन निकाल हरि के लिये रखती है; उस की औ ब्रज युवतियों की, जो उनके प्रेम रंग में रंगी हैं, सुरत कभू कान्ह करते हैं कै नहीं?

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथीनाथ! इसी रीति से समाचार पूछते पूछते, औ श्री कृष्णचंद की पूर्व लीला गाते गाते, नंदराय जी तो प्रेम रस भीज, इतना कह प्रभु का ध्यान धर अबाक हुऐ, कि,

महा बली कंसादिक मारे, अब हम काहे कृष्ण बिसारे.

इस बीच अति व्याकुल हो, सुध बुध देह की बिसारे, मन मारे रोती जसोदा रानी ऊधो जी के निकट आय राम कृष्ण की कुशल पूछ बोली, कहो ऊधो जी! हरि हम बिन वहां कैसे इतने दिन रहे, औ क्या संदेसा भेजा है, कब आय दरसन देंगे? इतनी बात के सुनते ही पहले तो ऊधो जी ने नंद जसोदा को श्री कृष्ण बलराम की पाती पढ़ सुनाई, पीछे समझाकर कहने लगे, कि जिनके घर में भगवान ने जन्म लिया, औ बाल लीला कर सुख दिया, तिनकी महिमा कौन कह सके; तुम बड़े भागवान हो, क्योंकि जो आदि पुरुष अबिनाशी शिव बिरंच का करता, न जिस के माता न पिता न भाई न बंधु, तिन्हें तुम अपना पुत्र जान मानते हो, औ सदा उसी के ध्यान में मन लगाये रहते हो, वह तुम से कब दूर रह सकता है. कहा है,

सदा समीप प्रेम बस हरी, जन के हेतु देह जिन धरी.
जाको बैरी मित्र न कोई, ऊंच नीच कोऊ किन होई.
जोई भक्ति भजन मन धरे, सोई हरि सों मिल अनुसरे.

जैसे भृंगी कीट को ले जाता है, औ अपने रूप बना देता है; और जैसे कंवल के फूल में भौंरी मुंद जाती है, औ भौंरा रात भर उसके ऊपर गूंजता रहता है, तिसे छोड़ और कहीं नहीं जाता, तैसे ही जो हरि से हित करता हैं, औ उनका ध्यान धरता है, तिसे वे भी आप सा बना लेते हैं, औ सदा तिसके पास ही रहते हैं.

यों कह फिर ऊधो जी बोले, कि अब तुम हरि को पुत्र कर मत जानौ, ईश्वर कर मानौ; वे अंतरजामी भक्त हितकारी प्रभु आय दरसन दे तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे, तुम किसी बात की चिंता न करो.

महाराज! इसी रीति से अनेक अनेक प्रकार की बातें कहते कहते औ सुनते सुनते, जब सब रात बितीत भई, औ चार घड़ी पिछली रही, तब नंदराय जी से ऊधो जी ने कहा, कि महाराज! अब दधि मथने की बिरियां ऊई, जो आप की आज्ञा पाऊं तो यमुना स्नान करि आऊं. नंदमहर बोले बऊत अच्छा. इतना कह वे तो वहां बैठे सोच बिचार करते रहे, औ ऊधो जी उठ जट रथ में बैठ यमुना तीर पर आये. पहले वस्त्र उतार देह शुद्ध करी, पीछे नीर के निकट जाय, रज सिर चढ़ाय, हाथ जोड़, कालिंदी की अति स्तुति गाय, आचमन कर, जल में पैठे, औ न्हाय धोय संध्या पूजा तरपन से निचिंत हो लगे जप करने. उसी समैं सब ब्रज युवतियां भी उठीं, औ अपना अपना घर झाड़ बुहार लीप पोत धूप दीप कर लगीं दधि मथने.

दधि कौ मथन मेघ सौ गाजै, गावैं नूपुर की धुनि बाजै.
दधि मथिकै माखन लियौ, कियौ गेह कौ काम,
तब सब मिल पानी चलीं, सुंदरि ब्रज की बाम.

महाराज! वे गोपियां श्री कृष्ण के बियोग मद मातियां उनका ही जस गातियां, अपने अपने झुंड लिये, प्रीतम का ध्यान किये, बाट में प्रभु की लीला गाने लगीं.

एक कहै मुहि मिले कन्हाई, एक कहै वे भजे लुकाई.
पाछे तें पकरी मो बांह, वे ठाढ़े हरि बर की छांह.
कहत एक गो दोहत देखे, बोली एक भोरही पेखे.
एक कहै वे धेनु चरावैं, सुनऊ कान दै बैनु बजावैं.
या मारग हम जांय न माई, दान मांगि है कुंवर कन्हाई.
गागरि फोरि गांठि छोरि है, नेक चितैकै चित्त चोरि है.

हैं कहूं दूरे दैारि आय हैं, तब हम कहां जानि पाय हैं.
ऐसे कहत चलीं ब्रज नारी, कृष्ण बियोग बिकल तन भारी. इति

CHAPTER. XLVIII.

श्री शुकदेव मुनि बोले पृथीनाथ! जब ऊधा जी जप कर चुके, तब नदी से निकल, वस्त्र अभूषन पहन, रथ में बैठ, जों कालिंदी तीर से नंद गेह की ओर चले, तों गोपी जो जल भरने को निकलीं थीं तिन्होंने रथ दूर से पंथ में आते देखा; देखते ही आपस में कहने लगीं, कि यह रथ किसका चला आता है, इसे देख लो, तब आगे पांव बढ़ाओ. यें सुन तिन में से ऐक गोपी बाेली, कि सखी! कहीं वही कपटी अक्रूर ताे न आया होय, जिस ने श्री कृष्णचंद को ले जाय मथुरा में बसाया, औ कंस को मरवाया. इतना सुन ऐक और उन में से बोली, यह विश्वासघाती फिर काहे को आया, ऐक बेर ताे हमारे जीवन मूल को ले गया, अब क्या जीव लेगा. महाराज! इसी भांति की आपस में अनेक अनेक बातें कह,

ठाढ़ी भई तहां ब्रज नारि, सिर तें गागरि धरी उतारि.

इतने में जों रथ निकट आया, तों गोपियां कुछ ऐक दूर से ऊधा जी को देखकर आपस में कहने लगीं, कि सखी! यह ताे कोई स्याम बरन, कंवल नैन, मुकुट सिर दिये, बनमाल हिये, पीतांबर पहरे, पीत पट ओढ़े, श्री कृष्णचंद सा रथ में बैठा हमारी ओर देखता चला आता है. तब तिनहीं में से ऐक गोपी ने कहा कि सखी! यह ताे कल से नंद के यहां आया है, ऊधा इसका नाम है, औ श्री कृष्णचंद ने कुछ संदेसा इसके हाथ कह पठाया है.

इतनी बात के सुनते ही गोपियां ऐकांत ठोर देख, सोच संकोच छोड़ दौड़कर ऊधा जी के निकट गईं, औ हरि का हितू जान दंडवत कर, कुशल क्षेम पूछ, हाथ जोड़, रथ के चारों ओर घिरके खड़ी हुईं. उनका अनुराग देख ऊधा जी भी रथ से उतर पड़े, तब सब गोपियां तिन्हें ऐक पेड़ की छाया में बैठाय आप भी चारों ओर घिरके बैठीं, औ अति प्यार से कहने लगीं,

भली करी ऊधा तुम आऐ, समाचार माधो के लाऐ.
सदा समीप कृष्ण के रहो, उनको कह्यो संदेसो कहो.
पठये मात पिता के हेत, और न काहूकी सुधि लेत.
सर्बसु दीनाें उन के हाथ, अरुजेप्रान चरन के साथ.
अपने हीं स्वारथ के भये, सबही कों अब दुख दै गये,

औ जैसे फल हीन तरवर को पंछी छोड़ जाता है, तैसे ही हरि हमें छोड़ गये; हम ने उन्हें अपना सर्बस दिया, तौभी वे हमारे न ऊए. महाराज! जब प्रेम में मगन होय इसी ढब की बातें बऊत सी गोपियों ने कहीं, तब ऊधो जी उन के प्रेम की दृढ़ता देख, जो प्रनाम करने को उठा चाहते थे, तोंही किसी गोपी ने एक भौंरे को फूल पर बैठता देख उस के मिस ऊधो से कहा.

अरे मधुकर! तैंने माधव के चरन कंवल का रस पिया है, तिसी से तेरा नाम मधुकर ऊआ; औ कपटी का मित्र है, इसी लिये तुझे उसने अपना दूत कर भेजा है, तू हमारे चरन मत परसे, क्योंकि हम जाने हैं, जितने स्याम बरन हैं, तितने सब कपटी हैं; जैसा तू है, तैसेई हैं स्याम, इससे तू हमें मत करे प्रनाम; जों तू फूल फूल का रस लेता फिरता है, औ किसी का नहीं होता, तों वे भी प्रीति कर किसी के नहीं होते. ऐसे गोपी कह रही थी, कि एक भौंरा और आया; उसे देख ललिता नाम गोपी बोली,

अहो भ्रमर तुम अलगे रहौ, यह तुम जाय मधुपुरी कहौ.

जहां कुबजा सी पटरानी औ श्री कृष्णचंद बिराजते हैं, कि एक जन्मकी हम क्या कहैं, तुम्हारी तो जन्म जन्म यही चाल है; बलि राजा ने सर्बस दिया, उसे पताल पठाया; औ सीता सी सती को बिन अपराध घर से निकाला; जब उन की यह दसा की, तो हमारी क्या चली है. यों कह फिर सब गोपी मिल, हाथ जोड़, ऊधो से कहने लगीं, कि ऊधो जी! हम अनाथ हैं श्री कृष्ण बिन, तुम अपने साथ ले चलो. श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! इतना बचन गोपियों के मुख से निकलते ही ऊधो जी ने कहा, जो संदेसा श्री कृष्णचंद ने लिख भेजा है सो मैं समझा कर कहता हूं, तुम चित दे सुनौ. लिखा है, तुम भोग की आस छोड़ जोग करो, तुम से बियोग कभी न होगा. औ कहा है, निस दिन तुम करती हो मेरा ध्यान, इस से कोई नहीं है प्रिय मेरे तुम समान.

इतना कह फिर ऊधो जी बोले, जो हैं आदि पुरुष अबिनासी हरी, तिन से तुम ने प्रीति निरंतर करी; औ जिन्हें सब कोई अलख अगोचर अभेद बखाने, तिन्हें तुम ने अपने कंत कर माने; पृथ्वी, पवन, पानी, तेज, आकास का है जैसे देह में निवास, ऐसे प्रभु तुम में बिराजते हैं, पर माया के गुन से न्यारे दिखाई देते हैं; उनका सुमिरन ध्यान किया करो; वे सदा अपने भक्त के बस रहते है; औ पास रहने से होता है ज्ञान ध्यान का नास, इस लिये हरि ने किया है दूर जायके बास. औ मुझे यह भी श्री कृष्णचंद ने समझायके कहा है कि तुम्हें बेनु बजाय बन में बुलाया, औ जब देखा मदन औ बिरह का प्रकास, तब हम ने तुम्हारे साथ मिलकर किया था रास.

जद तुम ईसरता बिसराई, अंतरध्यान भये यदुराई.

फिर जों तुम ने ज्ञान कर ध्यान हरि का मन में किया, तोंहीं तुम्हारे चित की भक्ति जान प्रभु ने आय दरसन दिया. महाराज! इतना बचन ऊधो जी के मुख से निकलते ही,

गोपी तबै कहैं सतराय, सुनी बात अब रह्यो अरगाय.
ज्ञान जोग बुद्धि हमहिं सुनावै, ध्यान छोड़ आकाश बतावै.
जिन की लीला में मन रहै, तिनकों को नारायन कहै.
बालकपन तें जिन सुख दयौ, सो क्यों अलख अगोचर भयौ.
जो सब गुनगुन रूप सरूप, सो क्यों निर्गुन होय निरूप.
जौ तन में पिय प्रान हमारे, तो को सुनि है बचन तिहारे.
ऐक सखी उठि कहै बिचारि, ऊधो की कीजे मनुहारि.
इनसों सखी कछू नहिं कहिये, सुनके बचन टेक मुख रहिये.
ऐक कहति अपराध न याकौ, यह आयौ पठयौ कुबजा कौ.
अब कुबजा जो जाहि सिखावै, सोई वाको गायौ गावै.
कबहूं स्याम कहैं नहिं ऐसी, कही आय ब्रज में इन जैसी.
ऐसी बात सुने को माई, उठत सूल सुनि सही न जाई.
कहत भोग तजि जोग अराधो, ऐसी कैसे कहि हैं माधो.
जप तप संजम नेम अचार, यह सब बिधवा कौ ब्यौहार.
जुग जुग जीवहु कुंवर कन्हाई, सीस हमारे पर सुख दाई.
अछत पति भभूति किन लाई, कहौ कहां की रीति चलाई.
हम कों नेम जोग ब्रत ऐहा, नंद नंदन पद सदा सनेहा.
ऊधो तुम्हें दोष को लावै, यह सब कुबजा नाच नचावै.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! जब गोपियों के मुख से ऐसे प्रेम सने बचन सुने, तब जोग कथा कहके ऊधो मनहीं मन पछताय सकुचाय मौन साध सिर निवाय रहगये. फिर ऐक गोपी ने पूछा, कहो बलभद्र जी कुशल क्षेम से हैं, औ बालापन की प्रीति बिचार कभी वे भी हमारी सुधि करते हैं कि नहीं?

यह सुन तिनहीं में से किसी और गोपी ने उत्तर दिया, कि सखी! तुम तो हो अहीरी गंवारि, औ मथुरा की हैं सुंदर नारी, तिन के बस हो हरि बिहार करते हैं, अब हमारी सुरत

क्यों करेंगे; जद से वहां जाके छाये, सखी! तद से पी भये पराये; जो पहले हम ऐसा जानतीं, तो काहे को जाने देतीं; अब पछताये कुछ हाथ नहीं आता, इससे उचित है कि सब दुख छोड़ अवध की आस कर रहिये; क्योंकि जैसे आठ महीने पृथ्वी, बन, पर्वत, मेघ की आस किये तपन सहते हैं, औ तिन्हें आय वह ठंढा करता है, तैसे हरि भी आय मिलेंगे.

ऐक कहति हरि कीनौं काज, बैरी मास्यौ लीनौं राज.
काहे कों वृंदाबन आवैं, राज छांडि क्यौं गाय चरावैं.
छोड़ऊ सखी अवध की आस, चिंता जै है भये निरास.
ऐक त्रिया बोली अकुलाय, कृष्ण आस क्यौं छोड़ी जाय.

बन पर्वत औ यमुना के तीर में जहां जहां श्री कृष्ण बलबीर ने लीला करी हैं, वही वही ठौर देख सुध आती है खरी, प्रान पति हरि की. यों कह फिर बोली,

दुख सागर यह ब्रज भयौ, नाम नाव बिच धार,
बूडहिं बिरह बियोग जल, कृष्ण करें कब पार.
गोपी नाथ श्री क्यौं सुधि गई, लाज न कछू नाम की भई.

इतनी बात सुन ऊधो जी मनहीं मन बिचार कर कहने लगे, कि धन्य है इन गोपियों को, औ इनकी तृष्णा को, जो सर्बसु छोड़ श्री कृष्णचंद के ध्यान में लीन हो रहीं हैं. महाराज! ऊधो जी तो उनका प्रेम देख मनहीं मन सराहते ही थे, कि उस काल सब गोपी उठ खड़ी हुईं, औ ऊधो जी को बड़े आदर मान से अपने घर लिवाय लेगईं. उन की प्रीति देख इन्हों ने भी वहां जाय भोजन किया, औ विश्राम कर श्री कृष्ण की कथा सुनाय तिन्हें बहुत सुख दिया; तब सब गोपी ऊधो जी की पूजा कर, बहुत सी भेट आगे धर, हाथ जोड़, अति बिनती कर बोलीं, ऊधो जी! तुम हरि से जाय कहियो कि नाथ! आगे तो तुम बड़ी कृपा करते थे, हाथ पकड़ अपने साथ लिये फिरते थे, अब ठकुराई पाय नगर नारि कुबजा के कहे जोग लिख भेजा; हम अबला अपवित्र अबतक गुरु मुख भी नहीं हुई, हम ज्ञान क्या जानें.

उन सों बालापन की प्रीति, जाने कहा जोग की रीति.
वे हरि क्यौं न जोग दे जात, यह न संदेसे की है बात.
ऊधो यों कहियो समझाय, प्रान जात हैं राखें आय.

महाराज! इतनी बात कह सब गोपियां तो हरि का ध्यान कर मगन हो रहीं, औ ऊधो जी तिन्हें दंडवत कर वहां से उठ, रथ पर बैठ, गोवर्धन में आऐ. वहां कई ऐक दिन रहे, फिर वहां से

जो चले, तो जहां जहां श्री कृष्णचंद जी ने लीला करी थी, तहां तहां गये, औ दो दो चार चार दिन सब ठौर रहे.

निदान कितने एक दिवस पीछे फिर वृंदाबन में आये, औ नंद जसोदा जी के पास जा हाथ जोड़कर बोले, आप की प्रीति देख मैं इतने दिन ब्रज में रहा, अब आज्ञा पाऊं तो मथुरा को जाऊं.

इतनी बात के सुनते ही जसोदा रानी दूध दही माखन औ बहुत सी मिठाई घर में जाय ले आई, औ ऊधो जी को देके कहा, कि यह तो तुम श्री कृष्ण बलराम प्यारे को देना, औ बहन देवकी से यों कहना, कि मेरे कृष्ण बलराम को भेज दे, बिरमाय न रक्खे. इतना संदेसा कह नंद रानी अति व्याकुल हो रोने लगी; तब नंद जी बोले कि ऊधो जी! हम तुम से अधिक क्या कहें, तुम आप चातुर गुनवान महा ज्ञान हो, हमारी ओर हो प्रभु से ऐसे जाय कहियो, जो वे ब्रज बासियों का दुख बिचार बेग आय दरसन दें, औ हमारी सुध न बिसारें.

इतना कह जब नंदराय ने आंसू भर लिये, औ जितने ब्रजबासी क्या स्त्री क्या पुरुष वहां खड़े थे सो भी सब लगे रोने, तब ऊधो जी तिन्हें समझाय बुझाय आसा भरोसा दे, ढाढ़स बंधाय, बिदा हो, रोहिनी को साथ ले, मथुरा को चले; औ कितनी एक बेर में चले चले श्री कृष्णचंद के पास आ पहुंचे.

इन्हें देखते ही श्री कृष्ण बलदेव उठकर मिले, औ बड़े प्यार से इनकी क्षेम कुशल पूछ वृंदाबन के समाचार पूछने लगे. कहो ऊधो जी! नंद जसोदा समेत सब ब्रजबासी आनंद से हैं, औ कभी हमारी सुरत करते हैं कि नहीं? ऊधो जी बोले, महाराज! ब्रज की महिमा औ ब्रज बासियों का प्रेम मुझ से कुछ कहा नहीं जाता; उन के तो तुम्हीं हो प्रान, निस दिन करते हैं वे तुम्हारा ही ध्यान; औ ऐसी देखी गोपियों की प्रीति, जैसी होती है पूरन भजन की रीति; आप का कहा जोग का उपदेस जा सुनाया, पर मैं ने भजन का भेद उनहीं से पाया.

इतना समाचार कह ऊधो जी बोले, कि दीन दयाल! मैं अधिक क्या कहूं, आप अंतरजामी घट घट की जानते हैं, थोड़े ही में समझिये, कि ब्रज में क्या जड़ क्या चैतन्य सब आप के दरस परस बिन महा दुखी हैं, केवल अवध की आस कर रहे हैं.

इतनी बात के सुनते ही जद दोनों भाई उदास हो रहे, तद ऊधो जी तो श्री कृष्णचंद से बिदा हो नंद जसोदा का संदेसा बसुदेव देवकी को पहुंचाय, अपने घर गये, औ रोहिनी जी श्री कृष्ण बलराम से मिल अति आनंद कर निज मंदिर में रहीं. इति

CHAPTER. XLIX.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज, एक दिन श्री कृष्ण बिहारी भक्त हितकारि कुबजा की प्रीति बिचार, अपना बचन प्रतिपालने को ऊधो को साथ ले उस के घर गये

जब कुबजा जान्यौ हरि आऐं, पाटंबर पांवड़े बिछाऐं.
अति आनंद लये उठि आगे, पूरब पुन्य पुंज सब जागे.
ऊधो कौं आसन बैठारि, मंदिर भीतर धसे मुरारि.

वहां जाय देखें तो चित्रशाला में उजला बिछौना बिछा है; उस पर एक फूलों से संवारी अच्छी सेज बिछी है; तिसी पर हरि जा बिराजे; औ कुबजा एक और मंदिर में जाय, सुगंध उबटन लगाय, न्हाय धोय, कंघी चोटी कर, सुथरे कपड़े गहने पहर, आप को नखसिखसे सिंगार, पान खाय, सुगंध लगाय, ऐसे रावचाव से श्री कृष्णचंद के निकट आई कि जैसे रति अपने पति के पास आई होय. औ लाज से घूंघट किये, प्रथम मिलन का भय डर लिये, चुपचाप एक ओर खड़ी हो रही. देखते ही श्री कृष्णचंद आनंद कंद ने उसे हाथ पकड़ अपने पास बिठाय लिया, औ उस का मनोरथ पूरन किया.

तब उठि ऊधो के ढिग आऐ, भई लाज हंसि नैन निवाऐं.

महाराज, यों कुबजा को सुख दे, ऊधो जी को साथ ले, श्री कृष्णचंद फिर अपने घर आऐ, औ बलराम जी से कहने लगे कि भाई! हमने अक्रूर जी से कहा था कि तुम्हारा घर देखन जांयगे, सो पहले तो वहां चलिये, पीछे तिन्हें हस्तिनापुर को भेज वहां के समाचार मंगवाईं.

इतना कह दोनों भाई अक्रूर के घर गये; वह प्रभु को देखते ही अति सुख पाय, प्रनाम कर, चरन रज सिर चढ़ाय, हाथ जोड़, बिनती कर बोला, कृपा नाथ! आपने बड़ी कृपा की जो आय दरसन दिया, औ मेरा घर पवित्र किया. यह सुन श्री कृष्णचंद बोले, कका! इतनी बड़ाई क्यौं करते हो, हम तो आप के लड़के हैं. यों कह फिर सुनाया, कि कका! आप के पुन्य से असुर तो सब मारे गये, पर एक ही चिंता हमारे जी में है, जो सुनते हैं कि पंडु बैकुंठ सिधारे, औ दुर्योधन के हाथ से पांचों भाई हैं दुखी हमारे.

कुंती फुफू अधिक दुख पावै, तुम बिन जाय कौन समझावै.

इतनी बात के सुनते ही अक्रूर जी ने हरि से कहा, कि आप इस बात की चिंता न कीजे, मैं हस्तिनापुर जाऊंगा, औ तिन्हें समझाय वहां की सुध ले आऊंगा. इति

CHAPTER. L.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि पृथ्वी नाथ! जब ऐसे श्री कृष्ण जी ने अक्रूर के मुख से सुना, तब उन्हें पंडु की सुध लेने को बिदा किया. वे रथ पर बैठ चले चले कई एक दिन में मथुरा से हस्तिनापुर पहुंचे, औ रथ से उतर जहां राजा दुर्योधन अपनी सभा में सिंहासन पर बैठा था तहां जाय जुहार कर खड़े हुए. इन्हें देखते ही दुर्योधन सभा समेत उठ कर मिला, औ अति आदर मान से अपने पास बिठाय इनकी कुशल क्षेम पूछ बोला,

नीके शूरसेन बसुदेव, नीके हैं मोहन बलदेव.
उग्रसेन राजा किहिं हेत, नाहि न काहू की सुध लेत.
पुत्र हि मार करत हैं राज, तिन्हें न काहू सों है काज.

ऐसे जब दुर्योधन ने कहा, तब अक्रूर सुन चुप हो रहा, औ मनहीं मन कहने लगा, कि यह पापियों की सभा है, यहां मुझे रहना उचित नहीं; क्योंकि जो मैं रहूंगा तो यह ऐसी ऐसी अनेक अनेक बातें कहैगा, सो मुज से कब सुनी जांयगीं, इससे यहां रहना भला नहीं.

यों बिचार अक्रूर जी वहां से उठ बिदुर को साथ ले पंडु के घर गये; तहां जाय देखैं तो कुंती पति के सोग से महा व्याकुल हो रो रही है. उसके पास जा बैठे, औ लगे समझाने कि माई! बिधना से कुछ किसी का बस नहीं चलता, औ सदा कोई अमर हो जीता भी नहीं रहता; देह धर जीव दुख सुख सहता है, इससे मनुष को चिंता करनी उचित नहीं; क्योंकि चिंता किये से कुछ हाथ नहीं आता, केवल चित को दुख देना है.

महाराज! जद ऐसे समझाय बुझाय अक्रूर जी ने कुंती से कहा, तद वह सोच समझ चुप हो रही, औ इन की कुशल पूछ बोली, कहो अक्रूर जी! हमारे माता पिता औ भाई बसुदेव जी कुटुंब समेत भले हैं? औ श्री कृष्ण बलराम कभी भीम, युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव, इन अपने पांचों भाइयों की सुध करते हैं? ये तो यहां दुख समुद्र में पड़े हैं, वे इनकी रक्षा कब आय करेंगे; हम से अब तो इस अंध धृतराष्ट्र का दुख सहा नहीं जाता; क्योंकि वह दुर्योधन की मति से चलता है, इन पांचों को मारने के उपाय में दिन रात रहता है; कई बेर तो बिष घोल दिया, सो मेरे भीमसेन ने पी लिया.

इतना कह पुनि कुंती बोली, कि कहो अक्रूर जी! जब सब कौरव यों बैर किये रहैं, तब ये मेरे बालक किसका मुंह चहैं, औ मीच से बच कैसे होंय सयानें, यही दुख बड़ा है हम क्या बखानें. ज्यों हरनी झुंड से बिछड़ करती है त्रास, त्यों मैं भी सदा रहती हूं उदास; जिन्हों ने कंसादिक असुर संहारे, सोई हैं मेरे रखवारे.

भीम, युधिष्ठिर, अर्जुन, भाई, इनकौ दुख तुम कहियौ जाई.

जब ऐसे दीन हो कुंती ने कहे बैन, तब सुनकर अक्रूर ने भर लिये नैन; औ समझाके कहने लगा कि माता! तुम कुछ चिंता मत करो, ये जो पांचों पुत्र तुम्हारे हैं, सो महा बली जसी होंगे, शत्रु औ दुष्टों को मार करेंगे निकंद, इनके पक्षी हैं श्री गोबिंद. यों कह फिर अक्रूर जी बोले, कि श्री कृष्ण बलराम ने मुझे यह कह तुम्हारे पास भेजा है, कि फूफी से कहियो किसी बात से दुख न पावें, हम बेग ही तुम्हारे निकट आते हैं.

महाराज! ऐसे श्री कृष्ण की कही बातें कह, अक्रूर जी कुंती को समझाय बुझाय, आसा भरोसा दे, बिदा हो, बिदुर को साथ ले, धृतराष्ट्र के पास गये, औ उससे कहा कि तुम पुरखा होय ऐसी अनीति क्यों करते हो, जो पुत्र के बस होय अपने भाई का राज पाट ले भतीजों को दुख देते हो; यह कहां का धर्म है जो ऐसा अधर्म करते हो.

लोचन गये न सूझे हिये, कुल बहिजाय पाप के किये.

तुमने भले चंगे बैठे बिठाऐ क्यों भाई का राज लिया, औ भीम युधिष्ठिर को दुख दिया. इतनी बात के सुनते ही धृतराष्ट्र अक्रूर का हाथ पकड़ बोला, कि मैं क्या करूं, मेरा कहा कोई नहीं सुनता; ये सब अपनी अपनी मति से चलते हैं, मैं तो इनके सोंहीं मूरख हो रहा हूं, इससे इन की बातों में कुछ नहीं बोलता; एकांत बैठ चुपचाप अपने प्रभु का भजन करता हूं. इतनी बात जों धृतराष्ट्र ने कही, तों अक्रूर जी दंडवत कर, वहां से उठ, रथ पर चढ़, हस्तिनापुर से चले चले मथुरा नगरी में आऐ.

उग्रसेन बसुदेव सों, कही पंडु की बात, कुंती के सुत महा दुख, भये छीन अति गात.

यों उग्रसेन बसुदेव जी से हस्तिनापुर के सब समाचार कह अक्रूर जी फिर श्री कृष्ण बलराम जी के पास जा प्रनाम कर हाथ जोड़ बोले, महाराज! मैंने हस्तिनापुर में जाय देखा, आप की फूफी औ पांचों भाई कौरों के हाथ से महा दुखी हैं, अधिक क्या कहूंगा, आप अंतरजामी हैं, वहां की अवस्था औ बिपरीत तुम से कुछ छिपी नहीं. यों कह अक्रूर जी तो कुंती का कहा संदेसा सुनाय बिदा हो अपने घर गये, औ सब समाचार सुन श्री कृष्ण बलदेव जो हैं सब देवन के देव, सो लोक रीति से बैठ चिंता कर भूमि का भार उतारने का बिचार करने लगे.

इतनी कथा श्री सुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित को सुनायकर कहा, कि हे पृथ्वी नाथ! यह जो मैंने ब्रजबन मथुरा का जस गाया, सो पूर्वार्ध कहाया; अब आगे उत्तरार्ध गाऊंगा, जो द्वारिकानाथ का बल पाऊंगा. इति पूर्वार्द्ध.

CHAPTER. LI.

अथ उत्तरार्द्ध कथा लिख्यते

श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! जो श्री कृष्णचंद दल समेत जुरासिंधु को जीत, काल यमन को मार, मुचकुंद को तार, ब्रज को तज, द्वारिका में जाय बसे, तो मैं सब कथा कहता हूं, तुम सचेत हो चित लगाय सुनौ; कि राजा उग्रसेन तो राज नीति लिये मथुरापुरी का राज करते थे, औ श्री कृष्ण बलराम सेवक की भांति उनकी आज्ञाकारी; इस से राजा राज प्रजा सुखी थी, पर ऐक कंस की रानियां हीं अपने पति के शोक से महा दुखी थीं; न उन्हें नींद आती थी, न भूख प्यास लगती थी, आठ पहर उदास रहती थीं.

ऐक दिन वे दोनों बहन अति चिंता कर आपस में कहने लगीं, कि जैसे नृप बिन प्रजा, चंद बिन जामिनी, शोभा नहीं पाती; तैसे कंत बिन कामिनी भी शोभा नहीं पाती; अब अनाथ हो यहां रहना भला नहीं, इस से अपने पिता के घर चल रहिये सो अच्छा. महाराज! वे दोनों रानियां ऐसे आपस में सोच बिचार कर, रथ मंगवाय, उस पर चढ़, मथुरा से चली चली मगध देस में अपने पिता के यहां आईं, औ जैसे श्री कृष्ण बलराम जी ने सब असुरों समेत कंस को मारा, तैसे उन दोनों ने वे वे समाचार अपने पिता से सब कह सुनाया.

सुनते ही जुरासिंधु अति क्रोधकर सभा में आया, औ लगा कहने कि ऐसे बली कौन यदुकुल में उपजे, जिन्हों ने सब असुरों समेत महा बली कंस को मार मेरी बेटियों को रांड किया; मैं अभी अपना सब कटक ले चढ़ धाऊं, औ सब यदुबंसियों समेत मथुरापुरी को जलाय राम कृष्ण को जीता बांध लाऊं, तो मेरा नाम जुरासिंधु, नहीं तो नहीं.

इतना कह उसने तुरंत ही चारों ओर के राजाओं को पत्र लिखे, कि तुम अपना दल ले ले हमारे पास आओ, हम कंस का पलटा ले यदुबंसियों को निर्बंस करेंगे. जुरासिंधु का पत्र पातेही सब देस देस के नरेस, अपना अपना दल साथ ले, झट चले आऐ; औ यहां जुरासिंधु ने भी अपनी सब सेना ठीक ठाक बनाय रक्खी; निदान सब असुर दल साथ ले जुरासिंधु ने जिस समैं मगध देस से मथुरापुरी को प्रस्थान किया, तिस समैं उसके संग तेईस अक्षौहिनी थी. इक्कीस सहस्र आठ सौ सत्तर रथी, औ इतने ही गजपति; ऐक लाख नव सहस्र साढ़े तीन सौ पैदल; औ छसठ सहस्र अश्वपति; यह अक्षौहिनी का प्रमान है.

ऐसी तेईस अक्षौहिनी उस के साथ थी, औ उन में से ऐक ऐक राक्षस जैसा बली था सो मैं कहांतक बर्नन करूं. महाराज! जिस काल जुरासिंधु सब असुर सेना साथ ले धौंसा दे चला,

उस काल दसों दिसा के दिगपाल लगे थरथर कांपने, औ सब देवता मारे डरके भागने; पृथ्वी न्यारी ही बोझ से लगी डाल सी हिलने; निदान कितने एक दिनों में चला चला जा पहुंचा, औ उस ने चारों ओर से मथुरापुरी को घेर लिया; तब नगर निवासी अति भय खाय श्री कृष्णचंद के पास जा पुकारे कि महाराज! जुरासिंधु ने आय चारों ओर से नगर घेरा, अब क्या करें औ किधर जांय.

इतनी बात के सुनते ही हरि कुछ सोच बिचार करने लगे; इस में बलराम जी ने आय प्रभु से कहा कि महाराज! आपने भक्तों का दुख दूर करने के हेतु अवतार लिया है, अब अग्नि तन धारन कर असुर रूपी बन को जलाय, भूमि का भार उतारिये. यह सुन श्री कृष्णचंद उन को साथ ले उग्रसेन के पास गये, औ कहा कि महाराज! हमें तो लड़ने की आज्ञा दीजे, और आप सब यदुबंसियों को साथ ले गढ़ की रक्षा कीजे.

इतना कह जों मात पिता के निकट आये, तों सब नगरनिवासी घिर आये; औ लगे अति व्याकुल हो कहने कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! अब इन असुरों के हाथ से कैसे बचें; तब हरि ने मात पिता समेत सब को भयातुर देख समझाके कहा, कि तुम किसी भांति चिंता मत करो, यह असुर दल जो तुम देखते हो सो पल भर में यहां का यहीं ऐसे बिलाय जायगा, कि जैसे पानी के बबूले पानी में बिलाय जाते हैं. यों कह सब को समझाय बुझाय, ढाढ़स बंधाय, उनसे बिदा हो, प्रभु जों आगे बढ़े, तों देवताओं ने दो रथ शस्त्र भर इनके लिये भेज दिये. वे आय इनके सोंहीं खड़े हुए, तब ये दोनों भाई उन दोनों रथ में बैठलिये.

निकसे दोऊ यदुराय, पहुंचे सु दल में जाय.

जहां जुरासिंधु खड़ा था, तहां जा निकले; देखते ही जुरासिंधु श्री कृष्णचंद से अति अभिमान कर कहने लगा, अरे! तू मेरे सोंहीं से भाग जा, मैं तुझे क्या मारूं, तू मेरी समान का नहीं, जो मैं तुझ पर शस्त्र चलाऊं; भला बलराम को मैं देख लेता हूं. श्री कृष्णचंद बोले, अरे मूरख अभिमानी! तू यह क्या बकता है; जो सूरमा होते हैं सो बड़ा बोल किसी से नहीं बोलते, सब से दीनता करते हैं; काम पड़े अपना बल दिखाते हैं; और जो अपने मुंह अपनी बड़ाई मारते हैं, सो क्या कुछ भले कहाते हैं. कहा है कि गरजता है सो बरसता नहीं, इस से वृथा बकवाद क्या करता है.

इतनी बात के सुनते ही जुरासिंधु ने जों क्रोध किया, तों श्री कृष्ण बलदेव चल खड़े हुए. इनके पीछे वह भी अपनी सब सेना ले धाया, औ उस ने यों पुकारके कह सुनाया, अरे दुष्टो! मेरे आगे से तुम कहां भाग जाओगे, बहुत दिन जीते बचे, तुम ने अपने मन में क्या समझा है, अब जीते न रहने पाओगे; जहां सब असुरों समेत कंस गया है, तहांई सब यदुबंसियों समेत तुम्हें भी भेजूंगा.

महाराज! ऐसा दुष्ट बचन उस असुर के मुख से निकलते ही, कितनी एक दूर जाय दोनों भाई फिर खड़े हुए. श्री कृष्ण जी ने तो सब शस्त्र लिये, औ बलराम जी ने हल मूसल; जो असुर दल उनके निकट गया, तो दोनों बीर ललकारके ऐसे टूटे कि जैसे हाथियों के यूथ पर सिंह टूटे, औ लगा लोहा बाजने.

उस काल मारू जो बाजता था, सो तो मेघ सा गाजता था; औ चारों ओर से राक्षसों का दल जो घिर आया था, सो दल बादल सा छाया था; औ शस्त्रों की झड़ी झड़ी सी लगी थी; उसके बीच श्री कृष्ण बलराम युद्ध करते ऐसे सोभायमान लगते थे, जैसे सघन घन में दामिनी सुहावनी लगती है; सब देवता अपने अपने बिमानों पर बैठे आकाश से देख देख प्रभु का जस गाते थे, औ इन्हीं की जीत मनाते थे; और उग्रसेन समेत सब यदुबंसी अति चिंताकर मन हीं मन पछताते थे, कि हम ने यह क्या किया, जो श्री कृष्ण बलराम को असुर दल में जाने दिया.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि पृथीनाथ! जब लड़ते लड़ते असुरों की बहुत सी सेना कट गई, तब बलदेव जी ने रथ से उतर जरासिंधु को बांध लिया; इस में श्री कृष्णचंद जी ने जा बलराम से कहा कि भाई! इसे जीता छोड़ दो, मारो मत; क्योंकि यह जीता जायगा तो फिर असुरों को साथ ले आवेगा, तिन्हें मार हम भूमि का भार उतारेंगे; औ जो जीता न छोड़ेंगे, तो जो राक्षस भाग गये हैं सो हाथ न आवेंगे. ऐसे बलदेव जी को समझाय प्रभु ने जरासिंधु को छुड़वाय दिया; वह अपने विन लोगों में गया जो रन से भागके बचे थे.

चहुं दिस चाहि कहै पछताय, सिगरी सेना गई बिलाय.
भयो दुःख अति कैसे जीजे, अब घर छांडि तपस्या कीजे.
मंत्री तबै कहै समझाय, तुम से ज्ञानी क्यों पछिताय.
कबहूं हार जीत पुनि होइ, राज देस छांडे नहिं कोइ.

क्या हुआ जो अब की लड़ाई में हारे, फिर अपना दल जोड़ लावेंगे, औ सब यदुबंसियों समेत कृष्ण बलदेव को स्वर्ग पठावेंगे, तुम किसी बात की चिंता मत करो. महाराज! ऐसे समझाय बुझाय जे असुर रन से भागके बचे थे, तिन्हें, औ जरासिंधु को, मंत्री ने घर ले पहुंचाया; औ वह फिर वहां कटक जोड़ने लगा. यहां श्री कृष्ण बलराम रन भूमि में देखते क्या हैं, कि लोहू की नदी बह निकली है; तिस में रथ बिना रथी नाव से बहे जाते हैं; ठौर ठौर हाथी मरे पहाड़ से पड़े दृष्ट आते हैं; उनके घावों से रक्त झरनों की भांति झरता है; तहां महादेव जी भूत प्रेत संग लिये अति आनंद कर नाच नाच गाय गाय मुंडों की माला बनाय बनाय पहनते हैं; भूतनी प्रेतनी जोगिनियां

खप्पर भर भर रक्त पीती हैं; गिद्ध गीदड़ काग लोथों पर बैठ बैठ मास खाते हैं, औ आपस में लड़ते जाते हैं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जितने रथ हाथी घोड़े औ राक्षस उस खेत में रहे थे, तिन्हें पवन ने तो समेट इकठा किया, और अग्नि ने पल भर में सब को जलाय भस्म कर दिया; पंच तत्व पंच तत्व में मिल गये; उन्हें आते तो सब ने देखा, पर जाते किसीने न देखा कि किधर गये. ऐसे असुरों को मार, भूमि का भार उतार, श्री कृष्ण बलराम भक्त हितकारी उग्रसेन के पास आये, दंडवत कर, हाथ जोड़ बोले, कि महाराज! आप के पुन्य प्रताप से असुर दल मार भगाया, अब निर्भय राज कीजे, औ प्रजा को सुख दीजे. इतना बचन इनके मुखसे निकलते ही राजा उग्रसेन ने अति आनंद मान बड़ी बधाई की, औ धर्म राज करने लगे. इस में कितने एक दिन पीछे फिर जरासिंधु उतनी ही सेना ले चढ़ि आया, औ श्री कृष्ण बलदेव जी ने पुनि त्योंही मार भगाया. ऐसे तेईस तेईस अक्षौहिनी ले जरासिंधु सत्रह बेर चढ़ि आया, औ प्रभु ने मार मार हटाया.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! इस बीच नारद मुनि जी के जो कुछ जी में आई, तो वे एकाएकी उठकर कालयमन के यहां गये. इन्हें देखते ही वह सभा समेत उठ खड़ा हुआ, औ उसने दंडवत कर, कर जोड़ पूछा, कि महाराज! आप का आना यहां कैसे भया?

सुनिकै नारद कहै बिचारि, मथुरा में बलभद्र मुरारि.
तो बिन तिन्हें हतै नहिं कोइ, जरासिंधु सों कुछ नहिं होइ.
तू है अमर अति बली, बालक हैं बलदेव औ हरी.

यों कह फिर नारद जी बोले, कि जिसे तू मेघ बरन, कंवल नैन, अति सुंदर बदन, पीतांबर पहरे, पीत पट ओढ़े देखे, तिस का तू पीछा बिन मारे मत छोड़ियो. इतना कह नारद मुनि तो चले गये, औ कालयमन अपना दल जोड़ने लगा. इस में कितने एक दिन बीच उसने तीन करोड़ महा म्लेछ अति भयावने इकठे किये, ऐसे कि जिनके मोटे भुज गले, बड़े दांत, मैले भेष, भूरे केस, नैन लाल घूंघची से, तिन्हें साथ ले, डंका दे, मथुरापुरी पर चढ़ि आया, औ उसे चारों ओर से घेर लिया. उस काल श्री कृष्णचंद जी ने उस का व्योहार देख अपने जी में बिचारा, कि अब यहां रहना भला नहीं, क्योंकि आज यह चढ़ आया है, औ काल को जरासिंधु भी चढ़ि आवे तो प्रजा दुख पावेगी, इससे उत्तम यही है कि यहां न रहिये, सब समेत अनत जाय बसिये. महाराज! हरि ने यों बिचार कर, बिश्वकर्मा को बुलाय, समझाय बुझायके कहा, कि तू अभी जाके समुद्र के बीच एक नगर बनाव,

ऐसा जिस में सब यदुबंसी सुख से रहैं, पर वे यह भेद न जानें कि ये हमारे घर नहीं, औ पलि भर में सब को वहां ले पहुंचाव.

इतनी बात के सुनते ही, जा बिश्वकर्मा ने समुद्र के बीच सुदरसन के ऊपर, बारह योजन का नगर जैसा श्री कृष्ण जी ने कहा था तैसाही रात भर में बनाय, उसका नाम द्वारिका रख, आ हरि से कहा; फिर प्रभु ने उसे आज्ञा दी, कि इसी समैं तू सब यदुबंसियों को वहां ऐसे पहुंचाय दे, कि कोई यह भेद न जाने जो हम कहां आये औ कौन ले आया.

इतना बचन प्रभु के मुख से जों निकला, तों रातों रातही उग्रसेन बसुदेव समेत बिश्वकर्मा ने सब यदुबंसियों को ले पहुंचाया, औ श्री कृष्ण बलराम भी वहां पधारे. इस बीच समुद्र की लहर का शब्द सुन सब यदुबंसी चौंक पड़े, औ अति अचरज कर आपस में कहने लगे, कि मथुरा में समुद्र कहां से आया, यह भेद कुछ जाना नहीं जाता.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि पृथीनाथ! ऐसे सब यदुबंसियों को द्वारिका में बसाय, श्री कृष्णचंद जी ने बलदेव जी से कहा, कि भाई अब चलके प्रजा की रक्षा कीजे, औ कालयमन का बध. इतना कह दोनों भाई वहां से चल ब्रजमंडल में आये. इति

CHAPTER. LII.

श्री शुकदेव मुनि बोले, कि महाराज! ब्रजमंडल में आते ही श्री कृष्णचंद ने बलराम जी को तो मथुरा में छोड़ा, औ आप रूप सागर, जगत उजागर, पीतांबर पहने, पीत पट ओढ़े, सब सिंगार किये, कालयमन के दल में जाय, उसके सनमुख हो निकले. वह इन्हें देखते ही अपने मन में कहने लगा, कि हो नहो यही कृष्ण है, नारद मुनि ने जो चिन्ह बताये थे सो सब इस में पाये जाते हैं; इन्ही ने कंसादि असुर मारे; जरासिंधु की सब सेना हनी. ऐसे मन ही मन बिचार.

कालयमन यों कहै पुकारि, काहे भागे जात मुरारि.
आय पर्यो अब मोसों काम, ठाढ़े रहौ करौ संग्राम.
जरासिंधु हों नाहीं कंस, यादवकुलकौ करौं बिध्वंस.

हे राजा! यों कह कालयमन अति अभिमान कर, अपनी सब सेना को छोड़ अकेला श्री कृष्णचंद के पीछे धाया; पर उस मूरख ने प्रभु का भेद न पाया. आगे आगे तो हरि भागे जाते थे, औ एक हाथ के अंतर से पीछे पीछे वह दौड़ा जाता था; निदान भागते भागते जब अनेक दूर निकल गये, तब प्रभु एक पहाड़ की गुफा में बड़ गये; वहां जा देखें तो एक पुरुष सोया पड़ा है. ये रठ अपना

पीतांबर उसे उढ़ाय, आप अलग एक ओर छिप रहे; पीछे से कालयमन भी दौड़ता हांफता उस अति अंधेरी कंदरा में जा पहुंचा, औ पीतांबर ओढ़े तिस पुरुष को सोता देख इसने अपने जी में जाना कि यह छल ही छलकर सो रहा है.

महाराज! ऐसे मन हीं मन बिचार, क्रोध कर, उस सोते हुए को एक लात मार, कालयमन बोला, अरे कपटी! क्या मिस कर साध की भांति निचिंताई से सो रहा है, उठ मैं तुझे अबहीं मारता हूं. यों कह इसने उसके ऊपर से पीतांबर झटक लिया; वह नींद से चौंक पड़ा; और जों तिसने इस की ओर क्रोध कर देखा, तों यह जल बल भस्म हो गया. इतनी बात के सुनते ही राजा परीक्षित ने कहा.

यह शुकदेव कहौ समझाय, को वह रह्यौ कंदरा जाय.
ताकी दृष्ट भस्म क्यौं भयौ, काने ताहि महा बर दयौ.

श्री शुकदेव मुनि बोले पृथ्वीनाथ! इक्ष्वाकबंसी क्षत्री मानधाता का बेटा मुचकुंद अति बली महा प्रतापी, जिस का अरि दल दलन जस छाय रहा नौ खंड. एक समैं सब देवता असुरों के सताये, निपट घबराये, मुचकुंद के पास आये, औ अति दीनता कर उन्होंने कहा महाराज! असुर बहुत बढ़े, अब तिनके हाथ से बच नहीं सकते, बेग हमारी रक्षा करे. यह रीति परंपरा से चली आई है, कि जब जब सुर मुनि ऋषि अबल हुए हैं, तब तब उनकी सहायता क्षत्रियों ने करी है.

इतनी बात के सुनते ही मुचकुंद उनके साथ होलिया, औ जाके असुरों से युद्ध करने लगा. इस में लड़ते लड़ते कितने हीं जुग बीत गये, तब देवताओं ने मुचकुंद से कहा कि महाराज! आपने हमारे लिये बहुत श्रम किया, अब कहीं बैठ बिश्राम लीजिये, औ देह को सुख दीजिये.

बहुत दिननि कीनौ संग्राम, गयौ कुटुंब सहित धन धाम.
रह्यौ न कोऊ तहां तिहारे, ताते अब जिन घर पग धारे.

और जहां तुम्हारा मन माने तहां जाओ. यह सुन मुचकुंद ने देवताओं से कहा कृपानाथ! मुझे कहीं दया कर ऐसी एकांत ठौर बताइये, कि जहां जाय मैं निचिंताई से सोऊं, औ कोई न जगावे. इतनी बात के सुनते ही प्रसन्न हो देवताओं ने मुचकुंद से कहा, कि महाराज! आप धौलागिरि पर्वत की कंदरा में जाय सयन कीजिये; वहां तुम्हें कोई न जगावेगा, औ जो कोई जाने अनजाने वहां जाके तुम्हें जगावेगा, तो वह देखते ही तुम्हारी दृष्ट से जल बल राख हो जावेगा.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज! ऐसे देवताओं से बर पाय, मुचकुंद तिस गुफा में रहा था; इससे उस की दृष्ट पड़ते ही कालयमन जलकर छार हो गया.

आगे करुना निधान कान्ह भक्त हितकारी ने मेघ बरन, चंद्रमुख, कंवल नैन, चतुर्भुज हो, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लिये, मार मुकुट, मकराकृति कुंडल, बनमाल औ पीतांबर पहरे, मुचकुंद को दरसन दिया. प्रभु का स्वरूप देखते ही वह अष्टांग प्रनाम कर खड़ा हो, हाथ जोड़ बोला, कि कृपानाथ! जैसे आप ने इस महा अंधेरी कंदरा में आय उजाला कर तम दूर किया, तैसे दयाकर अपना नाम भेद बताय मेरे मन का भी भरम दूर कीजे.

श्री कृष्णचंद बोले, कि मेरे तो जन्म कर्म और गुन हैं घने, वे किसी भांति गने न जांय, कोई कितना ही गने; पर मैं इस जन्म का भेद कहता हूं सो सुनो, कि अबके बसुदेव के यहां जन्म लिया, इससे वासुदेव मेरा नाम हुआ; औ मथुरापुरी में सब असुरों समेत कंस को मैंने ही मार भूमि का भार उतारा; औ सत्रह बेर तेईस तेईस अक्षौहिनी सेना ले जरासिंधु युद्ध करने को चढ़ि आया, सो भी मुझी से हारा; और यह कालयमन तीन करोड़ म्लेछ की भीड़भाड़ ले लड़ने को आया था, सो तुम्हारी दृष्ट से जल मरा. इतनी बात प्रभु के मुख से निकलते ही, सुनकर मुचकुंद को ज्ञान हुआ, तो बोला कि महाराज! आप की माया अति प्रबल है, उस ने सारे संसार को मोहा है, इसी से किसी की कुछ सुध बुद्धि ठिकाने नहीं रहती.

करत कर्म सब सुख के हेत, तातें भारी दुख सहि लेत.
चुभै हाड़ ज्यों स्वान मुख, रुधिर चचोरै आप,
जानत ताही तें चुवत, सुख माने संताप.

और महाराज! जो इस संसार में आया है सो गृह रूपी अंध कूप से बिन आप की कृपा निकल नहीं सकता; इससे मुझे भी चिंता है कि मैं कैसे गृह रूप कूप से निकलूंगा. श्री कृष्ण जी बोले, सुन मुचकुंद, बात तो ऐसे ही है, जैसे तू ने कही, पर मैं तेरे तरने का उपाय बता देता हूं सो तू कर; तैं ने राज पाय, भूमि, धन, स्त्री के लिये अधिक अधर्म किये हैं, सो बिन तप किये न छूटेंगे, इससे उत्तर दिस में जाय तू तपस्या कर, यह अपनी देह छोड़ फिर ऋषि के घर जन्म लेगा, तब तू मुक्ति पदारथ पावेगे. महाराज! इतनी बात जो मुचकुंद ने सुनी, तो जाना कि अब कलियुग आया. यह समझ प्रभु से बिदा हो, दंडवत कर, परिक्रमा दे, मुचकुंद तो बद्रीनाथ को गया; औ श्री कृष्णचंद जी ने मथुरा में आय बलराम जी से कहा,

कालयमन को कियौ निकंद, बद्री दिस पठयौ मुचकुंद.
कालयमन की सेना घनी, तिन घेरी मथुरा आपनी.
आवहु तहां मलेछन मारैं, सकल भूमि कौ भार उतारैं.

ऐसे कह हलधर को साथ ले श्री कृष्णचंद्र मथुरापुरी से निकल वहां आये, जहां कालयमन का कटक खड़ा था; औ आते ही दोनों उनसे युद्ध करने लगे. निदान लड़ते लड़ते जब म्लेछ की सेना प्रभु ने सब मारी, तब बलदेव जी से कहा कि भाई! अब मथुरा की सब संपति ले द्वारिका को भेज दीजे. बलराम जी बोले बहुत अच्छा; तब श्री कृष्णचंद्र ने मथुरा का सब धन निकलवाय, भैंसों, छकड़ों, ऊंटों, हाथियों, पर लदवाय, द्वारिका को भेज दिया. इस बीच फिर जरासिंधु तेईस ही अक्षौहिनी सेना ले मथुरापुरी पर चढ़ि आया, तब श्री कृष्ण बलराम अति घबरायके निकले, औ उसके सनमुख जा दिखाई दे विसके मन का संताप मिटाने को भाग चले; तद मंत्री ने जरासिंधु से कहा कि महाराज! आप के प्रताप के आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरे; देखो वे दोनों भाई कृष्ण बलराम, छोड़के सब धन धाम, लेके अपना प्रान, तुम्हारे त्रास के मारे नंगे पाओं भागे चले जाते हैं. इतनी बात मंत्री से सुन जरासिंधु भी यों पुकारकर कहता हुआ सेना ले उन के पीछे दौड़ा.

काहे डरके भागे जात, ठाढ़े रहौ करौ कछु बात.
परत उठत कंपत क्यों भारी, आई है ढिग मीच तिहारी.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि बोले कि पृथीनाथ! जब श्री कृष्ण औ बलदेव जी ने भाग के लोक रीति दिखाई, तब जरासिंधु के मन से पिछला सब शोक गया, औ अति प्रसन्न हुआ, ऐसा कि जिस का कुछ बरनन नहीं किया जाता. आगे श्री कृष्ण बलराम भागते भागते एक गौतम नाम पर्वत, ग्यारह योजन ऊंचा था, तिस पर चढ़गये, और उस की चोटी पर जाय खड़े भये.

देख जरासिंधु कहै पुकारि, शिखर चढ़े बलभद्र मुरारि.
अब किम हम सों जांय पलाय, या पर्वत को देऊ जलाय.

इतना बचन जरासिंधु के मुख से निकलते ही, सब असुरों ने उस पहाड़ को जा घेरा, औ नगर नगर गांव गांव से काठ कबाड़ लाय लाय उसके चारों ओर चुन दिया; तिस पर गड़गूदड़ घी तेल से भिगो डालकर आग लगादी. जब वह आग पर्वत की चोटी तक लहकी, तद उन दोनों भाइयों ने वहां से इस भांति द्वारिका की बाट ली कि किसी ने उन्हें जाते भी न देखा, और पहाड़ जलकर भस्म होगया. उस काल जरासिंधु श्री कृष्ण बलराम को उस पर्वत के संग जल मरा जान, अति सुखमान, सब दल साथ ले, मथुरापुरी में आया, और वहां का राज ले, नगर में ढंढोरा दे, उस ने अपना थाना बैठाया; जितने उग्रसेन बसुदेव के पुराने मंदिर थे सो सब ढवाए; और उस ने आप अपने नये बनवाए.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज! इस रीति से जरासिंधु को

धोखा दे श्री कृष्ण बलराम जी तो द्वारिका में जाय बसे; और जरासिंधु भी मथुरा नगरी से चल सब सेना ले अति आनंद करता निसंक हो, अपने घर आया. इति

CHAPTER. LIII.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! अब आगे कथा सुनिये, कि जब कालयमन को मार, मुचकुंद को तार, जरासिंधु को धोखा दे, बलदेव जी को साथ ले, श्री कृष्णचंद आनंद कंद जों द्वारिका में गये, तों सब यदुबंसियों के जी में जी आया, औ सारे नगर में सुख छाया; सब चैन आनंद से पुरबासी रहने लगे. इस में कितने एक दिन पीछे एक दिन कई एक यदुबंसियों ने राजा उग्रसेन से जा कहा, कि महाराज! अब कहीं बलराम जी का बिवाह किया चाहिये; क्योंकि ये सामर्थ हुए. इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने एक ब्राह्मन को बुलाय, अति समझाय बुझायके कहा, कि देवता! तुम कहीं जाकर अच्छा कुल घर देख बलराम जी की सगाई कर आओ. इतना कह रोली, अक्षत, रुपया, नारियल, मंगवा, उग्रसेन जी ने उस ब्राह्मन को तिलक कर, रुपया नारियल दे बिदा किया. वह चला चला अनंता देस में राजा रेवत के यहां गया, और उस की कन्या रेवती से बलराम जी की सगाई कर, लग्न ठहराय, उसके ब्राह्मन के हाथ टीका लिवाय, द्वारिका में राजा उग्रसेन के पास ले आया, और उस ने वहां का सब ब्यौरा कह सुनाया. सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति प्रसन्न हो, उस ब्राह्मन को बुलाय, जो टीका ले आया था, मंगलाचार करवाय टीका लिया, और उसे बहुत सा धन दे बिदा किया; पीछे आप सब यदुबंसियों को साथ ले बड़ी धूमधाम से अनंता देस में जाय बलराम जी का ब्याह कर लाए.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि ने राजा से कहा कि पृथ्वीनाथ! इस रीति से तो सब यदुबंसी बलदेव जी का ब्याह कर लाए; और श्री कृष्णचंद जी आप ही भाई को साथ ले, कुंडलपुर में जाय, भीष्मक नरेस की बेटी रुक्मिनी, सिसुपाल की माग को असुरों से युद्ध कर छीन लाए, उसे घर में लाय ब्याह लिया. यह सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा, कि कृपासिंधु! भीष्मक सुता रुक्मिनी को श्री कृष्णचंद कुंडलपुर में जाय, असुरों को मार, किस रीति से लाए, सो तुम मुझे समझाकर कहो. श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! आप मन लगाय सुनये, मैं सब भेद वहां का समझाकर कहता हूं, कि विदर्भ देस में कुंडलपुर नाम एक नगर, तहां भीष्मक नाम नरेस, जिसका जस छाय रहा चहुं देस. उन के घर में जाय श्री सीता जी ने औतार लिया; कन्या के होते ही राजा भीष्मक ने जोतिषियों को बुलाय भेजा; तिन्हों ने आय लग्न साध उस लड़की का नाम

रुक्मिनी धरकर कहा, कि महाराज! हमारे बिचार में ऐसे आता है कि यह कन्या अति सुशील सुभाव, रूप निधान, गुनों में लक्ष्मी समान होगी, और आदि पुरुष से ब्याही जायगी.

इतना बचन जोतिषियों के मुख से निकलते ही राजा भीष्मक ने अति सुख मान बड़ा आनंद किया, औ बहुत सा कुछ ब्राह्मनों को दिया. आगे वह लड़की चंद्र कला की भांति दिन दिन बढ़ने लगी, और बाल लीला कर कर मात पिता को सुख देने; इस में कुछ बड़ी हुई तो लगी सखी सहेलियों के साथ अनेक अनेक प्रकार के अनूठे अनूठे खेल खेलने. एक दिन वह मृग नैनी, पिक बैनी, चंपक बरनी, चंद मुखी, सखियों के संग आंखमिचौली खेलने गई, तो खेल समैं सब सखियां उसे कहने लगीं, कि रुक्मिनी! तू हमारा खेल खोने को आई है; क्योंकि जहां तू हमारे साथ अंधेरे में छिपती है, तहां तेरे मुख चंद की जोति से चांदना होजाता है, इससे हम छिप नहीं सकतीं. यह सुन वह हंसकर चुप हो रही.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने कहा कि महाराज! इसी भांति वह सखियों के संग खेलती थी, औ दिन दिन छवि उस की दूनी होती थी; कि इस बीच एक दिन नारद जी कुंडलपुर में आये, औ रुक्मिनी को देख, श्री कृष्णचंद के पास द्वारिका में जाय उन्हों ने कहा, कि महाराज! कुंडलपुर में राजा भीष्मक के घर एक कन्या रूप, गुन, शील की खान, लक्ष्मी की समान, जन्मी है, सो तुम्हारे योग है. यह भेद जब नारद मुनि से सुन पाया, तभी से रात दिन हरि ने अपना मन उस पर लगाया. महाराज! इस रीति करके तो श्री कृष्णचंद ने रुक्मिनी का नाम गुन सुना, और जैसे रुक्मिनी ने प्रभु का नाम औ जस सुना सो कहता हूं, कि एक समैं देस देस के कितने एक जाचकों ने जाय, कुंडलपुर में श्री कृष्णचंद का जस गाय, जैसे प्रभु ने मथुरा में जन्म लिया, औ गोकुल वृंदाबन में जाय ग्वाल बालों के संग मिल बाल चरित्र किया, और असुरों को मार भूमि का भार उतार यदुबंसियों को सुख दिया था, तैसे ही गाय सुनाया. हरि के चरित्र सुनते ही सब नगर निवासी अति आश्चर्य कर आपस में कहने लगे, कि जिनकी लीला हम ने कानों सुनी, तिन्हें कब नैनों देखेंगे. इस बीच जाचक किसी ढब से राजा भीष्मक की सभा में जाय प्रभु के चरित्र औ गुन गाने लगे; उस काल,

चढ़ी अटा रुक्मिनी सुंदरी, हरि चरित्र धुन श्रवननि परी.
अचरज करै भूलि मन रहै, फेर उझककर देखनि चहै.
सुनकै कुंवरि रही मन लाय, प्रेम लता उर उपजी आय.
भई मगन बिह्वल सुंदरी, बाकी सुध बुध हरि गुन हरी.

यों कह, श्री शुकदेव जी बोले, कि पृथीनाथ! इस भांति श्री रुक्मिनी जी ने प्रभुका जस औ नाम सुना, तो तिसी दिन से एक दिन आठ पहर चौंसठ घड़ी सोते, जागते, बैठे, खड़े, चलते, फिरते, खाते, पीते, खेलते, तिन्हीं का ध्यान किये रहे, और गुन गाया करे; नित भोरही उठे, स्नान कर मट्टी की गौर बनाय, रोली, अक्षत, पुष्प चढ़ाय, धूप, दीप, नैवेद्य कर मनाय, हाथ जोड़, सिर नाय, उसके आगे कहा करे.

मो पर गौरि कृपा तुम करौ, यदुपति पति दे मम दुख हरौ.

इसी रीति से सदा रुक्मिनी रहने लगी. एक दिन सखियों के संग खेलती थी, कि राजा भीष्मक उसे देख अपने मन में चिंता कर कहने लगा, कि अब यह हुई ब्याहन जोग, इसे शीघ्र कहीं न दीजे तो हंसेंगे लोग. कहा है, कि जिस के घर में कन्या बड़ी होय, तिस का दान, पुन्य, जप, तप, करना वृथा है; क्योंकि किये से तबतक कुछ धर्म नहीं होता, जबतक कन्या के ऋन से न उत्तरन होय. यों बिचार, राजा भीष्मक अपनी सभा में आय, सब मंत्री औ कुटुंब के लोगों को बुलाय बोले, भाइयो! कन्या ब्याहन जोग हुई, इस के लिये कुलवान, गुन खान, रूप निधान, शीलवान, कहीं बर ढूंढा चाहिये.

इतनी बात के सुनते ही तिन लोगों ने अनेक अनेक देसों के नरेसों के कुल, गुन, रूप, औ पराक्रम कह सुनाए; पर राजा भीष्मक के चित में किसी की बात कुछ न आई. तब उन का बड़ा बेटा, जिस का नाम रुक्म, सो कहने लगा, कि पिता! नगर चंदेरी का राजा सिसुपाल अति बलवान है, और सब भांति से हमारी समान; तिससे रुक्मिनी की सगाई वहां कीजे, औ जगत में जस लीजे. महाराज! जद उस की भी बात राजा ने सुनी अनसुनी की, तद तो रुक्मकेश नाम उन का छोटा लड़का बोला,

रुक्मिनि पिता कृष्ण कों दीजे, बसुदेव सों सगाई कीजे.
यह सुनि भीष्मक हरषे गात, कही पूत तें नीकी बात.
तू बालक सब सों अति ज्ञानी, तेरी बात भली हम मानी.

कहा है

छोटे बड़ेनि पूछके, कीजै मन परतीति,
सार बचन गहलीजिये, यही जगत की रीति.

ऐसे कह फिर राजा भीष्मक बोले, कि यह तो रुक्मकेश ने भली बात कही; यदुबंसियों में राजा सूरसेन बड़े जसी औ प्रतापी हुए, तिन हीं के पुत्र बसुदेव जी हैं, सो कैसे हैं, कि जिन के

घर में आदि पुरुष अविनासी, सकल देवन के देव, श्री कृष्णचंद जी ने जन्म ले, महा बली कंसादिक राक्षसों को मार, औ भूमि का भार उतार, यदुकुल को उजागर किया; और सब यदुबंसियों समेत प्रजा को सुख दिया. ऐसे जो द्वारिका नाथ श्री कृष्णचंद जी को रुक्मिनी दें तो जगत में जस औ बड़ाई लें. इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग अति प्रसन्न हो बोले, कि महाराज! यह तो तुम ने भली बिचारी, ऐसा बर घर और कहीं न मिलेगा, इससे उत्तम यही है कि श्री कृष्णचंद ही को रुक्मिनी ब्याह दीजे. महाराज! जब सब सभा के लोगों ने यों कहा, तब राजा भीष्मक का बड़ा बेटा, जिस का नाम रुक्म, सो सुन निपट झुंझलायके बोला,

समझ न बोलत महागंवार, जानत नहीं कृष्ण ब्योहार.
सोरह बरस नंद के रह्यौ, तब अहीर सब काहू कह्यौ.
कामरि ओढ़ी गाय चराई, बरहे बैठि छाक तिन खाई.

वह तो गंवार ग्वाल है, जिस की जात पांत का क्या ठिकाना; और जिस के मा बाप ही का भेद नहीं जाना जाता, उसे हम पुत्र किस का कहैं. कोई नंद गोप का जानता है; कोई बसुदेव का कर मानता है; पर आजतक यह भेद किसी ने नहीं पाया कि कृष्ण किस का बेटा है, इसी से जो जिस के मन में आता है सो गाता है. महाराज! हमें सब कोई जानता मानता है, और यदुबंसी राजा कब भये; क्या हुआ जो थोड़े दिनों से बलकर उन्हों ने बड़ाई पाई, पहला कलंक तो अब न छूटेगा; वह उग्रसेन का चाकर कहाता है, जिस से सगाई कर क्या हम कुछ संसार में जस पावेंगे. कहा है, ब्याह, बैर, और प्रीति, समान से करिये तो शोभा पाइये; और जो कृष्ण को देंगे तो लोग कहेंगे ग्वाल का साला, तिस से सब जायगा नाम औ जस हमारा.

महाराज! यों कह फिर रुक्म बोला, कि नगर चंदेरी का राजा सिसुपाल बड़ा बली औ प्रतापी है, उस के डर से सब थरथर कांपते हैं, और परंपरा से उन के घर में राज गादी चली आती है, इस से अब उत्तम यही है कि रुक्मिनी उसी को दीजे, और मेरे आगे फेर कृष्ण का नाम भी न लीजे. इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग मारे डर के मन ही मन अछतापछता के चुप होरहे, और राजा भीष्मक भी कुछ न बोला. इस में रुक्म ने जोतिषी को बोलाय, शुभ दिन लग्न ठहराय, एक ब्राह्मन के हाथ राजा सिसुपाल के यहां टीका भेज दिया. वह ब्राह्मन टीका लिये चला चला नगर चंदेरी में जाय राजा सिसुपाल की सभा में पहुंचा; देखते ही राजा ने प्रनाम कर जब ब्राह्मन से पूछा, कहो देवता, आप का आना कहां से हुआ, और यहां किस मनोरथ के लिये आये? तब तो उस बिप्र ने असीस दे अपने आने का सब ब्यौरा कहा. सुनते ही

प्रसन्न हो राजा सिसुपाल ने अपना परोहित बुलाय टीका लिया, औ तिस ब्राह्मन को बहुत सा कुछ दे बिदा किया. पीछे जुरासिंधु आदि सब देस देस के नरेसों को नेोत बुलाया; वे अपना दल ले ले आये, तब यह भी अपना सब कटक ले ब्याहन चढ़ा. उस ब्राह्मन ने आ राजा भीष्मक से कहा जो टीका लेगया था, कि महाराज! मैं राजा सिसुपाल को टीका दे आया, वह बड़ी धूमधाम से बरात ले ब्याहन को आता है; आप अपना कार्य कीजे.

यह सुन राजा भीष्मक पहले तो निपट उदास हुए, पीछे कुछ सोच समझ मंदिर में जाय उन्होंने पटरानी से कहा; वह सुनकर लगी मंगलामुखी औ कुटुंब की नारियों को बुलवाय, मंगलाचार करवाय, ब्याह की सब रीति भांति करने; फिर राजा ने बाहर आ, प्रधान औ मंत्रियों को आज्ञा दी, कि कन्या के बिवाह में हमैं जो जो वस्तु चाहिये सो सो सब इकठी करो. राजा की आज्ञा पाते ही मंत्री औ प्रधानों ने सब वस्तु बात की बात में बनवाय मंगवाय लाय धरी; लोगों ने देखा सुना तो यह चरचा नगर में फैली, कि रुक्मिनी का बिवाह श्री कृष्णचंद से होता था, सो दुष्ट रुक्म ने न होने दिया, अब सिसुपाल से होगा.

इतनी कथा सुनाय श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि पृथीनाथ! नगर में तो घर घर यह बात हो रही थी; औ राजमंदिर में नारियां गाय बजायके रीति भांति करती थीं; ब्राह्मन वेद पढ़ पढ़ टेहले करवाते थे; ठौर ठौर दुंदभी बाजते थे; बार बार सपल्लव केले के खंभ गाड़ गाड़, सोने के कलस भरभर, लोग धरते थे; औ तोरन बंदनवारें बांधते थे; और एक ओर नगर निवासी न्यारे ही हाट, बाट, चौहटे, झाड़ बुहार, पट से पाटते थे; इस भांति घर औ बाहर में धूम मच रही थी, कि उसी समैं दो चार सखियों ने जा रुक्मिनी से कहा, कि,

तोहि रुक्म सिसुपालहि दई, अब तू रुक्मिनि रानी भई.
बोली सोच नायकर सीस, मन बच मेरे पन जगदीस.

इतना कह रुक्मिनी ने अति चिंता कर, एक ब्राह्मन को बुलाय, हाथ जोड़, उस की बहुत सी बिनती औ बड़ाई कर, अपना मनोरथ उसे सब सुनायके कहा, कि महाराज! मेरा संदेसा द्वारिका ले जाओ, और द्वारिकानाथ को सुनाय उन्हें साथ कर ले आओ, तो मैं तुम्हारा बड़ा गुन मानूंगी, औ यह जानूंगी कि तुमने हीं दया कर मुझे श्री कृष्ण बर दिया.

इतनी बात के सुनते ही वह ब्राह्मन बोला, अच्छा तुम संदेसा कहो मैं लेजाऊंगा, औ श्री कृष्णचंद को सुनाऊंगा; वे कृपानाथ हैं, जो कृपा कर मेरे संग आवेंगे तो लेआऊंगा. इतना बचन ज्यों ब्राह्मन के मुख से निकला, त्योंहीं रुक्मिनी जी ने एक पाती प्रेम रंग राती लिख उसके हाथ दी,

और कहा कि श्री कृष्णचंद आनंदकंद को पाती दे, मेरी ओर से कहियो, कि उस दासी ने कर जोड़ अति बिनती कर कहा है, जो आप अंतरजामी हैं, घट घट की जानते हैं, अधिक क्या कहूंगी, मैंने तुम्हारी सरन ली है, अब मेरी लाज तुम्हें है, जिस में रहे सो कीजे, और इस दासी को आय बेग दरसन दीजे.

महाराज! ऐसे कह सुन जब रुक्मिनी जी ने उस ब्राह्मन को बिदा किया, तब वह प्रभु का ध्यान कर, नाम लेता, द्वारिका को चला, और हरि इच्छा से बात के कहते जा पहुंचा. वहां जाय देखे तो समुद्र के बीच वह पुरी है, जिस के चहुं ओर बड़े बड़े पर्वत औ बन उपबन शोभा दे रहे हैं; तिन में भांति भांति के पशु पक्षी बोल रहे हैं; औ निरमल जल भरे सुथरे सरोवर, तिन में कंवल डहडहाय रहे, तिन पर भौंरों के झुंड के झुंड गूंज रहे; और तीर पै हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे; कोसों तक अनेक अनेक प्रकार के फल फूलों की बाड़ियां चली गई हैं; तिन की बाड़ों पर पनवाड़ियां लहलहा रही हैं; बावड़ी इंदारों पे खड़े मीठे सुरों से गाय गाय माली रहंट परोहे चलाय चलाय, ऊंचे नीचे नीर सींच रहे हैं; और पनघटों पर पनहारियों के ठट्ठ के ठट्ठ लगे हुए हैं.

यह छवि निरख हरष, वह ब्राह्मन जों आगे बढ़ा, तों देखता क्या है, कि नगर के चारों ओर अति ऊंचा कोट, उस में चार फाटक, तिन में कंचन खचित जड़ाऊ किवाड़ लगे हुए हैं; औ पुरी के भीतर चांदी सोने के मनिमय पचखने, सतखने, मंदिर, ऊंचे ऐसे, कि आकाश से बातें करें, जगमगाय रहे हैं; तिनके कलस कलसियां बिजली सी चमकती हैं; बरन बरन की ध्वजा पताका फहराय रहीं हैं; खिड़की, झरोखों, मोखों, जालियों से सुगंध की लपटें आय रहीं हैं; द्वार द्वार सपल्लव केले के खंभ औ कंचन कलस भरे धरे हैं; तोरन, बंदनवारें बंधी हुई हैं; और घर घर आनंद के बाजन बाज रहे हैं; ठौर ठौर कथा पुरान औ हरि चरचा होरही है; अठारह बरन सुख चैन से बास करते हैं; सुदरसन चक्र पुरी की रक्षा करता है.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले, कि राजा! ऐसी जो सुंदर सुहावनी द्वारिकापुरी, तिसे देखता देखता वह ब्राह्मन राजा उग्रसेन की सभा में जा खड़ा हुआ, और असीस कर वहां इसने पूछा, कि श्री कृष्णचंद जी कहां बिराजते हैं? तब किसी ने इसे हरि का मंदिर बताय दिया. यह जो द्वार पर जाय खड़ा हुआ, तों द्वारपालों ने इसे देख दंडवत कर पूछा,

कोहौ आप कहां तें आये, कौन देस की पाती लाये.

यह बोला, ब्राह्मन हूं, औ कुंडल पुर का रहनेवाला; राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिनी, उस की

चीठी श्री कृष्णचंद को देने आया हूं. इतनी बात के सुनते ही पौरियों ने कहा, महाराज! आप मंदिर में पधारिये, श्री कृष्णचंद सोहीं सिंहासन पर बिराजते हैं. बचन सुन ब्राह्मन जो भीतर गया, तों हरि ने देखते ही सिंहासन से उतर, दंडवत कर, अति आदर मान किया, औ सिंहासन पर बिठाय, चरन धोय, चरनामृत लिया, और ऐसे सेवा करने लगे, जैसे कोई अपने इष्ट की सेवा करे; निदान प्रभु ने सुगंध उबटन लगाय, न्हिलाय धुलाय, पहले तो उसे षट रस भोजन करवाया, पीछे बीड़ा दे, केसर चंदन से चरच, फूलों की माला पहिराय, मनिमय मंदिर में लेजाय, एक सुथरे जड़ाऊ खट छप्पर में लिटाया. महाराज! वह भी बाट का हारा थका तो था ही, लेटते ही सुख पाय सोगया. श्री कृष्न जी कितनी एक बेर तक तो उस की बातें सुनने की अभिलाषा किये वहां बैठे, मन ही मन कहते रहे कि अब उठे अब उठे; निदान जब देखा कि न उठा, तब आतुर हो, उसके पैंताने बैठ, लगे पांव दाबने. इस में उस की नींद टूटी तो वह उठ बैठा, तद हरि ने विस की क्षेम कुशल पूछ, पूछा,

नीकौ राज देस तुम तनौं, हम सौं भेद कहौ आपनौं.
कौन काज यहां आवन भयो, दरस दिखाय हमें सुख दयौ.

ब्राह्मन बोला कि कृपा निधान! आप मन दे सुनिये, मैं अपने आने का कारन कहता हूं; कि महाराज! कुंडलपुर के राजा भीष्मक की कन्या ने जब से आप का नाम औ गुन सुना है, तभी से वह निस दिन तुम्हारा ध्यान किये रहती है, औ कंवल चरन की सेवा किया चाहती थी, और संयोग भी आय बना था, पर बात बिगड़ गई. प्रभु बोले सो क्या? ब्राह्मन ने कहा, दीनदयाल! एक दिन राजा भीष्मक ने अपने सब कुटुंब औ सभा के लोगों को बुलायके कहा, कि भाइयो! कन्या ब्याहन जोग भई, अब इस के लिये बर ठहराया चाहिये. इतना बचन राजा के मुख से निकलते ही, विन्होंने अनेक अनेक राजाओं का कुल, गुन, नाम, औ पराक्रम, कह सुनाया; पर इन के मन में न आया; तद रुक्मकेश ने आप का नाम किया, तो प्रसन्न हो राजा ने उसका कहना मान लिया, और सब से कहा कि भाइयो! मेरे मन में तो इस की बात पत्थर की लकीर होचुकी. तुम क्या कहते हो. वे बोले, महाराज! ऐसा, घर, बर, जो त्रिलोकी ढूंढियेगा तो भी न पाइयेगा; इस से अब उचित यही है कि बिलंब न कीजे, शीघ्र श्री कृष्णचंद से रुक्मिनी का बिवाह कर दीजे. महाराज! यह बात ठहरचुकी थी, इस में रुक्म ने भांजी मार रुक्मिनी की सगाई सिसुपाल से की, अब वह सब असुर दल साथ ले ब्याहन को चढ़ा है.

इतनी कथा सुनाय श्री सुकदेव जी बोले, कि पृथीनाथ! ऐसे उस ब्राह्मन ने सब समाचार

कह, रुक्मिनी जी की चीठी हरि के हाथ दी, प्रभु ने अति हित से पाती ले छाती से लगाय ली, औ पढ़कर प्रसन्न हो ब्राह्मन से कहा, देवता! तुम किसी बात की चिंता मत करो, मैं तुम्हारे साथ चल, असुरों को मार, उन का मनोरथ पूरा करूंगा. यह सुन ब्राह्मन को तो धीरज हुआ, पर हरि रुक्मिनी का ध्यान कर चिंता करने लगे. इति

CHAPTER. LIV.

श्री शुकदेव जी बोले, कि हे राजा! श्री कृष्णचंद ने ऐसे उस ब्राह्मन को ढाढ़स बंधाय फिर कहा,

जैसें घिसके काठ तें, काढ़हिं ज्वाला जारि,
ऐसे सुंदरि ल्याय हौं, दुष्ट असुर दल मारि.

इतना कह फिर सुथरे वस्त्र, आभूषन, मनमानते पहन, राजा उग्रसेन के पास जाय प्रभु ने हाथ जोड़कर कहा, महाराज! कुंडलपुर के राजा भीष्मक ने अपनी कन्या देने को पत्र लिख, परोहित के हाथ मुझे अकेला बुलाया है, जो आप आज्ञा दें तो जाऊं औ उस की बेटी ब्याह लाऊं.

सुनकर उग्रसेन यों कहै, दूर देस कैसें मन रहै.
तहां अकेले जात मुरारि, मत काहू सों उपजै रारि.

तब तुम्हारे समाचार हमें यहां कौन पहुंचावेगा. यों कह पुनि उग्रसेन बोले, कि अच्छा, जो तुम वहां जाया चाहते हो तो अपनी सब सेना साथ ले दोनों भाई जाओ, औ ब्याह कर शीघ्र चले आओ. वहां किसी से लड़ाई झगड़ा न करना; क्योंकि तुम चिरंजीव हो तो सुंदरि बहुत आय रहेंगी. आज्ञा पाते ही श्री कृष्णचंद बोले, कि महाराज! तुम ने सच कहा, पर मैं आगे चलता हूं, आप कटक समेत बलराम जी को पीछे से भेज दीजेगा.

ऐसे कह हरि उग्रसेन बसुदेव से बिदा हो, उस ब्राह्मन के निकट आये, और रथ समेत अपने दारुक सारथी को बुलवाया. वह प्रभु की आज्ञा पाते ही चार घोड़े का रथ तुरंत जोत लाया; तब श्री कृष्णचंद उस पर चढ़े, औ ब्राह्मन को पास बिठाय, द्वारिका से कुंडलपुर को चले. जों नगर के बाहर निकले, तों देखने क्या हैं कि दाहनी ओर तो मृग के झुंड के झुंड चले जाते हैं, औ सनमुख से सिंह सिंहिनी अपना भक्ष लिये गरजते आते हैं. यह शुभ शुगन देख ब्राह्मन अपने जी में बिचार कर बोला कि महाराज! इस समैं इस शकुन के देखने से मेरे बिचार में यह आता है, कि जैसे ये अपना काज साधके आते हैं तैसे ही तुम भी अपना काज सिद्ध कर आओगे. श्री कृष्णचंद बोले, आप

की कृपा से. इतना कह हरि वहां से आगे बढे, औ नये नये देस, नगर, गांव, देखते देखते कुंडलपुर में जा पहुंचे, तो तहां देखा, कि ठौर ठौर ब्याह की सामा जो संजोय धरी है, तिस से नगर की छबि कुछ और की और होरही है.

गली गली चौहटे छवि, चोआ चंदन सों छिरकावें.
पोय सुपारी मौर किये, बिच बिच कनक नारियर दिये.
हरे पात फल फूल अपार, ऐसी घर घर बंदनवार.
ध्वजा पताका तोरन तने, सुभ्र कलस कंचन के बने.

और घर घर में आनंद होरहा है. महाराज! यह तो नगर की सोभा थी; औ राजमंदिर में जो कुतूहल होरहा था, उसका बरनन कोई क्या करे, वह देखे ही बनिआवे. आगे श्री कृष्णचंद ने सब नगर देख आ राजा भीष्मक की बाड़ी में डेरा किया, औ शीतल छांह में बैठ, ठंडे हो, उस ब्राह्मन से कहा कि देवता! तुम पहले हमारे आने का समाचार रुक्मिनी जी को जा सुनाओ, जो वे धीरज धर अपने मन का दुख हरें, पीछे वहां का भेद हमें आ बताओ, जो हम फिर उसका उपाय करें. ब्राह्मन बोला कि कृपानाथ! आज ब्याह का पहला दिन है, राजमंदिर में बड़ी धूमधाम होरही है; मैं जाता हूं, पर रुक्मिनी जी को अकेली पाय आप के आने का भेद कहूंगा. यों सुनाय ब्राह्मन वहां से चला. महाराज! इधर से हरि तो यों चुपचाप अकेले पहुंचे; और उधर से राजा सिसुपाल जरासिंधु समेत सब असुर दल लिये, इस धूम से आया कि जिस का वारपार नहीं, औ इतनी भीड़ संग कर लाया कि जिस के बोझ से लगा सेसनाग डगमगाने, और पृथ्वी उथलने. उसके आने की सोध पाय, राजा भीष्मक अपने मंत्री औ कुटुंब के लोगों समेत आगू बढ़ लेने गये, और बड़े आदर मान से अगौनी कर, सब को पहरावनी पहराय, रत्न जटित शस्त्र आभूषन औ हाथी घोड़े दे, उन्हें नगर में ले आये, औ जनवासा दिया, फिर खाने पीने का सनमान किया.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले, कि महाराज! अब मैं अंतर कथा कहता हूं, आप चित लगाय सुनिये; कि जब श्री कृष्णचंद द्वारिका से चले, तिसी समै सब यदुबंसियों ने जाय, राजा उग्रसेन से कहा कि महाराज! हम ने सुना है जो कुंडलपुर में राजा सिसुपाल जरासिंधु समेत सब असुर दल ले ब्याहन आया है, और हरि अकेले गये हैं. इस से हम जानते हैं कि वहां श्री कृष्ण जी से और उन से युद्ध होगा. यह बात जानके भी हम अजान हो हरि को छोड़ यहां कैसे रहें; हमारा मन तो मानता नहीं; आगे जो आप आज्ञा कीजे सो करें.

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति भय खाय, घबराय, बलराम जी को निकट बुलाय,

समझायके कहा, कि तुम हमारी सब सेना ले श्री कृष्ण के न पहुंचते न पहुंचते शीघ्र कुंडलपुर जाओ, औ उन्हें अपने संग कर ले आओ. राजा की आज्ञा पाते ही बलदेव जी छप्पन करोड़ यादव जोड़ ले कुंडलपुर को चले. उस काल कटक के हाथी काले, धौले, धूमरे, दल बादल से जनाते थे; औ उन के स्वेत स्वेत दांत बग पांति से; धौंसा मेघ सा गरजता था; औ शस्त्र बिजली से चमकते थे; राते पीले बागे पहने घुड़चढ़ों के टोल के टोल जिधर तिधर दृष्ट आते थे; रथों के तांतों के तांते झमझमाते चले जाते थे; तिन की शोभा निरख निरख, हरष हरष, देवता अति हित से अपने अपने बिमानों पर बैठे आकाश से फूल बरसाय बरसाय, श्री कृष्णचंद आनंद कंद की जै मनाते थे. इस बीच सब दल लिये चले चले, कुंडलपुर में हरि के पहुंचते ही बलराम जी भी जा पहुंचे. यों सुनाय फिर श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! श्री कृष्णचंद रूप सागर, जगत उजागर, तो इस भांति कुंडलपुर पहुंच चुके थे, पर रुक्मिनी इन के आने का समाचार न पाय,

बिलख बदन चितवै चहुं ओर, जैसे चंद मलिन भये भोर.
अति चिंता सुंदरि जिय बाढ़ी, देखे ऊंच अटा पर ठाढ़ी.
चढ़ि चढ़ि झमकै खिरकी द्वार, नैननि तें छांड़े जल धार.
बिलख बदन अति मलिन मन, लेत उसास निसास,
ब्याकुल बरषा नैन जल, सोचत कहति उदास.

कि अबतक क्यों नहीं आये हरि, तिन का तो नाम है अंतरजामी: ऐसी मुझ से क्या चूक पड़ी, जो अबलग तिन्हों ने मेरी सुध न ली; क्या ब्राह्मन वहां नहीं पहुंचा; कै हरि ने मुझे कुरूप जान मेरी प्रीति की प्रतीत न करी; कै गुण सिंधु का आना सुन प्रभु न आये! कल ब्याह का दिन है, औ असुर आय पहुंचा, जो वह कल मेरा कर गहेगा, तो यह पापी जीव हरि बिन कैसे रहैगा. जप, तप, नेम, धर्म, कुछ आड़े न आया, अब क्या करूं और किधर जाऊं, अपनी बरात ले आया सिसुपाल, कैसे बिरमे प्रभु दीन दयाल.

इतनी बात जब रुक्मिनी के मुंह से निकली, तब एक सखी ने तो कहा, कि दूर देस बिन पिता बंधु की आज्ञा हरि कैसे आवेंगे; औ दूसरी बोली, कि जिनका नाम है अंतरजामी दीन दयाल, वे बिन आये न रहेंगे; रुक्मिनी! तू धीरज धर, ब्याकुल न हो; मेरा मन यह हामी भरता है कि अभी आय कोई यों कहता है कि हरि आये. महाराज! ऐसे वे दोनों आपस में बतकहाव कर रही थीं, कि वैसे में ब्राह्मन ने जाय असीस दे कहा, कि श्री कृष्णचंद जी ने आय राज बाड़ी में डेरा किया, औ सब दल लिये बलदेव जी पीछे से आते हैं. ब्राह्मन को देखते और इतनी बात के सुनते ही,

रुक्मिनी जी के जी में जी आया; और उन्हों ने उस काल ऐसा सुख माना, कि जैसे तपी तप का फल पाय सुख माने.

आगे श्री रुक्मिनी जी हाथ जोड़, सिर झुकाय, उस ब्राह्मन के सनमुख कहने लगीं, कि आज तुम ने आय हरि का आगमन सुनाय मुझे प्रान दान दिया, मैं इस के पलटे क्या दूं, जो त्रिलोकी की माया दूं, तो भी तुम्हारे रिन से उरिन न हूं. ऐसे कह मन मार सकुचाय रहीं; तब वह ब्राह्मन अति संतुष्ट हो, आशीरबाद कर, वहां से उठ, राजा भीष्मक के पास गया, और उस ने श्री कृष्ण के आने का ब्यौरा सब समझायके कहा. सुनते प्रमान राजा भीष्मक उठ धाया, औ चला चला वहां आया, जहां बाड़ी में श्री कृष्ण बलराम सुख धाम बिराजते थे. आते ही अष्टांग प्रनाम कर, सनमुख खड़े हो, हाथ जोड़के कहा राजा भीष्मक ने,

मेरे मन बच हे तुम हरी, कहा कहों जो दुष्ट न करी.

अब मेरा मनोरथ पूरन हुआ जो आप ने आय दरसन दिया. यों कह प्रभु के डेरे करवाय, राजा भीष्मक तो अपने घर आय चिंता कर ऐसे कहने लगा,

हरि चरित्र जाने सब कोइ, क्या जानें अब कैसी होइ.

और जहां श्री कृष्ण बलदेव थे, तहां नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष, आय आय, सिर नाय, नाय, प्रभु का जस गाय गाय, सराहि सराहि, आपस में यों कहते थे, कि रुक्मिनी जोग बर श्री कृष्ण ही है; बिधना करै यह जोरी जुरै, औ चिरंजीव रहै. इस बीच दोनों भाइयों के कुछ जो जी में आया तो नगर देखने चले. उस समै ये दोनों भाई जिस हाट, बाट, चौहटे में हो जाते थे, तहीं नर नारियों के ठट्ठ के ठट्ठ लग जाते थे; औ वे इन के ऊपर चोआ, चंदन, गुलाब नीर, छिड़क छिड़क, फूल बरसाय बरसाय, हाथ बढ़ाय बढ़ाय, प्रभु को आपस में यों कह कह बताते थे,

नीलांबर ओढ़े बलराम, पीतांबर पहने घनस्याम.

कुंडल चपल मुकट सिर धरै, कमल नयन चाहत मन हरै.

औ ये देखते जाते थे. निदान सब नगर औ राजा सिसुपाल का कटक देख ये तो अपने दल में आए; औ इन के आने का समाचार सुन राजा भीष्मक का बड़ा बेटा अति क्रोध कर अपने पिता के निकट आय कहने लगा, कि सच कहो, कृष्ण यहां किस का बुलाया आया, यह भेद मैंने नहीं पाया, बिन बुलाए यह कैसे आया; ब्याह काज है सुख का धाम, इस में इस का है क्या काम; ये दोनों कपटी कुटिल जहां जाते हैं, तहां हीं उतपात मचाते हैं; जो तुम अपना भला चाहो तो तुम मुझ से सत्य कहो, ये किस के बुलाए आए.

महाराज! रुक्म ऐसे पिता को धमकाय, यहां से उठ, सात पांच करता वहां गया, जहां राजा सिसुपाल औ जरासिंधु अपनी सभा में बैठे थे; औ उन से कहा, कि यहां राम कृष्ण आये हैं, तुम अपने सब लोगों को जता दो, जो सावधानी से रहैं. इन दोनों भाइयों का नाम सुनते ही, राजा सिसुपाल तो हरि चरित्र का लख ब्यौहार, जी हार, करने लगा मन हीं मन बिचार, औ जरासिंधु कहने, कि सुनो, जहां ये दोनों आवे हैं, तहां कुछ न कुछ उपद्रव मचावे हैं; ये महा बली औ कपटी हैं, इन्हों ने ब्रज में कंसादि बड़े बड़े राक्षस सहज सुभाव ही मारे, इन्हें तुम मत जानो बारे; ये कभी किसी से लड़कर नहीं हारे, श्री कृष्ण ने सत्रह बेर मेरा दल हना, जब मैं अठारवीं बेर चढ़ आया, तब यह भाग पर्वत पै जा चढ़ा, जों मैंने उस में आग लगाई, तो यह छलकर द्वारिका को चला गया.

याकौ काहू भेद न पायौ, अब यहां करन उपद्रव आयौ.
है यह छली महा छल करै, काहू पै नहिं जान्यौ परै.

इस से अब ऐसा कुछ उपाय कीजे, जिस से हम सबों की पत रहै. इतनी बात जब जरासिंधु ने कही, तब रुक्म बोला, कि वे क्या वस्तु हैं, जिनके लिये तुम इतने भावित हो; तिन्हें तो मैं भली भांति से जानता हूं, कि बन बन गाते नाचते, बेनु बजाते, धेनु चराते, फिरते थे; वे बालक गंवार युद्ध बिद्या की रीति क्या जानें, तुम किसी बात की चिंता अपने मन में मत करो, हम सब यदुबंसियों समेत कृष्ण बलराम को छिन भर में मार हटावेंगे.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! उस दिन रुक्म तो जरासिंधु औ सिसुपाल को समझाय बुझाय, ढाढ़स बंधाय, अपने घर आया; और उन्हों ने सात पांच कर रात गंवाई. भोर होते ही इधर राजा सिसुपाल औ जरासिंधु तो ब्याह का दिन जान बरात निकालने की धूमधाम में लगे; और उधर राजा भीष्मक के यहां भी मंगलाचार होने लगे; इस में रुक्मिनी जी ने उठते ही एक ब्राह्मन के हाथ, श्री कृष्णचंद से कहला भेजा, कि कृपा निधान! आज ब्याह का दिन है. दो घड़ी दिन रहे नगर के पूरब देवी का मंदिर है, तहां मैं पूजा करने जाऊंगी. मेरी लाज तुम्हें है, जिस में रहे सो करियेगा.

आगे पहर एक दिन चढ़े सखी सहेली औ कुटुंब की स्त्रियां आईं; तिन्हों ने आते ही पहले आंगन में गजमोतियों का चौक पुरवाय, कंचन की जड़ाऊ चौकी बिछवाय, तिस पर रुक्मिनी को बैठाय, सात सुहागनों से तेल चढ़वाया; पीछे सुगंध उबटन लगाय, न्हिलाय धुलाय, उसे सोलह सिंगार करवाय, बारह आभूषन पहराय, ऊपर राता चोला उढ़ाय, बनी बनाय बिठाया; इतने में घड़ी

चार ऐक दिन पिछला रह गया, उस काल रुक्मिनी बाल, अपनी सब सखी सहेलियों को साथ ले, बाजेगाजे से देवी की पूजा करने को चली, तो राजा भीष्मक ने अपने लोग रखवाली को उस के साथ कर दिये.

ये समाचार पाय कि राजकन्या नगर के बाहर देवी पूजने चली है, राजा सिसुपाल ने भी श्री कृष्नचंद के डर से अपने बड़े बड़े रावत, सावंत, सूर, बीर, जोधाओं को बुलाय, सब भांति ऊंच नीच समझाय बुझाय, रुक्मिनी जी की चौकसी को भेज दिया. वे भी आय अपने अपने अस्त्र शस्त्र संभाल राजकन्या के संग हो लिये. उस बिरियां रुक्मिनी जी सब सिंगार किये, सखी सहेलियों के झुंड के झुंड लिये, अंतर पट की ओट में औ काले काले राक्षसों के कोट में जाते, ऐसी सोभायमान लगती थीं, कि जैसे स्याम घटा के बीच तारा मंडल समेत चंद; निदान कितनी ऐक बेर में चलीं चलीं देवी के मंदिर में पहुंचीं; वहां जाय हाथ पांव धोय, आचमन कर, सुद्ध होय, राजकन्या ने पहले तो चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य कर, श्रद्धा समेत बेद की बिधि से देवी की पूजा की, पीछे ब्राह्मनियों को इच्छा भोजन करवाय, सुथरी तीयलें पहराय, रोली की खोड़ काढ़, अक्षत लगाय, उन्हें दक्षिना दी, औ उन से असीस ली.

आगे देवी की परिक्रमा दे, वह चंद मुखी, चंपक बरनी, मृग नयनी, पिक बयनी, गज गौनी, सखियों को साथ लें, हरि के मिलने की चिंता किये, जों वहां से निचिंत हो चलने को हुई, तों श्री कृष्नचंद भी अकेले रथ पर बैठ वहां पहुंचे, जहां रुक्मिनी के साथी सब जोधा अस्त्र शस्त्र से जकड़े खड़े थे. इतना कह श्री सुकदेव जी बोले कि,

पूजि गौर जब ही चली, ऐक कहति अकुलाय,
सुन सुंदरि आये हरी, देख ध्वजा फहराय.

यह बात सखी से सुन, औ प्रभु के रथ की बैरख देख, राजकन्या अति आनंद कर फूली अंग न समाती थी; औ सखी के हाथ पर हाथ दिये, मोहनी रूप किये, हरि के मिलने की आस लिये, कुछ कुछ मुसकुराती, ऐसे सब के बीच मंद गति जाती थीं, कि जिस की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती. आगे श्री कृष्नचंद को देखते ही सब रखवाले भूले से खड़े हो रहे, औ अंतर पट उन के हाथ से छूट पड़ा; इस मे मोहनी रूप से रुक्मिनी जी को जो उन्हों ने देखा, तो और भी मोहित हो ऐसे सिथिल हुए, कि जिन्हें अपने तन मन की भी सुध नथी.

भृकुटी धनुष चढ़ाय, अंजन बरुनी पनचकै,
लोचन बान चलाय, मारे पै जीवत रहे.

महाराज! उस काल सब राक्षस तो चित्र के से काढ़े खड़े देखते ही रहे, औ श्री कृष्णचंद्र सब के बीच रुक्मिनी के पास रथ बढ़ाय जाय खड़े हुए. प्रान पति को देखते ही उस ने सकुचकर मिलने को जों हाथ बढ़ाया, तों प्रभु ने बांऐं हाथ से उठाय उसे रथ पर बैठाया,

कांपत गात सकुच मन भारी, छांड सबन हरि संग सिधारी.
जों बैरागी छाडै ग्रेह, कृष्ण चरन सों करै सनेह.

महाराज! रुक्मिनी जी ने तो जप, तप, ब्रत, पुन्य किये का फल पाया, औ पिछला दुख सब गंवाया; बैरी अस्त्र शस्त्र लिये खड़े मुख देखते रहे; प्रभु उन के बीच से रुक्मिनी को ले ऐसे चले कि,

जों बक झुंडनि स्यार के, परै सिंह बिच आय,
अपनो भक्षन लेइकै, चलै निडर घहराय.

आगे श्री कृष्णचंद के चलते ही बलराम जी भी पीछे से धौंसा दे, सब दल साथ ले जा मिले. इति

CHAPTER. LV.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! कितनी एक दूर जाय श्री कृष्णचंद ने रुक्मिनी जी को सोच संकोचयुत देखकर कहा, कि सुंदरि! अब तुम किसी बात की चिंता मत करो, मैं शंख ध्वनि कर सब तुम्हारे मन का डर हरूंगा, औ द्वारिका में पहुंच बेद की बिधि से बरूंगा. यों कह प्रभु ने उसे अपनी माला पहिराय, बांईं ओर बैठाय, ज्यों शंख धुनि करी, त्यों सिसुपाल औ जरासिंधु के साथी सब चौंक पड़े; यह बात सारे नगर में फैल गई, कि हरि रुक्मिनी को हर ले गये.

इस में रुक्मिनी हरन अपने तिन लोगों के मुख से सुन, कि जो चौकसी को राजकन्या के संग गये थे, राजा सिसुपाल औ जरासिंधु अति क्रोध कर, झिलम, टोप, पहन, पेटी बांध, सब शस्त्र लगाय, अपना अपना कटक ले लड़ने को श्री कृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े, औ उनके निकट जाय, आयुध संभाल संभाल ललकारे, अरे भागे क्यों जाते हो, खड़े रहो, शस्त्र पकड़ लड़ो! जो क्षत्री सूर बीर हैं, वे खेत में पीठ नहीं देते. महाराज! इतनी बात के सुनते ही यादव फिर सनमुख हुए, और लगे दोनों ओर से शस्त्र चलने उस काल रुक्मिनी बाल अति भयमान घूंघट की ओट किये, आंसू भर भर लंबी सांसें लेती थी, औ प्रीतम का मुख निरख निरख मन ही मन बिचार कर यों कहती थी, कि ये मेरे लिये इतना दुख पाते हैं. अंतरजामी प्रभु रुक्मिनी के मन का भेद जान बोले, कि सुंदरि! तू क्यों डरती है, मेरे देखते ही देखते सब असुर दल को मार भूमि का भार उतारता हूं;

तू अपने मन में किसी बात की चिंता मत करे. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! उस काल देवता अपने अपने बिमानों में बैठे आकाश से देखते क्या हैं कि,

यादव असुरन सों लरत, होत महा संग्राम,
ठाढ़े देखत कृष्ण हैं, करत युद्ध बलराम.

मारू बाजता है; कड़खैत कड़खा गाते हैं; चारन जस बखानते हैं; अश्व पति अश्व पति से, गज पति गज पति से, रथी रथी से, पैदल पैदल से, भिड़ रहे हैं; इधर उधर के सूर बीर पिल पिलके हाथ मारते हैं, औ कायर खेत छोड़ अपना जी ले भागते हैं; घायल खड़े झूमते हैं; कबंध हाथ में तरवार लिये चारों ओर घूमते हैं, औ लोथ पर लोथ गिरती हैं; तिन से लोहू की नदी बह चली है; तिस में जहां तहां हाथी जो मरे पड़े हैं, सो टापू से जनाते हैं, औ सूंड़ें मगर सी; महादेव भूत प्रेत पिशाच संग लिये सिर चुन चुन मुंडमाल बनाय बनाय पहनते हैं; औ गिद्ध, शाल, कूकर, आपस में लड़ लड़ लोथें खैंच खैंच लाते हैं, औ फाड़ फाड़ खाते हैं; कौए आंखें निकाल निकाल धड़ों से ले जाते हैं; निदान देवताओं के देखते ही देखते बलराम जी ने सब असुर दल यों काटडाला कि जों किसान खेती काटडाले. आगे जरासिंधु औ सिसुपाल सब दल कटाय, कई एक घायल संग लिये, भागके एक ठौर जा खड़े रहे; तहां सिसुपाल ने बहुत अकुलाय पछताय सिर डुलाय जरासिंधु से कहा, कि अब तो अपजस पाय, औ कुल को कलंक लगाय, संसार में जीना उचित नहीं, इस से आप आज्ञा दें तो मैं रन में जाय लड़ मरूं.

नातर हों करि हों बन बास, लैउं जोग छाडों सब आस.
गई आन पत अब क्यों जीजै, रखि प्रान क्यों अपजस लीजै.

इतनी बात सुन जरासिंधु बोला, कि महाराज! आप ज्ञानवान हैं, औ सब बात में जान; मैं तुम्हें क्या समझाऊं; जो ज्ञानी पुरुष हैं सो कुई बात का सोच नहीं करते; क्योंकि भले बुरे का करता और ही है, मनुष का कुछ बस नहीं, यह परबस पराधीन है; जैसे काठ की पुतली को नटुआ जों नचाता है तों नाचती है, ऐसे ही मनुष करता के बस है, वह जो चाहता है सो करता है, इस से सुख दुख में हरष शोक न कीजे, सब सपना सा जान लीजे; मैं तेईस तेईस अक्षौहिनी ले मथुरापुरी पर सत्तरह बेर चढ़ गया, और इसी कृष्ण ने सत्तरह बेर मेरा सब दल हना; मैंने कुछ सोच न किया, और अठारवीं बेर जद इस का दल मारा तद कुछ हर्ष भी न किया, यह भाग कर पहाड़ पर जा चढ़ा, मैंने इसे वहीं फूंक दिया, न जानिये यह क्योंकर जिया, इस की गति कुछ जानी नहीं जाती. इतना कह फिर जरासिंधु बोला, कि महाराज! अब उचित यही है जो इस

समय को टाल दीजे. कहा है कि, प्रान बचे तो पीछे सब हो रहता है, जैसे हमें ऊआ कि सत्रह बार हार अठारवीं बेर जीते, इस से जिस में अपनी कुशल होय सो कीजे, औ हठ छोड़ दीजे.

महाराज! जब जरासिंधु ने ऐसे समझायके कहा, तब तिसे कुछ धीरज ऊआ, औ जितने घायल जोधा बचे थे तिन्हें साथ ले, अछता पछता जरासिंधु के संग हो लिया. ये तो यहां से यों हारके चले; और जहां सिसुपाल का घर था तहां की बात सुनों, कि पुत्र का आगमन बिचार सिसुपाल की मा जों मंगलाचार करने लगी, तों सनमुख छींक ऊई; औ दाहनी आंख उस की फड़कने लगी. यह असगुन देख, तिसका माथा ठनका, कि इस बीच किसी ने आय कहा जो तुम्हारे पुत्र की सब सेना कट गई, औ दुलहन भी न मिली, अब वहां से भाग अपना जीव लिये आता है. इतनी बात के सुनते ही सिसुपाल की महतारी अति चिंता कर अबाक होरही.

आगे सिसुपाल औ जरासिंधु का भागना सुन, रुक्म अति क्रोध कर, अपनी सभा में आन बैठा, और सब को सुनाय कहने लगा, कि कृष्ण मेरे हाथ से बच कहां जा सकता है, अभी जाय तिसे मार रुक्मिनी को ले आऊं तो मेरा नाम रुक्म, नहीं तो फिर कुंडलपुर में न आऊं. महाराज! ऐसे पैज कर रुक्म ऐक अक्षौहिनी दल ले, श्री कृष्णचंद से लड़ने को चढ़ धाया, और उस ने यादवों का दल जा घेरा. उस काल तिसने अपने लोगों से कहा, कि तुम तो यादवों को मारो, औ मैं आगे जाय कृष्ण को जीता पकड़ लाता हूं. इतनी बात के सुनते ही उसके साथी तो यदुबंसियों से युद्ध करने लगे, औ वह रथ बढ़ाय श्री कृष्णचंद के निकट जाय ललकारकर बोला, अरे कपटी गंवार! तू क्या जाने राज ब्यौहार, बालकपन में जैसे तैं ने दूध दही की चोरी करी, तैसे तू ने यहां भी आय सुंदरी हरी.

ब्रजबासी हम नहीं अहीर, ऐसे कह कर लीने तीर.
बिष के बुझे लिये उन बीन, खैंच धनुष सर छोड़े तीन.

उन बानों को आते देख श्री कृष्णचंद ने बीच ही काटा; फिर रुक्म ने और बान चलाऐ, प्रभु ने वे भी काट गिराऐ, औ अपना धनुष संभाल कई ऐक बान ऐसे मारे, कि रथ के घोड़ों समेत सारथी उड़गया, और धनुष उसके हाथ से कट नीचे गिरा. पुनि जितने आयुध उस ने लिये, हरि ने सब काट काट गिरादिये; तब तो वह अति झुंझलाय, फरी खांडा उठाय, रथ से कूद, श्री कृष्णचंद की ओर यों झपटा, कि जैसे बावला गीदड़ गज पर आवे, कै जों पतंग दीपक पर धावे; निदान जाते ही उनने हरि के रथ पर ऐक गदा चलाई, कि प्रभु ने झट उसे पकड़ बांधा, औ चाहा कि मारें, इस में रुक्मिनी जी बोलीं,

मारे मत मैया है मेरै, छांडी नाथ तिहारे चेरै.
मूरख अंध कहा यह जाने, लक्ष्मीकंत हि मानुष माने.
तुम योगेश्वर आदि अनंत, भक्त हेत प्रगटत भगवंत.
यह जड़ कहा तुम्हें पहचाने, दीनदयाल कृपाल बखाने.

इतना कह फिर कहने लगीं, कि साध, जड़, औ बालक का अपराध मन में नहीं लाते, जैसे कि सिंह स्वान के भूंसने पर ध्यान नहीं करता; और जो तुम इसे मारोगे तो होगा मेरे पिता को सोग, यह करना तुम्हें नहीं है जोग; जिस ठौर तुम्हारे चरन पड़ते हैं, तहां के सब प्रानी आनंद में रहते हैं; यह बड़े अचरज की बात है, कि तुम सा सगा रहते राजा भीष्मक पुत्र का दुख पावे. महाराज! ऐसे कह एक बार तो रुक्मिनी जी यों बोलीं, कि महाराज! तुम ने भला हित संबंधी से किया, जो पकड़ बांधा, औ खड़्ग हाथ में ले मारने को उपस्थित हुए. पुनि अति व्याकुल हो, थरथराय, आंखें डबडबाय, बिसूर बिसूर, पांओं पड़, गोद पसार, कहने लगीं,

बंधु भीख प्रभु मोकौं देउ, इतनो जस तुम जग में लेउ.

इतनी बात के सुनने से, औ रुक्मिनी जी की ओर देखने से, श्री कृष्णचंद जी का सब कोप शांत हुआ; तब उन्हों ने उसे जीव से तो न मारा, पर सारथी को सैन करी, उसने झट इसकी पगड़ी उतार, टुंडियां चढ़ाय, मूंछ, दाढ़ी औ सिर मूंड़, सात चोटी रख, रथ के पीछे बांध लिया.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! रुक्म की तो श्री कृष्ण जी ने यहां यह अवस्था की; और बलदेव वहां से सब असुर दल को मार भगायकर, भाई के मिलने को ऐसे चले, कि जैसे स्वेत गज कंवल दह में कंवलों को तोड़ खाय, बिथराय, अकुलायके भाग तो होय; निदान कितनी एक बेर में प्रभु के समीप जाय पहुंचे, औ रुक्म को बंधा देख श्री कृष्ण जी से अति झुंझलायके बोले, कि तुम ने यह क्या काम किया, जु साले को पकड़ बांधा, तुम्हारी कुटेव नहीं जाती.

बांध्यौ याहि करी बुद्धि थोरी, यह तुम कृष्ण सगाई तोरी.
औ यदुकुल कौं लीक लगाई, अब हम सों को करि है सगाई.

जिस समैं यह युद्ध करने को आप के सनमुख आया, तब तुम ने इसे समझाय बुझायके उलटा क्यों न फेर दिया. महाराज! ऐसे कह, बलराम जी ने रुक्म को तो खोल, समझाय बुझाय, अति शिष्टाचार कर बिदा किया; फिर हाथ जोड़ अति बिनती कर बलराम सुख धाम रुक्मिनी जी से कहने लगे, कि हे सुंदरि! तुम्हारे भाई की जो यह दसा हुई, इस में कुछ हमारी चूक नहीं, यह उसके पूर्व जन्म के किये कर्म का फल है; और क्षत्रियों का धर्म भी है कि भूमि धन त्रिया के

काज, करते हैं युद्ध दल परस्पर साज; इस बात का तुम बिलग मत मानौ, मेरा कहा सच ही जानौ; हार जीत भी उसके साथ ही लगी है, और यह संसार दुख का समुद्र है, यहां आय सुख कहां; पर मनुष माया के बस हो दुख सुख, भला बुरा, हार जीत, संयोग बियोग, मन ही मन से मान लेते हैं; पै इस में हरष शोक जीव को नहीं होता; तुम अपने भाई के बिरूप होने की चिंता मत करो, क्योंकि ज्ञानी लोग जीव अमर देह का नास कहते हैं, इस लेखे देह की पत जाने से कुछ जीव की नहीं गई.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि धर्मावतार! जब बलराम जी ने ऐसे रुक्मिनी को समझाया, तब,

सुनि सुंदरि मन समझकै, किये जेठ की लाज,
सैन मांहिं पिय सों कहत, हांकहु रथ ब्रजराज.
घूंघट ओट बदन को करै, मधुर बचन हरि सों उच्चरै.
सनमुख ठाढ़े हैं बलराऊ, अहो कंत रथ बेग चलाऊ.

इतना बचन श्री रुक्मिनी जी के मुख से निकलते ही, इधर तो श्री कृष्णचंद जी ने रथ द्वारिका की ओर हांका, औ उधर रुक्म अपने लोगों में जाय अति चिंता कर कहने लगा, कि मैं कुंडलपुर से यह पैज करके आया था, कि अभी जाय कृष्ण बलराम को सब यदुबंसियों समेत मार, रुक्मिनी को ले आऊंगा; सो मेरा प्रन पूरा न हुआ, और उलटी अपनी पत खोई; अब जीता न रहूंगा; इस देस औ ग्रहस्थाश्रम को छोड़ बैरागी हो, कहीं जाय मरूंगा.

जब रुक्म ने ऐसे कहा, तब उसके लोगों में से कोई बोला, महाराज! तुम महा बीर हो, औ बड़े प्रतापी, तुम्हारे हाथ से जो वे जीते बच गये, सो तिनके भले दिन थे, अपनी प्रारब्ध के बल से निकल गये, नहींतो आप के सनमुख हो कोई शत्रु कब जीता बच सकता है. तुम सज्ञान हो, ऐसी बात क्यों बिचारते हो; कभी हार होती है, कभी जीत; पर सूर बीरों का धर्म है जो साहस नहीं छोड़ते; भला, रिपु आज बच गया, फिर मार लेंगे. महाराज! जद यों तिसने रुक्म को समझाया, तद वह यह कहने लगा कि सुनौ,

हार्‍यौ उन सों औ पत गई, मेरे मन अति लज्जा भई.
जन्म न हों कुंडलपुर जाऊं, बरन और ही गांव बसाऊं.
यों कह उन इक नगर बसायौ, सुत दारा धन तहां मंगायौ.
ताकौ धर्‍यौ भोजकट नाम, ऐसें रुक्म बसायौ गाम.

महाराज! उधर रुक्म तो राजा भीष्मक से बैर कर वहां रहा; औ इधर श्री कृष्णचंद औ बलदेव जी चले चले द्वारिका के निकट आय पहुंचे.

चौपाई. उड़ी रेन आकाश जु छाई, तब ही पुरबासिन सुध पाई.

दोहा. आवत हरि जाने जबहिं, रच्यौ नगर बनाय,
शोभा भई तिहुं लोक की, कही कौन पै जाय.

उस काल घर घर मंगलाचार हो रहे; द्वार द्वार केले के खंभ गड़े; कंचन कलस सजल सपल्लव धरे; ध्वजा पताका फहराय रहीं; तोरन बंदनवारें बंधी हुईं; और हर हाट, बाट, चौहटों में चौमुखे दिये लिये युवतियों के यूथ के यूथ खड़े; औ राजा उग्रसेन भी सब यदुबंसियों समेत बाजेगाजे से अगाऊ जाय, रीति भांति कर, बलराम सुख धाम औ श्री कृष्णचंद आनंद कंद को नगर में ले आये. उस समैं के बनाव की छवि कुछ बरनी नहीं जाती; क्या स्त्री क्या पुरुष सब ही के मन में आनंद छाय रहा था; प्रभु के सोंहीं आय आय सब भेंट दे दे भेंटते थे; औ नारियां अपने अपने द्वारों, बारों, चौबारों, कोठों पर से मंगली गीत गाय गाय, आरता उतार उतार, फूल बरसावतीं थीं; औ श्री कृष्णचंद औ बलदेव जी जथा योग सब की मनुहार करते जाते थे; निदान इसी रीति से चले चले राजमंदिर में आ बिराजे. आगे कई एक दिवस पीछे एक दिन श्री कृष्ण जी राजसभा में गये, जहां राजा उग्रसेन, सूरसेन, बसुदेव आदि सब बड़े बड़े यदुबंसी बैठे थे; और प्रनाम कर इन्हों ने उनके आगे कहा, कि महाराज! युद्ध जीत जो कोई सुंदरी लाता है, वही राक्षस ब्याह कहाता है.

इतनी बात के सुनते ही सूरसेन जी ने परोहित बुलाय, तिसे समझायके कहा, कि तुम श्री कृष्ण के बिवाह का दिन ठहरा दो. उसने झट पत्रा खोल, भला महीना, दिन, बार, नक्षत्र, देख, शुभ सूरज चंद्रमा बिचार, ब्याह का दिन ठहराय दिया. तब राजा उग्रसेन ने अपने मंत्रियों को तो यह आज्ञा दी, कि तुम ब्याह की सब सामा इकठी करो; और आप बैठ पत्र लिख लिख पांडव कौरव आदि सब देस बिदेस के राजाओं को ब्राह्मनों के हाथ भिजवाये. महाराज! चीठी पाते ही सब राजा प्रसन्न हो हो उठ धाये, तिन्हों के साथ ब्राह्मन पंडित भाट भिखारी भी होलिये.

और ये समाचार पाय राजा भीष्मक ने भी बहुत वस्त्र, शस्त्र, जड़ाऊ आभूषन, औ रथ, हाथी, घोड़े, दास, दासियों के डोले, एक ब्राह्मन को दे, कन्यादान का संकल्प मन ही में ले, अति बिनती कर, द्वारिका को भेज दिया. उधर से तो देस देस के नरेस आये; औ इधर से राजा भीष्मक का पठाया सब सामा लिये वह ब्राह्मन भी आया. उस समैं की शोभा द्वारिका पुरी की कुछ बरनी नहीं

जाती. आगे ब्याह का दिन आया तो सब रीति भांति कर बर कन्या को मंढे के नीचे लेजा बैठाया, और सब बड़े बड़े मुष यदुबंसी भी आय बैठे; उस बिरियां,

पंडित तहां बेद उचरैं, रुक्मिनि संग हरि भांवर फिरैं.
ढोल दुंदभी भेर बजावें, हरष हि देव पहुप बरसावें.
सिद्ध साध चारन गंधर्व, अंतरीक्ष भये देखैं सर्व.
चढ़े बिमान घिरे सिर नावें, देव बधू सब मंगल गावें.
हाथ गह्यौ प्रभु भांवर पारी, बाम अंग रुक्मिनि बैठारी.
छोरी गांठ पटा फेर दियौ, कुल देवी कौं तब पूजियौ.
छोरत कंकन हरि सुंदरी, खेलत दूधा भाती करी.
अति आनंद रच्यौ जगदीस, निरषि हरषि सब देहिं असीस.
हरि रुक्मिनि जोरी चिरजियौ, जिन कौ चरित सुधा रस पियौ.
दीनौ दान बिप्र जे आये, मागध बंदी जन पहिराये.
जे नृप देस देस के आये, दीनो बिदा सबै पहुंचाये.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जो जन हरि रुक्मिनी का चरित्र पढ़ै सुनैगा, औ पढ़ सुनके सुमिरन करेगा, सो भक्ति मुक्ति जस पावेगा; पुनि जो फल होता है अश्वमेदादि यज्ञ, गौ आदि दान, गंगादि स्नान, प्रयागादि तीर्थ के करने में, सोई फल मिलता है हरि कथा कहने सुन्ने में. इति ✗

CHAPTER. LVI.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! एक दिन श्री महादेव जी अपने स्थान के बीच ध्यान में बैठे थे, कि एकाएकी कामदेव ने आ सताया, तो हर का ध्यान छूटा, औ लगे अज्ञान हो पार्वती जी के साथ क्रीड़ा करने. इस में कितनी एक बेर पीछे शिव जी को केलि करते करते जब ज्ञान हुआ, तब क्रोध कर कामदेव को जलाय भस्म किया.

काम बली जब शिव दह्यौ, तब रति धरत न धीर,
पति बिन अति तलफत खरी, बिह्बल बिकल शरीर.
काम नारि अति लोटति फिरै, कंत कंत कहि छित भुज भरै.
पिय बिन तिय महा दुखिया जान, तब यौं गौरि कियौ बखान.

कि हे रति! तू चिंता मत करै, तेरा पति तुझे जिस भांति मिलेगा तिसका भेद सुन, मैं कहती हूं, कि पहले तो वह श्री कृष्णचंद के घर में जन्म लेगा, औ तिसका नाम प्रद्युम्न होगा. पीछे उसे संबर लेजाय समुद्र में बहावेगा; फिर वह मच्छ के पेट में हो संबर ही की रसोई में आवेगा; तू वहीं जायके रह, जब वह आवे तब उसे ले पालियो, पुनि वह संबर को मार तुझे साथ ले द्वारिका में सुख से जाय बसेगा. महाराज!

शिव रानी यों रति समझाई, तब तन धर संबर घर आई.
सुंदरि बीच रसोई रहै, निस दिन मारग पिय कौ चहै.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! उधर रति तो पिय के मिलन की आस कर यों रहने लगी; औ इधर रुक्मिनी जी को गर्भ रहा, औ दस महीने में पूरे दिनों लड़का भया. यह समाचार पाय जोतिषियों ने आय लग्न साध बसुदेव जी से कहा, कि महाराज! इस बालक के शुभ ग्रह देख हमारे बिचार में यों आता है, कि रूप गुन पराक्रम में यह श्री कृष्णचंद जी ही के समान होगा; पर बालकपन भर जल में रहेगा, पुनि रिपु को मार स्त्री समेत आन मिलेगा. यों कह प्रद्युम्न नाम धर जोतिषी तो दक्षिना ले बिदा हुए; औ बसुदेव जी के घर में रीति भांति औ मंगलाचार होने लगे. आगे श्री नारद मुनि जी ने जाय, उसी समैं समझाय संबर से कहा, कि तू किस नींद सोता है, तुझे चेत है कै नहीं? वह बोला, क्या? इन्हों ने कहा, तेरा बैरी काम का अवतार प्रद्युम्न नाम श्री कृष्णचंद के घर में जन्म लेचुका.

राजा! नारद जी तो संबर को यों चिताय चले गये; औ संबर ने सोच बिचार कर मन ही मन में यह उपाय ठहराया, कि पवन रूप हो वहां जाय तिसे हर लाऊं, औ समुद्र में बहाऊं तो मेरे मन की चिंता मिटे, औ निर्भय हो रहूं. यह बिचार कर संबर वहां से उठ अलख रूप हो चला चला श्री कृष्णचंद के मंदिर में आया, कि जहां रुक्मिनी जी सोअर में हाथ से दबाए, छाती से लगाए, बालक को दूध पिलाती थीं, औ चुपचाप घात लगाय खड़ा हो रहा. जों बालक पर से रुक्मिनी जी का हाथ अलग हुआ, तों असुर अपनी माया फैलाय उसे उठाय ऐसे ले आया, कि जितनी स्त्रियां वहां बैठी थीं, तिन में से किसी ने न देखा, न जाना, कि कौन किस रूप से आय, क्योंकर उठाय लेगया. बालक को आगे न देख रुक्मिनी जी अति घबराई, औ रोने लगीं. उनके रोने का शब्द सुन सब यदुबंसी क्या स्त्री क्या पुरुष घिर आए, औ अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह चिंता करने लगे.

इस बीच नारद जी ने आय सब को समझाकर कहा, कि तुम बालक के जाने की कुछ भावना

मन करे, जिसे किसी बात का डर नहीं, वह कहीं जाय, पर उसे काल न व्यापैगा, और बालापन बितीत कर ऐक सुंदरी नारी साथ लिये तुम्हें आय मिलेगा. महाराज! ऐसे सब यदुबंसियों को भेद बताय, समझाय बुझाय, नारद मुनि जब बिदा हुऐ, तब वे भी सोच समझ संतोष कर रहे.

अब आगे कथा सुनिये, कि संबर जो प्रद्युम्न को लेगया था, उस ने उन्हें समुद्र में डाल दिया. वहां ऐक मछली ने इन्हें निगल लिया; उस मछली को ऐक और बड़ी मछली निगल गई! इस में ऐक मछुऐ ने जाय समुद्र में जो जाल फैंका, तो वह मीन जाल में आई. धीमर जाल खैंच, उस मच्छ को देख, अति प्रसन्न हो, ले अपने घर आया; निदान वह मछली उस ने जा राजा संबर को भेट दी; राजा ने ले अपने रसोई घर में भेज दी; रसोई करनेवाली ने जो उस मछली को चीरा, तो उस में से ऐक और मछली निकली; जिस का पेट फाड़ा तो ऐक लड़का स्याम बरन अति सुंदर उस में से निकला; उस ने देखते ही अति अचरज किया, औ वह लड़का ले जाय रति को दिया; उस ने महा प्रसन्न हो ले लिया. यह बात संबर ने सुनी तो रति को बुलायके कहा, कि इस लड़के को भली भांति से यत्न कर पाल. इतनी बात राजा की सुन, रति उस लड़के को ले निज मंदिर में आई. उस काल नारद जी ने जाय रति से कहा,

अब तू याहि पाल चित लाय, तो पति प्रद्युमन प्रगट्यो आय.
संबर मार तोहि लै जै है, बालापन या ठौर बितै है.

इतना भेद बताय नारद मुनि तो चले गऐ, और रति अति हित से चित लगाय पालने लगी. जों जों वह बालक बढ़ता था, तों तों रति को पति के मिलने का चाव होता था; कभी वह उसका रूप देख प्रेम कर हिये से लगाती थी; कभी दृग मुख कपोल चूम आप ही बिहस उसके गले लगती थी, और यों कहती थी,

ऐसौ प्रभु संयोग बनायौ, मछरी मांहिं कंत मैं पायौ.

औ महाराज!

प्रेम सहित पय प्यायकै, हित सों प्यावत ताहि,
हलरावत गुन गायकै, कहत कंत चित चाहि.

आगे जब प्रद्युम्न जी पांच बरस के हुऐ, तब रति अनेक अनेक भांति के वस्त्र आभूषन पहनाय पहनाय, अपने मन का साद पूरा करने लगी, औ नैनों को सुख देने. उस काल वह बालक जो रति का आंचल पकड़कर मा मा कहने लगा, तो वह हंस कर बोली, हे कंत! तुम यह क्या कहते हो, मैं तुम्हारी नारि, तुम देखो अपने हिये बिचार; मुझे पार्वती जी ने यह कहा

था, कि तू संबर के घर जाय रह, तेरा कंत श्री कृष्णचंद जी के घर में जन्म लेगा, सो मछली के पेट में हो तेरे पास आवेगा; औ नारद जी भी कह गये थे, कि तू उदास मत हो, तेरा स्वामी तुझे आय मिलता है; तभी से मैं तुम्हारे मिलने की आस किये, यहां बास कर रही हूं, तुम्हारे आने से मेरी आस पूरी भई.

ऐसे कह रति ने फिर पति को धनुष बिद्या सब पढ़ाई; जब वे धनुष बिद्या में निपुन हुए, तब एक दिन रति ने पति से कहा, कि स्वामी! अब यहां रहना उचित नहीं, क्योंकि तुम्हारी माता श्री रुक्मिनी जी ऐसे तुम बिन दुख पाय अकुलाती हैं, जैसे बच्छ बिन गाय; इससे अब उचित यही है कि असुर संबर को मार, मुझे संग ले, द्वारिका में चलि, मात पिता का दरसन कीजे, और तिन्हें सुख दीजे, जो आप के देखने की लालसा किये हुए हैं.

श्री शुकदेव जी यह प्रसंग सुनाय राजा से कहने लगे, कि महाराज! इसी रीति से रति की बातें सुनते सुनते प्रद्युम्न जी जब सयाने हुए, तो एक दिन खेलते खेलते राजा संबर के पास गये; वह इन्हें देखते ही अपने ही लड़के समान जान लाड़ कर बोला, कि इस बालक को मैंने अपना लड़का कर पाला है. इतनी बात के सुनते ही प्रद्युम्न जी ने अति क्रोध कर कहा, कि मैं बालक हूं बैरी तेरा, अब तू लड़कर देख बल मेरा. यों सुनाय खंभ ठोक सनमुख हुआ; तब हंसकर संबर कहने लगा कि भाई! यह मेरे लिये दूसरा प्रद्युम्न कहां से आया, क्या दूध पिला मैंने सर्प बढ़ाया, जो ऐसी बातें करता है. इतना कह फिर बोला, अरे बेटा! तू क्यों कहता है ये बैन, क्या तुझे जम दूत आये हैं लेन.

महाराज! इतनी बात संबर के मुंह से सुनते ही वह बोला, प्रद्युम्न मेरा ही है नाम, मुझ से आज तू कर संग्राम; तैंने तो था मुझे सागर में बहाया, पर अब मैं अपना बैर लेन फिर आया; तू ने अपने घर में अपना काल बढ़ाया आप, कौन किसका बेटा और कौन किसका बाप.

सुन संबर आयुध गहे, बढ़्यो क्रोध मन भाव,
मनहुं सर्प की पूंछ पर, पर्यो अंधेरे पांव.

आगे संबर अपना सब दल मंगवाय, प्रद्युम्न को बाहर ले आय, क्रोध कर गदा उठाय, मेघ की भांति गरजकर बोला, देखूं अब तुझे काल से कौन बचाता है. इतना कह जों उस ने टपटके गदा चलाई, तों प्रद्युम्न जी ने सहज ही काट गिराई. फिर उस ने रिसायकर अग्नि बान चलाए, इन्हों ने जल बान छोड़ बुझाय गिराए; तब तो संबर ने महा क्रोध कर जितने आयुध उसके पास थे सब किये, औ उन्हों ने काट काट गिराय दिये. जब कोई आयुध उसके पास न रहा, तब क्रोध

कर धाय प्रद्युम्न जी जाय लिपटे, औ दोनों में मल्ल युद्ध होने लगा. कितनी ऐक बेर पीछे ये उसे आकाश को ले उड़े; वहां जाय खड़्ग से उसका सिर काट गिराय दिया, और फिर आय असुर दल का बध किया.

संबर को मार, रति ने सुख पाया, औ विसी समय ऐक बिमान स्वर्ग से आया, उस पर रति पति दोनों चढ़ बैठे, और द्वारिका को चले, ऐसे कि जैसे दामिनी समेत सुंदर मेघ जाता हो, और चले चले वहां पहुंचे कि जहां कंचन के मंदिर ऊंचे सुमेरु से जगमगाय रहे थे. बिमान से उतर अचानक दोनों रनवास में गये; इन्हें देख सब सुंदरि चौंक उठीं, और यों समझ कि श्री कृष्ण ऐक सुंदरि नारी संग ले आये हैं, सकुच रहीं; पर यह भेद किसू ने न जाना कि प्रद्युम्न है, सब कृष्ण ही कृष्ण कहती थीं, इस में जब प्रद्युम्न जी ने कहा कि हमारे माता पिता कहां हैं, तब रुक्मिनी जी अपनी सखियों से कहने लगीं, हे सखी! यह हरि की उनहार कौन है. वे बोलीं, हमारी समझ में तो ऐसा आता है कि हो नहो यह श्री कृष्ण ही का पुत्र है. इतनी बात के सुनते ही रुक्मिनी जी की छाती से दूध की धार बह निकली, औ बांई बांह फड़कने लगी, और मिलने को मन घबराया, पर बिन पति की आज्ञा मिल न सकीं. उस काल वहां नारद जी ने आय पूर्व कथा कह सब के मन का संदेह मिटा दिया, तब तो रुक्मिनी जी ने दौड़कर पुत्र का सिर चूम उसे छाती से लगाया, और रीति भांति से ब्याह कर बेटे बहू को घर में लिया. उस समय क्या स्त्री क्या पुरुष सब यदुबंसियों ने आय, मंगलाचार कर, अति आनंद किया; घर घर बधाई बाजने लगीं; औ सारी द्वारिका पुरी में सुख छाय गया.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! ऐसे प्रद्युम्न जी जन्म ले, बालकपन अनत बिताय, रिपु को मार, रति को ले द्वारिका पुरी में आये, तब घर घर आनंद मंगल हुऐ बधाऐ. इति

CHAPTER. LVII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! सत्राजीत ने पहले तो श्री कृष्णचंद को मनि की चोरी लगाई, पीछे झूठ समझ लज्जित हो उस ने अपनी कन्या सतभामा हरि को ब्याह दी. यह सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा कि कृपा निधान! सत्राजीत कौन था, मनि उस ने कहां पाई, और कैसे हरि को चोरी लगाई, फिर क्योंकर झूठ समझ कन्या ब्याह दी, यह तुम मुझे बुझाके कहो.

श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! सुनिये मैं सब समझाकर कहता हूं. सत्राजीत एक यादव था, जिसने बहुत दिन तक सूरज की अति कठिन तपस्या की; तब सूरज देवता ने प्रसन्न हो उसे निकट बुलाय मनि देकर कहा, कि सुमंतका है इस मनि का नाम, इस में है सुख संपत का बिश्राम; सदा इसे मानियो, और बल तेज में मेरे समान जानियो; जो तू इसे, जप तप संज्ञम ब्रत कर ध्यावेगा, तो इससे मुंह मांगा फल पावेगा; जिस देस, नगर, घर में यह जावेगा, तहां दुख दरिद्र काल कभी न आवेगा; सर्बदा सुकाल रहेगा, औ ऋद्धि सिद्धि भी रहैगी.

महाराज! ऐसे कह सूर्य्य देवता ने सत्राजीत को बिदा किया; वह मनि ले अपने घर आया. आगे प्रात ही उठ वह प्रातस्नान कर, संध्या तर्पन से निर्चिंत हो, नित चंदन अक्षत पुष्प धूप दीप नैवेद्य सहित मनि की पूजा किया करै, और तिस मनि से जो आठ भार सोना निकले सो ले औ प्रसन्न रहै. एक दिन पूजा करते करते सत्राजीत ने मनि की शोभा औ कांति देख निज मन में बिचारा, कि यह मनि श्री कृष्णचंद को लेजाकर दिखाइये तो भला.

यों बिचार, मनि कंठ में बांध, सत्राजीत यदुबंसियों की सभा को चला; मनि का प्रकाश दूर से देख सब यदुबंसी खड़े हो श्री कृष्ण जी से कहने लगे, कि महाराज! तुम्हारे दरसन की अभिलाषा किये सूरज चला आता है, तुम को ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रादि सब देवता ध्यावते हैं, औ आठ पहर ध्यान धर तुम्हारा जस गावते हैं; तुम हो आद पुरुष अबिनासी, तुम्हें नित सेवती है कमला भई दासी; तुम हो सब देवों के देव; कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव; तुम्हारे गुन औ चरित्र हैं अपार, क्यौं प्रभु छिपोगे आय संसार. महाराज! जब सत्राजीत को आता देख सब यदुबंसी यों कहने लगे, तब हरि बोले, कि यह सूरज नहीं, सत्राजीत यादव है, इसने सूर्य्य की तपस्या कर एक मनि पाई है, उसका प्रकाश सूरज की समान है, वही मनि बांधे वह चला आता है.

महाराज! इतनी बात जबतक श्री कृष्ण जी कहैं, तबतक वह आय सभा में बैठा, जहां यादव सार पासे खेल रहे थे. मनि की कांति देख सब का मन मोहित हुआ, औ श्री कृष्णचंद भी देख रहे; तद सत्राजीत कुछ मन हीं मन समझ उस समय बिदा हो अपने घर गया. आगे वह मनि गले में बांध बांध नित आवे; एक दिन सब यदुबंसियों ने हरि से कहा कि महाराज! सत्राजीत से मनि ले राजा उग्रसेन को दीजे, औ जग में जस लीजे, यह मनि इसे नहीं फबती, राजा के जोग है.

इस बात के सुनते ही श्री कृष्ण जी ने हंसते हंसते सत्राजीत से कहा, कि यह मनि राजा जी को दो, और संसार में जस बड़ाई लो. देने का नाम सुनते ही वह प्रनाम कर चुपचाप

वहां से उठ सोच बिचार करता अपने भाई के पास जा बोला, कि आज श्री कृष्ण जी ने मुझ से मनि मांगी, और मैंने न दी. इतनी बात जो सत्राजीत के मुंह से निकली, तो क्रोध कर उस के भाई प्रसेन ने वह मनि ले अपने गले में डाली, औ शस्त्र लगाय, घोड़े पर चढ़, अहेर को निकला; महा बन में जाय, धनुष चढ़ाय, लगा साबर, चीतल, पाढ़े, रोझ औ मृग मारने. इस में एक हिरन जो उसके आगे से झपटा, तो इस ने भी खिजलायके तिस के पीछे घोड़ा दपटा, औ चला चला अकेला कहां पहुंचा कि जहां जुगनजुग की एक बड़ी औंडी गुफा थी.

मृग औ घोड़े के पांव की आहट पाय, उस में से एक सिंह निकला; वह इन तीनों को मार मनि ले फिर उस गुफा में बड़ गया. मनि के जाते ही उस महा अंधेरी गुफा में ऐसा प्रकाश हुआ कि पाताल तक चांदना गया; वहां जामवंत नाम रीछ, जो श्री रामचंद के साथ रामावतार में था; सो त्रेता युग से तहां कुटुंब समेत रहा था, वह गुफा में उजाला देख उठ धाया, औ चला चला सिंह के पास आया. फिर वह सिंह को मार मनि ले अपनी स्त्री के निकट गया; तिस ने मनि ले अपनी पुत्री के पालने में बांधी; वह तिसे देख नित हंस हंस खेला करै, औ सारे स्थान में आठ प्रहर प्रकाश रहै. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले! कि महाराज! मनि यों गई, औ प्रसेन की यह गति भई, तब प्रसेन के साथ जो लोग गये थे, तिन्हों ने आ सत्राजीत से कहा, कि महाराज!

हम कौं त्याग अकेलौ धायौ, जहां गयौ तहां खोज न पायौ.
कहत न बने ढूंढ फिर आये, कहूं प्रसेन न बन में पाये.

इतनी बात के सुनते ही सत्राजीत खाना पीना छोड़, अति उदास हो, चिंता कर, मन हीं मन कहने लगा, कि यह काम श्री कृष्ण का है जो मेरे भाई को मनि के लिये मार, मनि ले घर में आय बैठा है. पहले मुझ से मांगता था, मैंने न दी, अब उसने यों ली. ऐसे वह मन हीं मन कहै, और रात दिन महा चिंता में रहै. एक दिन वह रात्रि समैं स्त्री के पास सेज पर तन छीन मन मलीन मष्ट मारे बैठा मन हीं मन कुछ सोच बिचार करता था, कि उस की नारी ने कहा,

कहा कंत मन सोचत रहौ, मो सों भेद आपनौ कहौ.

सत्राजीत बोला, कि स्त्री से कठिन बात का भेद कहना उचित नहीं, क्यौंकि इसके पेट में बात नहीं रहती; जो घर में सुनती है सो बाहर प्रकाश कर देती है; यह अज्ञान, इसे किसी बात का ज्ञान नहीं, भला हो कै बुरा. इतनी बात के सुनते ही सत्राजीत की स्त्री खिजलाकर बोली, कि मैंने कब कोई बात घर में सुन बाहर कही है जो तुम कहते हो, क्या सब नारी समान

होती है. यों सुनाय फिर उसने कहा, कि जब तक तुम अपने मन की बात मेरे आगे न कहोगे, तब तक मैं अन्न पानी भी न खाऊंगी. यह बचन नारी से सुन सत्राजीत बोला, कि झूठ सच्च की तो भगवान जाने, पर मेरे मन में एक बात आई है, सो मैं तेरे आगे कहता हूं; परंतु तू किसू के सोहीं मत कहियो. उस की स्त्री बोली, अच्छा मैं न कहूंगी.

सत्राजीत कहने लगा, कि एक दिन श्री कृष्ण जी ने मुझ से मनि मांगी, और मैंने न दी; इससे मेरे जी में आता है, कि उसी ने मेरे भाई को बन में जाय मारा, औ मनि ली; यह उसी का काम है, दूसरे की सामर्थ नहीं जो ऐसा काम करे.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! बात के सुनते ही उसे रात भर नींद न आई, और उसने सात पांच कर रैन गंवाई. भोर होते ही उनने जा सखी सहेली और दासी से कहा, कि श्री कृष्ण जी ने प्रसेन को मारा, औ मनि ली, यह बात रात मैंने अपने कंत के मुख सुनी है, पर तुम किसी के आगे मत कहियो. वे वहां से तो भला कह चुपचाप चली आईं; पर अचरज कर एकांत बैठ आपस में चरचा करने लगीं. निदान एक दासी ने यह बात श्री कृष्णचंद के रनवास में जा सुनाई; सुनते ही सब के जी में आया कि जो सत्राजीत की स्त्री ने यह बात कही है तो झूठ न होगी. ऐसे समझ, उदास हो सब रनवास श्री कृष्ण को बुरा कहने लगा. इस बीच किसी ने आय श्री कृष्ण जी से कहा कि महाराज! तुम्हें तो प्रसेन के मारने औ मनि के लेने का कलंक लग चुका, तुम क्या बैठ रहे हो, कुछ इसका उपाय करो.

इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्ण जी पहले तो घबराए; पीछे कुछ सोच समझ वहां आए, जहां उग्रसेन बसुदेव औ बलराम सभा में बैठे थे, और बोले कि महाराज! हमें सब लोग यह कलंक लगाते हैं कि कृष्ण ने प्रसेन को मार मनि लेली, इससे आप की आज्ञा ले प्रसेन और मनि के ढूंढ़ने को जाते हैं, जिससे यह अपजस छूटे. यों कह श्री कृष्ण जी वहां से आय, कितने एक यदुबंसियों औ प्रसेन के साथियों को साथ ले, बन को चले. कितनी एक दूर जाय देखें तो घोड़ों के चरन चिन्ह दृष्ट पड़े; तिन्हीं को देखते देखते वहां जाय पहुंचे, जहां सिंह ने तुरंग समेत प्रसेन को मार खाया था; दोनों की लोथ और सिंह के पाओं का चिन्ह देख सब ने जाना कि उसे सिंह ने मार खाया.

यह समझ, मनि न पाय, श्री कृष्णचंद सब को साथ लिये लिये वहां गये, जहां वह औंडी अंधेरी महा भयावनी गुफा थी; उसके द्वार पर देखते क्या हैं, कि सिंह मरा पड़ा है, पर मनि वहां भी नहीं. ऐसे अचरज देख सब श्री कृष्ण जी से कहने लगे, कि महाराज! इस बन में ऐसा बली

जंतु कहां से आया जो सिंह को मार मनि ले गुफा में पैठा, अब इसका कुछ उपाय नहीं, जहां तक ढूंढने का धर्म था तहां तक आप ने ढूंढा, तुम्हारा कलंक छूटा, अब नाहर के सिर अपजस पड़ा.

श्री कृष्ण जी बोले, चलो इस गुफा में धसके देखें कि नाहर को मार मनि कौन ले गया. वे सब बोले कि महाराज! जिस गुफा का मुख देखे हमें डर लगता है, तिस में धसेंगे कैसे; बरन हम तुम से भी बिनती कर कहते हैं, कि इस महा भयावनी गुफा में आप भी न जाइये, अब घर को पधारिये; हम सब मिल नगर में कहेंगे, कि प्रसेन को मार सिंह ने मनि ली, औ सिंह को मार मनि ले कोई जंतु ऐक अति डरावनी औंडी गुफा में गया; यह हम सब अपनी आंखों देख आऐ. श्री कृष्णचंद बोले, मेरा मन मनि में लगा है, मैं अकेला गुफा में जाता हूं, दस दिन पीछे आऊंगा, तुम दस दिन तक यहां रहियो, इस में हमें बिलंब होय तो घर जाय संदेसा कहियो. महाराज! इतनी बात कह हरि उस अंधेरी भयावनी गुफा में पैठे, और चले चले वहां पहुंचे, जहां जामवंत सोता था, और उस की स्त्री अपनी लड़की को खड़ी पालने में झुलाती थी.

वह प्रभु को देख, भय खाय पुकारी, औ जामवंत जागा, तो धाय हरि से आय लिपटा, औ मल्ल युद्ध करने लगा. जब उसका कोई दाव औ बल हरि पर न चला, तब मन ही मन बिचारकर कहने लगा, कि मेरे बल के तो हैं लक्ष्मन राम, और इस संसार में ऐसा बली कौन है जो मुज से करे संग्राम. महाराज! जामवंत मन ही मन ज्ञान से यों बिचार प्रभु का ध्यान कर,

ठाढ़ो उसरि जोरकै हाथ, बोल्यो दरस देऊ रघुनाथ.
अंतरजामी मैं तुम जाने, लीला देखत ही पहिचाने.
भली करी लीनौं औतार, करिहौ दूर भूमि को भार.
त्रेता युग तें इहिं ठां रह्यौ, नारद भेद तुम्हारो कह्यौ.
मनि के काजे प्रभु इत ऐहैं, तबही तो कौं दरसन दैहैं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे राजा! जिस समय जामवंत ने प्रभु को जान यों बखान किया, तिसी काल श्री मुरारी भक्त हित कारी ने जामवंत की लगन देख, मगन हो, राम का भेष कर, धनुष बान धर, दरसन दिया. आगे जामवंत ने अष्टांग प्रनाम कर, खड़े हो, हाथ जोड़, अति दीनता से कहा, कि हे कृपा सिंधु दीन बंधु! जो आप की आज्ञा पाऊं तो अपना मनोरथ कह सुनाऊं. प्रभु बोले अच्छा कह. तब जामवंत ने कहा, कि हे पतित पावन दीनानाथ! मेरे चित में यों है कि यह कन्या जामवती आप को ब्याह दूं, औ जगत में जस बड़ाई लूं. भगवान ने कहा, जो तेरी इच्छा में ऐसे आया तो हमें भी प्रमान है. इतना बचन प्रभु के

मुख से निकलते ही, जामवंत ने पहले तो श्री कृष्णचंद की चंदन अक्षत पुष्प धूप दीप नैवेद्य ले पूजा की; पीछे वेद की बिध से अपनी बेटी ब्याह दी, और उसके यौतुक में वह मनि भी धर दी.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले, कि हे राजा! श्री कृष्णचंद आनंद कंद तो मनि समेत जामवती को ले यों गुफा से चले; और जो जादव गुफा के मुंह पर प्रसेन औ श्री कृष्ण के साथी खड़े थे, अब तिन की कथा सुनिये. गुफा के बाहर उन्हें जब अट्ठाईस दिन बीते, औ हरि न आये, तब वे वहां से निरास हो, अनेक अनेक प्रकार की चिंता करते और रोते पीटते द्वारिका में आये. ये समाचार पाय सब यदुबंसी निपट घबराये, औ श्री कृष्ण का नाम ले ले महा शोक कर कर रोने पीटने लगे, और सारे रनवास में कुहराम पड़ गया. निदान सब रानियां अति व्याकुल हो, तन छीन मन मलीन राजमंदिर से निकल, रोती पीटती वहां आईं जहां नगर के बाहर एक कोस पर देवी का मंदिर था.

पूजा कर, गौर को मनाय, हाथ जोड़, सिर नाय, कहने लगीं, हे देवी! तुझे सुर नर मुनि सब ध्यावते हैं औ तुझ से जो बर मांगते हैं, सो पावते हैं; तू भूत भविष्य बर्त्तमान की सब बात जानती है; कह श्री कृष्णचंद आनंद कंद कब आवेंगे. महाराज! सब रानियां तो देवी के द्वार धरना दे यों मनाय रहीं थीं; औ उग्रसेन बसुदेव बलदेव आदि सब यादव महा चिंता में बैठे थे, कि इस बीच श्री कृष्ण अविनासी द्वारिकाबासी हंसते हंसते जामवती को लिये आय राजसभा में खड़े हुए. प्रभु का चंदमुख देख सब को आनंद हुआ; औ यह शुभ समाचार पाय सब रानियां भी देवी पूज घर आईं, और मंगलाचार करने लगीं. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! श्री कृष्ण जी ने सभा में बैठते ही सत्राजीत को बुला भेजा, औ वह मनि देकर कहा, कि यह मनि हमने न ली थी, तुम ने झूठमूठ हमें कलंक दिया था.

यह मनि जामवंत ही लीनी, सुता समेत मोहि तिन दीनी.
मनि लै तबहि चल्यौ सिर नाय, सत्राजीत मन सोचतु जाय.
हरि अपराध कियो मैं भारी, अनजाने दीनी कुल गारी.
जादौंपति कौं कलंक लगायौ, मनि के काजे बैर बढ़ायौ.
अब यह दोष कटै सो कीजे, सतिभामा मनि कृष्ण हि दीजे.

महाराज! ऐसे मन ही मन सोच बिचार करता, मनि लिये, मन मारे, सत्राजीत अपने घर गया, और उसने सब अपने जी का बिचार स्त्री से कह सुनाया. तिस की स्त्री बोली, स्वामी! यह बात तुमने अच्छी बिचारी, सतिभामा श्री कृष्ण को दीजे, औ जगत में जस लीजे. इतनी बात के

सुनते ही सत्राजीत ने एक ब्राह्मन को बुलाय, शुभ लग्न मुहूर्त ठहराय, रोली अक्षत रुपया नारियल एक थाली में धर, परोहित के हाथ श्री कृष्णचंद के यहां टीका भेज दिया. श्री कृष्ण जी बड़ी धूमधाम से मौड़ बांध ब्याहन आये; तब सत्राजीत ने सब रीति भांति कर वेद की बिधि से कन्या दान किया, और बहुत सा धन दे यौतुक में तिस मनि को भी धर दिया.

मनि को देखते ही श्री कृष्ण जी ने उस में से निकाल बाहर किया, और कहा, कि यह मनि हमारे किसी काम की नहीं; क्यौंकि तुम ने सूर्य्य की तपस्या कर पाई, हमारे कुल में श्री भगवान छुड़ाय और देवता की दी वस्तु नहीं लेते, यह तुम अपने घर में रक्खो. महाराज! श्री कृष्णचंद जी के मुख से इतनी बात निकलते ही, सत्राजीत मनि ले लजाय रहा, औ श्री कृष्ण जी सतिभामा को ले बाजेगाजे से निज धाम पधारे, औ आनंद से सतिभामा समेत राजमंदिर में जा बिराजे.

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा, कि कृपा निधान! श्री कृष्ण जी को कलंक क्यौं लगा, सो कृपाकर कहो. शुकदेव जी बोले राजा!

चांद चौथ कौ देखियौ, मोहन भादौं मास,
तातें लग्यौ कलंक यह, अति मन भयौ उदास.

और सुनौ

जो भादौं की चौथ कौ, चांद निहारै कोय,
यह प्रसंग श्रवननि सुने, ताहि कलंक न होय. इति

CHAPTER. LVIII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! मनि के लिये जैसे सतधन्वा सत्राजीत को मार, मनि ले, अक्रूर को दे द्वारिका छोड़ भागा, तैसे मैं कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनौ. एक समैं हस्तिनापुर से आय किसी ने बलराम सुखधाम औ श्री कृष्णचंद आनंदकंद से यह संदेसा कहा कि,

पंडौ न्यौते अंधसुत, घर के बीच सुवाय,
अर्द्ध रात्र चहुं ओर तें, दीनी आग लगाय.

इतनी बात के सुनते ही दोनों भाई अति दुख पाय, घबराय, तत्काल दारुक सारथी से अपना रथ मंगाय, तिस पर चढ़, हस्तिनापुर को गये, औ रथ से उतर कौरों की सभा में जा खड़े रहे. वहां देखते क्या हैं, कि सब तन छीन, मन मलीन, बैठे हैं; दुर्योधन मन ही मन कुछ सोचता है; भीष्म नैनों से जल मोचता है; धृतराष्ट्र बड़ा दुख करता है; द्रोनाचार्य की भी आंखों से पानी चलता

है; बिदूरथ जी ही जी पछताय, गंधारी बैठी उसके पास आय; और भी जो कौरों की स्त्रियां थीं, सा भी पांडवों की सुध कर कर रो रही थीं, औ सारी सभा शोकमय हो रही थी. महाराज! वहां की यह दशा देख श्री कृष्ण बलराम जी भी उनके पास जा बैठे, औ उन्हों ने पांडवों का समाचार पूछा, पर किसी ने कुछ भेद न कहा, सब चुप हो रहे.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! श्री कृष्ण बलराम जी तो पांडवों के जलने के समाचार पाय हस्तिनापुर को गये; औ द्वारिका में सतधन्वा नाम एक यादव था, कि जिसे पहले सतिभामा मांगी थी, तिसके यहां अक्रूर और कृतबंमा मिलकर गये, और दोनों ने उससे कहा, कि हस्तिनापुर को गये श्री कृष्ण बलराम, अब आय पड़ा है तेरा दांव. सत्राजीत से तू अपना बैर ले; क्योंकि तिसने तेरी बड़ी चूक की, जो तेरी मांग श्री कृष्ण को दी, औ तुझे गाली चढ़ाई; अब वहां उसका कोई नहीं है सहाई. इतनी बात के सुनते ही सतधन्वा अति क्रोध कर उठा, और एक समैं सत्राजीत के घर जा ललकारा; निदान छल बल कर उसे मार वह मनि ले आया; तब सतधन्वा अकेला घर में बैठ कुछ सोच बिचार मन ही मन पछताय कहने लगा,

मैं यह बैर कृष्ण सों कियौ, अक्रूर कौ मतौ सुन लियौ.

कृतबंमा अक्रूर मिल, मतौ दियौ मोहि आय.
साध कहै जो कपट की, तासों कहा बसाय.

महाराज! इधर सतधन्वा तो इस भांति पछताय पछताय, बार बार कहता था, कि होनहार से कुछ न बसाय, कर्म की गति किसी से जानी नहीं जाय. और उधर सत्राजीत को मरा निहार, उस की नारि रो रो कंत कंत कर उठी पुकार. उसके रोने की धुन सुन सब कुटुंब के लोग क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक अनेक भांति की बातें कह कह रोने पीटने लगे, औ सारे घर में कुहराम पड़गया, पिता का मरना सुन उसी समैं आय, सतिभामा जी सब को समझाय बुझाय, बाप की लोथ तेल में डलवाय, अपना रथ मंगवाय, तिस पर चढ़, श्री कृष्णचंद आनंदकंद के पास चलीं, और रात दिन के बीच जा पहुंचीं.

देखत ही उठ बोले हरी, घर है कुशल क्षेम सुंदरी.
सतिभामा कहि जोरे हाथ, तुम बिन कुशल कहा यदुनाथ.
हम हिं बिपत सतधन्वा दई, मेरौ पिता हत्यौ मनि लई.
धरे तेल में ससुर तिहारे, करौ दूर सब सूल हमारे.

इतनी बात कह, सतिभामा जी श्री कृष्ण बलदेव जी के सोंहीं खड़ी हो, हाय पिता हाय पिता

कर धायमार रोने लगीं. तिनका रोना सुन श्री कृष्ण बलराम जी ने भी पहले तो अति उदास हो रोकर लोक रीति दिखाई, पीछे सतिभामा को आसा भरोसा दे, ढाढ़स बंधाय, वहां से साथ ले द्वारिका में आये. श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! द्वारिका में आते ही श्री कृष्णचंद ने सतिभामा को महा दुखी देख प्रतिज्ञा कर कहा, कि सुंदरि! तुम अपने मन में धीर धरो, और किसी बात की चिंता मत करो, जो होना था सो तो हुआ, पर अब मैं सतधन्वा को मार तुम्हारे पिता का बैर लूंगा, तब मैं और काम करूंगा.

महाराज! राम कृष्ण के आते ही सतधन्वा अति भयखाय, घर छोड़, मन हीं मन यह कहता, कि पराये कहे मैंने श्री कृष्ण जी से बैर किया, अब सरन किस की लूं. कृतबर्मा के पास आया, और हाथ जोड़ अति बिनती कर बोला, कि महाराज! आप के कहे से मैंने किया यह काम, अब मुझ पर कोपे हैं श्री कृष्ण औ बलराम; इससे मैं भागकर तुम्हारी सरन आया हूं, मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये. सतधन्वा से यह बात सुन कृतबर्मा बोला, कि सुनो हम से कुछ नहीं होसकता; जिसका बैर श्री कृष्णचंद से भया, सो नर सब ही से गया; तू क्या नहीं जानता था कि हैं अति बली मुरारि, तिनसे बैर किये होगी हार; किसी के कहे से क्या हुआ; अपना बल बिचार काम क्यों न किया; संसार की रीति है कि बैर ब्याह औ प्रीति समान ही से कीजे; तू हमारा भरोसा मत रख, हम श्री कृष्णचंद आनंदकंद के सेवक हैं, तिनसे बैर करना हमें नहीं सोभता, जहां तेरे सींग समाय तहां जा.

महाराज! इतनी बात सुन सतधन्वा निपट उदास हो, वहां से चल, अक्रूर के पास आया; हाथ बांध, सिर नाय, बिनती कर, हाहा खाय, कहने लगा, कि प्रभु! तुम हो यादव पति ईस, तुम्हें मानके सब निवावते हैं सीस; साध दयाल धरन तुम धीर, दुख सह आप हरते हो पर पीर; बचन कहे की लाज है तुम्हें; अपनी सरन रक्खो तुम हमें; मैंने तुम्हारा ही कहा मान यह काम किया, अब तुम ही श्री कृष्ण के हाथ से बचाओ.

इतनी बात के सुनते ही अक्रूर जी ने सतधन्वा से कहा, कि तू बड़ा मूरख है, जो हम से ऐसी बात कहता है; क्या तू नहीं जानता कि श्री कृष्णचंद सब के करता दुख हरता हैं, उनसे बैर कर संसार में कब कोई रह सकता है; कहनेवाले का क्या बिगड़ा, अब तो तेरे सिर आन पड़ी. कहा है, सुर नर मुनि की यही है रीति, अपने स्वारथ के लिये करते हैं प्रीति; और जगत में बहुत भांति के लोग हैं, सो अनेक अनेक प्रकार की बातें अपने स्वारथ की कहते हैं, इससे मनुष को उचित है किसी के कहे पर न जाय, जो काम करे तिस में पहले अपना भला बुरा बिचार ले, पीछे उस काज में

पांव दे. तू ने समझ बूझ कर किया है काम, अब तुझे कहीं जगत में रहने को नहीं है धाम; जिसने श्री कृष्ण से बैर किया, वह फिर न जिया; जहां भागके रहा, तहां मारा गया; मुझे मरना नहीं जो तेरा पक्ष करूं, संसार में जी सब को प्यारा है.

महाराज! अक्रूर जी ने जब सतधन्वा को यों रूखे रूखे बचन सुनाये, तब तो वह निरास हो, जीने की आस छोड़, मनि अक्रूर जी के पास रख, रथ पर चढ़, नगर छोड़ भागा; और उसके पीछे रथ चढ़ श्री कृष्ण बलराम जी भी उठ दौड़े, औ चलते चलते इन्हों ने उसे सौ जोजन पर जाय लिया. इनके रथ की आहट पाय, सतधन्वा अति घबराय, रथ से उतर मिथिलापुरी में जा बड़ा.

प्रभु ने उसे देख क्रोध कर सुदरसन चक्र को आज्ञा की, तू अभी सतधन्वा का सिर काट. प्रभु की आज्ञा पाते ही सुदरसन चक्र ने उसका सिर जा काटा, तब श्री कृष्णचंद ने उसके पास जाय मनि ढूंढी, पर न पाई; फिर इन्हों ने बलदेव जी से कहा, कि भाई! सतधन्वा को मारा, औ मनि न पाई. बलराम जी बोले कि भाई! वह मनि किसी बड़े पुरुष ने पाई, तिस ने हमें लाय नहीं दिखाई; वह मनि किसी के पास छिपने की नहीं, तुम देखियो, निदान प्रगटेगी कहीं न कहीं.

इतनी बात कह बलदेव जी ने श्री कृष्णचंद से कहा, कि भाई! अब तुम तो द्वारिकापुरी को सिधारो, औ हम मनि के खोजने को जाते हैं, जहां पावेंगे तहां से ले आवेंगे.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! श्री कृष्णचंद आनंदकंद तो सतधन्वा को मार द्वारिकापुरी पधारे; औ बलराम सुखधाम मनि के खोजने को सिधारे. देस देस नगर नगर गांव गांव में ढूंढते ढूंढते बलदेव जी चले चले अजोध्या पुरी जा पहुंचे; इनके पहुंचने के समाचार पाय अजोध्या का राजा दुरयोधन उठ धाया, आगे बढ़ भेंट कर भेंट दे प्रभु को बाजेगाजे से पाटंबर के पांवड़े डालता निज मंदिर में ले आया; सिंहासन पर बिठाय, अनेक प्रकार से पूजा कर, भोजन करवाय, अति बिनती कर, सिर नाय, हाथ जोड़, सनमुख खड़ा हो बोला, कृपा सिंधु! आप का आना इधर कैसे हुआ सो कृपा कर कहिये.

महाराज! बलदेव जी ने उसके मन की लगन देख, मगन हो, अपने जाने का सब भेद कह सुनाया. इन की बात सुन राजा दुरयोधन बोला, कि नाथ! वह मनि कहीं किसी के पास न रहेगी, कभी न कभी आप से आप प्रकाश हो रहेगी. यों सुनाय फिर हाथ जोड़ कहने लगा, कि दीन दयाल! मेरे बड़े भाग जो आप का दरसन मैंने घर बैठे पाया, औ जन्म जन्म का पाप गंवाया, अब कृपा कर दास के मन की अभिलाषा पूरी कीजे, और कुछ दिवस रह शिष्य कर गदा युद्ध सिखाय जग में जस लीजे. महाराज! दुरयोधन से इतनी बात सुन बलराम जी ने उसे शिष्य

किया, और कुछ दिन वहां रह सब गदा युद्ध की बिद्या सिखाई; पर मनि वहां भी सारे नगर में खोजी औ न पाई. आगे श्री कृष्ण जी के पहुंचने के उपरांत कितने एक दिन पीछे बलराम जी भी द्वारिका नगरी में आये, तो श्री कृष्णचंद जी ने सब यादों साथ ले, सत्राजीत को तेल से निकाल, अग्नि संस्कार किया औ अपने हाथों दाह दिया.

जब श्री कृष्ण जी क्रिया कर्म से निचिंत हुए, तब अक्रूर औ कृतबर्मा कुछ आपस में सोच बिचार कर, श्री कृष्ण जी के पास आय, उन्हें एकांत लेजाय, मनि दिखायकर बोले, कि महाराज! यादव सब बहिर मुख भये, औ माया में मोह गये; तुम्हारा सुमरन ध्यान छोड़ धनांध हो रहे हैं, जो ये अब कुछ कष्ट पावें, तो ये प्रभु की सेवा में आवें; इस लिये हम नगर छोड़ मनि ले भागते हैं; जब हम इनसे आप का भजन सुमरन करावेंगे, तभी द्वारिका पुरी में आवेंगे. इतनी बात कह अक्रूर औ कृतबर्मा सब कुटुंब समेत आधी रात को श्री कृष्णचंद के भेद में द्वारिका पुरी से भागे, ऐसे कि किसी ने न जाना कि किधर गये. भोर होते ही सारे नगर में यह चरचा फैली, कि न जानिये रात की रात में अक्रूर औ कृतबर्मा कुटुंब समेत किधर गये, औ क्या हुए.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! इधर द्वारिका पुरी में तो नित घर घर यह चरचा होने लगी; औ उधर अक्रूर जी प्रथम प्रयाग में जाय, मुंडन कराय, त्रिबेनी न्हाय, बहुत सा दान पुन्य कर, तहां हरि पैड़ी बंधवाय, गया को गये; वहां भी फल्गू नदी के तीर बैठ, शास्त्र की रीति से श्राद्ध किया, औ गयालियों को जिमाय बहुत ही दान दिया. पुनि गदाधर के दरसन कर तहां से चल काशी पुरी में आये; इनके आने का समाचार पाय, इधर उधर के राजा सब आय आय भेंट कर भेंट धरने लगे, औ ये वहां जप दान तप ब्रत कर रहने लगे.

इस में कितने एक दिन बीते, श्री मुरारी भक्त हितकारी ने अक्रूर जी का बुलाना जी में ठान, बलराम जी से आनके कहा कि भाई! अब प्रजा को कुछ दुख दीजे, और अक्रूर जी को बुलवा लीजे. बलदेव जी बोले महाराज! जो आप की इच्छा में आवे सो कीजे, औ साधों को सुख दीजे. इतनी बात बलराम जी के मुख से निकलते ही, श्री कृष्णचंद जी ने ऐसा किया, कि द्वारिका पुरी में घर घर तप, तिजारी, मिरगी, क्षई, दाद, खाज, आधासीसी, कोढ़, महाकोढ़, जलंदर, भगन्दर, कठन्दर, अतिसार, आंव, मड़ोड़, खांसी, सूल, अर्द्धांग, सीतांग, झोला, सन्निपात आदि ब्याधि फैल गई.

और चार महीने बर्षा भी न हुई, तिससे सारे नगर के नदी नाले सरोवर सूख गये; तृन अन्न भी कुछ न उपजा; नभचर, जलचर, थलचर, जीव जंतु पक्षी औ ढोर लगे ब्याकुल हो सूक सूक

मरने; और पुरबासी मारे भूखों के चाहि चाहि करने; निदान सब नगर निवासी महा व्याकुल हो निपट घबराए, श्री कृष्णचंद दुख निकंद के पास आए, औ अति गिड़गिड़ाय अधिक अधीनता कर, हाथ जोड़, सिर नाय, कहने लगे.

हम तो सरन तिहारी रहैं, कष्ट महा अब कौंकर सहैं.
मेघ न बरष्यौ पीड़ा भई, कहा बिधाता ने यह ठई.

इतना कह फिर कहने लगे, कि हे द्वारिकानाथ दीन दयाल! हमारे तो करता दुख हरता तुम हो, तुम्हें छोड़ कहां जांय, औ किस से कहैं, यह उपाध बैठे बिठाए में कहां से आई, और क्यों ऊई सो कृपा कर कहिये.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्णचंद जी ने उन से कहा, कि सुनो जिस पुर से साध जन निकल जाता है, तहां आप से आप काल दरिद्र दुख आता हैं; जब से अक्रूर जी इस नगर से गये हैं, तभी से यहां यह गति ऊई है; जहां रहते हैं साध सतबादी औ हरि दास, तहां होता है अशुभ अकाल बिपत का नास; इंद्र रखता है हरि भक्तों से सनेह, इसी लिये उस नगर में भली भांति बरसाता है मेह.

इतनी बात के सुनते ही सब यादव बोल उठे, कि महाराज! आप ने सच कहा, यह बात हमारे भी जी में आई, क्योंकि अक्रूर के पिता का सुफलक नाम है, वह भी बड़ा साध सतबादी धर्मात्मा है; जहां वह रहता है, तहां कभी नहीं होता है दुख दरिद्र औ अकाल, सदा समय पर बरसता है मेह, तिससे होता है सुकाल; और सुनिये, कि एक समै काशी पुरी में बड़ा दुरभिक्ष पड़ा, तब काशी का राजा सुफलक को बुलाय ले गया. महाराज! सुफलक के जाते ही उस देस में मेह मन मानता बरसा, समा ऊआ औ सब का दुख गया; पुनि काशी पुरी के राजा ने अपनी लड़की सुफलक को ब्याह दी; वे आनंद से वहां रहने लगे; तिस राज कन्या का नाम गांदिनका था, तिसी का पुत्र अक्रूर है.

इतना कह सब यादों बोले कि महाराज! हम तो यह बात आगे से जानते थे, अब जो आप आज्ञा कीजे सो करैं. श्री कृष्णचंद बोले कि अब तुम अति आदर मान कर, अक्रूर जी को जहां पाओ तहां से ले आओ. यह बचन प्रभु के मुख से निकलते ही सब यादव मिल अक्रूर को ढूंढन निकले, औ चले चले बाराणसी पुरी में पहुंचे; अक्रूर जी से भेंट कर, भेंट दे, हाथ जोड़, सिर नाय, सनमुख खड़े हो, बोले,

चलो नाथ बोलत बल स्याम, तुम बिन पुरबासी हैं बिराम.

जित हीं तुम तित हीं सुख बास, तुम बिन कष्ट दरिद्र निवास.
यद्यपि पुर में श्री गोपाल, तऊ कष्ट दै पख्यौ अकाल.
साधनि के बस श्री पति रहैं, तिन नें सब सुख संपति लहैं.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही अक्रूर जी वहां से अति आतुर हो, कुटुंब समेत कृतबृंमा को साथ ले, सब यदुबंसियों को लिये, बाजेगाजे से चल खड़े ऊए, और कितने एक दिनों के बीच आ सब समेत द्वारिका पुरी में पऊंचे. इनके आने का समाचार पा श्री कृष्ण जी औ बलराम आगे बढ़ आय, इन्हें अति मान सनमान से नगर में लिवाय ले गए. हे राजा! अक्रूर जी के पुरी में प्रवेश करते ही मेह बरसा, औ समा ऊआ; सारे नगर का दुख दरिद्र बह गया; अक्रूर की महिमा ऊई; सब द्वारिकाबासी आनंद मंगल से रहने लगे.

आगे एक दिन श्री कृष्णचंद आनंदकंद ने अक्रूर जी को निकट बुलाय, एकांत ले जायके कहा, कि तुम ने सत्राजीत की मनि ले क्या की? वह बोला महाराज! मेरे पास है. फिर प्रभु ने कहा, जिस की वस्तु तिसे दीजे, औ वह न होय तो तिसके पुत्र को सौंपिये; पुत्र न होय तो उस की स्त्री को दीजिये; स्त्री न होय तो उसके भाई को दीजे, भाई नहो तो उसके कुटुंब को सौंपिये; कुटुंब भी नहो तो उसके गुरुपुत्र को दीजे; गुरुपुत्र नहो तो ब्राह्मन को दीजिये; पर किसी का द्रव्य आप न लीजिये, यह न्याय है, इससे अब तुम्हें उचित है कि सत्राजीत की मनि उसके नाती को दो, औ जगत में बड़ाई लो.

महाराज! श्री कृष्णचंद के मुख से इतनी बात के निकलते ही अक्रूर जी ने मनि लाय, प्रभु के आगे धर, हाथ जोड़, अति बिनती कर कहा, कि दीना नाथ! यह मनि आप लीजे, औ मेरा अपराध दूर कीजे; क्यौंकि जो इस मनि से सोना निकला, सो ले मैंने तीरथ यात्रा में उठाया है. प्रभु बोले अच्छा किया. यों कह मनि ले हरि ने सतिभामा को जाय दी, औ उसके चित की सब चिंता दूर की. इति

CHAPTER. LIX.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! एक दिन श्री कृष्णचंद जगबंधु आनंदकंद जी ने यह बिचार किया, कि अब चलकर पांडवों को देखिये जो आग से बच जीते जागते हैं. इतनी बात कह हरि कितने एक यदुबंसियों को साथ ले, द्वारिकापुरी से चल, हस्तिना पुर आये; इनके आने का समाचार पाय, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, पांचों भाई अति हर्षित हो उठ धाये, औ नगर के बाहर आय मिल बड़ी आव भगत कर लिवाय घर ले गये.

घर में जाते ही कुंती औ द्रोपदी ने पहले तो सात सुहागनों को बुलाय, मोतियों का चौक पुरवाय, तिस पर कंचन की चौकी बिछवाय, उस पै श्री कृष्ण को बिठाय, मंगलाचार करवाय अपने हाथों आरता उतारा; पीछे प्रभु के पांव धुलवाय, रसोई में ले जाय, षट रस भोजन करवाया. महाराज! जब श्री कृष्णचंद भोजन कर पान खाने लगे, तब,

कौंता ढिग बैठी कहै बात, पिता बंधु पूछत कुशलात.
नीके सूरसेन बसुदेव, बंधु भतीजे अरु बलदेव.
तिन में प्रान हमारे रहै, तुम बिन कौन कष्ट दुख दहै.
जब जब बिपत परी अति भारी, तब तुम रक्षा करी हमारी.
अहो कृष्ण तुम पर दुख हरना, पांचों बंधु तुम्हारी सरना.
ज्यों मृगनी बृक झुंड के त्रासा, त्यों येअंध सुतन के त्रासा.

महाराज! जब कुंती यों कह चुकी,

तबहिं युधिष्ठिर जोरे हाथ, तुम हो प्रभु यादवपति नाथ.
तुम कौ जोगेश्वर नित ध्यावत, शिव बिरंच के ध्यान न आवत.
हम कौं घर ही दरसन दीनौ, ऐसौ कहा पुन्य हम कीनौ.
चार मास रहकै सुख दैहौ, बरषा ऋतु बीते घर जैहौ.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! इस बात के सुनते ही भक्त हितकारी श्री बिहारी सब को आसा भरोसा दे वहां रहे, औ दिन दिन आनंद प्रेम बढ़ाने लगे. एक दिन राजा युधिष्ठिर के साथ श्री कृष्णचंद अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव को लिये, धनुष बान कर गहे, रथ पर चढ़, बन में अहेर को गये; वहां जाय, रथ से उतर, फेंट बांध, बांहें चढ़ाय, सर साध, जंगल झाड़ झाड़ लगे सिंह, बाघ, गैंडे, अरने, साबर, सूकर, हिरन, रोज, मार मार, राजा युधिष्ठिर के सनमुख लाय लाय धरने; औ राजा युधिष्ठिर हंस हंस रीझ रीझ ले ले जो जिसका भक्षन था तिसे देने लगे, और हिरन, रोज, साबर रसोई में भेजने.

तिस समै श्री कृष्णचंद औ अर्जुन आखेट करते करते कितनी एक दूर सब से आगे जाय, एक बृक्ष के नीचे खड़े हुए; फिर नदी के तीर जाके दोनों ने जल पिया; इस में श्री कृष्ण जी देखते क्या हैं, कि नदी के तीर एक अति सुंदरि नवजोबना, चंद्र मुखी, चंपक बरनी, मृग नयनी, पिक बयनी, गज गमनी, कटि केहरी, नख सिख से सिंगार किये, अनंग मद पिये, महा छबि लिये, अकेली फिरती है; उसे देखते ही हरि चकित थकित हो बोले,

वह को सुंदरि बिहरति अंग, कोऊ नहीं तासु के संग

महाराज! इतनी बात प्रभु के मुख से सुन, औ उसे देख, अर्जुन हड़बड़ाय दौड़कर वहां गया, जहां वह महा सुंदरी नदी के तीर तीर बिहरती थी, और पूछने लगा, कि कह सुंदरी तू कौन है, औ कहां से आई है, और किस लिये यहां अकेली फिरती है? यह भेद अपना सब मुझे समझायकर कह. इतनी बात के सुनते ही,

सुंदरि कथा कहै आपनी, हौं कन्या हौं सूरज तनी.
कालिंदी है मेरो नाम, पिता दियौ जल में बिश्राम.
रचे नदी में मंदिर आय, मो सों पिता कह्यौ समझाय.
कीजो सुता नदी ढिग फेरै, आय मिलैगौ ह्यां बर तेरै.
यदुकुल मांहिं कृष्ण औतरै, तो काजे इहिं ठां अनुसरै.
आदि पुरुष अविनासी हरी, ता काजै तू है औतरी.
ऐसें जब हि तात रवि कह्यौ, तबतें मैं हरि पद कौं चह्यौ.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही अर्जुन अति प्रसन्न हो बोले, कि हे सुंदरि! जिनके कारन तू यहां फिरती है, वेई प्रभु अविनासी द्वारिकाबासी श्री कृष्णचंद आनंदकंद आय पहुंचे. महाराज! जों अर्जुन के मुंह से इतनी बात निकली, तों भक्त हितकारी श्री बिहारी भी रथ बढ़ाय वहां जा पहुंचे. प्रभु को देखते ही अर्जुन ने जद उसका सब भेद कह सुनाया, तब श्री कृष्णचंद जी ने हंसकर झट उसे रथ पर चढ़ाय नगर की बाट ली; जितने श्री कृष्णचंद बन से नगर में आवे, तितने में विश्वकर्मा ने एक मंदिर अति सुंदर सब से निराला प्रभु की इच्छा देख बना रक्खा; हरि ने आते ही कालिंदी को वहां उतार, औ आप भी रहने लगे.

आगे कितने एक दिन पीछे एक समैं श्री कृष्णचंद औ अर्जुन रथ की बिरियां किसी स्थान पर बैठे थे, कि अग्नि ने आय हाथ जोड़, सिर नाय, हरि से कहा, महाराज! मैं बहुत दिन की भूखी सारे संसार में फिर आई, पर खाने को कहीं न पाया, अब एक आस आप की है, जो आज्ञा पाऊं, तो बन जंगल जाय खाऊं. प्रभु बोले अच्छा जाय खा. फिर आग ने कहा कृपा नाथ! मैं अकेली बन में नहीं जासकती, जो जाऊं तो इंद्र आय मुझे बुझाय देगा. यह बात सुन श्री कृष्ण जी ने अर्जुन से कहा, कि बंधु! तुम जाय अग्नि को चराय आओ, यह बहुत दिन से भूखी मरती है.

महाराज! श्री कृष्णचंद जी के मुख से इतनी बात के निकलते ही, अर्जुन धनुष बान ले अग्नि के साथ हुए; और आग बन में जाय भड़की, और लगे आम, इमली, बड़, पीपल, पाकड़, ताल,

तमाल, महुआ, जामन, खिरनी, कचनार, दाख, चिरौंजी, कौंला, नीबू, बेर, आदि सब वृक्ष जलने, और,

पटकैं कांस बांस अति चटके, बन के जीव फिरैं मग भटके.

जिधर देखिये तिधर सारे बन में आग हूहू कर जलती है, औ धुंआं मंडलाय आकाश को गया; तिस धुंएं को देख इंद्र ने मेघ पति को बुलायके कहा, कि तुम जाय अति बरषा कर अग्नि को बुझाय, बन औ बन के पशु पक्षी जीव जंतु को बचाओ. इतनी आज्ञा पाय मेघपति दलबादल साथ ले वहां आय घहराय जों बरसने को हुआ, तों अर्जुन ने ऐसे पवन बान मारे, कि बादल रुई काई हो यों उड़ गये, कि जैसे रूई के पहल पौन के झोके में उड़जांय; न किसी ने आते देखे न जाते; जों आये तों सहज ही बिलाय गये; और आग बन झाड़खंड जलाती जलाती वहां आई, कि जहां मय नाम असुर का मंदिर था; अग्नि को अति रिस भरी आती देख मय महा भय खाय नंगे पाओं गले में कपड़ा डाले, हाथ बांधे, मंदिर से निकल सनमुख आय खड़ा हुआ, और अष्टांग प्रनाम कर अति गिड़गिड़ायके बोला, हे प्रभु! हे प्रभु! इस आग से बचाय बेग मेरी रक्षा करो.

धरी अग्नि पायौ संतोष, अब तुम मानौं जिन कछु दोष.

मेरी बिनती मन में लाओ, बैसंदर तें मोहि बचाओ.

महाराज! इतनी बात मय दैत्य के मुख से निकलते ही, अग्नि बान बैसंदर ने धरे, औ अर्जुन भी सुचक रहे खड़े; निदान वे दोनों मय को साथ ले श्री कृष्णचंद आनंदकंद के निकट जा बोले, कि महाराज!

यह मय असुर आय है काम, तुम्हरे लयें बनै है धाम.

अब हीं सुध तुम मय की लेहु, अग्नि बुझाय अभय कर देहु.

इतनी बात कह अर्जुन ने गांडीव धनुष सर समेत हाथ से भूमि में रक्खा, तब प्रभुने आग की ओर आंख दबाय सैन की, वह तुरंत बुझ गई, औ सारे बन में सीतलता हुई. फिर श्री कृष्णचंद अर्जुन सहित मय को साथ ले आगे बढ़े; वहां जाय मय ने कंचन के मनिमय मंदिर अति सुंदर सुहावने मन भावने छिन भर में बनाय खड़े किये, ऐसे कि जिन की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती; जो देखने को आता, सो चकित हो चित्र सा खड़ा रह जाता. आगे श्री कृष्ण जी वहां चार महीने बिरमे, पीछे वहां से चल कहां आये कि जहां राज सभा में राजा युधिष्ठिर बैठे थे; आतेही प्रभु ने राजा से द्वारिका जाने की आज्ञा मांगी. यह बात श्री कृष्णचंद के मुख से निकलते ही सभा समेत राजा युधिष्ठिर अति उदास हुए, औ सारे रनवास में भी क्या स्त्री क्या पुरुष सब चिंता करने लगे;

निदान प्रभु सब को यथा योग्य समझाय बुझाय, आसा भरोसा दे, अर्जुन को साथ ले, युधिष्ठिर से बिदा हो, हस्तिनापुर से चल, हंसते खेलते कितने एक दिनों में द्वारिका पुरी आ पहुंचे. इनका आना सुन सारे नगर में आनंद हो गया, औ सब का बिरह दुख गया; मात पिता ने पुत्र का मुख देख सुख पाया, औ मन का खेद सब गंवाया.

आगे एक दिन श्री कृष्ण जी ने राजा उग्रसेन के पास जाय, कालिंदी का भेद सब समझायके कहा, कि महाराज! भानु सुता कालिंदी को हम ले आये हैं, तुम वेद की बिधि से हमारा उसके साथ ब्याह कर दो. यह बात सुन उग्रसेन ने वोंहीं मंत्री को बुलाय आज्ञा दी, कि तुम अब ही जाय ब्याह की सब सामा लाओ. आज्ञा पाय मंत्री ने बिवाह की सामग्री बात की बात में सब लाय दी; तिसी समैं उग्रसेन बसुदेव ने एक जोतिषी को बुलाय, शुभ दिन ठहराय, श्री कृष्ण जी का कालिंदी के साथ वेद की बिधि से ब्याह किया.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजा! कालिंदी का बिवाह तो यों हुआ; अब आगे जैसे मित्रबिंदा को हरि लाये, औ ब्याहा, तैसे कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनौ. सूरसेन की बेटी श्री कृष्ण जी की फुफी; तिस का नाम राजधिदेवी; उस की कन्या मित्रबिंदा; जब वह ब्याहन जोग हुई, तब उसने स्वयंबर किया; तहां सब देस देस के नरेस गुनवान, रूप निधान, महाजान, बलवान, सूर बीर, अति धीर, बनठनके एक से एक अधिक जा इकठे हुए. ये समाचार पाय श्री कृष्णचंद जी भी अर्जुन को साथ ले वहां गये, औ जाके बीचों बीच स्वयंबर के खड़े हुए.

हरषी सुंदरि देखि मुरारि, हार डार मुख रही निहारि

महाराज! यह चरित्र देख सब देस देस के राजा तो लज्जित हो मन हीं मन अनखाने लगे, और दुर्योधन ने जाय उसके भाई मित्रसेन से कहा, कि बंधु! तुम्हारे मामा का बेटा है हरी, तिसे देख भूली है सुंदरी, यह लोक बिरुद्ध रीति है, इसके होने से जग में हंसाई होगी, तुम जाय बहन को समझाओ, कि कृष्ण को न बरै, नहीं तो सब राजाओं की भीड़ में हंसी होयगी. इतनी बात के सुनते ही मित्रसेन ने जाय, बहन को बुझायके कहा.

महाराज! भाई की बात सुन समझ जों मित्रबिंदा प्रभु के पास से हटकर अलग दूर हो खड़ी हुई, तों अर्जुन ने झुककर श्री कृष्णचंद के कान में कहा, महाराज! अब आप किस की कान करते हैं, बात बिगड़ चुकी, जो कुछ करना हो सो कीजै, बिलंब न करिये. अर्जुन की बात सुनते ही श्री कृष्ण जी ने स्वयंबर के बीच से झट हाथ पकड़ मित्रबिंदा को उठाय रथ में बैठाय लिया, औ

वोंहीं सब के देखते रथ हांक दिया. उस काल सब भूपाल तो अपने अपने शस्त्र ले ले घोड़ों पर चढ़ चढ़, प्रभु का आगा घेर, लड़ने को जा खड़े रहे, औ नगर निवासी लोग हंस हंस तालियां बजाय बजाय, गालियां दे दे यों कहने लगे.

फुफू सुता कों ब्याहन आयौ, यहतें कृष्ण भलौ जस पायौ.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जब श्री कृष्णचंद जी ने देखा कि चारों ओर से जो असुर दल घिर आया है, सो लड़े बिन न रहैगा, तब तिन्हों ने कैऐक बान निखंग से निकाल, धनुष तान, ऐसे मारे, कि वह सब सेना असुरों की छिनीकाल हो वहां की वहां बिलाय गई, औ प्रभु निर्द्वंद आनंद से द्वारिका पहुंचे.

श्री शुकदेव जी बोले महाराज! श्री कृष्ण जी ने मित्रबिंदा को तो यों ले जाय द्वारिका में ब्याहा; अब आगे जैसे सत्या को प्रभु लाये सो कथा कहता हूं, तुम मन लगाय सुनैा. कौसल देस में नगनजित नाम नरेस. तिस की कन्या सत्या; जब वह ब्याहन जोग हुई, तब राजा ने सात बैल अति ऊंचे भयावने बिन नाथे मंगवाय, यह प्रतिज्ञा कर, देस में छुड़वाय दिये, कि जो इन सातों बृषभों को ऐक बार नाथ लावेगा उसे मैं अपनी कन्या ब्याहूंगा. महाराज! वे सातों बैल सिर झुकाऐ, पूंछ उठाऐ, भैां खूंद खूंद डकारते फिरैं, और जिसे पावैं तिसे हनैं.

आगे ये समाचार पाय श्री कृष्णचंद अर्जुन को साथ ले वहां गये, औ जा राजा नगनजित के सनमुख खड़े हुऐ; इन को देखते ही राजा सिंहासन से उतर, अष्टांग प्रनाम कर, इन्हैं सिंहासन पर बिठाय, चंदन अक्षत पुष्प चढ़ाय, धूप दीप कर, नैवेद्य आगे धर, हाथ जोड़, सिर नाय, अति बिनती कर बोला, कि आज मेरे भाग जागे जो शिव बिरंच के करता प्रभु मेरे घर आऐ. यों सुनाय फिर बोला कि महाराज! मैंने ऐक प्रतिज्ञा की है सो पूरी होनी कठिन थी, पर अब मुझे निहचै हुआ कि वह आप की कृपा से तुरंत पूरी होगी. प्रभु बोले कि ऐसी क्या प्रतिज्ञा तू ने की है कि जिस का होना कठिन है, कह. राजा ने कहा कृपा नाथ! मैंने सात बैल अन नाथे छुड़वाय यह प्रतिज्ञा की है, कि जो इन सातों बैल को ऐक बेर नाथेगा, तिसे मैं अपनी कन्या ब्याहूंगा. श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज!

सुन हरि फैंट बांध तहां गऐ, सात रूप धर ठाढ़े भऐ.
काहू न लख्यौ अलख ब्यौहार, सातों नाथे ऐक हि बार.

वे बृषब नाथ के नाथने के समय ऐसे खड़े रहे, कि जैसे काठ के बैल खड़े होंय; प्रभु सातों को

नाथ, एक रस्सी में गांथ, राज सभा में ले आऐ. यह चरित्र देख सब नगर निवासी तो क्या स्त्री क्या पुरुष अचरज कर धन्य धन्य करने लगे, औ राजा नगनजित ने उसी समै परोहित को बुलाय, बेद की बिधि से कन्या दान दिया; तिस के यौतुक में दस सहस्र गाय, नौ लाख हाथी, दस लाख घोड़े, तिहत्तर लाख रथ दे, दास दासी अनगिनत दिये. श्री कृष्णचंद सब ले वहां से जब चले, तब खिजलाय सब राजाओं ने प्रभु को मारग में आन घेरा; तहां मारे बानों के अर्जुन ने सब को मार भगाया; हरि आनंद मंगल से सब समेत द्वारिका पुरी पहुंचे. उस काल सब द्वारिकाबासी आगे आय प्रभु को बाजेगाजे से पाटंबर के पांवड़े डालते राजमंदिर में ले गये, औ यौतुक देख सब अचंभे रहे.

नगनजित की करत बड़ाई, कहत लोग यह बड़ी सगाई.

भलो ब्याह कौसल पति कियौ, कृष्ण हिं इतौ दायजौ दियौ.

महाराज! नगर निवासी तो इस ढब की बातें कर रहे थे, कि उसी समय, श्री कृष्णचंद औ बलराम जी ने वहां आके राजा नगनजित का दिया हुआ सब दायजा अर्जुन को दिया, औ जगत में जस लिया. आगे अब जैसे श्री कृष्ण जी भद्रा को ब्याह लाये सो कथा कहता हूं, तुम चित लगाय निचंत हो सुनौ. केकय देस के राजा की बेटी भद्रा ने स्वयंबर किया, औ देस देस के नरेसों को पत्र लिखे; वे जाय इकठे हुऐ.

तहां श्री कृष्णचंद भी अर्जुन को साथ ले गये, और स्वयंबर के बीच सभा में जा खड़े रहे. जब राज कन्या माला हाथ में लिये सब राजाओं को देखती भालती रूप सागर जगत उजागर श्री कृष्णचंद के निकट आई, तो देखते ही भूल रही, औ उस ने माला इनके गले में डाली. यह देख उसके मात पिता ने प्रसन्न हो वह कन्या हरि को वेद की बिधि से ब्याह दी; जिसके दायजे में बहुत कुछ दिया, कि जिस का वारपार नहीं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! श्री कृष्णचंद भद्रा को तो यों ब्याह लाऐ; फिर जैसे प्रभु ने लक्ष्मना को ब्याहा सो कथा कहता हूं तुम सुनौ. भद्रदेस का नरेस अति बली औ बड़ा प्रतापी, तिस की कन्या लक्ष्मना जद ब्याहन जोग हुई, तब उसने स्वयंबर कर चारों देसों के नरेसों को पत्र लिख लिख बुलाया. वे अति घूमधाम से अपनी अपनी सेना साज साज वहां आऐ औ स्वयंबर के बीच बड़े बनाव से पांति पांति जा बैठे.

श्री कृष्णचंद जी भी अर्जुन को साथ लिये तहां गये, और जों स्वयंबर के बीच जा खड़े भये, तों लक्ष्मना ने सब को देख आ श्री कृष्ण जी के गले में माला डाली. आगे उसके पिता ने बेद की बिधि से प्रभु के साथ लक्ष्मना का ब्याह कर दिया; सब देस देस के नरेस जो वहां आऐ थे, सो

महा लज्जित हो आपस में कहने लगे, कि देखें हमारे रहते किस भांति कृष्ण लक्ष्मना को लेजाता है.

ऐसे कह, वे सब अपना अपना दल साज मारग रोक जा खड़े ऊए. जों श्री कृष्णचंद औ अर्जुन लक्ष्मना समेत रथ ले आगे बढ़े, तों तिन्हों ने इन्हें आय रोका, और युद्ध करने लगे; निदान कितनी एक बेर में मारे बानों के अर्जुन औ श्री कृष्ण जी ने सब को मार भगाया, और आप अति आनंद मंगल से नगर द्वारिका पक्तंचे. इनके जाते ही सारे नगर में घर घर,

भई बधाई मंगलचार, होत बेद रीति ब्यौहार.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! इस भांति श्री कृष्णचंद जी पांच ब्याह कर लाए, तब द्वारिका में आठों पटरानियों समेत सुख से रहने लगे, औ पटरानियां आठों पहर सेवा करने लगीं. पटरानियों के नाम, रोहिनी, जामवती, सत्यभामा, कालिंदी, मित्रबिंदा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मना. इति

CHAPTER. LX.

श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजा! एक समय पृथ्वी मनुष तन धारन कर अति कठिन तप करने लगी, तहां ब्रह्मा बिष्णु रुद्र इन तीनों देवताओं ने आ तिससे पूछा, कि तू किस लिये इतनी कठिन तपस्या करती है? धरती बोली, कृपा सिंधु! मुझे पुत्र की वासना है, इस कारन महा तप करती हूं, दयाकर मुझे एक पुत्र अति बलवंत, महा प्रतापी, बड़ा तेजस्वी दो, ऐसा कि जिस का साम्हना संसार में कोई न करे, न वह किसी के हाथ से मरे.

यह बचन सुन प्रसन्न हो तीनों देवताओं ने बर दे उसे कहा, कि तेरा सुत नरकासुर नाम अति बली महा प्रतापी होगा, उससे लड़ कोई न जीतेगा; वह सृष्टि के सब राजाओं को जीत अपने बस करेगा; स्वर्ग लोक में जाय देवताओं को मार भगाय, अदिति के कुंडल छीन, आप पहनेगा; और इंद्र का छत्र छिनाय लाय अपने सिर धरेगा; संसार के राजाओं की कन्या सोलह सहस्र एक सौ लाय अन ब्याही घेर रक्खेगा; तब श्री कृष्णचंद सब अपना कटक ले उस पर चढ़ जांयगे, और उन से तू कहेगी इसे मारो, पुनि वे मार सब राज कन्याओं को ले द्वारिका पुरी पधारेंगे

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! तीनों देवताओं ने बर दे जब यों कहा, तब भूमि इतना कह चुप होरही, कि मैं ऐसी बात क्यों कहूंगी कि मेरे बेटे को मारो. आगे कितने एक दिन पीछे भूमि पुत्र भौमासुर ऊआ, तिसी का नाम नरकासुर भी कहते हैं; वह प्रागुजोतिषपुर में रहने लगा. उस पुर के चारों ओर पहाड़ों की ओट, और जल अग्नि

पत्थन का कोट बनाय, सारे संसार के राजाओं की कन्या बलकर छीन छीन, धाय समेत लाय लाय उसने वहां रक्खीं; नित उठ उन सोलह सहस्र ऐक सै। राज कन्याओं की खाने पीने पहरने की चैाकसी वह किया करे, और बड़े यत्न से उन्हें पलवावे.

ऐक दिन भैामासुर अति कोप कर, पुष्प बिमान में बैठ, जो लंका से लाया था, सुरपुर में गया, और लगा देवताओं को सताने. जिसके दुख से देवता स्थान छोड़ छोड़ अपना जीव ले ले जिधर तिधर भाग गये, तब वह अदिति के कुंडल औ इंद्र का छत्र छीन लाया. आगे सब सृष्टि के सुर नर मुनियों को अति दुख देने लगा; जिसका सब आचरन सुन श्री कृष्णचंद जगबंधु जी ने अपने जी में कहा,

वाहि मार सुंदरि सब ल्याऊं, सुरपति छत्र नहीं पहुंचाऊं.
जाय अदिति के कुंडल दै हैां, निर्भय राज इंद्र कैा कै हैां.

इतना कह पुनि श्री कृष्णचंद जी ने सतिभामा से कहा, कि हे नारि! तू मेरे साथ चले तो भैामासुर मारा जाय; क्योंकि तू भूमि का अंस है, इस लेखे उस की मा ऊई; जब देवताओं ने भूमि को पुत्र का बर दिया था, तब यह कह दिया था, कि जद तू मारने को कहैगी, तद तेरा पुत्र मरेगा, नहीं तो किसी से किसी भांति मारा न मरेगा. इस बात के सुनते ही सतिभामा जी कुछ मन ही मन सोच समझ इतना कह अनमनी हो रहीं, कि महाराज! मेरा पुत्र आप का सुत ऊआ, तुम उसे क्यैांकर मारेगे.

प्रभु ने इस बात को टाल कहा, कि उसके मारने की तो मुझे कुछ इतनी चिंता नहीं, पर ऐक समैं मैंने तुम्हें बचन दिया था, तिसे पूरा किया चाहता हूं. सतिभामा बोली सो क्या? प्रभु कहने लगे कि ऐक समय नारद जी ने आय मुझे कल्पबृक्ष का फूल दिया, वह ले मैंने रुक्मिनी को भेजा. वह बात सुन तू रिसाय रही, तब मैंने यह प्रतिज्ञा करी कि तू उदास मत हो, मैं तुझे कल्पबृक्ष ही ला दूंगा, सो अपना बचन प्रतिपालने को और तुझे बैकुंठ दिखाने को साथ ले चलता हूं.

इतनी बात के सुनते ही सतिभामा जी प्रसन्न हो हरि के साथ चलने को उपस्थित ऊईं. तब प्रभु उसे गरुड़ पर अपने पीछे बैठाय साथ ले चले. कितनी ऐक दूर जाय श्री कृष्णचंद जी ने सतिभामा जी से पूछा, कि सच कह सुंदरि! इस बात को सुन तू पहले क्या समझ अप्रसन्न ऊई थी, उसका भेद मुझे समझायके कह, जो मेरे मन का संदेह जाय. सतिभामा बोली कि महाराज! तुम भैामासुर को मार सोलह सहस्र ऐक सै। राज कन्या लाओगे, तिन में मुझे भी गिनैंगे, यह समझ अन मनी ऊई थी.

श्री कृष्णचंद बोले कि तू किसी बात की चिंता मत करै, मैं कल्पवृक्ष लाय तेरे घर में रक्खूंगा औ तू तिसके साथ मुझे नारद मुनि को दान कीजो, फिर मोल ले मुझे अपने पास रखना, मैं तेरे सदा आधीन रहूंगा. ऐसे ही इंद्रानी ने इंद्र को वृक्ष के साथ दान किया था, औ अदिति ने कश्यप को. इस दान के करने से कोई नारी तेरी समान मेरे न होगी. महाराज! इसी भांति की बातें कहते कहते श्री कृष्ण जी प्रागयोतिषपुर के निकट जा पहुंचे; वहां पहाड़ का कोट अग्नि, जल, पवन की ओट देखते ही प्रभु ने गरुड़ औ सुदरसन चक्र को आज्ञा की; तिन्हों ने पल भर में ढाय, बुझाय, बहाय, थांभ, अच्छा पंथ बनाय दिया.

जों हरि आगे बढ़ नगर में जाने लगे, तों गढ़ के रखवाले दैत्य लड़ने को चढ़ आए; प्रभु ने तिन्हें गदा से सहज ही मार गिराए. तिनके मरने का समाचार पाय, मुर नाम राक्षस पांच सीस वाला, जो उस पुर गढ़ का रखवाला था, सो अति क्रोध कर त्रिसूल हाथ में ले श्री कृष्ण जी पर चढ़ आया, औ लगा आंखें लाल लाल कर दांत पीस पीस कहने, कि,

मोतें बली कौन जग और, ताहि देखि हों मैं या ठौर.

महाराज! इतना कह मुर दैत्य श्री कृष्णचंद पर यों दपटा, कि जों गरुड़ सर्प पर झपटे. आगे उसने त्रिसूल चलाया, सो प्रभु ने चक्र से काट गिराया. फिर खिजलाय मुर ने जितने शस्त्र हरि पर घाले, तितने प्रभु ने सहज ही काट डाले. पुनि वह हकबकाय दौड़कर प्रभु से आय लिपटा, और मल्ल युद्ध करने लगा. निदान कितनी एक बेर में युद्ध करते करते, श्री कृष्ण जी ने सतिभामा जी को महा भयमान जान, सुदरसन चक्र से उसके पांचों सिर काट डाले; धड़ से सिर गिरते ही धमका सुन भौमासुर बोला, कि यह अति शब्द काहेका हुआ? इस बीच किसी ने जा सुनाया, कि महाराज! श्री कृष्ण ने आय मुर दैत्य को मार डाला.

इतनी बात के सुनते ही प्रथम तो भौमासुर ने अति खेद किया, पीछे अपने सेनापति को युद्ध करने का आयसु दिया. वह सब कटक साज लड़ने को गढ़ के द्वार पर जा उपस्थित हुआ, और तिसके पीछे अपने पिता का मरना सुन मुर के सात बेटे जो अति बलवान औ बड़े जोधा थे, सो भी अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र धारन कर श्री कृष्णचंद जी के सनमुख लड़ने को जा खड़े हुए; पीछे से भौमासुर ने अपने सेनापति औ मुर के बेटों से कहला भेजा, कि तुम सावधानी से युद्ध करो, मैं भी आवता हूं.

लड़ने की आज्ञा पाते ही, सब असुर दल साथ ले मुर के बेटों समेत भौमासुर का सेनापति श्री कृष्ण जी से युद्ध करने को चढ़ आया, औ एकाएकी प्रभु के चारों ओर सब कटक दल बादल सा जाय छाया; सब ओर से अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र भौमासुर के सूर श्री कृष्णचंद पर

चलाते थे, औ वे सहज सुभावही काट काट ढेर करते जाते थे; निदान हरि ने श्री सतिभामा जी को महा भयातुर देख, असुर दल को मुर के सातों बेटों समेत सुदरसन चक्र से बात की बात में यों काट गिराया, कि जैसे किसान ज्वार की खेती को काट गिरावे.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! मुर के पुत्रों समेत सब सेना कटी सुन, पहले तो भौमासुर अति चिंता कर महा घबराया, पीछे कुछ सोच समझ धीरज कर कितने एक महा बली राक्षसों को अपने साथ लिये, लाल लाल आंखें क्रोध से किये, कसकर फेंट बांधे, सर साधे, बकता झखता श्री कृष्ण जी से लड़ने को आय उपस्थित हुआ. जों भौमासुर ने प्रभु को देखा, तों उस ने एक बार अति रिसाय मूठ की मूठ बान चलाये, सो हरि ने तीन तीन टुकड़े कर काट गिराये; उस काल,

काढ़ खड़ग भौमासुर लियौ, कोपि हंकारि कृष्ण उर दियौ.
करै शब्द अति मेघ समान, अरे गंवार न पावे जान.
करकस बचन तहां उच्चरै, महा युद्ध भौमासुर करै.

महाराज! वह तो अति बलकर इन पर गदा चलाता था, और श्री कृष्ण जी के शरीर में उस की चोट यों लगती थी, कि जों हाथी के अंग में फूल छड़ी. आगे वह अनेक अनेक अस्त्र शस्त्र ले प्रभु से लड़ा, औ प्रभु ने सब काट डाले; तब वह फिर घर जाय एक त्रिसूल ले आया, औ युद्ध करने को उपस्थित हुआ.

तब सतिभामा टेर सुनाई, अब किन याहि हनौ यदुराई.
बचन सुनत प्रभु चक्र संभास्यौ, काटि सीस भौमासुर मास्यौ.
कुंडल मुकुट सहित सिर पस्यौ, धर के गिरत सेस थरहस्यौ.
तिहूं लोक में आनंद भयौ, सोच दुःख सब ही कौ गयौ.
तासु जोति हरि देह समानी, जैजै शब्द करैं सुर ज्ञानी.
घिरे बिमान पहुप बरषावैं, बेद बखानि देव जस गावैं.

इतनी कथा सुनाय श्री सुकदेव मुनि बोले कि महाराज! भौमासुर के मरते ही भूमि औ भौमासुर की स्त्री पुत्र समेत आय, प्रभु के सनमुख हाथ जोड़, सिर निवाय, अति बिनती कर कहने लगी, हे जोती स्वरूप ब्रह्म रूप! भक्त हितकारी बिहारी! तुम साध संत के हेतु धरते हो भेष अनंत, तुम्हारी महिमा लीला माया है अपरंपार, तिसे कौन जाने, और किसे इतनी सामर्थ है जो बिन कृपा तुम्हारी तिसे बखाने; तुम सब देवों के हो देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव.

महाराज! ऐसे कह, छत्र कुंडल पृथ्वी प्रभु के आगे धर, फिर बोली, दीनानाथ! दीन बंधु! कृपा सिंधु! यह सुभगदंत भैामासुर का बेटा आप की सरन आया है, अब करुना कर अपना कोमल कमल सा कर इस के सीस पर दीजे, औ अपने भय से इसे निर्भय कीजे. इतनी बात के सुनते ही करुना निधान श्री कान्ह ने करुना कर सुभगदंत के सीस पर हाथ धरा, और अपने उर से उसे निडर करा. तब भैामावती भैामासुर की स्त्री बहुत सी भेंट हरि के आगे धर, अति बिनती कर, हाथ जोड़, सीस झुकाय, खड़ी हो, बोली,

हे दीन दयाल, कृपाल! जैसे आप ने दरसन दे हम सब को कृतारथ किया, तैसे अब चलकर मेरा घर पवित्र कीजे. इस बात के सुनते ही अंतरजामी भक्त हितकारी श्री मुरारी भैामासुर के घर पधारे; उस काल वे दोनों मा बेटे हरि को पाटंबर के पांवड़े डाल, घर में ले जाय, सिंहासन पर बिठाय, अरघ दे, चरनामृत ले, अति दीनता कर बोले, हे त्रिलोकी नाथ! आप ने भला किया, जो इस महा असुर को बध किया; हरि से बिरोध कर किस ने संसार में सुख पाया; रावन कुंभकरन कंसादि ने बैर कर अपना जी गंवाया; और जिन जिन ने आप से द्रोह किया, तिस तिस का जगत में नाम लेवा पानी देवा कोई न रहा.

इतना कह फिर भैामावती बोली, हे नाथ! अब आप मेरी बिनती मान, सुभगदंत को निज सेवक जान, जो सोलह सहस्र राज कन्या इसके बाप ने अनब्याही रोक रक्खी हैं, सो अंगीकार कीजे. महाराज! यों कह उस ने सब राज कन्याओं को निकाल प्रभु के सोंहीं पांत की पांत ला खड़ा किया. वे जगत उजागर रूप सागर श्री कृष्णचंद आनंदकंद को देखते ही मोहित हो अति गिड़गिड़ाय, हाहा खाय, हाथ जोड़ बोलीं, नाथ! जैसे आप ने आय हम अबलाओं को इस महा दुष्ट की बंध से निकाला, तैसे अब कृपा कर इन दासियों को साथ ले चलिये, औ निज सेवा में रखिये तो भला.

यह बात सुन श्री कृष्णचंद ने तिन्हें इतना कह, कि हम तुम्हारे साथ ले चलने को रथ पालकियां मंगावे हैं, सुभगदंत की ओर देखा; सुभगदंत प्रभु के मन का कारन समझ अपनी राजधानी में जाय, हाथी घोड़े सजवाय, घुड़बहल औ रथ झमझमाते जगमगाते जुतवाय, सुखपाल, पालकी, नालकी, डोली, चंडोल, झलाबोर के कसवाय लिवाय लाया. हरि देखते ही सब राज कन्याओं को उन पर चढ़ने की आज्ञा दे, सुभगदंत को साथ ले, राजमंदिर में जाय, उसे राजगादी पर बिठाय, राज तिलक तिसे निज हाथ से दे, आप बिदा ले, जिस काल सब राज कन्याओं को साथ लिये वहां से द्वारिका को चले, तिस समय की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती; कि हाथी बैलों की झलाबोर गंगा

जमनी झूलों की चमक, और घोड़ों की पाखरों की दमक, औ सुखपाल पालकी नालकी डोली चंडोल रथ घुड़बहलों के घटाटोपों की ओप, औ उन की मोतियों की झालरों की जोत, सूरज की जोत से मिल एक हो जगमगाय रही थी.

आगे श्री कृष्णचंद सब राज कन्याओं को लिये, कितने एक दिन में चले चले द्वारिका पुरी पहुंचे; वहां जाय राज कन्याओं को राजमंदिर में रख, राजा उग्रसेन के पास जाय, प्रनाम कर, पहले तो श्री कृष्ण जी ने भौमासुर के मारने और राज कन्याओं के छुड़ाय लाने का सब भेद कह सुनाया; फिर राजा उग्रसेन से बिदा होय, प्रभु सतिभामा को साथ ले, छत्र कुंडल लिये गरुड़ पर बैठ बैकुंठ को गये, तहां पहुंचते ही,

कुंडल दिये अदिति के ईस, छत्र धर्‍यो सुरपति के सीस.

यह समाचार पाय वहां नारद आया, तिस से हरि ने कह सुनाया, कि तुम जाय इंद्र से कहो, जो सतिभामा तुम से कल्पबृक्ष मांगती है, देखो वह क्या कहता है, इस बात का उत्तर मुझे ला दो, पीछे समझा जायगा. महाराज! इतनी बात श्री कृष्णचंद जी के मुख से सुन, नारद जी ने सुरपति से जाय कहा, कि सतिभामा तुम्हारी भौजाई तुम से कल्पतरु मांगती है, तुम क्या कहते हो सो कहो, मैं उन्हें जाय सुनाऊं, कि इंद्र ने यह कहा. इस बात के सुनते ही इंद्र पहले तो हकबकाय कुछ चोस रहा, पीछे उस ने नारद मुनि का कहा सब इंद्रानी से जाय कहा.

इंद्रानी सुन कहै रिसाय, सुरपति तेरी कुमति न जाय.
तू है बड़ो मूढ़ पति अंधु, को है कृष्ण कौन कौ बंधु.

तुझे वह सुध है कै नहीं, जो उस ने ब्रज में से तेरी पूजा मेट ब्रजबासियों से गिर पुजवाय, छलकर तेरी पूजा का सब पकवान आप खाया; फिर सात दिन तुझे गिर पर बरसवाय, उस ने तेरा गर्ब गंवाय, सब जगत में निरादर किया; इस बात की कुछ तेरे तांई लाज है कै नहीं; वह अपनी स्त्री की बात मानता है, तू मेरा कहा क्यों नहीं सुनता.

महाराज! जब इंद्रानी ने इंद्र से यों कह सुनाया, तब वह अपना सा मुंह ले उलट नारद जी के पास आया, और बोला. हे ऋषि राय! तुम मेरी ओर से जाय श्री कृष्णचंद से कहो, कि कल्पबृक्ष नंदन बन तज अनत न जायगा, औ जायगा तो वहां किसी भांति न रहेगा. इतना कह फिर समझाके कहियो, जो आगे की भांति अब यहां हम से बिगाड़ न करें, जैसे ब्रज में ब्रजबासियों को बहकाय गिरि का मिस कर सब हमारी पूजा की सामा खायगये, नहीं तो महा युद्ध होगा.

यह बात सुन नारद जी ने आय श्री कृष्णचंद से इंद्र की बात कही कह सुनायके कहा,

महाराज! कल्पतरु इंद्र तो देता था, पर इंद्रानी ने न देने दिया. इस बात के सुनते ही श्री मुरारी गर्व प्रहारी नंदन बन में जाय, रखवालों को मार भगाय, कल्पवृक्ष को उठाय, गरुड़ पर धर ले आए. उस काल वे रखवाले जो प्रभु के हाथ की मार खाय भागे थे, इंद्र के पास जा पुकारे; कल्पतरु के लेजाने के समाचार पाय, महाराज! राजा इंद्र अति कोप कर, बज्र हाथ में ले, सब देवताओं को बुलाय, ऐरावत हाथी पर चढ़, श्री कृष्णचंद जी से युद्ध करने को उपस्थित हुआ.

फिर नारद मुनि जी ने जाय इंद्र से कहा, राजा! तू महा मूर्ख है जो स्त्री के कहे भगवान से लड़ने को उपस्थित हुआ है; ऐसी बात कहते तुझे लाज नहीं आती; जो तुझे लड़ना ही था तो जब भौमासुर तेरा छत्र औ अदिति के कुंडल छिनाय लेगया तब क्यों न लड़ा, अब प्रभु ने भौमासुर को मार कुंडल औ छत्र ला दिया, तो तू उन ही से लड़ने लगा; जो तू ऐसा ही बलवान था तो भौमासुर से क्यों न लड़ा; तू वह दिन भूल गया, जो ब्रज में जाय प्रभु की अति दीनता कर अपना अपराध क्षमा कराय आया, फिर उन हीं से लड़ने चला है. महाराज! नारद जी के मुख से इतनी बात सुनते ही राजा इंद्र जो युद्ध करने को उपस्थित हुआ, तो अकुताय पछताय लज्जित हो मन मार रह गया.

आगे श्री कृष्णचंद द्वारिका पधारे, तब हरषित भये देख हरि को यादव सारे. प्रभु ने सतिभामा के मंदिर में कल्पवृक्ष ले जायके रक्खा, औ राजा उग्रसेन ने सोलह सहस्र एक सौ जो राज कन्या अनब्याही थीं, सो सब बेद रीति से श्री कृष्णचंद को ब्याहीं,

भयौ बेद बिधि मंगलचार, ऐसे हरि बिहरत संसार.
सोलह सहस्र एक सौ ग्रेहा, रहत कृष्ण कर परम सनेहा.
पटरानी आठों जे गनी, प्रीति निरंतर तिन सों घनी.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजा! हरि ने ऐसे भौमासुर को बध किया, औ अदिति का कुंडल और इंद्र का छत्र ला दिया; फिर सोलह सहस्र एक सौ आठ बिवाह कर श्री कृष्णचंद द्वारिका पुरी में आनंद से सब को ले लीला करने लगे. इति

CHAPTER. LXI.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! एक समैं मनिमय कंचन के मंदिर में कुंदन का जड़ाऊ छपरखट बिछा था, तिस पर फेन से बिछौने फूलों से संवारे, कपोल गेंडुआ औ ओसीसे समेत सुगंध से महक रहे थे; करपूर, गुलाब नीर, चोआ, चंदन, अरगजा, सेज के चारों ओर पात्रों में भरे धरे था;

अनेक अनेक प्रकार के चित्र बिचित्र चारों ओर भींतों पर खिंचे ऊए थे; आलों में जहां तहां फूल, फल, पकवान, पाक, धरे थे; और सब सुख का सामान जो चाहिये सो उपस्थित था.

गुलाबोर का घाघरा घूमघुमाला, तिस पर सच्चे मोती टंके ऊए, चमचमाती अंगिया, झलझलाती सारी औ जगमगाती ओढ़नी पहने ओढ़े, नख सिख से सिंगार किये, रोली की आड़ दिये, बड़े बड़े मोतियों की नथ, सीसफूल, करनफूल, मांग, टीका, बेंदी, बंदी, चंद्रहार, मोहनमाल, धुकधुकी, पंचलड़ी, सतलड़ी, मुक्तमाल, दुहरे तिहरे नौरतन, औ भुजबंध, कंकन, पऊंची, नौगरी, चूड़ी, छाप, छल्ले, किंकिनी, अनवट, बिछुए, जेहर तेहर, आदि सब आभूषन रतन जठित पहने, चंद बदनी, चंपक बरनी, मृग नयनी, पिक बयनी, गज गमनी, कटि केहरी, श्री रुक्मिनी जी; और मेघ बरन, चंदमुख, कंवल नैन, मोर मुकुट दिये, बनमाल हिये, पीतांबर पहरे, पीत पट ओढ़े, रूप सागर, त्रिभुवन उजागर श्री कृष्णचंद आनंदकंद तहां बिराजते थे, औ आपस में परसपर सुख लेते देते थे, कि ऐका ऐकी लेटे लेटे श्री कृष्ण जी ने रुक्मिनी जी से कहा.

कि सुन सुंदरि! ऐक बात मैं तुझ से पूछता हूं, तू उसका उत्तर मुझे दे; कि तू तो महा सुंदरी सब गुन संयुक्त, औ राजा भीष्मक की पुत्री; और महा बली, बड़ा प्रतापी राजा सिसुपाल चंदेरी का राजा, ऐसा कि जिनके घर सात पीढ़ी से राज चला आता है, औ हम उन के त्रास से भागे फिरते हैं, औ मथुरा पुरी तज समुद्र में जाय बसे हैं उन्हीं के भय से, ऐसे राजा को तुम्हें तुम्हारे मात पिता भाई देते थे, औ वह बरात ले ब्याहने को भी आचुका था, तिसे न बर तुम ने कुल की मर्याद छोड़, संसार की लाज औ मात पिता बंधु की संका तज हमें ब्राह्मन के हाथ बुला भेजा.

तुम्हरे जोग न हम परबीन, भूपति नाहिं रूप गुन हीन.
काहू जाचक कीरत करी, सो तुम सुनकै मन में धरी.
कटक साज नृप ब्याहन आयौ, तब तुम हमकौं बोल पठायौ.
आय उपाद बनी ही भारी, क्यौं हूं कै पति रही हमारी.
तिनके देखत तुम कौं लाऐ, दल हलधर उनके बिच राऐ.
तुम लिख भेजा ही यह बानी, सिसुपाल तें छुड़ावौ आनी.
सो परतज्ञा रही तिहारी, कछू न इच्छा ऊती हमारी.
अज हूं कछू न गयौ तिहारौ, सुंदरि मानऊ बचन हमारौ.

कि जो कोई भूपति कुलीन, गुनी, बली, तुम्हारे जोग होय, तुम तिसके पास जा रहौ. महाराज! इतनी बात के सुनते ही श्री रुक्मिनी जी भयचक हो महराय पछाड़ खाय भूमि पर

गिरीं, औ जल बिन मीन की भांति तड़फड़ाय अचेत हो लगीं ऊर्द्ध सांस लेने; तिस काल,

इहि छबि मुख अलका वली, रही लपट इक संग,
मानहुं ससि भूलत पर्‌यौ, पीवत अमी भुवंग.

यह चरित्र देख इतना कह श्री कृष्णचंद घबराकर उठे, कि यह तो अभी प्रान तजती है; औ चतुर्भुज हो उसके निकट जाय दो हाथों से पकड़ उठाय, गोद में बैठाय, ऐक हाथ से पंखा करने लगे, औ ऐक हाथ से अलक संवारने. महाराज! उस काल नंद लाल प्रेम बस हो अनेक अनेक चेष्टा करने लगे; कभी पीतांबर से प्यारी का चंद मुख पोंछते थे; कभी कोमल कमल सा अपना हाथ उसके हृदे पर रखते थे; निदान कितनी ऐक बेर में श्री रुक्मिनी जी के जी में जी आया, तब हरि बोले,

तू ही सुंदरि प्रेम गंभीर, तैं मन कछू न राखी धीर.
तैं मन जान्यों सांचे छाड़ी, हम ने हंसी प्रेम की माड़ी.
अब तू सुंदरि देह संभार, प्रान ठौरकै नैन उघार.
जौलौं तू बोलत नहीं प्यारी, तौलौं हम दुख पावत भारी.
चैती बचन सुनत पिय नारि, चितई बारिज नयन उघारि.
देखे कृष्ण गोद में लिये, भई लाज अति सकुची हिये.
अरबराय उठ ठाढ़ी भई, हाथ जोरि पायन परि रही.
बोले कृष्ण पीठ कर देत, भली भली जू प्रेम अचेत.

हमने हांसी ठानी, सो तुम ने सच ही जानी; हंसी की बात में क्रोध करना उचित नहीं; उठो अब क्रोध दूर करो, औ मन का शोक हरो. महाराज! इतनी बात के सुनते ही श्री रुक्मिनी जी उठ हाथ जोड़, सिर नाय, कहने लगीं, कि महाराज! आप ने जो कहा कि हम तुम्हारे जोग नहीं सो सच कहा, क्योंकि तुम लक्ष्मी पति शिव बिरंच के ईस, तुम्हारी समता का त्रिलोकी में कौन है, हे जगदीस! तुम्हें छोड़ जो जन और को धावे, सो ऐसे हैं जैसे कोई हरि जस छोड़ गीध गुन गावे. महाराज! आप ने जो कहा कि तुम किसी महा बली राजा को देखो, सो तुम से अति बली औ बड़ा राजा त्रिभुवन में कौन है सो कहो.

ब्रह्मा रुद्र इंद्रादि सब देवता बरदाई तो तुम्हारे आज्ञाकारी हैं, तुम्हारी कृपा से वे जिसे चाहते हैं तिसे महा बली, प्रतापी, जसी, तेजस्वी, बरदे बनाते हैं, और जो लोग आप की सैंकड़ो बरस अति कठिन तपस्या करते हैं, सो राज पद पाते हैं; फिर तुम्हारा भजन, ध्यान, जप, तप, भूल

नीति छोड़, अनीति करते हैं, तब वे आप से आपही अपना सरबस खोय भृष्ट होते हैं. कृपानाथ! तुम्हारी तो सदा यह रीति है कि अपने भक्तों के हेतु संसार में आय बार बार औतार लेते हो, औ दुष्ट राक्षसों को मार, पृथ्वी का भार उतार, निज जनों को सुख दे कृतारथ करते हो.

औ नाथ! जिस पर तुम्हारी बड़ी दया होती है, और वह धन, राज, जोबन, रूप, प्रभुता पाय, जब अभिमान से अंधा हो, धर्म कर्म तप सत दया पूजा भजन भूलता है, तब तुम उसे दरिद्री बनाते हो; क्यौंकि दरिद्री सदा ही तुम्हारा ध्यान सुमरन किया करता है, इसी से तुम्हें दलिद्री भाता है; जिस पर तुम्हारी बड़ी कृपा होगी, सो सदा निर्धन रहैगा. महाराज! इतना कह फिर रुक्मिनी जी बोलीं, कि हे प्रान नाथ! जैसा काशी पुरी के राजा इंद्रदवन की बेटी अंबा ने किया, तैसा मैं न करूंगी, कि वह पति छोड़ राजा भीषम के पास गई; औ जब उस ने इसे न रक्खा, तब फिर अपने पति के पास आई, पुनि पति ने उसे निकाल दिया, तद उन्ने गंगा तीर में बैठ महादेव का बड़ा तप किया, वहां भोलानाथ ने आय उसे मुंह मांगा बर दिया, उस बरके बल से जाय उस ने राजा भीषम से अपना पलटा लिया, सो मुज से न होगा.

अरु तुम नाथ यहौ समझाई, काहू जाचक करी बड़ाई.
वाकौ बचन मान तुम लियौ, हम पै बिप्र पठैकै दियौ.
जाचक शिव बिरंच सारदा, नारद गुन गावत सरवदा.
बिप्र पठायौ जान दयाल, आय कियौ दुष्टनि कौ काल.
दीन जान दासी संग लई, तुम मोहि नाथ बड़ाई दई.
यह सुनि कृष्न कहत सुनप्यारी, ज्ञान ध्यान गति लही हमारी.
सेवा भजन प्रेम तैं जान्यौं, तोही सों मेरौ मन मान्यौं.

महाराज! प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही संतुष्ट हो रुक्मिनी जी फिर हरि की सेवा करने लगीं. इति

CHAPTER. LXII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रीयों को ले श्री कृष्नचंद्र आनंद से द्वारिका पुरी में बिहार करने लगे; औ आठों पटरानियां आठों पहर हरि की सेवा में रहैं; नित उठ भोर ही कोई मुख धुलावै; कोई उबटन लगाय न्हिलावै; कोई षट रस भोजन बनाय जिमावै; कोई अच्छे पान लौंग इलायची जावित्री जायफल समेत पिय को बनाय बनाय

खिलावैं; कोई सुथरे वस्त्र औ रतन जटित आभूषन चुन बास औ बनाय प्रभु को पहनाती थी; कोई फूल माल पहराय गुलाबनीर छिड़क केसर चंदन चरचती थी; कोई पंखा डुलाती थी; और कोई पांव दाबती थी.

महाराज! इसी भांति सब रानियां अनेक अनेक प्रकार से प्रभु की सदा सेवा करैं, औ हरि हर भांति उन्हें सुख दें. इतनी कथा सुनाय श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! कई बरस के बीच,

एक एक जदुनाथ की नारिन जाये पुत्र,
इक इक कन्या लक्ष्मी, दस दस पुत्र सपुत्र.
एक लाख इकसठ सहस्र ऐसी बाढ़ इकसार,
भये कृष्ण के पुत्र ये, गुन बल रूप अपार.

सब मेघ बरन चंद्र मुख कंवल नयन नीले पीले झगुले पहने, गंडे कठले ताइत गले में डाले, घर घर बाल चरित्र कर कर मात पिता को सुख दें; औ उन की माएं अनेक भांति से लाड़ प्यार कर प्रतिपाल करें. महाराज! श्री कृष्णचंद्र जी के पुत्रों का होना सुन रुक्म ने अपनी स्त्री से कहा, कि अब मैं अपनी कन्या चारुमती जो कृतबंमा के बेटे को मांगी है, तिसे न दूंगा, स्वयंबर करूंगा, तुम किसी को भेज मेरी बहन रुक्मिनी को पुत्र समेत बुलवा भेजो.

इतनी बात के सुनते ही रुक्म की नारी ने अति बिनती कर ननद को पत्र लिख पुत्र समेत बुलवाया एक ब्राह्मन के हाथ, औ स्वयंबर किया. भाई भौजाई की चिट्ठी पाते ही रुक्मिनी जी श्री कृष्णचंद्र जी से आज्ञा ले, बिदा हो, पुत्र सहित चलीं चलीं द्वारिका से भोजकट में भाई के घर पहुंचीं.

देख रुक्म ने अति सुख पायौ, आदर कर नीचौ सिर नायौ.
पायन पर बोली भौजाई! हरन भयौ तब तें अब आई.

यह कह फिर उसने रुक्मिनी जी से कहा, कि ननद! जो तुम आई हो तो हम पर दया मया कीजे, और इस चारुमती कन्या को अपने पुत्र के लिये लीजे. इस बात के सुनते ही रुक्मिनी जी बोलीं, कि भौजाई! तुम पति की गति जानती हो, मत किसी से कलह करवाओ, भैया की बात कुछ कही नहीं जाती, क्या जानिये किस समय क्या करे, इससे कोई बात कहते करते भय लगता है. रुक्म बोला कि बहन! अब तुम किसी भांति न डरो, कुछ उपाध न होगी; बेद की आज्ञा है कि दक्षिन देस में कन्या दान भानजे को दीजे, इस कारन मैं अपनी पुत्री चारुमती तुम्हारे पुत्र प्रद्युम्न को दूंगा, श्री कृष्ण जी से बैर भाव छोड़ नया संबंध करूंगा.

महाराज! इतना कह जब रुक्म वहां से उठ सभा में गया, तब प्रद्युम्न जी भी माता से आज्ञा ले, बन ठनकर स्वयंबर के बीच गये, तो क्या देखते हैं, कि देस देस के नरेस भांति भांति के वस्त्र शस्त्र आभूषन पहने बांधे बनाव किये, बिवाह की अभिलाषा हिये में लिये, सब खड़े हैं; और वह कन्या जैमाल कर लिये, चारों ओर दृष्ट किये, बीच में फिरती है; पर किसी पै दृष्ट उस की नहीं ठहरती, इस में जों प्रद्युम्न जी स्वयंबर के बीच गये तों देखते ही उस कन्या ने मोहित हो आ इन के गले में जैमाल डाली; सब राजा अछता पछताय मुंह देखते अपना सा मुंह लिये खड़े रह गये, और अपने मन ही मन कहने लगे, कि भला देखें हमारे आगे से इस कन्या को कैसे ले जायगा, हम बाट ही में छीन लेंगे.

महाराज! सब राजा तो यों कह रहे थे, और रुक्म ने बर कन्या को मढे के नीचे ले जाय, वेद की बिधि से संकल्प कर, कन्या दान किया, और उसके यौतुक में बहुत ही धन द्रब्य दिया, कि जिसका कुछ वारपार नहीं. आगे श्री रुक्मिनी जी पुत्र को व्याह, भाई भौजाई से बिदा हो, बेटे बहू को ले, रथ पर चढ, जों द्वारिका पुरी को चलीं, तों सब राजाओं ने आय मारग रोका, इस लिये कि प्रद्युम्न जी से लड़ कन्या को छीन लें.

उन की यह कुमति देख प्रद्युम्न जी भी अपने अस्त्र शस्त्र ले युद्ध करने को उपस्थित हुए; कितनी बेर तक इन से उन से युद्ध रहा, निदान प्रद्युम्न जी उन सबों को मार भगाय आनंद मंगल से द्वारिका पुरी पहुंचे. इनके पहुंचने के समाचार पाय सब कुटुंब के लोग, क्या स्त्री क्या पुरुष पुरी के बाहर आय, रीति भांति कर पाटंबर के पांवड़े डालते बाजे गाजे से इन्हें ले गये; सारे नगर में मंगल हुआ, ये राजमंदिर में सुख से रहने लगे.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा महाराज! कई बरष पीछे श्री कृष्णचंद आनंदकंद के पुत्र प्रद्युम्न जी के पुत्र हुआ; उस काल श्री कृष्ण जी ने जोतिषियों को बुलाय, सब कुटुंब के लोगों को बैठाय, मंगलाचार करवाय, शास्त्र की रीति से नाम करन किया; जोतिषियों ने पत्रा देख बरष मास पक्ष दिन तिथि घड़ी लग्न नक्षत्र ठहराय, उस लड़के का नाम अनरुद्ध रक्खा; उस काल,

फूले अंग न समांइ, दान दक्षिना द्विजन कौं,
देत न कृष्ण अघांइ, प्रद्युम्न के बेटा भयौ.

महाराज! नाती के होने का समाचार पाय पहले तो रुक्म ने बहन बहनोई को अति हित कर यह पत्री में लिख भेजा, कि तुम्हारे पोते से हमारी पोती का व्याह होय तो बड़ा आनंद है; और

पीछे ऐक ब्राह्मन को बुलाय, रोली अक्षत रुपया नारियल दे, उसे समझायके कहा, कि तुम द्वारिका पुरी में जाय, हमारी ओर से अति बिनती कर, श्री कृष्ण जी का पोत्र अनरुद्ध जो हमारा दोहता है, तिसे टीका दे आओ. बात के सुनते ही ब्राह्मन टीका औ लग्न साथ ही ले चला चला श्री कृष्णचंद के पास द्वारिका पुरी में गया; जिसे देख प्रभु ने अति मान सनमान कर पूछा, कि कहो देवता! आप का आना कहां से हुआ? ब्राह्मन बोला, महाराज! मैं राजा भीष्मक के पुत्र रुक्म का पठाया उन की पोती औ आप के पोत्र से संबंध करने को टीका औ लग्न ले आया हूं.

इस बात के सुनते ही श्री कृष्ण जी ने दस भाइयों को बुलाय, टीका औ लग्न ले, जिस ब्राह्मन को बहुत कुछ दे, बिदा किया; और आप बलराम जी के निकट जाय, चलने का बिचार करने लगे. निदान वे दोनों भाई वहां से उठ राजा उग्रसेन के पास जाय, सब समाचार सुनाय, उन से बिदा हो, बाहर आय, बरात की सब सामा मंगवाय मंगवाय इकठी करवाने लगे; कई ऐक दिन में जब सब सामान उपस्थित हो चुका, तब बड़ी धूमधाम से प्रभु बरात ले द्वारिका से भोजकट नगर को चले.

उस काल ऐक जगमगाते रथ पर तो श्री रुक्मिनी जी पुत्र पोत्र को लिये बैठी जाती थीं, औ ऐक रथ पर श्री कृष्णचंद औ बलराम बैठे जाते थे; निदान कितने ऐक दिनों में सब समेत प्रभु वहां पहुंचे. महाराज! बरात के पहुंचते ही रुक्म कलिंगादि सब देस देस के राजाओं को साथ ले नगर के बाहर जाय, अगौनी कर, सब को बागे पहराय, अति आदर मान कर जनवासे में लिवाय लाया; आगे सब को खिलाय पिलाय मांढे के नीचे लिवाय लेगया, औ उस ने वेद की बिधि से कन्या दान किया; जिस के यौतुक में जो दान दिया उस को मैं कहां तक कहूं, वह अकथ है.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले महाराज! ब्याह के हो चुकते ही राजा भीष्मक ने जनवासे में जाय, हाथ जोड़, अति बिनती कर, श्री कृष्णचंद जी से चुपचुपाते कहा, महाराज! बिवाह हो चुका औ रस रहा, अब आप शीघ्र चलने का बिचार कीजे; क्योंकि,

भूप सबै जे रुक्म बुलाऐ, ते सब दुष्ट उपाधी आऐ.
मत काहू सों उपजै रारि, याही तें हौं कहत मुरारि.

इतनी बात कह ज्यों राजा भीष्मक गऐ, त्योंही श्री रुक्मिनी जी के निकट रुक्म आया,

कहत रुक्मिनी टेरकर, किम घर पहुंचें जाय,
बैरी भूपति पाहुने, जुरे तिहारे आय.
जौ तुम भैया चाहो भलौ, हमहिं बेग पहुंचावन चलौ.

नहीं तो रस में अनरस होता दीसे है. यह बचन सुन रुक्म बोला, कि बहन! तुम किसी

बात की चिंता मत करो, मैं पहले जो राजा देस देस के पाहुने आये हैं तिन्हें बिदा कर आऊं, पीछे जो तुम कहोगी सो मैं करूंगा. इतना कह रुक्म वहां से उठ जो राजा पाहुने आये थे उनके पास गया; वे सब मिलके कहने लगे, कि रुक्म! तुम ने कृष्ण बलदेव को इतना धन द्रव्य दिया, और उन्हों ने मारे अभिमान के कुछ भला न माना; एक तो हमें इस बात का पछतावा है, और दूसरे उस बात की कसक हमारे मन से नहीं जाती, कि जो बलराम ने तुम्हें अभरम किया था.

महाराज! इस बात के सुनते ही रुक्म को क्रोध हुआ, तब राजा कलिंग बोला, कि एक बात मेरे जी में आई है, कहो तो कहूं. रुक्म ने कहा कहो; फिर उसने कहा कि हमें श्री कृष्ण से कुछ काम नहीं, पर बलराम को बुलादो तो हम उससे चौपड़ खेल सब धन जीत लें, और जैसा उसे अभिमान है तैसा यहां से रीते हाथ बिदा करैं. जों कलिंग ने यह बात कही, तोंही रुक्म वहां से उठ कुछ सोच बिचार करता बलराम जी के निकट जा बोला, कि महाराज! आप को सब राजाओं ने प्रनाम कर बुलाया है चौपड़ खेलने को.

सुन बलभद्र तबहि तहां आये, भूपति उठकै सीस निवाये.

आगे सब राजा बलराम जी का शिष्टाचार कर बोले, कि आप को चौपड़ खेलने का बड़ा अभ्यास है, इस लिये हम आप के साथ खेला चाहते हैं. इतना कह उन्हों ने चौपड़ मंगवाय बिछाई, और रुक्म से औ बलराम जी से होने लगी. पहले रुक्म दस बेर जीता, तो बलदेव जी से कहने लगा कि धन तो सब बीता, अब काहे से खेलोगे; इस में राजा कलिंग बड़ी बात कह हंसा; यह चरित्र देख बलदेव जी नीचा सिर कर सोच बिचार करने लगे, तब रुक्म ने दस करोड़ रुपये एक बार लगाये, सो बलराम जी ने जों जीतके उठाये, तों सब धांधल कर बोले, कि यह रुक्म का पासा पड़ा, तुम क्यों रुपये समेटते हो?

सुनि बलराम फेर सब दीने, अर्ब लगायौ पासे लीने.

फिर हलधर जीते औ रुक्म हारा; उस समय भी झंगटी कर सब राजाओं ने रुक्म को जिताया, और यों कह सुनाया,

जुआ खेल पासे की सार, यह तुम जानौ कहा गंवार.

जुआ युद्ध गति भूपति जाने, ग्वाल गोप गैयन पहचाने.

इस बात के सुनते ही बलदेव जी का क्रोध यों बढ़ा कि जैसे पूर्न्यौ को समुद्र की तरंग बढ़े; निदान जों तों कर बलराम जी ने क्रोध को रोका, मन को समझाय, फिर सात अर्ब रुपये लगाये, और चौपड़ खेलने लगे; फिर भी बलदेव जी जीते, औ सबों ने कपट कर रुक्म ही को जीता कहा. इस

अनीति के होते ही आकाश से यह बानी हुई, कि हलधर जीते, और रुक्म हारा, अरे राजाओ! तुम ने क्यों झूठ बचन उचारे. महाराज! जब रुक्म समेत सब राजाओं ने आकाश बानी सुनी अनसुनी की, तब तो बलदेव जी महा क्रोध में आय बोले,

करी सगाई बैर न छांड्यो, हम सों फेर कलह तुम मांड्यो.
मारौं तोहि अरे अन्याई, भलो बुरो मानहु भौजाई.
अब काहू की कान न करिहों, आज प्रान कपटी के हरिहों.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! निदान बलराम जी ने सब के देखते रुक्म को मार डाला, औ कलिंग को पछाड़ मारे घूसों के उसके दांत उखाड़ डाले, औ कहा, कि तू भी मुंह पसारकै हंसा था. आगे सब राजाओं को मार भगाय, बलराम जी ने जनवासे में श्री कृष्णचंद्र जी के पास आय, वहां का सब ब्यौरा कह सुनाया.

बात के सुनते ही हरि ने सब समेत वहां से प्रस्थान किया, और चले चले आनंद मंगल से द्वारिका में आन पहुंचे. इन के आते ही सारे नगर में सुख छाय गया; घर घर मंगलाचार होने लगा; श्री कृष्ण जी औ बलदेव जी ने उग्रसेन राजा के सनमुख जाय हाथ जोड़ कहा, महाराज! आप के पुन्य प्रताप से अनरुद्ध को ब्याह लाये, औ महा दुष्ट रुक्म को मारि आये. इति

CHAPTER. LXIII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! अब जो श्री द्वारिका नाथ का बल पाऊं, तो ऊषा हरन की कथा सब गाऊं; जैसे उसने एक समैं सपने में अनरुद्ध जी को देखा, औ आशक्त हो खेद किया, पुनि चित्ररेखा ने जों अनरुद्ध को लाय ऊषा से मिलाया, तैसे मैं सब प्रसंग कहता हूं, तुम मन दे सुनौ. ब्रह्मा के बंस में पहले कश्यप हुआ, तिसका पुत्र हिरनकश्यप अति बली महा प्रतापी औ अमर भया; उसका सुत हरिजन, प्रभु भक्त पह्लाद नाम हुआ; तिसका बेटा राजा बिरोचन, बिरोचन का राजा बल, जिसका जस धर्म धरनी में अब तक छाय रहा है, कि प्रभु ने बावन अवतार ले राजा बल को छल पाताल पठाया; उस बल का जेष्ठ पुत्र महा पराक्रमी, बड़ा तेजस्वी, बानासुर हुआ, वह श्रोनितपुर में बसे, नित प्रति कैलाश में जाय शिव की पूजा करे, ब्रह्मचर्य पाले, सत्य बोले, जितेंद्री रहै. महाराज! ऐक दिन बानासुर कैलाश में जाय हर की पूजा कर, प्रेम में आय लगा मगन हो मृदंग बजाय बजाय नाचने गाने; उसका गाना बजाना सुन श्री महादेव भोलानाथ मगन हो, लगें पार्वती जी को साथ ले नाचने, औ डमरू बजाने. निदान नाचते नाचते

शंकर ने अति सुख पाय प्रसन्न हो, बानासुर को निकट बुलायके कहा, पुत्र! मैं तुझ पर संतुष्ट हुआ, बर मांग, जो तू बर मांगेगा सो मैं दूंगा.

तें कर बाजे भले बजाये, सुनत श्रवन मेरे मन भाये.

इतनी बात के सुनते ही, महाराज! बानासुर हाथ जोड़, सिर नाय, अति दीनता कर, बोला, कि कृपा नाथ! जो आप ने मेरे पर कृपा की तो पहले अमर कर मुझे सब पृथ्वी का राज दीजे, पीछे मुझे ऐसा बली कीजे कि कोई मुझ से न जीते. महादेव जी बोले, कि मैंने तुझे यही बर दिया, औ सब भय से निर्भय किया; त्रिभुवन में तेरे बल को कोई न पायगा, औ बिधाता का भी कुछ तुझ पर बस न चलेगा.

बाजे भले बजायके, दियो परम सुख मोहि,
मैं अति हिय आनंद कर, दिये सहस्र भुज तोहि.

अब तू घर जाय निचिंताई से बैठ अविचल राज कर. महाराज! इतना बचन भोलानाथ के मुख से सुन, सहस्र भुज पाय, बानासुर अति प्रसन्न हो, परिक्रमा दे, सिर नाय, बिदा होय, आज्ञा ले, श्रोनितपुर में आया; आगे त्रिलोकी को जीत, सब देवताओं को बस कर, नगर के चारों ओर जल की दुआन चौड़ी खाई औ अग्नि पवन का कोट बनाय निर्भय हो सुख से राज करने लगा. कितने एक दिन पीछे,

लरवे बिन भई भुज सबल, फरक हिं अति सहिरंय,
कहत बान कासों लरैं, का पर अब चढ़ि जांय.
भई खाज लरवे बिन भारी, को पुजवै हिय हौंस हमारी.

इतना कह बानासुर घर से बाहर जाय, लगा पहाड़ उठाय उठाय तोड़ तोड़ चूर करने, औ देस देस फिरने. जब सब पर्वत फोड़ चुका, औ उसके हाथों की सुरसुराहट खुजलाहट न गई, तब,

कहत बान अब का सों लरों, इतनी भुजा कहा लै करों.
सबल भार मैं कैसे सहौं, बहुरि जायकै हर सों कहौं.

महाराज! ऐसे मन ही मन सोच बिचार कर बानासुर महादेव जी के सनमुख जा, हाथ जोड़, सिर नाय बोला, कि हे त्रिशूल पानि त्रिलोकी नाथ! तुम ने जो कृपा कर सहस्र भुजा दीं, सो मेरे शरीर पर भारी भई; उन का बल अब मुझ से संभला नहीं जाता, इसका कुछ उपाय कीजे, कोई महा बली युद्ध करने को मुझे बनाय दीजे; मैं त्रिभुवन में ऐसा पराक्रमी किसू को नहीं देखता जो मेरे सनमुख हो युद्ध करे; हां दयाकर जैसे आप ने मुझे महा बली किया, तैसे ही अब कृपा कर

मुझ से लड़ मेरे मन का अभिलाष पूरा कीजे तो कीजे, नहीं तो और किसी अति बली को बता दीजे, जिस से मैं जाकर युद्ध करूं, और अपने मनका शोक हरूं.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! बानासुर से इस भांति की बातें सुन श्री महादेव जी ने बल खाय, मनहीं मन इतना कहा, कि मैंने तो इसे साध जानके बर दिया, अब यह मुझी से लड़ने को उपस्थित हुआ; इस मूरख को बल का गर्व भया, यह जीता न बचेगा; जिसने अहंकार किया सो जगत में आय बहुत न जिया. ऐसे मनहीं मन महादेव जी कह बोले, कि बानासुर तू मत घबराय, तुज से युद्ध करनेवाला थोड़े दिन के बीच यदुकुल में श्री कृष्णावतार होगा, उस बिन त्रिभुवन में तेरा साम्हना करनेवाला कोई नहीं. यह बचन सुन बानासुर अति प्रसन्न हो बोला, नाथ! वह पुरुष कब अवतार लेगा, और मैं कैसे जानूंगा कि अब वह उपजा. राजा! शिव जी ने ऐक ध्वजा बानासुर को देके कहा, कि इस बैरख को लेजाय अपने मंदिर के ऊपर खड़ी कर दे, जब यह ध्वजा आप से आप टूटकर गिरे, तब तू जानियो कि मेरा रिपु जन्मा.

महाराज! जद शंकर ने उसे ऐसे कहा समझाय, तद बानासुर ध्वजा ले निज घर को चला सिर नाय. आगे घर जाय ध्वजा मंदिर पर चढ़ाय, दिन दिन यही मनाता था कि कब वह पुरुष प्रगटे, औ मैं उससे युद्ध करूं. इस में कितने ऐक बरष बीते, उस की बड़ी रानी, जिसका नाम बानावती, तिसे गर्भ रहा, औ पूरे दिनों ऐक लड़की हुई. उस काल बानासुर ने जोतिषियों को बुलाय बैठायके कहा, कि इस लड़की का नाम औ गुन गनकर कहो. इतनी बात के कहतेही जोतिषियों ने झट बरष मास पक्ष तिथ बार घड़ी महूरत नक्षत्र ठहराय, लग्न बिचार, उस लड़की का नाम ऊषा धरके कहा, कि महाराज! यह कन्या रूप गुन शील की खान महाजान होगी, इस के ग्रह औ लक्षन ऐसे ही आन पड़े हैं.

इतना सुन बानासुर ने अति प्रसन्न हो पहले बहुत कुछ जोतिषियों को दे बिदा किया, पीछे मंगलामुखियों को बुलाय मंगलाचार करवाया. पुनि ज्यों ज्यों वह कन्या बढ़ने लगी, त्यों त्यों बानासुर उसे अति प्यार करने लगा; जब ऊषा सात बरष की भई, तब उसके पिता ने शोनितपुर के निकट ही कैलाश था तहां कैऐक सखी सहेलियों के साथ उसे शिव पार्वती के पास पढ़ने को भेज दिया. ऊषा गनेश सरस्वती को मनाय, शिव पार्वती के सनमुख जाय, हाथ जोड़, सिर नाय, बिनती कर बोली,

कि हे कृपा सिंधु शिव गवरी! दया कर मुज दासी को बिद्या दान दीजे, औ जगत में जस लीजे. महाराज! ऊषा के अति दीन बचन सुन शिव पार्वती जी ने उसे प्रसन्न हो बिद्या का आरंभ करवाया; वह नित प्रति जाय जाय पढ़ पढ़ आवे; इस में कितने ऐक दिन के बीच सब शास्त्र पढ़ गुन

बिद्यावान ऊई, औ सब यंत्र बजाने लगी. ऐक दिन ऊषा पार्वती जी के साथ मिलकर बीन बजाय संगीत की रीति से गाय रही थी, कि उस काल शिव जी ने आय पार्वती से कहा, हे प्रिये! मैंने जो कामदेव को जलाया था, तिसे अब श्री क्ष्णचंद्र जी ने उपजाया. इतना कह श्री महादेव जी गिरजा को साथ ले गंगा तीर पर जाय, नीर में न्हाय न्हिलाय, सुख की इच्छा कर, अति लाड़ प्यार से लगे पार्वती जी को बस्त्र आभूषन पहराने, औ हित करने. निदान अति आनंद में मगन हो डमरू बजाय बजाय, तांडव नाच नाच नाच, संगीत शास्त्र की रीति से गाय गाय, शिवा को लगे रिझाने, और बड़े प्यार से कंठ लगाने; उस समय ऊषा शिव गवरी का सुख प्यार देख देख, पति के मिलने की अभिलाषा कर, मनही मन कहने लगी, कि मेरा भी कंत होय तो मैं भी शिव पार्वती की भांति उसके साथ बिहार करूं. पति बिन कामिनी ऐसे शोभा हीन है, जैसे चंद्र बिन जामिनी.

महाराज! जों ऊषा ने मन हीं मन इतनी बात कही, तों अंतरजामी श्री पार्वती जी ने ऊषा की अंतर गति जानि, उसे अति हित से निकट बुलाय, प्यार कर समझायके कहा, कि बेटी! तू किसी बात की चिंता मन में मत कर, तेरा पति तुझे सपने में आय मिलेगा, तू तिसे ढुंढ़ाय लीजो, औ उसी के साथ सुख भोग कीजो. ऐसे बर दे शिवरानी ने ऊषा को बिदा किया; वह सब बिद्या पढ़, बर पाय, दंडवत कर, अपने पिता के पास आई; पिता ने ऐक मंदिर अति सुंदर निराला उसे रहने को दिया; औ यह कितनी ऐक सखी सहेलियों को ले वहां रहने लगी, औ दिन दिन बढ़ने.

महाराज! जिस काल वह बाल बारह बरष की ऊई, तो उसके मुखचंद्र की जोति को देखि, पूर्नवासी का चंद्रमा छबि छीन ऊआ; बालों की स्यामता के आगे मावस की अंधेरी फीकी लगने लगी; उस की चोटी की सटकाई लख नागनि अपनी कैंचली छोड़ सटक गई; भौंह की बंकाई निरख धनुष धकधकाने लगा; आंखों की बड़ाई चंचलाई पेख मृग मीन खंजन खिसाय रहे; नाक की सुंदरताई को देख तिल फूल मुरझाय गया, उसके अधर की लाली लख बिंबा फल बिलबिलाने लगा; दांत की पांति निरख दाड़िम का हिया दड़क गया; कपोलों की कोमलताई पेख गुलाब फूलने से रहा; गले की गुलाई देख कपोत कलमलाने लगे; कुचों की कोर निरख कंवल कली सरोवर में जाय गिरी; जिस की कट की कृसता देख केहरी ने बन बास लिया; जांघों की चिकनाई पेख केले ने कपूर खाया; देह की गुराई निरख सोने को सकुच भई, औ चंपा चप गया; कर पद के आगे पदम की पदवी कुछ न रही; ऐसी वह गज गवनी, पिक बयनी, नव बाला जोबन की सरसाई से शोभायमान भई, कि जिस ने इन सब की शोभा छीन ली.

आगे ऐक दिन वह नवजोबना सुगंध उबट लगाय, निर्मल नीर से मल मल न्हाय, कंघी

चोटी कर, पाटी सँवार, मांग मोतियों से भर, अंजन मंजन कर, मिहँदी महावर रचाय, पान खाय, अच्छे जड़ाऊ सोने के गहने मंगाय, सीसफूल, बेना, बैंदी, बंदी, ढेंड़ी करनफूल, चौदानियां, छड़े, गजमोतियों की नथ, भलके लटकन समेत, जुगनी मोतियों के दुलड़े में गुही, चंद्रहार, मोहनमाल, पंचलड़ी, सतलड़ी, धुकधुकी, भुजबंद, नौरतन, चुड़ी, नौगरी, कंकन, कड़े, मुंदरी, छाप, छल्ले, किंकिनी, जेहर, तेहर, गूजरी, अनवट, बिछुए पहन, सुथरा ममझमाता सच्चे मोतियों की कोर का बड़े घेर का घाघरा, औ चमचमाती आंचल पल्लू की सारी पहर, जगमगाती कंचुकी कस, ऊपर से मलमलाती ओढ़नी ओढ़, तिस पर सुगंध लगाय, इस सज धज से हंसती हंसती सखियों के साथ मात पिता को प्रनाम करने गई, कि जैसे लक्ष्मी. जों सनमुख जाय दंडवत कर ऊषा खड़ी भई, तों बानासुर ने इसके जोबन की छटा देख, निज मन में इतना कह, इसे बिदा किया, कि अब यह ब्याहन जोग हुई; और पीछे से कैएक राक्षस उसके मंदिर की रखवाली को भेजे, औ कितनी एक राक्षसी तिस की चौकसी को पठाई; वे वहां जाय आठ पहर सावधानी से रहने लगे, और राक्षसनियां सेवा करने लगीं.

महाराज! वह राज कन्या पति के लिये नित प्रति तप दान ब्रत कर श्री पार्वती जी की पूजा किया करे; एक दिन निम्य कर्म से निचिंत हो रात समैं सेज पर अकेली बैठी मन मन यों सोच रही थी, कि देखिये पिता मेरा बिवाह कब करे औ किस भांति मेरा बर मुझे मिले. इतना कह पतिही के ध्यान में सो गई, तो सपने में देखती क्या है, कि एक पुरुष किशोर बैस, स्याम बरन, चंद्रमुख, कंवल नयन, अति सुंदर काम सरूप, मोहन रूप, पीतांबर पहरे, मोर मुकुट सिर धरे, त्रिभंगी छबि करे रतन जटित आभूषन, मकरा कृत कुंडल, बनमाल, गुंजहार, पहने औ पीत बसन ओढ़े, महा चंचल सनमुख आय खड़ा हुआ.

यह उसे देखतेही मोहित हो लजाय सिर झुकाय रही; तब उस ने कुछ प्रेम सनी बातें कह, स्नेह बढ़ाय, निकट आय, हाथ पकड़, कंठ लगाय, इसके मन का भ्रम औ सोच संकोच सब बिसराय दिया; फिर तो परसपर सोच संकोच तज, सेज पर बैठ, हाव भाव कटाक्ष औ आलिंगन चुंबन कर, सुख लेने देने लगे, औ आनंद में मगन हो प्रीति की बातें करने; कि इस में कितनी एक बेर पीछे ऊषाने जों प्यार कर चाहा कि पति को अंकवार भर कंठ लगाऊं, तों नयनों से नींद गई, औ जिस भांति हाथ बढ़ाय मिलने को भई थी, तिसी भांति मुरझाय पछताय रह गई.

जागि परी सोचति खरी, भयो परम दुख ताहि,
कहां गयो वह प्रान पति, देखति चहुं दिस चाहि.

सोवत ऊषा मिलहों काहि, फिर कैसें मैं देखों ताहि.
सोवत जो रहती हैां आज, प्रीतम कबऊ न जाते भाज.
क्यों सुख में गहिबे कैां भई, जो यह नींद नयन तें गई.
जागतही जामिनि जम भई, जैहैं क्यौंकर अब यह दई.
बिन प्रीतम जिय निपट अचैन, देखे बिन तरसत हैं नैन.
श्रवन सुन्यौ चाहत हैं बैन, कहां गये प्रीतम सुख दैन.
जैा सपने पिय पुनि लख लेउं, प्रान साथ कर उनके देउं.

महाराज! इतना कह ऊषा अति उदास हो पियका ध्यान कर, सेज पर जाय, मुख लपट पड़ रही; जब रात जाय भोर ऊआ, औ डेढ़ पहर दिन चढ़ा, तब सखी सहेली मिल आपस में कहने लगीं, कि आज क्या है जो ऊषा इतना दिन चढ़ा औ अब तक सोती नहीं उठी. यह बात सुन चित्ररेखा बानासुर के प्रधान कूषभांड की बेटी चित्रशाला में जाय क्या देखती है, कि ऊषा छपरखट के बीच मन मारे जी हारे निढाल पड़ी ऐसे लंबी सांसे ले रही है. उस की यह दशा देख,

चित्ररेखा बोली अकुलाय, कह सखी तू मोसों समझाय.
आज कहा सोचति है खरी, परम बियोग समुद्र में परी.
ऐसे अधिक उसासें लेत, तनमन व्याकुल है किहिं हेत.
तेरे मन कैा दुख परिहरैं, मन चीत्यौ कारज सब करैं.
मोसी सखी और ना घनी, है परतीति मोहि आपनी.
सकल लोक में हैां फिर आऊं, जहां जांउ कारज कर ल्याऊं.
मोकैां बर ब्रह्मा ने दीनैा, बस मेरे सब ही कैां कीनैा.
मेरे संग सारदा रहै, ताके बल करिहों जो कहै.
ऐसी महा मोहनी जानैा, ब्रह्मा रुद्र इंद्र छलि आनैा.
मेरो कोऊ भेद न जाने, अपनैा गुन को आप बखाने.
ऐसें और न कहि है कोऊ, भलो बुरो कोऊ किन होऊ.
अब तू कह सब अपनी बात, कैसें कटी आज की रात.
मो सों कपट करे जिन प्यारी, पुजवोंगी सब आस तिहारी.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही ऊषा अति सकुचाय, सिर नाय, चित्ररेखा के निकट आय मधुर बचन से बोली, कि सखी! मैं तुझे अपनी हितू जान रात की बात सब कह सुनाती हूं, तू

निज मन में रख, और कुछ उपाय कर सके तो कर; आज रात को सपने में एक पुरुष मेघ बरन, चंद्र बदन, कंवल नैन, पीतांबर पहने, पीत पट ओढ़े, मेरे पास आय बैठा, औ उसने अति हित कर मेरा मन हाथ में ले लिया; मैंभी सोच संकोच तज उससे बातें करने लगी; निदान बतराते बतराते जौ मुझे प्यार आया, तौ मैंने उसे पकड़ने को हाथ बढ़ाया, इस बीच मेरी नींद गई, औ उस की मोहिनी मूरति मेरे ध्यान में रही.

देख्यौ सुन्यौ और नहिं ऐसौ, मैं कह कहा बताउं जैसौ.

वाकी छबि बरनी नहीं जाय, मेरौ चित लै गयौ चोराय.

जब मैं कैलाश में श्री महादेव जी के पास बिद्या पढ़ती थी, तब श्री पार्वती जी ने मुझे कहा था, कि तेरा पति तुझे स्वप्न में आय मिलेगा, तू उसे ढुंढवा लीजो; सो वर आज रात मुझे सपने में मिला, मैं उसे कहां पाऊं, औ अपने बिरह की पीर किसे सुनाऊं, कहां जाऊं, उसे किस भांति ढुंढवाऊं, न जिसका नाम जानू न गाम. महाराज! इतना कह जद ऊषा लंबी सांसे ले मुरझाय रह गई, तद चित्ररेखा बोली, कि सखी! अब तू किसी बात की चित में चिंता मत करै, मैं तेरे कंत को तुझे जहां होगा तहां से ढूंढ ला मिलाऊंगी, मुझे तीनों लोक में जाने की सामर्थ है, जहां होगा तहां जाय जैसे बनेगा तैसेही ले आऊंगी, तू मुझे उसका नाम बता, औ जाने की आज्ञा दे.

ऊषा बोली, बीर! तेरी वही कहावत है कि, मरी क्यौंकि सांस न आई; जो मैं उसका नांव गांव ही जानती, तो दुख काहेका था, कुछ न कुछ उपाय करती. यह बात सुन चित्ररेखा बोली, सखी! तू इस बात का भी सोच न कर, मैं तुझे त्रिलोकी के पुरुष लिख दिखाती हूं, जिन में से अपने चित चोर को देख बता दीजो, फिर ला मिलाना मेरा काम है; तब तो हंस कर ऊषा बोली, बहुत अच्छा. महाराज! यह बचन ऊषा के मुख से निकलते ही चित्ररेखा लिखने का सब सामान मंगाय आसन मार बैठी, औ गनेश सारदा को मनाय गुरु का ध्यान कर लिखने लगी; पहले तो उसने तीन लोक, चौदह भुवन, सात दीप, नौखंड पृथ्वी, आकाश, सातों समुद्र, आठों लोक, बैकुंठ सहित लिख दिखाए; पीछे सब देव, दानव, गंधर्व, किन्नर, यक्ष, ऋषि, मुनि, लोकपाल, दिगपाल, औ सब देशोंके भूपाल, लिख लिख एक एक कर चित्ररेखा ने दिखाया; पर ऊषा ने अपना चाहीता उन में न पाया; फिर चित्ररेखा यदुबंसियों की मूरत एक एक लिख लिख दिखाने लगी, इस में अनिरुद्ध का चित्र देखते ही ऊषा बोली,

अब मन चोर सखी मैं पायौ, रात यही मेरे ढिग आयौ.

कर अब सखी तू कछू उपाय, याकौं ढूंढ कहूं तें ल्याय.

सुनकै चित्ररेख यों कहै, अब यह मोतें किम बच रहै.

यों सुनाय चित्ररेखा पुन बोली, कि सखी! तू इसे नहीं जानती, मैं पहचानू हूं, यह यदुबंसी श्री कृष्णचंद जी का पोता, प्रद्युम्न जी का बेटा, औ अनिरुद्ध इसका नाम है; समुद्र के तीर नीर में द्वारिका नाम ऐक पुरी है, तहां यह रहता है; हरि आज्ञा से उस पुरी की चौकी आठ पहर सुदरसन चक्र देता है, इस लिये कि कोई दैत्य, दानव, दुष्ट आय यदुबंसियों को न सतावे, और जो कोई पुरी में आवे सो बिन राजा उग्रसेन सूरसेन की आज्ञा न आने पावे. महाराज! इस बात के सुनते ही ऊषा अति उदास हो बोली, कि सखी! जो वहां ऐसी बिकट ठांव है, तो तू किस भांति वहां जाय मेरे कंत को लावेगी? चित्ररेखा ने कहा, आली! तू इस बात से निचिंत रह, मैं हरि प्रताप से तेरे प्रान पति को ला मिलाती हूं.

इतना कह चित्ररेखा रामनामी कपड़े पहन, गोपी चंदन का ऊर्द्ध पुंड तिलक काढ़, छापे उर भुज मूल औ कंठ में लगाय, बहुत सी तुलसी की माला गले में डाल, हाथ में बड़े बड़े तुलसी के हीरों की सुमरन ले, ऊपर से हीरवल ओढ़, कांख में आसन लपेटी, भगवतगीता की पोथी दबाय, परम भक्त बैष्णव का भेष बनाय, ऊषा को यों सुनाय, सिर नाय, बिदा हो, द्वारिका को चली.

पैंडे अब आकाश के, अंतरीक्ष व्है जांउ,
ल्याउं तेरे कंत कौं, चित्ररेख तो नांउ.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! चित्ररेखा अपनी माया कर, पवन के तुरंग पर चढ़, अंधेरी रात में स्याम घटा के साथ, बात की बात में द्वारिकापुरी में जा बिजली सी चमकी, औ श्री कृष्णचंद के मंदिर में बड़गई, ऐसे कि इसका जाना किसीने न जाना. आगे यह ढूंढती ढूंढती वहां गई, जहां पलंग पर सोऐ अनिरुद्ध जी अकेले स्वप्न में ऊषा के साथ बिहार कर रहे थे; इसने देखते ही झट उस सोते का पलंग उठाय चट अपनी बाट ली.

सोवत ही परजंक समेत, लिये जात ऊषा के हेत.
अनिरुद्ध कौं लै आई तहां, ऊषा चिंतति बैठी जहां.

महाराज! पलंग समेत अनिरुद्ध को देखते ही ऊषा पहले तो हकबकाय चित्ररेखा के पाओं पर जाय गिरी, पीछे यों कहने लगी, धन्य है धन्य है सखी तेरे साहस औ पराक्रम को! जो ऐसी कठिन ठौर जाय बात की बात में पलंग समेत उठा लाई, औ अपनी प्रतिज्ञा पूरी की; मेरे लिये तैंने इतना कष्ट किया, इसका पलटा मैं तुझे नहीं दे सकती, तेरे गुन की ऋनिया रही.

चित्ररेखा बोली, सखी! संसार में बड़ा सुख यही है जो पर कों सुख दीजे, औ कारज भी

भला यही है कि उपकार कीजे; यह शरीर किसी काम का नहीं, इससे किसी का काम होसके तो यही बड़ा काम है; इस में स्वारथ परमारथ दोनों होते हैं. महाराज! इतना बचन सुनाय चित्ररेखा पुनि यों कह बिदा हो अपने घर गई, कि सखी! भगवान के प्रताप से तेरा कंत मैंने तुझे ला मिलाया, अब तू इसे जगाय अपना मनोरथ पूरा कर. चित्ररेखा के जाते ही ऊषा अति प्रसन्न लाज किये, प्रथम मिलन का भय लिये, मनही मन कहने लगी,

कहा बात कहि पिय हि जगाऊं, कैसें भुजभर कंठ लगाऊं

निदान बीन मिलाय मधुर मधुर सुरों से बजाने लगी; बीन की धुनि सुनते ही अनिरुद्ध जी जाग पड़े, और चारों ओर देख देख मन मन यों कहने लगे, यह कौन ठौर किसका मंदिर, मैं यहां कैसे आया, और कौन मुझे सोते को पलंग समेत उठा लाया. महाराज! उस काल अनिरुद्ध जी तो अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह अचरज करते थे, औ ऊषा सोच संकोच लिये, प्रथम मिलन का भय किये, एक ओर कोने में खड़ी पिय का चंद्रमुख निरख निरख, अपने लोचन चकोरों को सुख देती थी; इस बीच,

अनिरुद्ध देखि कहै अकुलाय, कह सुंदरि तू अपने भाय.
है तू को मोपै क्यों आई, कै तू मोहि आप लै आई.
सांच झूठ ऐकौ नहीं जानौ, सपनौ सौ देखतु हौं मानौ.

महाराज! अनिरुद्ध जी ने इतनी बातें कहीं, औ ऊषा ने कुछ उत्तर न दिया, बरन और भी लाज कर कोने में सट रही. तब तो उन्हों ने झट उसे हाथ पकड़ पलंग पर ला बिठाया, औ प्रीति सनी प्यार की बातें कह उसके मन का सोच संकोच और भय सब मिटाया. आगे वे दोनों परस्पर सेज पर बैठे हाव भाव कटाक्ष कर सुख लेने देने लगे, औ प्रेम कथा कहने. इस बीच बातोंही बातों अनिरुद्ध जी ने ऊषा से पूछा, कि हे सुंदरि! तू ने प्रथम मुझे कैसे देखा, और पीछे किस भांति यहां मंगाया, इसका भेद समझाकर कह जो मेरे मन का भ्रम जाय. इतनी बात के सुनते ही ऊषा पति का मुख निरख हरषके बोली,

मोहि मिले तुम सपने आय, मेरो चित लै गये चोरय.
जागी मन भारी दुख लह्यौ, तब मैं चित्ररेख सों कह्यौ.
सोई प्रभु तुम कौं यहां लाई, ताकी गति जानी नहीं जाई.

इतना कह पुनि ऊषा ने कहा महाराज! मैं ने तो जिस भांति तुम्हें देखा औ पाया, तैसे सब कह सुनाया, अब आप कहिये अपनी बात समझाय, जैसे तुम ने मुझे देखा, यादवराज! यह बचन सुन

अनिरुद्ध अति आनंद कर मुसकुरायके बोले, कि सुंदरि! मैंभी आज रात को सपने में तुझे देख रहा था, कि नींदही में कोई मुझे उठाय यहां ले आया, इसका भेद अब तक मैंने नहीं पाया, कि मुझे कौन लाया, जागा तो मैंने तुझेही देखा.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! ऐसे वे दोनों पिय प्यारी आपस में बतराय, पुनि प्रीति बढ़ाय अनेक अनेक प्रकार से कामकलोल करने लगे, औ बिरह की पीर हरने; आगे पान की मिठाई, मोतीमाल की सीतलताई, औ दीप जोति की मंदताई, निरख, जों ऊषा बाहर जाय देखे तो ऊषाकाल हुआ; चंद की जोति घटी; तारे दुति हीन भये; आकाश में अरुनाई छाई; चारों ओर चिड़ियां चुहचुहाईं; सरोवर में कमोदनी कुमलाई; औ कंवल फूले; चकवा चकई को संयोग हुआ.

महाराज! ऐसा समय देख, एक बार तो सब बार मूंद, ऊषा बहुत घबराय, घर में आय, अति प्यार कर पिय को कंठ लगाय लेटी, पीछे पिय को दुराय, सखी सहेलियों से छिपाय, छिप छिप कंत की सेवा करने लगी; निदान अनिरुद्ध का आना सखी सहेलियों ने जाना; फिर तो वह दिन रात पति के संग सुख भोग किया करे. एक दिन ऊषा की मा बेटी की सुध लेन आई तो उस ने छिप कर देखा, कि वह एक महा सुंदर तरुन पुरुष के साथ कोठे में बैठी आनंद से चौपड़ खेल रही है. यह देखते ही बिन बोले चाले दबे पाओं फिर मनहीं मन प्रसन्न हो असीस देती खूंट मारे वह अपने घर चली गई.

आगे कितने एक दिन पीछे एक दिन ऊषा पति को सोते देख, जी में यह बिचार कर सकुचती सकुचती घर से बाहर निकली, कि कहीं ऐसा न हो जो कोई मुझे न देख अपने मन में जाने कि ऊषा पति के लिये घर से नहीं निकलती. महाराज! ऊषा कंत को अकेला छोड़ जाते तो गई, पर उससे रहा न गया; फिर घर में जाय किवाड़ लगाय बिहार करने लगी. यह चरित्र देख पौरियों ने आपस में कहा, कि भाई; आज क्या है जो राज कन्या अनेक दिन पीछे घर से निकली औ फिर उलटे पाओं चली गई. इतनी बात के सुनतेही उन में से एक बोला, कि भाई! मैं कई दिन से देखता हूं, ऊषा के मंदिर का द्वार दिन रात लगा रहता है, और घर भीतर कोई पुरुष कभी हंस हंस बातें करता है, औ कभी चौपड़ खेलता है; दूसरे ने कहा, जो यह बात सच है तो चलो बानासुर से जाय कहैं, समझ बूझ यहां क्यौं बैठ रहैं.

एक कहै यह कही न जाय, तुम सब बैठ रहौ अरगाय.
भली बुरी होवे सो होय, होनहार मेटै नहिं कोय.

कछू न बात कुंवरि की कहिये, चुप ह्वै देख बैठही रहिये.

महाराज! द्वारपाल आपस में ये बातें करते ही थे कि कईएक जोधा साथ लिये फिरता फिरता बानासुर वहां आ निकला, और मंदिर के ऊपर दृष्ट कर शिव जी की दी ऊई ध्वजा न देख बोला, वहां से ध्वजा क्या ऊई? द्वारपालों ने उत्तर दिया, कि महाराज! वह तो बऊत दिन ऊऐ कि टूट कर गिर पड़ी. इस बात के सुनते ही शिव जी का बचन सुमरन कर भावित हो बानासुर बोला,

कब की ध्वजा पताका गिरी, बैरी कहूं औतस्यौ हरी.

इतना बचन बानासुर के मुख से निकसते ही, ऐक द्वारपाल सनमुख जा खड़ा हो, हाथ जोड़, सिर नाय, बोला कि महाराज! ऐक बात है, पर वह मैं कह नहीं सकता, जो आप की आज्ञा पाऊं तो जों की तों कह सुनाऊं. बानासुर ने आज्ञा की, अच्छा कह. तब पौरिया बोला, कि महाराज! अपराध छिमा, कई दिन से हम देखते हैं, कि राज कन्या के मंदिर में कोई पुरुष आया है; वह दिन रात बातें किया करता है, इसका भेद हम नहीं जानते कि वह कौन पुरुष है, औ कब कहां से आया है, और क्या करता है. इतनी बात के सुनत प्रमान, बानासुर अति क्रोध कर शस्त्र उठाय, दबे पाओं अकेला ऊषा के मंदिर में जाय छिप कर क्या देखता है, कि ऐक पुरुष श्याम बरन, अति सुंदर, पीत पट ओढ़े, निद्रा में अचेत ऊषा के साथ सोया पड़ा है.

सोचत बानासुर यों हिये, होय पाप सोवत बध किये.

महाराज! यों मनहीं मन बिचार बानासुर तो कई ऐक रखवाले वहां रख, उन से यह कह, कि तुम इसके जागते ही हमें जाय कहियो, अपने घर जाय सभा कर सब राक्षसों को बुलाय कहने लगा, कि मेरा बैरी आन पऊंचा है, तुम सब दल ले ऊषा का मंदिर जाय घेरो, पीछे से मैं भी आता हूं. आगे इधर तो बानासुर की आज्ञा पाय सब राक्षसों ने आय ऊषा का घर घेरा, औ उधर अनिरुद्ध जी और राज कन्या निद्रा से चौंक पुनि सार पासे खेलने लगे; इस में चौपड़ खेलते खेलते ऊषा क्या देखती है, कि चऊं ओर से घन घोर घटा घिर आई, बिजली चमकने लगी, दादुर, मोर, पपीहे, बोलने लगे. महाराज! पपीहे की बोली सुनते ही राज कन्या इतना कह पिय के कंठ लगी,

तुम पपिहा पिय पिय मत करौ, यह बियोग भाषा परिहरौ.

इतने में किसीने जाय बानासुर से कहा, कि महाराज! तुम्हारा बैरी जागा. बैरी का नाम सुनते ही बानासुर अति कोप करके उठा, औ अस्त्र शस्त्र ले ऊषा की पौली में आय खड़ा ऊआ, और लगा छिप कर देखने; निदान देखते देखते,

बानासुर यों कहै हंकार, कोहै रे तू ग्रेह मझार.
धन तन बरन मदन मनहारी, कंवल नयन पीतांबर धारी.
अरे चोर बाहर किन आवै, जान कहां अब मोसों पावै.

महाराज! जब बानासुर ने टेरके यों कहे बैन, तब ऊषा औ अनिरुद्ध सुन और देख भये निपट अचैन; पुनि राज कन्या ने अति चिंता कर, भय मान हो, लंबी सांस ले, कंत से कहा, कि महाराज! मेरा पिता असुर दल ले चढ़ि आया, अब तुम इसके हाथ से कैसे बचोगे.

तबहिं कोप अनिरुद्ध कहै, मत डर ये तू नारि,
स्यार झुंड राक्षस असुर, पल में डारों मारि.

ऐसे कह अनिरुद्ध जी ने वेद मंत्र पढ़, एक सौ आठ हाथ की सिला बुलाय, हाथ में ले, बाहर निकल, दल में जाय, बानासुर को ललकारा; इन के निकलते ही बानासुर धनुष चढ़ाय, सब कटक ले, अनिरुद्ध जी पर यों टूटा, कि जैसे मधुमाखियों का झुंड किसी पै टूटे. जद असुर अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र चलाने लगे, तद क्रोध कर अनिरुद्ध जी ने सिला के हाथ कैऐक ऐसे मारे, कि सब असुर दल काई सा फट गया; कुछ मरे कुछ घायल हुए, बचे सो भाग गये; पुनि बानासुर जाय सब को घेर लाया, औ युद्ध करने लगा. महाराज! जितने अस्त्र शस्त्र असुर चलाते थे, तितने इधर उधर ही जाते थे, औ अनिरुद्ध जी के अंग में एक भी न लगता था.

जो अनिरुद्ध पर परैं हथ्यार, अधबर कटैं सिला की धार.
सिला प्रहार सह्यौ नहिं परै, बज्र चोट मनौ सुरपति करै.
लागत सीस बीच तें फटै, टूटहिं जांघ भुजा धर कटै.

निदान लड़ते लड़ते जब बानासुर अकेला रह गया, औ सब कटक कट गया, तब उसने मनहीं मन अचरज कर इतना कह नाग पास से अनिरुद्ध जी को पकड़ बांधा, कि इस अजीत को मैं कैसे जीतूंगा.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! जिस समय अनिरुद्ध जी को बानासुर नाग पास से बांध अपनी सभा में ले गया, उस काल अनिरुद्ध जी तो मनही मन यों बिचारते थे, कि मुझे कष्ट होय तो होय पर ब्रह्मा का बचन झूठा करना उचित नहीं; क्यौंकि जो मैं नाग पास से बल कर निकलूंगा, तो उस की अमर्याद होगी; इससे बंधे रहना हीं भला है; और बानासुर यह कह रहा था कि अरे लड़के! मैं तुझे अब मारता हूं, जो कोई तेरा सहायक हो तो तू बुला. इस बीच ऊषा ने पिय की यह दशा सुन, चित्ररेखा से कहा, कि सखी!

धिक्कार है मेरे जीतब को जो पति मेरा दुख में रहै औ मैं सुख से खाऊं पीऊं और सोऊं! चित्ररेखा बोली, सखी! तू कुछ चिंता मत करै, तेरे पति का कोई कुछ कर न सकेगा, निचिंत रह, अभी श्री कृष्णचंद औ बलराम जी सब यदुबंसियों को साथ ले चढ़ि आवेंगे, और असुर दल को संहार तुझ समेत अनिरुद्ध को छुड़ाय ले जांयगे. उन की यही रीति है कि जिस राजा के सुंदर कन्या सुनते हैं, तहां से बल छल कर जैसे बने तैसे ले जाते हैं; उन्हीं का यह पोता है जो कुंडलपुर से राजा भीष्मक की बेटी रुक्मिनी को, महा बली बड़े प्रतापी राजा सिसुपाल औ जरासिंधु से संग्राम कर ले गये थे, तैसे ही अब तुझे ले जांयगे, तू किसी बात की भावना मत करे. ऊषा बोली, सखी! यह दुख मुझ से सहा नहीं जाता.

नाग पास बांधे पिय हरी, दहै गात ज्वाला बिष भरी.
हौं कैसें पौढ़ौं सुख सेना, पिय दुख क्यौंकर देखें नैना.
प्रीतम बिपत परे क्यौं जीऔं, भोजन करें न पानी पीऔं.
बर बध अब बानासुर कीजो, मोकों सरन कंत की दीजो.
हौनहार हौनी है होय, तासों कहा कहैगो कोय.
लोक बेद की लाज न मानौ, पिय संग दुख सुख ही मैं जानौ.

महाराज! चित्ररेखा से ऐसे कह जब ऊषा कंत के निकट जाय, निडर निसंक हो बैठी, तब किसी ने बानासुर को जा सुनाया, कि महाराज! राज कन्या घर से निकल उस पुरुष के पास गई. इतनी बात के सुनते ही बानासुर ने अपने पुत्र स्कंध को बुलायके कहा, कि बेटा! तुम अपनी बहन को सभा से उठाय घर में ले जाय पकड़ रक्खो, औ निकलने न दो.

पिता की आज्ञा पाते ही स्कंध बहन के पास जा अति क्रोध कर बोला, कि तैंने यह क्या किया पापनी, जो छोड़ी लोक लाज औ कान आपनी. हे नीच! मैं तुझे क्या बध करूं, होगा पाप, और अपजस से भी हूं डरूं. ऊषा बोली, कि भाई! जो तुम्हें भावै सो कहो औ करो, मुझे पार्वती जी ने जो बर दिया था सो बर मैंने पाया; अब इसे छोड़ और को धाऊं, तो अपने को गाली चढ़ाऊं; तजती हैं पति को अकुलीनी नारी, यही रीति परंपरा से चली आती है बीच संसार; जिस से बिधना ने संबंध किया, उसी के संग जगत में अपजस लिया तो लिया. महाराज! इतनी बात के सुनते ही स्कंध क्रोध कर हाथ पकड़ ऊषा को वहां से मंदिर में उठा लाया, औ फिर न जाने दिया. पुनि अनिरुद्ध जी को भी वहां से उठाय कहीं अनत लेजाय बंध किया. उस काल इधर तो अनिरुद्ध

जी तियके बियोग में महा सोग करते थे, औ उधर राज कन्या कंत के बिरह में अन्न पानी तज कठिन जोग करने लगी.

इस बीच कितने एक दिन पीछे एक दिन नारद मुनि जी ने पहले तो अनिरुद्ध जी को जाय समझाया कि तुम किसी बात की चिंता मत करो, अभी श्री कृष्णचंद आनंदकंद औ बलराम सुख धाम राक्षसों से कर संग्राम तुम्हें छुड़ाय ले जायगे. पुनि बानासुर को जा सुनाया, कि राजा! जिसे तुम ने नाग पास से पकड़ बांधा है, वह श्री कृष्ण का पोता औ प्रद्युम्न जी का बेटा है, औ अनिरुद्ध उसका नाम है; तुम यदुबंसियों के भली भांति से जानते हो, जो जानो सो करो. मैं इस बात से तुम्हें सावधान करने आया था सो कर चला. यह बात सुन, इतना कह बानासुर ने नारद जी को बिदा किया, कि नारद जी! मैं सब जानता हूं. इति

CHAPTER. LXIV.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जब अनिरुद्ध जी को बंधे बंधे चार महीने हुए, तब नारद जी द्वारिका पुरी में गये, तो वहां क्या देखते हैं, कि सब यादव महा उदास, मन मलीन, तन छीन हो रहे हैं; और श्री कृष्ण जी औ बलराम जी उनके बीच में बैठे अति चिंता कर कह रहे हैं, कि बालक को उठाय यहां से कैान ले गया. इस भांति की बातें हो रहीं थीं, औ रनवास में रोना पीटना हो रहा था; ऐसा कि कोई किसी की बात न सुनता था. नारद जी के जातेही सब लोग क्या स्त्री क्या पुरुष उठ धाये, औ अति ब्याकुल तन छीन मन मलीन रोते बिलबिलाते सनमुख आन खड़े हुए; आगे अति बिनती कर हाथ जोड़ सिर नाय हाहा खाय खाय नारद जी से सब पूछने लगे.

सांची बात कहो ऋषि राय, जासों जिय रहै बहिराय.
कैसें सुधि अनिरुद्ध की लहैं, कहो साधि ताके बल रहैं.

इतनी बात के सुनते ही श्री नारद जी बोले, कि तुम किसी बात की चिंता मत करो, औ अपने मन का शोक हरो; अनिरुद्ध जी जीते जागते सोननपुर में हैं, वहां तिन्हों ने जाय राजा बानासुर की कन्या से भोग किया, इसी लिये उसने उन्हें नाग पास से पकड़ बांधा है, बिन युद्ध किये वह किसी भांति अनिरुद्ध जी को न छोड़ेगा; यह भेद मैंने तुम्हें कह सुनाया, आगे जो उपाय तुम से होसके सो करो. महाराज! यह समाचार सुनाय नारद मुनि जी तो चले गये; पीछे सब यदुबंसियों ने जाय राजा उग्रसेन से कहा, कि महाराज! हमने ठीक समाचार पाये, कि अनिरुद्ध जी

सोनतपुर में बानासुर के यहां हैं; इन्हीं ने उस की कन्या रमी, इससे उनने इन्हें नाग पास से बांध रक्खा है, अब हमें क्या आज्ञा होती है. इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने कहा, कि तुम हमारी सब सेना ले जाओ, और जैसे बने तैसे अनिरुद्ध को छुड़ा लाओ. ऐसा बचन उग्रसेन के मुख से निकलते ही, महाराज! सब यादव तो राजा उग्रसेन का कटक ले बलराम जी के साथ ऊए; और श्री कृष्णचंद औ प्रद्युम्न जी गरुड़ पर चढ़ सब से आगे सोनतपुर को गए.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! जिस काल बलराम जी राजा उग्रसेन का सब दल ले द्वारिका पुरी से धौंसा दे सोनतपुर को चले, उस समय की कुछ शोभा बरनी नहीं जाती; कि सबके आगे तो बड़े बड़े दंतीले मतवाले हाथियों की पांति; तिन पर धौंसा बाजता जाता था, औ ध्वजा पताका फहराती थीं; तिनके पीछे एक ओर गजों की अवली अंबारियों समेत, जिन पर बड़े बड़े रावत जोधा सूर बीर यादव झिलम टोप पहने, सब शस्त्र अस्त्र लगाये बैठे जाते थे; उनके पीछे रथों के तातों के ताते दृष्ट आते थे; तिन की पीठ पर घुड़चढ़ों के यूथ के यूथ बरन बरन के घोड़े गड़े पट्टेवाले, गजगाह पाखर डाले, जमाते, ठहराते, नचाते, कुदाते, फंदाते, चले जाते थे; और उन के बीच बीच चारन जस गाते थे, औ कड़खैत कड़खा; तिस पीछे फरी खांडे छुरीं कटारीं जमधर धोपें बरछीं बरछे भाले बल्लम बाने पटे धनुष बान गदा चक्र फरसे गंडासे लुहांगी गुप्तीं बांक बिछुए समेत अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लिये पैदलों का दल टीड़ी दल सा चला जाता था; उन के मध्य मध्य धौंसे ढोल डफ बांसुरी भेर नरसिंगों का जो शब्द होता था, सो अति ही सुहावना लगता था.

उड़ी रेनु आकाश लौं छाई, छिपौ भानु भयौ निस के भाई.
चकवी चकवा भयौ बियोग, सुंदरि करें कंत सों भोग.
फूले कमल कुमद कुम्हलाने, निसचर फिरहिं निसा जिय जाने.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जिस समय बलराम जी बारह अक्षौहिनी सेना ले अति धूमधाम से उसके गढ़ गढ़ी कोट तोड़ते, औ देस उजाड़ते, जा सोनतपुर में पऊंचे, और श्री कृष्णचंद औ प्रद्युम्न जी भी आन मिले; तिसी समैं किसी ने अति भय खाय घबराय जाय, हाथ जोड़, सिर नाय, बानासुर से कहा, कि महाराज; कृष्ण बलराम अपनी सब सेना ले चढ़ आये, औ उन्हों ने हमारे देस के गढ़ गढ़ी कोट ढाय गिराए, औ नगर को चारों ओर से आय घेरा, अब क्या आज्ञा होती है.

इतनी बातके सुनते ही बानासुर महा क्रोध कर अपने बड़े बड़े राक्षसों को बुलाय बोला, तुम सब दल अपना ले जाय नगर के बाहर जाय कृष्ण बलराम के सनमुख खड़े हो, पीछे से मैं भी आता हूं.

महाराज! आज्ञा पातेही वे असुर बात की बात में बारह अक्षौहिनी सेना ले श्री कृष्ण बलराम जी के सोंही लड़ने को अस्त्र शस्त्र लिये आ खड़े रहे; उनके पीछेही श्री महादेव जी का भजन सुमिरन ध्यान कर बानासुर भी आ उपस्थित हुआ. शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! ध्यान के करते ही शिव जी का आसन डोला, औ ध्यान छूटा, तो उन्हों ने ध्यान धर जाना कि मेरे भक्त पर भीड़ पड़ी है, इस समय चलकर उस की चिंता मेटा चाहिये.

यह मन ही मन बिचार जब पार्वती जी को अर्द्धंग धर, जटा जूट बांध, भस्म चढ़ाय, बहुत सी भांग औ आक धतूरा खाय, स्वेत नागों का जनेऊ पहन, गज चर्म ओढ़, मुंडमाल, सर्प हार पहन, त्रिसूल पिनाक डमरू खप्पर ले, नांदिये पर चढ़, भूत प्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी भूतनी प्रेतनी पिशाचनी आदि सेना ले भोलानाथ चले; उस समैं की कुछ शोभा बरनी नहीं जाती, कि कान में गज मनि की मुद्रा लिलाट पै चंद्रमा सीस पर गंगा धरे लाल लाल लोचन करे, अति भयंकर भेष, महा काल की मूरति बनाये, इस रीति से बजाते गाते, सेना को नचाते जाते थे, कि वह रूप देखेही बनि आवे, कहने में न आवे. निदान कितनी एक बेर में शिव जी अपनी सेना लिये वहां पहुंचे, कि जहां सब असुर दल लिये बानासुर खड़ा था. हर को देखते ही बानासुर हरषके बोला कि कृपा सिंधु! आप बिन कौन इस समय मेरी सुध ले.

तेज तुम्हारे इन कों दहै, यादव कुल अब कैसें रहै.

यों सुनाय फिर कहने लगा कि महाराज! इस समैं धर्म युद्ध करो, औ ऐक ऐक के सनमुख हो ऐक ऐक लड़े. महाराज! इतनी बात जो बानासुर के मुख से निकली, तो इधर असुर दल लड़ने को तुलकर खड़ा हुआ; औ उधर यदुबंसी आ उपस्थित हुए; दोनों ओर जुझाऊ बाजने लगे; सूर बीर रावत जोधा धीर शस्त्र अस्त्र साजने, औ अधीर नपुंसक कायर खेत छोड़ छोड़ जी ले ले भागने लगे.

उस काल महा काल स्वरूप शिव जी श्री कृष्णचंद के सनमुख हुए; बानासुर बलराम जी के सोहीं हुआ; स्कंध प्रद्युम्न जी से आय भिड़ा, औ इसी भांति ऐक ऐक से जुट गया, औ दोनों ओर से शस्त्र चलने लगा. उधर धनुष पिनाक महादेव जी के हाथ; इधर सारंग धनुष लिये यदुनाथ; शिव जी ने ब्रह्म बान चलाया; श्री कृष्ण जी ने ब्रह्म शस्त्र से काट गिराया; फिर रुद्र ने चलाई महा बयार; सो हरि ने तेज से दीनी टार; पुनि महादेव ने अग्नि उपाई; वह मुरारी ने मेह बरसाय बुझाई; और ऐक महा ज्वाला उपजाई, सो सदाशिव जी के दल में धाई; उस ने डाढ़ी मूछ औ जलाय के केस, कीने सब असुर भयानक भेष.

जब असुर दल जलने लगा, औ बड़ा चाह्कार ऊआ, तब भोलानाथ ने जले अधजले राक्षसों औ भूत प्रेतों को तो जल बरसाय ठंडा किया, और आप अति क्रोध कर नारयनी बान चलाने को लिया, पुनि मनहीं मन कुछ सोच समझ न चलाय रख दिया. फिर तो श्री कृष्ण जी आलस्य बान चलाय सब को अचेत कर लगे असुर दल काटने, ऐसे कि जैसे किसान खेती काटे. यह चरित्र देख जो महादेव जी ने अपने मन में सोच कर कहा कि अब प्रलय युद्ध बिन किये नहीं बनता; तोही स्कंध मोर पर चढ़ धाया, और अंतरीक्ष हो उस ने श्री कृष्ण जी की सेना पर बान चलाया.

तब हरि सों प्रद्युम्न उचरै, मोर चढ्यो ऊपर तें लरै.
आज्ञा देऊ युद्ध अति करै, मारों अब हि भूमि गिर परै.

इतनी बात के कहते ही प्रभु ने आज्ञा दी, औ प्रद्युम्न जी ने एक बान मारा सो मोर को लगा, स्कंध नीचे गिरा. स्कंध के गिरते ही बानासुर अति कोप कर पांच धनुष चढ़ाय, एक एक धनुष पर दो दो बान धर, लगा मेह सा बरसाने; और श्री कृष्णचंद बीच ही लगे काटने. महाराज! उस काल इधर उधर के मारू ढोल डफ से बाजते थे; कड़खैत धमाल सी गाते थे; घावों से लोहू की धार पिचकारियां सी चल रहीं थीं; जिधर तिधर जहां तहां लाल लाल लोहू गुलाल सा दृष्ट आता था; बीच बीच भूत प्रेत पिशाच, जो भांति भांति के भेष भयावने बनाए फिरते थे, सो भगत सी खेल रहे थे; औ रक्त की नदी रंग की सी नदी बह निकली थी; लड़ाई क्या, दोनों ओर होली सी हो रही थी. इस में लड़ते लड़ते कितनी एक बेर पीछे श्री कृष्ण जी ने एक बान ऐसा मारा कि उसके रथ का सारथी उड़ गया, औ घोड़े भड़के. निदान रथवान के मरते ही बानासुर भी रन भूमि छोड़ भागा, श्री कृष्ण जी ने उसका पीछा किया.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! बानासुर के भागने के समाचार पाय उस की मा, जिस का नाम कटरा, सो उसी समैं भयानक भेष, छुटे केस, नंगमुनंगी आ, श्री कृष्णचंद जी के सनमुख खड़ी ऊई, औ लगी पुकार करने,

देखत ही प्रभु मूंदे नैन, पीठ दई ताके सुन बैन.
तौलों बानासुर भज गयौ, फिर अपनौं दल जोरत भयौ.

महाराज! जब तक बानासुर एक अक्षौहिनी दल साज वहां आया, तब तक कटरा श्री कृष्ण जी के आगे से न हटी, पुत्र की सेना देख अपने घर गई. आगे बानासुर ने आय बड़ा युद्ध किया, पर प्रभु के सनमुख न ठहरा, फिर भाग महादेव जी के पास गया. बानासुर को भयातुर देख शिव जी ने अति क्रोध कर, महा बिषमज्वर को बुलाय, श्री कृष्ण जी की सेना पर चलाया; वह महा

बली, बड़ा तेजस्वी, जिस का तेज सूरज की समान, तीन मूंड, नौपग, छह करवाला, त्रिलोचन, भयानक भेष, श्री कृष्णचंद के दल को आय साला. उसके तेज से यदुबंसी लगे जलने, औ थर थर कांपने; निदान अति दुख पाय, घबराय, यदुबंसियों ने आय श्री कृष्ण जी से कहा कि महाराज! शिव जी के ज्वर ने आय सारे कटक को जलाय मारा, अब इसके हाथ से बचाइये, नहीं तो एक भी यदुबंसीजीता न बचेगा. महाराज! इतनी बात सुन, औ सब को कातर देख, हरि ने सीतज्वर चलाया; वह महादेव के ज्वर पर धाया; इसे देखते ही वह डर कर पलाया, औ चला चला सदाशिव जी के पास आया.

तब ज्वर महादेव सों कहै, राखहु सरन कृष्ण ज्वर दहै.

यह बचन सुन महादेव जी बोले, कि श्री कृष्णचंद जी के ज्वर को बिन श्री कृष्णचंद ऐसा त्रिभुवन में कोई नहीं जो हरे, इससे उत्तम यही है कि तू भक्त हितकारी श्री मुरारी के पास जा. शिव बाक्य सुन, सोच बिचार, बिषमज्वर श्री कृष्णचंद आनंदकंद जी के सनमुख जा, हाथ जोड़, अति बिनती कर, गिड़गिड़ाय, हाहा खाय, बोला, हे कृपा सिंधु, दीन बंधु, पतित पावन, दीन दयाल! मेरा अपराध क्षमा कीजे, औ अपने ज्वर से बचाय लीजे.

प्रभु तुम हौ ब्रह्मादिक ईस, तुम्हरी शक्ति अगम जगदीस.
तुम हीं रचकर सृष्ट संहारी, सब माया जग कृष्ण तुम्हारी.
कृपा तुम्हारी यह मैं बूझौ, ज्ञान भये जग करता सूझौ.

इतनी बात के सुनते ही हरि दयाल बोले, कि तू मेरी सरन आया, इससे बचा, नहीं तो जीता न बचता; मैंने तेरा अब का अपराध क्षमा किया, फिर मेरे भक्त औ दासों को मत व्यापियो, तुझे मेरी ही आन है. ज्वर बोला, कृपा सिंधु! जो इस कथा को सुनेगा, उसे सीतज्वर, एकतरा, औ तिजारी, कभी न व्यापैगी. पुनि श्री कृष्णचंद बोले, कि तू अब महादेव के निकट जा, यहां मत रह, नहीं तो मेरा ज्वर तुझे दुख देगा. आज्ञा पाते ही बिदा हो दंडवत कर बिषमज्वर सदाशिव जी के पास गया, औ ज्वर का बहुधा सब मिट गया. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज!

यह संबाद सुने जो कोय, ज्वर कौ डर ताकौं नहीं होय.

आगे बानासुर अति कोप कर, सब हाथों में धनुष बान ले, प्रभु के सनमुख आ ललकारके बोला,

तुम तें युद्ध कियौ मैं भारी, तौहू साद न पुजी हमारी.

जब यह कह लगा सब हाथों से बान चलाने, तब श्री कृष्णचंद जी ने सुदरसन चक्र को छोड़, उसके चार हाथ रख, सब हाथ काट डाले; ऐसे कि जैसे कोई बात के कहते बृक्ष के गुद्दे छांट डाले. हाथ के काटते ही बानासुर सिथल हो गिए; घावोंसे लोहू की नदी बह निकली; तिस में भुजाएं मगर मच्छ सी जनाती थीं; कटे हुऐ हाथियों के मस्तक घड़ियाल से डूबते जाते थे; बीच बीच रथ बेड़े नवाड़े से बहे जाते थे; और जिधर तिधर रन भूमि में स्वान स्यार गिद्ध आदि पशु पंछी लोथें खेंच खेंच आपस में लड़ लड़ झगड़ झगड़ फाड़ फाड़ खाते थे; पुनि कौवे सिरों से आंखें निकाल निकाल ले ले उड़ उड़ जाते थे.

श्री शुकदेव जी बोले महाराज! रनभूमिकी यह गति देख, बानासुर अति उदास हो पछताने लगा, निदान निर्बल हो सदाशिव जी के निकट गया, तब,

कहत रुद्र मन माहि बिचार, अब हरि की कीजे मनुहार.

इतना कह श्री महादेव जी बानासुर को साथ ले, बेद पाठ करते वहां आऐ, कि जहां रन भूमि में श्री कृष्णचंद खड़े थे. बानासुर को पाओं पर डाल शिव जी हाथ जोड़ बोले, कि हे सरनागतबत्सल! अब यह बानासुर आप की सरन आया, इस पर कृपा दृष्ट कीजे, औ इसका अपराध मन में न लीजे; तुम तो बार बार अवतार लेते हो भूमि का भार उतारने को, और दुष्ट हतन औ संसार के तारन को; तुम हो प्रभु अलख अभेद अनंत, भक्तों के हेत संसार में आय प्रगटते हो भगवंत, नहीं तो सदा रहते हो बिराट स्वरूप, तिस का है यह रूप, स्वर्ग सिर, नाभि आकाश, पृथ्वी पांव, समुद्र पेट, इंद्र भुजा, पर्बत नख, बादल केस, रोम बृक्ष, लोचन शशि औ भानु, ब्रह्मा मन, रुद्र अहंकार, पवन स्वासा, पलक लगना रात दिन, गरजन शब्द.

ऐसे रूप सदा अनुसरै, काहू पै नहीं जाने परै.

और यह संसार दुख का समुद्र है, इस में चिंता औ मोह रूपी जल भरा है; प्रभु! बिन तुम्हारे नाम की नाव के सहारे, कोई इस महा कठिन समुद्र के पार नहीं जा सकता, और यों तो बहुतेरे डूबते उछलते हैं; जो नर देह पाकर तुम्हारा भजन सुमरन औ न करेगा जाप, सो नर भूलेगा धर्म औ बढ़ावेगा पाप; जिस ने संसार में आय तुम्हारा नाम न लिया, तिस ने अमृत छोड़ बिष पिया; जिस के हृदे में तुम बसे आय, उसी को भक्ति मुक्ति मिली गुन गाय.

इतना कह पुनि श्री महादेव जी बोले, कि हे कृपा सिंधु दीन बंधु! तुम्हारी महिमा अपरंपार है, किसे इतनी सामर्थ है जो उसे बखाने, औ तुम्हारे चरित्रों को जाने; अब मुझ पर कृपा कर इस बानासुर का अपराध क्षमा कीजे, औ इसे अपनी भक्ति दीजे; यह भी तुम्हारी भक्ति का अधिकारी

है, क्योंकि भक्त प्रह्लाद का बंस अंस है. श्री कृष्णचंद बोले कि शिव जी! हम तुम में कुछ भेद नहीं, औ जो भेद समझेगा सो महा नर्क में पड़ेगा, और मुझे कभी न पावेगा; जिस ने तुम्हें ध्याया, तिस ने अंत समैं मुझे पाया; इस ने निस्कपट तुम्हारा नाम लिया, तिसी से मैंने इसे चतुर्भुज किया; जिसे तुम ने बर दिया, औ देगे, तिस का निबाह मैंने किया औ करूंगा.

महाराज; इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही, सदाशिव जी दंडवत कर बिदा हो अपनी सेना ले कैलाश को गये, औ श्री कृष्णचंद वहां हीं खड़े रहे; तब बानासुर हाथ जोड़, सिर नाय, बिनती कर बोला, कि दीनानाथ! जैसे आप ने कृपा कर मुझे तारा, तैसे अब चलके दास का घर पवित्र कीजे, औ अनिरुद्ध जी औ ऊषा को अपने साथ लीजे. इस बात के सुनते ही श्री बिहारी भक्त हितकारी प्रद्युम्न जी को साथ ले बानासुर के धाम पधारे. महाराज! उस काल बानासुर अति प्रसन्न हो प्रभु को बड़ी आवभगत से पाटंबर के पांवड़े डालता लिवाय ले गया; आगे

चरन धोय चरनोदक लियौ, अचमन कर माथे पर दियौ.

पुनि कहने लगा कि जो चरनोदक सब को दुर्लभ है, सो मैंने हरि की कृपा से पाया, औ जन्म जन्म का पाप गंवाया; यही चरनोदक त्रिभुवन को पवित्र करता है, इसी का नाम गंगा है; इसे ब्रह्मा ने कमंडल में भरा; शिव जी ने सीस पर धरा; पुनि सुर मुनि ऋषि ने माना, औ भगीरथ ने तीनों देवताओं की तपस्या कर संसार में आना, तब से इसका नाम भागीरथी हुआ. यह पाप मल हरनी, पवित्र करनी, साध संत को सुख देनी, बैकुंठ की निसेनी है; औ जो इस में न्हाया, उस ने जन्म जन्म का पाप गंवाया; जिस ने गंगा जल पिया, तिस ने, निःसंदेह परमपद लिया; जिन्ने भागीरथी का दरसन किया, तिन्ने सारे संसार को जीत लिया. महाराज. इतना कह बानासुर अनिरुद्ध जी औ ऊषा को ले आय, प्रभु के सनमुख हाथ जोड़ बोला,

क्षमिये दोष भावई भई, यह मैं ऊषा दासी दई.

यों कह, बेद की बिधि से बानासुर ने कन्या दान किया, औ तिस के यौतुक में बहुत कुछ दिया, कि जिस का वारपार नहीं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! ब्याह के होते ही श्री कृष्णचंद बानासुर को आसा भरोसा दे, राज गादी पर बैठाय, पोते बहू को साथ ले, बिदा हो, धौंसा बजाय, सब यदुबंसियों समेत वहां से द्वारिका पुरी को पधारे. इनके आने के समाचार पाय, सब द्वारिकाबासी नगर के बाहर जाय, प्रभु को बाजेगाजे से लिवाय लाये. उस काल पुरबासी हाट बाट चौहटों चौबारों, कोठों से मंगली गीत गाय गाय मंगलाचार करते थे, औ राजमंदिर में श्री रुक्मिनी आदि सब

सुंदरि बधाए गाय गाय रीति भांति करती थीं; औ देवता अपने अपने बिमानों पर बैठे अधर से फूल बरसाय बरसाय जैजैकार करते थे; और घर बाहर सारे नगर में आनंद हो रहा था; कि उसी समय बलराम सुख धाम औ श्री कृष्णचंद आनंदकंद सब यदुबंसियों को बिदा दे, अनिरुद्ध ऊषा को साथ ले राजमंदिर में जा बिराजे.

आनी ऊषा ग्रेह मझारी, हरष हिं देखि कृष्ण की नारी.
देंहिं असीस सासु उर लावैं, निरखि हरषि भूषन पहिरावैं. इति

CHAPTER. LXV.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! इक्ष्वाकबंसी राजा न्दग बड़ा ज्ञानी दानी धर्मात्मा साहसी था, उस ने अनगिनत गौ दान कीं, जो गंगा की बालू के कन, भादों के मेह की बूंदें, औ आकाश के तारे गिने जांय, तो राजा न्दग के दान की गायें भी गिनी जांय; ऐसा जो ज्ञानी महा दानी राजा, सो थोड़े अधर्म से गिरगिट हो अंधे कुए में रहा, तिसे श्री कृष्णचंद जी ने मोक्ष दिया.

इतनी कथा सुन श्री शुकदेव जी से राजा परीक्षित ने पूछा, महाराज! ऐसा धर्मात्मा दानी राजा किस पाप से गिरगिट हो अंधे कुए में रहा, औ श्री कृष्णचंद जी ने कैसे उसे तारा, यह कथा तुम मुझे समझाकर कहो, जो मेरे मन का संदेह जाय. श्री शुकदेव जी बोले, महाराज! आप चित दे मन लगाय सुनिये, मैं जों की तों सब कथा कह सुनाता हूं; कि राजा न्दग तो नित प्रति गौ दान किया करते ही थे; पर एक दिन प्रात ही न्हाय, संध्या पूजा करके, सहस्र धौली, धूमरी, काली, पीली, भूरी, कबरी, गौ मंगाय; रूपे के खुर, सोने के सींग, तांबे की पीठ समेत, पाटंबर उढ़ाय, संकल्पीं; और उन के ऊपर बहुत सा अन धन ब्राह्मनों को दिया; वे ले अपने घर गये. दूसरे दिन फिर राजा उसी भांति गौ दान करने लगा, तो एक गाय पहले दिन की संकल्पी अनजाने आन मिली, सो भी राजा ने उन गायों के साथ दान कर दी, बाह्मन ले अपने घर को चला; आगे दूसरे ब्राह्मन ने अपनी गौ पहचान, बाट में रोकी, औ कहा, कि यह गाय मेरी है, मुझे काल्ह राजा के यहां से मिली है, भाई! तू क्यों इसे लिये जाता है. यह ब्राह्मन बोला, इसे तो मैं अभी राजा के टहां से लिये चला आता हूं, तेरी कहां से हुई. महाराज! वे दोनों ब्राह्मन इसी भांति मेरी मेरी कर झगड़ने लगे; निदान झगड़ते झगड़ते वे दोनों राजा के पास गये; राजा ने दोनों की बात सुन हाथ जोड़ अति बिनती कर कहा, कि,

कोऊ लाख रुपैया लेउ, गैया एक काहू कौं देउ.

इतनी बात के सुनते ही दोनों झगड़ालू ब्राह्मन अति क्रोध कर बोले, कि महाराज! जो गाय हमने स्वस्ति बोलके ली, सो करोड़ रुपये पाने से भी हम न देंगे; वह तो हमारे प्रान के साथ है. महाराज! पुनि राजा ने उन ब्राह्मनों को पाओं पड़ पड़ अनेक अनेक भांति फुसलाया, समझाया, पर उन तामसी ब्राह्मनों ने राजा का कहना न माना; निदान महा क्रोध कर इतना कह दोनों ब्राह्मन गाय छोड़ चले गये, कि महाराज! जो गाय आप ने संकल्प कर हमें दी, औ हम ने स्वस्ति बोल हाथ पसार ली, वह गाय रुपये ले नहीं दी जाती; अच्छा यों तुम्हारे यहां रही तो कुछ चिंता नहीं.

महाराज! ब्राह्मनों के जाते ही राजा नृग पहले तो अति उदास हो मनहीं मन कहने लगा, कि यह अधर्म अनजाने मुझ से हुआ, सो कैसे छुटेगा; औ पीछे अति दान पुन्य करने लगा. कितने एक दिन बीते राजा नृग काल बस हो मर गया, उसे यम के गन धर्मराज के पास ले गये. धर्मराज राजा को देखते ही सिंहासन से उठ खड़ा हुआ, पुनि आवभगत कर आसन पर बैठाय अति हित कर बोला, महाराज! तुम्हारा पुन्य है बहुत, औ पाप है थोड़ा, कहो पहले क्या भुगतोगे.

सुन नृग कहत जोरके हाथ, मेरो धर्म टरै जिन नाथ.
पहलै हों भुगतोंगो पाप, तन धरकै सहि हों संताप.

इतनी बात के सुनते ही धर्मराज ने राजा नृग से कहा, कि महाराज! तुम ने अनजाने जो दान की हुई गाय फिर दान की, उसी पाप से आप को गिरगिट हो बन बीच गोमती तीर अंधे कुएे में रहना हुआ; जब द्वापर के अंत में श्री कृष्नचंद अवतार लेंगे, तब तुम्हें वे मोक्ष देंगे. महाराज! इतना कह धर्मराज चुप रहा, औ राजा नृग उसी समै गिरगिट हो अंधे कुएे में जा गिरे, औ जीव भक्षन कर कर वहां रहने लगा.

आगे कई जुग बीते, द्वापर के अंत में श्री कृष्नचंद जी ने अवतार लिया, औ ब्रज लीला कर जब द्वारिका को गए, औ उन के बेटे पोते भए, तब एक दिन कितने एक श्री कृष्न जी के बेटे पोते मिल अहेर को गये, औ बन में अहेर करते करते प्यासे भये. दैवी वे बन में जल ढूंढते ढूंढते उसी अंधे कुएे पर गए, जहां राजा नृग गिरगिट का जन्म ले रहा था; कुएे में झांकते ही एक ने पुकारके सब से कहा, कि अरे भाई! देखो इस कूप में कितना बड़ा एक गिरगिट है.

इतनी बात के सुनते ही सब दौड़ आए, औ कुएे के मनघटे पर खड़े हो लगे पगड़ी फेंटे मिलाय मिलाय, लटकाय, लटकाय, उसे काढ़ने, औ आपस में यों कहने, कि भाई! इसे बिन कुएे से निकाले हम यहां से न जांयगे. महाराज! जब वह पगड़ी फेंटों की रस्सी से न निकला, तब उन्होंने गांवसे सन, सूत, मूंज, चाम की मोटी मोटी भारी भारी बरतें मंगवाईं, और कुएे में फांस

गिरगिट को बांध बलकर खैंचने लगे; पर वह वहां से टसका भी नहीं; तब किसी ने द्वारिका में जाय श्री कृष्ण जी से कहा कि महाराज! बन में अंधे कुएं के भीतर एक बड़ा मोटा भारी गिरगिट है, उसे सब कुंवर काढ़ हारे, पर वह नहीं निकलता.

इतनी बात के सुनते ही हरि उठ धाए, औ चले चले वहां आए जहां सब लड़के गिरगिट को निकाल रहे थे. प्रभु को देखते ही सब लड़के बोले, कि पिता! देखो यह कितना बड़ा गिरगिट है, हम बड़ी बेर से इसे निकाल रहे हैं, यह निकलता नहीं. महाराज! इस बचन को सुन जों श्री कृष्णचंद जी ने कुए में उतर उसके शरीर में चरन लगाया, तों वह देह छोड़ अति सुंदर पुरुष हुआ.

भूपति रूप रह्यौ गहि पाय, हाथ जोड़ बिनवै सिर नाय.

कृपा सिंधु! आपने बड़ी कृपा की, जो इस महा बिपतमें आय मेरी सुध ली. शुकदेव जी बोले, राजा! जब वह मनुष रूप हो हरि से इस ढब की बातें करने लगा, तब यादवों के बालक औ हरि के बेटे पोते अचरज कर श्री कृष्णचंद से पूछने लगे, कि महाराज! यह कौन है, और किस पाप से गिरगिट हो यहां रहा था, सो कृपा कर कहो तो हमारे मन का संदेह जाय. उस काल प्रभु ने आप कुछ न कह उस राजा से कहा,

अपनौ भेद कहौ समझाय, जैसें सबै सुनै मन लाय.
को हौ आप कहां तें आए, कौन पाप यह काया पाए.
सुनकै नृप कहै जोरे हाथ, तुम सब जानत हौ यदुनाथ.

तिस पर आप पूछते हो तो मैं कहता हूं, मेरा नाम है राजा नृग, मैंने अनगिनत गौ ब्राह्मनों को तुम्हारे निमित्त दीं. एक दिन की बात है, कि मैंने कितनी एक गाय संकल्प कर ब्राह्मनों को दीं; दूसरे दिन उन गायों में से एक गाय फिर आई, सो मैंने और गायों के साथ अनजाने दूसरे द्विज को दान कर दी. जों लेकर निकला, तों पहले ब्राह्मन ने अपनी गौ पहचान इससे कहा, यह गाय मेरी है, मुझे कल राजा के यहां से मिली है, तू इसे क्यों लिये जाता है. वह बोला, मैं अभी राजा के यहां से लिये चला आता हूं, तेरी कैसे हुई. महाराज! वे दोनों बिप्र इसी बात पर झगड़ते झगड़ते मेरे पास आए, मैंने उन्हें समझाया, और कहा, कि एक गाय के पलटे मुझ से लाख गौ लो, औ तुम में से कोई यह गाय छोड़ दो.

महाराज! मेरा कहा हठकर उन दोनों ने न माना; निदान गौ छोड़ क्रोध कर वे दोनों चले गए; मैं अछताय पछताय मन मार बैठ रहा; अंत समय जम के दूत मुझे धर्मराज के पास ले गये;

धर्मराज ने मुझ से पूछा कि राजा! तेरा धर्म है बहुत, औ पाप है थोड़ा, कह पहले क्या भुगतेगा? मैंने कहा, पाप. इस बात के सुनते ही, महाराज! धर्मराज बोले कि राजा! तैंने ब्राह्मन को दी हुई गाय फिर दान की, इस अधर्म से तू गिरगिट हो पृथ्वी पर जाय गोमती तीर बन के बीच अंधे कूप में रह, जब द्वापर युग के अंत में श्री कृष्नचंद्र अवतार ले तेरे पास जायंगे, तब तेरा उद्धार होगा. महाराज! तभी से मैं सरट स्वरूप इस अंधे कूप में पड़ा आप के चरन कमल का ध्यान करता था; अब आय आपने मुझे महा कष्ट से उबारा, औ भव सागर से पार उतारा.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! इतना कह राजा नृग तो बिदा हो बिमान में बैठ बैकुंठ को गया, औ श्री कृष्नचंद्र जी सब बाल गोपालों को समझायके कहने लगे,

बिप्र दोष जिन कोऊ करै, मत कोऊ अंस बिप्र कौ हरै.
मन संकल्प कियौ जिन राखौ, सत्य बचन बिप्रन सों भाखौ.
बिप्र हि दियौ फेर जो लेइ, ताकौं दंड इतौ जम देइ.
बिप्रन के सेवक भये रहियौ, सब अपराध बिप्र कौ सहियौ.
बिप्रहि माने सो मोहि माने, बिप्रन अरु मोहि भिन्न न जाने.

जो मुझ में औ ब्राह्मन में भेद जानेगा, सो नर्क में पड़ेगा; औ बिप्र को मानेगा, वह मुझे पावेगा, औ निसंदेह परम धाम में जावेगा. महाराज! यह बात कह श्री कृष्न जी सब को वहां से ले द्वारिका पुरी पधारे. इति

CHAPTER. LXVI.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! एक समैं श्री कृष्नचंद्र आनंदकंद औ बलराम सुखधाम, मनिमय मंदिर में बैठे थे, कि बलदेव जी ने प्रभु से कहा, भाई! जब हमें बृंदाबन से कंस ने बुला भेजा था, औ हम मथुरा को चले थे, तब गोपियों और नंद जसोदा से हम ने तुम ने यह बचन किया था, कि हम शीघ्र ही आय मिलेंगे, सो वहां न जाय द्वारिका में आय बसे; वे हमारी सुरत करते होंगे, जो आप आज्ञा करें तो हम जन्म भूमि देखि आवें, औ उन का समाधान करि आवें. प्रभु बोले कि अच्छा. इतनी बात के सुनते ही बलराम जी सब से बिदा हो, हल मूसल ले, रथ पर चढ़ सिधारे.

महाराज! बलराम जी जिस पुर नगर गांव में जाते थे, तहां के राजा आगू बढ़ अति शिष्टाचार कर

इन्हें ले जाते थे; औ ये एक एक का समाधान करते जाते थे. कितने एक दिन में चले चले बलराम जी अवंतिका पुरी पहुंचे

बिद्या गुरु कौं कियौ प्रनाम, दिन दस तहां रहे बलराम.

आगे गुरु से बिदा हो बलदेव जी चले चले गोकुल में पधारे, तो देखते क्या हैं, कि बन में चारों ओर गायें मुंह बायें, बिन तृन खायें, श्री कृष्णचंद की सुरत किये, बांसुरी की तान में मन दिये, रंभती हौंकती फिरती हैं; तिन के पीछे पीछे ग्वाल बाल हरि जस गाते, प्रेम रंग राते, चले जाते हैं; औ जिधर तिधर नगर निवासी लोग प्रभु के चरित्र औ लीला बखान रहे हैं. महाराज! जन्म भूमि में जाय ब्रजबासियों औ गायों की यह अवस्था देखि, बलराम जी करुना कर, नयन में नीर भर लाए; आगे रथ की ध्वजा पताका देख श्री कृष्णचंद औ बलराम जी का आना जान सब ग्वाल बाल दौड़ आए. प्रभु उनके आते ही रथ से उतर लगे एक एक के गले लग लग अति हित से क्षेम कुशल पूछने; इस बीच किसीने जा नंद जसोदा से कहा, कि बलदेव जी आए. यह समाचार पाते ही, नंद जसोदा औ बड़े बड़े गोप ग्वाल उठ धाए; उन्हें दूर से आते देख बलराम जी दौड़कर, नंदराय के पाओं पर जाय गिरे, तब नंद जी ने अति आनंद कर नयनों में जल भर, बड़े प्यार से बलराम जी को उठाय कंठ से लगाया, औ बियोग दुख गंवाया. पुनि प्रभु ने,

गहे चरन जसुमति के जाय. उनि हित कर उर लिये लगाय.
भुज भरि भेंट कंठ गहि रही, लोचन तें जल सलिता बही.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा, कि महाराज! ऐसे मिलजुल नंदराय जी बलराम जी को घर में ले जाय कुशल क्षेम पूछने लगे, कि कहो उग्रसेन बसुदेव आदि सब यादव औ श्री कृष्णचंद आनंदकंद आनंद से हैं, और कभी हमारी सुरत करते हैं? बलराम जी बोले, कि आप की कृपा से सब आनंद मंगल से हैं, औ सदा सर्बदा आप का गुन गाते रहते हैं. इतना बचन सुन नंदराय चुप रहे; पुनि जसोदा रानी श्री कृष्ण जी की सुरत कर, लोचन में नीर भर, अति व्याकुल हो बोलीं, कि बलदेव जी! हमारे प्यारे नैनों के तारे श्री कृष्ण जी अच्छे हैं? बलराम जी ने कहा, बहुत अच्छे हैं. पुनि नंदरानी कहने लगीं, कि बलदेव! जब से हरि यहां से सिधारे, तब से हमारी आंख आगे अंधेरा हो रहा है, हम आठ पहर उन्हीं का ध्यान किये रहते हैं, औ वे हमारी सुरत भुलाय द्वारिका में जाय छाय रहे, और देखो बहन देवकी रोहनी भी हमारी प्रीति छोड़ बैठी.

मथुरा तें गोकुल ढिग जान्यौ, बसी दूर तबही मन मान्यौ.

भेटन मिलन आवते हरी, फिर न मिले ऐसी उन करी.

महाराज! इतना कह जब जसोदा जी अति व्याकुल हो रोने लगीं, तब बलराम जी ने बहुत समझाय बुझाय आसा भरोसा दे उन को ढाढ़स बंधाया; पुनि आप भोजन कर पान खाय घर से बाहर निकले तो क्या देखते हैं, कि सब ब्रज युवती तन छीन, मन मलीन, छुटे केस, मैले भेष, जी हारे, घरबार की सुरत बिसारे, प्रेम रंग राती, जोबन की माती, हरि गुन गाती, बिरह में व्याकुल, जिधर तिधर मतवत चली जाती हैं. महाराज! बलराम जी को देखते ही अति प्रसन्न हो सब दौड़ आईं, औ दंडवत कर हाथ जोड़ चारों ओर खड़ी हो लगीं पूछने, औ कहने, कि कहो बलराम सुख धाम! अब कहां बिराजते हैं हमारे प्रान सुंदर स्याम? कभी हमारी सुरत करते हैं बिहारी, कै राज पाट पाय पिछली प्रीति सब बिसारी? जब से यहां से गये हैं, तब से एक बार ऊधो के हाथ जोग का संदेसा कह पठाया था, फिर किसी की सुध न ली; अब जाय समुद्र माहिं बसे, तो काहे को किसी की सोध लेंगे. इतनी बातके सुनते ही एक गोपी बोल उठी, कि सखी! हरि की प्रीति का कौन करै परेखा, उन का तो देखा सब से यही लेखा.

वे काहू के नाहि न ईठ, मात पिता कौं जिन दई पीठ.

राधा बिन रहते नहीं घरी, सोऊ है बरसाने परी.

पुनि हम तुम ने घर बार छोड़, कुल कान लोक लाज तज, सुत पति त्याग, हरि से नेह लगाय, क्या फल पाया; निदान नेह की नाव पर चढ़ाय, बिरह समुद्र मांझ छोड़ गये; अब सुनती हैं कि द्वारिका में जाय प्रभु ने बहुत ब्याह किये, और सोलह सहस्र एक सौ राज कन्या, जो भौमासुर ने घेर रक्खी थीं, तिन्हें भी श्री कृष्ण ने लाय ब्याहा; अब उन से बेटे पोते नाती भये, उन्हें छोड़ यहां क्यों आवेंगे. यह बात सुन एक और गोपी बोली, कि सखी! तुम हरि की बातों का कुछ पछतावा ही मत करो; क्योंकि उनके तो गुन सब ऊधो जी ने आय ही सुनाये थे. इतना कह पुनि वह बोली, कि आली! मेरी बात मानो तो अब,

हलधर जू के परसौ पाय, रहि हैं इन हीं के गुन गाय.

ये हैं गौर स्याम नहिं गात, करि हैं नाहिं कपट की बात.

सुनि संकर्षन उत्तर दियौ, तिहारे हेतु गवन हम कियौ.

आवन हम तुम सों कहि गये, तातें कृष्ण पठै ब्रज दये.

रहि द्वै मास करेंगे रास, पुजवेंगे सब तुम्हरी आस.

महाराज! बलराम जी ने इतना कह सब ब्रज युवतियों को आज्ञा दी, कि आज मधुमास की

रत है, तुम सिंगार कर बन में आओ, हम तुम्हारे साथ रास करेंगे. यह कह बलराम जी सांझ समैं बन को सिधारे; तिनके पीछे सब ब्रज युवती भी सुथरे वस्त्र आभूषन पहन, नख सिख से सिंगार कर, बलदेव जी के पास पहुंचीं.

ठाढ़ी भईं सबै सिर नाय, हलधर छबि बरनी नहीं जाय.
कनक बरन नीलंबर धरें, ससि मुख कंवल नयन मन हरें.
कुंडल ऐक श्रवन छबि छाजै, मनो भान ससि संग बिराजै.
ऐक श्रवन हरि जस रस पान, दूजो कुंडल धरत न कान.
अंग अंग प्रति भूषन घने, तिन की शोभा कहत न बने.
यों कह पांय परीं सुंदरी, लीला रास करन रस भरी.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही बलराम जी ने हूं किया; हूं के करते ही रास की सब वस्तु आय उपस्थित हुई. तब तो सब गोपियां सोच संकोच तज, अनुराग कर, बीन, मृदंग, करताल, उपंग, मुरली, आदि सब यंत्र लेले लगीं बजाने गाने, औ थेई थेई कर नाच नाच भाव बताय बताय प्रभु को रिझाने. उनका बजाना गाना नाचना सुन देख, मगन हो, बारुनी पान कर, बलदेव जी भी सब के साथ मिल गाने नाचने, औ अनेक अनेक भांति के कुतूहल कर कर सुख देने लेने लगे; उस काल देवता, गंधर्व, किन्नर, यक्ष, अपनी अपनी स्त्रीयों समेत आय आय, बिमान पर बैठे प्रभु गुन गाय गाय अधर से फूल बरसाते थे; चंद्रमा तारा मंडल समेत रास मंडली का सुख देख देख किरनों से अमृत बरसाता था; औ पवन पानी भी थंभ रहा था.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! इसी भांति बलराम जी ने ब्रज में रह चैत बैसाख दो महीने रात को तो ब्रज युवतियों के साथ रास बिलास किया, औ दिन को हरि कथा सुनाय नंद जसोदा को सुख दिया; क्षिसी में ऐक दिन रात समैं रास करते करते बलराम जी ने जा,

नदी तीर करके बिश्राम, बोले तहां कोपके राम.
यमुना तू इतहीं बहि आव, सहस धार कर मोहि न्हवाव.
जो न मानि है कह्यौ हमारौ, खंड खंड जल होय तिहारौ.

महाराज! जब बलराम जी की बात अभिमान कर यमुना ने सुनी अनसुनी की, तब तो इन्हे ने क्रोध कर उसे हल से खैंच ली, औ स्नान किया; उसी दिन से वहां यमुना अब तक टेढ़ी है. आगे न्हाय, स्रम मिटाय, बलराम जी सब गोपियों को सुख दे, साथ ले, बन से चल, नगर में आये; तहां,

गोपी कहैं सुनौ ब्रजनाथ! हम कौं हूं लै चलियौ साथ.

यह बात सुन बलराम जी गोपियों को आसा भरोसा दे, ढाढ़स बंधाय, बिदा कर, बिदा होने नंद जसोदा के निकट गये; पुनि तिन्हें भी समझाय बुझाय धीरज बंधाय, कई दिन रह, बिदा हो, द्वारिका को चले, औ कितने एक दिनों में जाय पहुंचे. इति

CHAPTER. LXVII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! काशी पुरी में एक पौन्ड्रक नाम राजा, सो महा बली औ बड़ा प्रतापी था; जिस ने बिष्णु का भेष किया, औ छल बल कर सब का मन हर लिया; सदा पीत बसन, बैजंतीमाल, मुक्तमाल, मनिमाल, पहने रहै; औ संख, चक्र, गदा, पद्म लिये, दो हाथ काठ के किये, एक घोड़े पर काठ ही का गरुड़ धरे, उस पर चढ़ा फिरै; वह बासुदेव पौन्ड्रक कहावे, औ सब से आप को पुजावे; जो राजा उस की आज्ञा न माने, उस पर चढ़ जाय, फिर मारधाड़ कर तिसे अपने बस में रक्खै.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! तिसका यह आचरन देख सुन, देस देस, नगर नगर, गांव गांव, घर घर में लोग चरचा करने लगे, कि एक बासुदेव तो ब्रज भूमि के बीच यदु कुल में प्रगट हुए थे, सो द्वारिका पुरी में बिराजते हैं; दूसरा अब काशी में हुआ है, दोनों में हम किसे सच्चा जानें औ मानें. महाराज! देस देस में यह चरचा हो रही थी, कि कुछ संधान पाय, बासुदेव पौन्ड्रक एक दिन अपनी सभा में आय बोला,

को है कृष्ण द्वारिका रहै, ताकौं बासुदेव जग कहै.
भक्त हेतु भू हौं औतर्‌यौ, मेरौ भेष तहां तिन धर्‌यौ.

इतनी बात कह, एक दूत को बुलाय, उस ने ऊंच नीच की बातें सब समझाय बुझाय, इतना कह द्वारिका में श्री कृष्णचंद जी के पास भेज दिया, कि कैसे मेरा भेष बनाये फिरता है, सो छोड़ दे; नहीं तो लड़ने का बिचार कर. आज्ञा पाते ही दूत बिदा हो काशी से चला चला द्वारिका पुरी पहुंचा, औ श्री कृष्णचंद जी की सभा में जा उपस्थित हुआ. प्रभु ने इससे पूछा, कि तू कौन है, और कहां से आया है? बोला, मैं काशी पुरी के बासुदेव पौन्ड्रक का दूत हूं, स्वामी का पठाया कुछ संदेसा कहने आप के पास आया हूं, कहो तो कहूं. श्री कृष्णचंद बोले, अच्छा कह. प्रभु के मुख से यह बचन निकलते ही दूत खड़ा हो, हाथ जोड़, कहने लगा, कि महाराज! बासुदेव पौन्ड्रक ने कहा है, कि त्रिभुवन पति जगत का करता तो मैं हूं, तू कौन है, जो मेरा भेष बनाय, जरासिंधु के

डर से भाग, द्वारिका में जाय रहा है; कै तो मेरा बाना छोड़ शीघ्र आय मेरी सरन गह, नहीं तो तेरे सब यदुबंसियों समेत तुझे आय मारूंगा, औ भूमि का भार उतार अपने भक्तों को पालूंगा; मैं ही हूं अलख अगोचर निरंकार, मेरा ही जप तप यज्ञ दान करते हैं सुर मुनि ऋषि नर बार बार; मैं ही ब्रह्मा हो बनाता हूं; बिष्णु हो पालता हूं; शिव हो संहारता हूं; मैंने ही मच्छ रूप हो वेद डूबते निकाले; कच्छ स्वरूप हो गिर धारन किया; बाराह बन भूमि को रख लिया; नृसिंह अवतार ले हिरनकस्यप को बध किया; बावन अवतार ले बलि को छला; रमावतार ले महा दुष्ट रावन को मारा; मेरा यही काम है कि जब जब असुर मेरे भक्तों को आय सताते हैं, तब तब मैं अवतार ले भूमि का भार उतारता हूं.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! वासुदेव पौन्ड्रक का दूत तो इस ढब की बातें करता था, औ श्री कृष्णचंद्र आनंदकंद रत्न सिंहासन पर बैठे यादवों की सभा में हंस हंस कर सुनते थे, कि इस बीच कोई यदुबंसी बोल उठा,

नोहि कहा जम आयौ लैन, भाखत तू जो ऐसे बैन.
मारैं कहा तोहि हम, नीच! आयौ है कपटी के बीच.

जो तू बसीठ न होता, तो बिन मारे न छोड़ते; दूत को मारना उचित नहीं. महाराज! जब यदुबंसी ने यह बात कही, तब श्री कृष्ण जी ने उस दूत को निकट बुलाय, समुझाय बुझायके कहा, कि तू जाय अपने वासुदेव से कह, कि कृष्ण ने कहा है, जो मैं तेरा बाना छोड़ सरन आता हूं, सावधान हो रहे. इतनी बात के सुनते ही दूत दंडवत कर बिदा हुआ; औ श्री कृष्णचंद्र जी भी अपनी सेना ले काशी पुरी को सिधारे. दूत ने जाय वासुदेव पौन्ड्रक से कहा, कि महाराज! मैंने द्वारिका में जाय आप का कहा संदेसा सब श्री कृष्ण को सुनाया; सुनकर उन्हों ने कहा, कि तू अपने स्वामी से जाय कह, कि सावधान हो रहे, मैं उसका बाना छोड़ सरन लेन आता हूं.

महाराज! बसीठ यह बात कहता ही था, कि किसी ने आय कहा, कि महाराज! आप निचिंत क्या बैठे हो, श्री कृष्ण अपनी सेना ले चढ़ि आया. इतनी बात के सुनते ही वासुदेव पौन्ड्रक उसी भेष से अपना सब कटक ले चढ़ धाया, औ चला चला श्री कृष्णचंद्र जी के सनमुख आया; तिस के साथ एक और भी काशी का राजा चढ़ दौड़ा; दोनों ओर दल तुल कर खड़े हुए; जुझाऊं बाजे बाजने लगे; सूर बीर रावत लड़ने, औ कायर खेत छोड़ छोड़ अपना जीव ले ले भागने लगे. उस काल युद्ध करता करता काल बस हो वासुदेव पौन्ड्रक उसी भांति श्री कृष्णचंद्र जी के सनमुख जा

ललकारा; उसे बिष्णु भेष से देख सब यदुबंसियों ने श्री कृष्णचंद से पूछा, कि महाराज! इसे इस भेष से कैसे मारेंगे; प्रभु ने कहा, कपटी के मारने का कुछ दोष नहीं.

इतना कह हरि ने सुदरसन चक्र को आज्ञा दी, उस ने जाते ही जो दो भुजा काठ की थीं सो उखाड़ लीं, उसके साथ गरुड़ भी टूटा, औ तुरंग भागा. जब बासुदेव पौन्ड्रक नीचे गिरा, तब सुदरसन ने उसका सिर काट फेंका.

कटत सीस नृप पौन्ड्रक तर्यौ, सीस जाय काशी में पर्यौ.
जहां हुतौ ताकौ रनवासु, देखत सीस सुंदरी तासु.
रोवें यों कहि खैंचें बार, यह गति कहां भई करतार.
तुम तो अजर अमर हे भये, कैसे प्रान पलक में गये.

महाराज! रानियों का रोना सुन, सुदक्ष नाम उसका एक बेटा था, सो वहां आय, बाप का सिर कटा देख, अति क्रोध कर कहने लगा, कि जिस ने मेरे पिता को मारा है, उस से मैं बिन पलटा लिये न रहूंगा.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! बासुदेव पौन्ड्रक को मार श्री कृष्णचंद जी तो अपना सब कटक ले दारिका को सिधारे; औ उसका बेटा अपने बाप का बैर लेन को महादेव जी की अति कठिन तपस्या करने लगा. इस में कितने एक दिन पीछे एक दिन प्रसन्न हो महादेव भोलानाथ ने आय कहा, कि बर मांग. यह बोला, महाराज! मुझे यही बर दीजे कि श्री कृष्ण से मैं अपने पिता का बैर लूं. शिव जी बोले, अच्छा; जो तू बैर लिया चाहता है तो एक काम कर. बोला, क्या? कहा, उलटे बेद मंत्रों से यज्ञ कर, इससे एक राक्षसी अग्नि से निकलेगी, उस से जो तू कहेगा सो वह करेगी. इतना बचन शिव जी के मुख से सुन, महाराज! वह जाय ब्राह्मनों को बुलवाय, बेदी रच, तिल जौ घी चीनी आदि सब होम की सामा ले, शाकल बनाय, लगा उलटे बेद मंत्र पढ़ पढ़ होम करने; निदान यज्ञ करते करते अग्नि कुंड से कृत्या नाम एक राक्षसी निकली, सो श्री कृष्ण जी के पीछे ही पीछे नगर देस गांव जलाती जलाती दारिका पुरी में पहुंची, औ लगी पुरी को जलाने. नगर को जलता देख सब यदुबंसी भय खाय श्री कृष्णचंद जी के पास जा पुकारे, कि महाराज! इस आग से कैसे बचेंगे, यह तो सारे नगर को जलाती चली आती है. प्रभु बोले, तुम किसी बात की चिंता मत करो, यह कृत्या नाम राक्षसी काशी से आई है, मैं अभी इसका उपाय करता हूं.

महाराज! इतना कह श्री कृष्ण जी ने सुदरसन चक्र को आज्ञा दी, कि इसे मार भगाव, औ

इसी समय जाय काशी पुरी को जलाय आव. हरि की आज्ञा पाते ही सुदरसन चक्र ने कृत्या को मार भगाया, औ बात के कहते ही काशी को जा जलाया.

परजा भागी फिरे दुखारी, गारी देहि सुदक्ष हि भारी.
फिरयौ चक्र शिव पुरी जलाय, सोई कही कृष्ण सों आय. इति

CHAPTER. LXVIII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जैसे बलराम सुखधाम रूप निधान ने दुबिद कपि को मारा, तैसे ही मैं कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनौ. एक दिन दुबिद, जो सुग्रीव का मंत्री, औ मयंद्री कपि का भाई, औ भौमासुर का सखा था, कहने लगा, कि एक सूल मेरे मन में है, सो जब न तब खटकता है. यह बात सुन किसी ने उससे पूछा कि महाराज! सो क्या? बोला जिस ने मेरे मित्र भौमासुर को मारा, तिसे मारूं तो मेरे मन का दुख जाय.

महाराज! इतना कह वह तिसी समै अति क्रोध कर द्वारिका पुरी को चला, श्री कृष्णचंद के देस उजाड़ता, औ लोगों को दुख देता; किसी को पानी बरसाय बहाया; किसी को आग बरसाय जलाया; किसी को पहाड़ से पटका; किसी पर पहाड़ दे पटका; किसी को समुद्र में डुबाया; किसी को पकड़ बांध गुफा में छिपाया; किसी का पेट फाड़ डाला; किसी पर बृक्ष उखाड़ मारा; इसी रीति से लोगों को सताता जाता था, औ जहां मुनि ऋषि देवताओं को बैठे पाता था, तहां गू मूत रुधिर बरसाता था; निदान इसी भांति लोगों को दुख देता, औ उपाध करता, जा द्वारिका पुरी पहुंचा, औ अल्प तन धर श्री कृष्णचंद्र के मंदिर पर जा बैठा. उसको देख सब सुंदरीं मंदिर के भीतर किवाड़ दे दे भागकर जाय छिपीं; तब तो वह मन हीं मन यह बिचार बलराम जी के समाचार पाय रेवत गिर पर गया, कि;

पहले हलधर कौं बध करैं; पाछै प्रान कृष्ण के हरैं.

जहां बलदेव जी स्त्रियों के साथ बिहार करते थे, महाराज! छिपकर यह वहां क्या देखता है, कि बलराम जी मद पी, सब स्त्रियों को साथ ले एक सरोवर बीच अनेक अनेक भांति की लीला कर कर गाय गाय न्हाय न्हिलाय रहे हैं. यह चरित्र देख दुबिद एक पेड़ पर जा चढ़ा, औ किलकारियां मार मार, घुरक घुरक. लगा डाल डाल कूद कूद फिर फिर चरित्र करने; औ जहां मदिरा का भरा कलस औ सब के चीर धरे थे, तिन पर हगने मूतने लगा; बंदर को सब सुंदरी देखते ही डर कर पुकारीं, कि महाराज! यह कपि कहां से आया जो हमें डराय डराय, हमारे बस्त्रों

पर हग मूत रहा है. इतनी बात के सुनते ही बलदेव जी ने सरोवर से निकल, जों उसके ढेला चलाया, तों वह इन को मतवाला जान, महा क्रोध कर, किलकारी मार नीचे आया; आते ही उस ने मद का भरा घड़ा जो तीर पर धरा था सो लुढ़ाय दिया, औ सारे चीर फाड़ लीर लीर कर डाले; तब तो क्रोध कर बलराम जी ने हल मूंसल संभाले, औ वह भी पर्वत सम हो प्रभु के सोंहीं युद्ध करने को आय उपस्थित हुआ. इधर से ये हल मूंसल चलाते थे, औ उधर से वह पेड़ पर्वत.

महा युद्ध दोऊ मिल करैं, नैक न कहूं ठौर तें टरैं.

महाराज! ये तो दोनों बली अनेक अनेक प्रकार की घातें बातें कर निधड़क लड़ते थे; पर देखनेवालों का मारे भय के प्रान ही निकलता था; निदान प्रभु ने सब को दुखित जान दुबिद को मार गिराया; उसके मरते ही सुर नर मुनि सब के जी को आनंद हुआ, औ दुख दंद गया.

फूले देव पहुप बरसावैं; जैजै कर हलधर हि सुनावैं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने कहा कि महाराज! त्रेतायुग से वह बंदर ही था, तिसे बलदेव जी ने मार उद्धार किया. आगे बलराम सुखधाम सब को सुख दे वहां से साथ ले, श्री द्वारिका पुरी में आये, औ दुबिद के मारने के समाचार सारे यदुबंसियों को सुनाये. इति

CHAPTER. LXIX.

श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! अब दुर्योधन की बेटी लक्ष्मना के बिवाह की कथा कहता हूं, कि जैसे संबू हस्तिनापुर जाय उसे ब्याह लाये. महाराज! राजा दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मना जब ब्याहन जोग हुई, तब उसके पिता ने सब देस देस के नरेसों को पत्र लिख लिख बुलाया, औ स्वयंबर किया. स्वयंबर के समाचार पाय श्री कृष्णचंद का पुत्र, जो जामवती से था, संबू नाम, वह भी वहां पहुंचा. वहां जाय संबू क्या देखता है, कि देस देस के नरेस, बलवान, गुनवान, रूप निधान, महा जान, सुथरे वस्त्र आभूषन रत्न जटित पहने, अस्त्र शस्त्र बांधे, मौन साधे, स्वयंबर के बीच पांति पांति खड़े हैं; औ उन के पीछे उसी भांति सब कौरव भी; जहां तहां बाहर बाजन बाज रहे हैं; भीतर मंगली लोग मंगलाचार कर रहे हैं; सब के बीच राज कुमारी मात पिता की प्यारी, मन हीं मन यों कहती, हार लिये आखों की सी पुतली फिरती है, कि मैं किसे बरूं.

महाराज! जब वह सुंदरी शीलवान, रूप निधान, माला लिये, लाज किये, फिरती फिरती संबू के सनमुख आई, तब इन्हों ने सोच संकोच तज, निर्भय उसे हाथ पकड़, रथ में बैठाय, अपनी बाट ली. सब राजा खड़े मुंह देखते रह गये, और करन, द्रोन, सल्य, भूरिश्रवा, दुर्योधन आदि सारे

कौरव भी उस समय कुछ न बोले; पुनि अति क्रोध कर आपस में कहने लगे, कि देखो इस ने क्या काम किया, जो रस में आय अनरस किया. कर्न बोला, कि यदुबंसियों की सदा से यह टेव है, कि जहां कहीं सुभ काज में जाते हैं, तहां उपाध ही करते हैं. सल्य ने कहा,

जात हीन अब हीं ये बढ़े, राज पाय माथे पर चढ़े.

इतनी बात के सुनते ही सब कौरव महा कोप कर अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले यों कह चढ़ दौड़े, कि देखैं वह कैसा बली है जो हमारे आगे से कन्या ले निकल जायगा, औ बीच बाट के संबू को जा घेरा. आगे दोनों ओर से शस्त्र चलने लगे; निदान कितनी एक बेर के लड़ने में जब संबू का सारथी मारा गया, औ वह नीचे उतरा, तब ये उसे घेर पकड़ कर बांध लाए; सभा के बीचों बीच खड़ा कर इन्हों ने उस से पूछा, कि अब तेरा पराक्रम कहां गया? यह बात सुन वह लजाय रहा. इस में नारद जी ने आय राजा दुर्योधन समेत सब कौरवों से कहा, कि यह संबू नाम श्री कृष्णचंद का पुत्र है, तुम इसे कुछ मत कहो, जो होना था सो हुआ, अभी इसके समाचार पाय दल साज आवेंगे श्री कृष्ण औ बलराम, जो कुछ कहना सुनना हो सो उन से कह सुन लीजो, लड़के से बात कहनी तुम्हें किसी भांति उचित नहीं, इस ने लड़क बुद्धि की तो की. महाराज! इतना बचन कह नारद जी वहां से बिदा हो, चले चले द्वारिका पुरी को गये, औ उग्रसेन राजा की सभा में जा खड़े रहे.

देखत सबै उठे सिर नाय, आसन दियौ ततक्षन लाय.

बैठते ही नारद जी बोले, कि महाराज! कौरवों ने संबू को बांध महा दुख दिया, औ देते हैं; जो इस समैं जाय उस की सुध लो तो लो, नहीं फिर संबू का बचना कठिन है.

गर्ब भयौ कौरव कौं भारी, लाज सकुच नहीं करी तेहारी.
बालक कों बांध्यौ उन ऐसें, शत्रु कौं बांधे कोऊ जैसें.

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति कोप कर यदुबंसियों को बुलायके कहा, कि तुम अभी सब हमारा कटक ले हस्तिनापुर पर चढ़ जाओ, औ कौरवों को मार संबू को छुड़ाय ले आओ. राजा की आज्ञा पाते ही जों सब दल चलने को उपस्थित हुआ, तों बलराम जी ने जाय राजा उग्रसेन से समझायकर कहा; कि महाराज! आप उन पर सेना न पठाइये, मुझे आज्ञा कीजे जो मैं जाय उन्हें उलहना दे संबू को छुड़ाय लाऊं; देखूं तिन्हों ने किस लिये संबू को पकड़ बांधा, इस बात का भेद बिन मेरे गये न खुलेगा.

इतनी बात के कहते ही राजा उग्रसेन ने बलराम जी को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दी; औ

बलदेव जी कितने ऐक बड़े बड़े पंडित ब्राह्मन औ नारद मुनि को साथ ले द्वारिका से चल, चले चले हस्तिनापुर पहुंचे. उस समय प्रभु ने नगर के बाहर ऐक बाड़ी में डेरा कर नारद जी से कहा, कि महाराज! हम यहां उतरे हैं, आप जाय कौरवों से हमारे आने के समाचार कहिये. प्रभु की आज्ञा पाय नारद जी ने नगर में जाय बलराम जी के आने के समाचार सुनाऐ.

सुनकै सावधान सब भऐ; आगे होय लेन तहां गऐ.
भीषम कर्न द्रोन मिल चले; लीने बसन पटंबर भले.
दुर्योधन यों कहिकै धायौ, मेरे गुरु संकर्षन आयौ.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज! सब कौरवों ने उस बाड़ी में जाय बलराम जी से भेंट कर भेंट दी, औ पाऔं पड़, हाथ जोड़, बहुत सी स्तुति की. आगे चोआ चंदन लगाय, फूलमाल पहराय, पाटंबर के पांवड़े बिछाय, बाजेगाजे से नगर में लिवालाऐ. पुनि षट रस भोजन करवाय, पास बैठ सब की कुशल क्षेम पूछ पूछा, कि महाराज! आप का आना यहां कैसे हुआ? कौरवों के मुख से यह बात निकलते ही बलराम जी बोले, कि हम राजा उग्रसेन के पठाऐ, संदेसा कहन तुम्हारे पास आऐ हैं. कौरव बोले कहो. बलदेव जी ने कहा, कि राजा जी ने कहा है कि तुम्हें हम से बिरोध करना उचित न था.

तुम हो बहुत सो बालक ऐक, कियौ युद्ध तज ज्ञान बिबेक.
महा अधर्म जानकै कियौ, लोक लाज तज सुत गह लियौ.
ऐसौ गर्व तुम्हें अब भयौ, समझ बूझ ताकौं दुख दयौ.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही कौरव महा कोपकर बोले, कि बलराम जी बस करो बस करो, अधिक बड़ाई उग्रसेन की मत करो; हम से यह बात सुनी नहीं जाती. चार दिन की बात है कि उग्रसेन को कोई जानता मानता न था; जब से हमारे यहां सगाई की, तभी से प्रभुता पाई; अब हमी से अभिमान की बात कह पठाई; उसे लाज नहीं आती जो द्वारिका में बैठा राज पाय, पिछली बात सब गंवाय, जो मन मानता है सो कहता है; वह दिन भूल गया, कि मथुरा में ग्वाल गूजरों के साथ रहता खाता था; जैसा हमने साथ खिलाय संबंध कर राज दिलवाया, तिस का फल हाथों हाथ पाया; जो किसी पूरे पर गुन करते, तो वह जन्म भर हमारा गुन मानता; किसी ने सच कहा है, कि ओछे की प्रीत बालू की भींत समान है.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले महाराज! ऐसे अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह, कर्न, द्रोन, भीषम, दुर्योधन, सल्य, आदि सब कौरव गर्व कर उठ उठ अपने घर गऐ; औ

बलराम जी उन की बातें सुन सुन हंसि हंसि वहां बैठे मन ही मन यों कहते रहे, कि इन को राज औ बल का गर्व भया है जो ऐसी ऐसी बातें करते हैं; नहीं तो ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र का ईस, जिसे निवावें सीस, तिस उग्रसेन की ये निंदा करैं, तौ मेरा नाम बलदेव जो सब कौरवों को नगर समेत गंगा में डबोऊं, नहीं तो नहीं.

महाराज! इतना कह बलदेव जी अति क्रोध कर सब कौरवों को नगर समेत हल से खैंच गंगा तीर पर ले गये, औ चाहैं कि डबोवैं, तोंहीं अति घबराय भय खाय सब कौरव आय, हाथ जोड़, सिर नाय, गिड़गिड़ाय, बिनती कर, बोले, कि महाराज! हमारा अपराध क्षमा कीजे, हम आप की सरन आये, अब बचाय लीजे, जो कहोगे सो करेंगे, सदा राजा उग्रसेन की आज्ञा में रहेंगे. राजा! इतनी बात के कहते ही बलराम जी का क्रोध शांत हुआ, औ जो हल से खैंच नगर गंगा तीर पर लाये थे, सो वहीं रक्खा; तिसी दिन से हस्तिनापुर गंगा तीर पर है, पहले वहां न था. आगे उन्हों ने संबू को छोड़ दिया, औ राजा दुर्योधन ने चचा भतीजों को मनाय, घर में ले जाय, मंगलाचार करवाय, बेद की बिध से संबू को कन्या दान दिया, औ उस के यौतुक में बहुत कुछ संकल्प किया.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने कहा, कि महाराज! ऐसे बलराम जी हस्तिनापुर जाय, कौरवों का गर्व गंवाय, भतीजे को छुड़ाय ब्याह लाये. उस काल सारी द्वारिका पुरी में आनंद हो गया; औ बलदेव जी ने हस्तिनापुर का सब समाचार ब्यौरे समेत समझाय राजा उग्रसेन के पास जाय कहा. इति

CHAPTER. LXIX.

श्री सुकदेव जी बोले की महाराज! एक समय नारद जी के मन में आई, कि श्री कृष्णचंद सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्री ले कैसे गृहस्थाश्रम करते हैं, सो चलकर देखा चाहिये. इतना बिचार चले चले द्वारिका पुरी में आये, तो नगर के बाहर क्या देखते हैं, कि कहीं बाड़ियों में नाना भांति के बड़े बड़े ऊंचे ऊंचे बृक्ष हरे फल फूलों से भरे खरे झूम रहे हैं; तिन पर कपोत, कीर, चातक, मोर, आदि पक्षी मन भावन बोलियां बैठे बोल रहे हैं; कहीं सुंदर सरोवरों में कंवल खिले हुए, तिन पर भौंरों के झुंड के झुंड गूंज रहे; तीर में हंस सारस समेत खग कुलाहल कर रहे हैं; कहीं फुलवाड़ियों में माली मीठे सुरों से गाय गाय ऊंचे नीचे नीर चढ़ाय, क्यारियों में ज[illegible] खैंच रहे हैं; कहीं इंदारे बावड़ियों पर रहंट परोहे चल रहे हैं; औ पनघट पर पनहारियों के ठट्ठ के ठट्ठ लगे हैं; तिन की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती, वह देखे ही बन आवै.

महाराज! यह शोभा बन उपबन की निरख हरष नारद जी पुरी में जाय देखें, तो अति सुंदर कंचन के मनिमय मंदिर जगमगाय रहे हैं; तिन पर ध्वजा पताका फहराय रही हैं; बार बार में तोरन बंदनवार बंधी हैं; द्वार द्वार पर केले के खंभ औ कंचन के कुंभ सपल्लव भरे धरे हैं; घर घर की जाली झरोखों मोखों से धूप का धुआं निकल स्याम घटा सा मंडलाय रहा है; उस के बीच बीच सोने के कलस कलसियां बिजली सी चमक रही हैं; घर घर पूजा पाठ होम यज्ञ दान हो रहा है; ठौर ठौर भजन सुमिरन गान कथा पुरान की चरचा चल रही है; जहां तहां यदुबंसी इंद्र की सी सभा किये बैठे हैं; औ सारे नगर में सुख छाय रहा है.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! नारद जी पुरी में जाते ही मगन हो कहने लगे, कि प्रथम किस मंदिर में जाऊं जो श्री कृष्णचंद को पाऊं. महाराज! मन हीं मन इतना कह नारद जी पहले श्री रुक्मिनी जी के मंदिर में गये; वहां श्री कृष्णचंद बिराजते थे, सो इन्हें देख उठ खड़े भये; रुक्मिनी जी जल की झारी भर लाईं; प्रभु ने पांव धोय आसन पर बैठाय, धूप दीप नैवेद्य धर, पूजा कर, हाथ जोड़, नारद जी से कहा,

जा घर चरन साध के परैं, ते नर सुख संपत अनुसरैं.
हम से कुटमी तारन हेतु, घर हि आय तुम दरसन देतु.

महाराज! प्रभु के मुख से इतना बचन निकलते ही, यह असीस दे नारद जी जंबावती के मंदिर में गये, कि जगदीस! तुम चिर थिर रहो 'श्री रुक्मिनी जी के सीस, तो देखा कि हरि सारपासे खेल रहे हैं. नारद जी को देखते ही जों प्रभु उठे, तों नारद जी आशीर्बाद दे उलटे फिरे. पुनि सतिभामा के यहां गये, तो देखा कि श्री कृष्णचंद बैठे तेल उबटन लगवाय रहे हैं; वहां से चुपचाप नारद जी फिर आये, इस लिये कि शास्त्र में लिखा है जो तेल लगाने के समैं न राजा प्रनाम करे, न ब्राह्मन असीस. आगे नारद जी कालिंदी के घर गये; वहां देखा कि हरि सो रहे हैं. महाराज! कालिंदी ने नारद जी को देखते ही हरि को पांव दाब जगाया; प्रभु जागते ही ऋषि के निकट जाय दंडवत कर, हाथ जोड़, बोले, कि साध के चरन तीरथ के जल समान हैं, जहां पड़े तहां पवित्र करते हैं. यह सुन वहां से भी असीस दे नारद जी चल खड़े हुए, औ मित्रबिंदा के धाम गये; तहां देखा कि ब्रह्म भोज हो रहा है, औ श्री कृष्ण परोसते हैं. नारद जी को देख प्रभु ने कहा, कि महाराज! जो कृपा कर आये हो तो आप भी प्रसाद ले हमें उच्छिष्ट दीजे, औ घर पवित्र कीजे. नारद जी ने कहा महाराज! मैं थोड़ा फिर आऊं, फिर आऊंगा, ब्राह्मनों को जिमा लीजे, पुनि ब्रह्म शेष आय मैं पाऊंगा. यों सुनाय नारद जी बिदा हो सत्या के ग्रेह पधारे; वहां

क्या देखते हैं, कि श्री बिहारी भक्त हितकारी आनंद से बैठे बिहार कर रहे हैं. यह चरित्र देख नारद जी उलटे पाओं फिरे; पुनि भद्रा के स्थान पर गये तो देखा कि हरि भोजन कर रहे हैं; वहां से फिरे तो लक्ष्मना के गेह पधारे, तो तहां देखा कि प्रभु स्नान कर रहे हैं.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने कहा कि महाराज! इसी भांति नारद मुनि जी सोलह सहस एक सौ आठ घर फिरे, पर बिन श्री कृष्ण कोई घर न देखा, जहां देखा तहां हरि को गृहस्थाश्रम का काज ही करते देखा; यह चरित्र लख,

नारद के मन अचरज एह, कृष्ण बिना नहीं कोऊ गेह.
जा घर जाउं तहां हरि प्यारी, ऐसी प्रभु लीला बिस्तारी.
सोलह सहस्र अठोतर सौ घर, तहां तहां सुंदरि संग गिरधर.
मगन होय ऋषि कहत बिचारी, जोग माया यदुनाथ तिहारी.
काहू सों नहीं जानी परै, कौन तिहारी माया तरै.

महाराज! जब नारद जी ने अचंभा कर कहे ये बैन, तब बोले प्रभु श्री कृष्णचंद सुख दैन, कि नारद! तू अपने मन में कुछ खेद मत करै, मेरी माया अति प्रबल है, औ सारे संसार में फैल रही है, यह मुझे ही मोहती है, तो दूसरे की क्या सामर्थ जो इस के हाथ से बचे, औ जगत के बीच आय इस में न रचे.

नारद सुन बिनवै सिर नाय, मो पर कृपा करौ यदुराय.

जो आप की भक्ति सदा मेरे चित में रहे, औ मेरा मन माया के बस होय बिषय की बासना न चहै. राजा! इतना कह नारद जी प्रभु से बिदा हो, दंडवत कर, बीन बजाते, गुन गाते, अपने स्थान को गये, औ श्री कृष्णचंद जी द्वारिका में लीला करते रहे. इति

CHAPTER. LXX.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! एक दिन श्री कृष्णचंद रात समैं श्री रुक्मिनी जी के साथ बिहार करते थे, औ श्री रुक्मिनी जी आनंद में मगन बैठीं प्रीतम का चंद्रमुख निरख अपने नयन चकोरों को सुख देती थीं, कि इस बीच रात बितीत भई; चिड़ियां चुहचुहाईं; अंबर में अरुनाई छाई; चकोर को बियोग हुआ; औ चकवा चकवियों को संजोग; कंवल बिकसे; कमोदनी कुम्हलाई; चंद्रमा छबि छीन भया; औ सूरज का तेज बढ़ा; सब लोग जागे, औ अपना अपना गृह काज करन लागे.

उस काल रुक्मिनी जी तो हरि के समीप से उठ, सोच संकोच लिये घर की टहल टकोर करने लगीं, औ श्री कृष्णचंद जी देह शुद्ध कर, हाथ मुंह धोय, स्नान कर, जप ध्यान पूजा तर्पन से निचिंत होय, ब्राह्मनों को नाना प्रकार के दान दे, नित्य कर्म से सुचित हो, बालभोग पाय, पान लौंग इलायची जायपत्री जायफल के साथ खाय, सुथरे बस्त्र आभूषन मंगाय पहन, शस्त्र लगाय, राजा उग्रसेन के पास गये; पुनि जुहार कर यदुबंसियों की सभा के बीच आय रत्न सिंहासन पर बिराजे.

महाराज! उसी समैं ऐक ब्राह्मन ने आय द्वारपालों से कहा, कि तुम श्री कृष्णचंद जी से जाकर कहो, कि ऐक ब्राह्मन आप के दरसन की अभिलाषा किये द्वार पर खड़ा है, जो प्रभु की आज्ञा पावे तो भीतर आवे. ब्राह्मन की बात सुन द्वारपाल ने भगवान से जा कहा, कि महाराज! ऐक ब्राह्मन आप के दरसन की अभिलाषा किये पौर पर खड़ा है, जो आज्ञा पावे तो आवे. हरि बोले, अभी लाव. प्रभु के मुख से बात निकलते ही, द्वारपाल हाथों हाथ ब्राह्मन को सनमुख ले गऐ. बिप्र को देखते ही श्री कृष्णचंद सिंहासन से उतर, दंडवत कर, आगू बढ़, हाथ पकड़, उसे मंदिर में ले गऐ, औ रत्न सिंहासन पर अपने पास बिठाय पूछने लगे, कि कहो देवता! आप का आना कहां से ऊआ, औ किस कार्य के हेतु पधारे? ब्राह्मन बोला, कृपा सिंधु दीन बंधु! मैं मगध देस से आया हूं, औ बीस सहस्र राजाओं का संदेसा लाया हूं. प्रभु बोले, सो क्या? ब्राह्मन ने कहा, महाराज! जिन बीस सहस्र राजाओं को जरासिंधु ने बल कर पकड़ हथकड़ी बेड़ी दे रक्खा है, तिन्हों ने मेरे हाथ आप को अति बिनती कर यह संदेसा कहला भेजा है. दीनानाथ! तुम्हारी सदा सर्वदा यह रीति है कि जब जब असुर तुम्हारे भक्तों को सताते हैं, तब तब तुम अवतार ले अपने भक्तों की रक्षा करते हो. नाथ! जैसे हिरनकस्यप से प्रहलाद को छुड़ाया, औ गज को ग्राह से, तैसे ही दया कर अब हमें इस महा दुष्ट के हाथ से छुड़ाइये, हम महा कष्ट में हैं, तुम बिन और किसी की सामर्थ नहीं जो इस महा बिपत से निकाले, औ हमारा उद्धार करे.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही प्रभु दयाल हो बोले कि हे देवता! तुम अब चिंता मत करो, तिन की चिंता मुझे है. इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मन संतोष कर श्री कृष्णचंद को असीस देने लगा. इस बीच नारद जी आ उपस्थित ऊऐ, प्रनाम कर श्री कृष्णचंद ने उन से पूछा, कि नारद जी! तुम सब ठौर जाते आते हो, कहो हमारे भाई युधिष्ठिर आदि पांचों पांडव इन दिनों कैसे हैं, औ क्या करते हैं? बऊत दिन से हम ने उन के कुछ समाचार नहीं पाऐ, इस से हमारा चित उन्हीं में लगा है. नारद जी बोले कि महाराज! मैं तिन्हीं के पास से आता हूं, वे तो कुशल क्षेम से, पर इन दिनों राजसू यज्ञ करने के लिये निपट भावित हो रहे हैं, औ घड़ी घड़ी यह

चाहते हैं, कि बिना श्री कृष्णचंद की सहायता के हमारा यज्ञ पूरा न होगा, इस से महाराज! मेरा कहा मानिये तो,

पहिले उन कौ यज्ञ संवारैे, पाछे असुर कहूं पग धारैे.

महाराज! इतनी बात नारद जी के मुख से सुनते ही प्रभु ने ऊधो जी को बुलायके कहा.

ऊधो तुम हो सखा हमारे, मन आंखन तें कबहु न न्यारे.
दुहूं ओर की भारी भीर, पहले कहां चलें कहो बीर.
उत राजा संकट में भारी, इत पांडव किये आस हमारी.
इत पंडनि मिल यज्ञ रचायौ, ऐसे कहि प्रभु बचन सुनायौ. इति

CHAPTER. LXXI.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! पहले तो श्री कृष्णचंद जी ने उस ब्राह्मन को इतना कह बिदा किया, जो राजाओं का संदेसा लाया था; कि देवता! तुम हमारी ओर से सब राजाओं से जाय कहो, कि तुम किसी बात की चिंता मत करो, हम बेग आय तुम्हें छुड़ाते हैं. महाराज! यह बात कह श्री कृष्णचंद ब्राह्मन को बिदा कर, ऊधो जी को साथ ले, राजा उग्रसेन सूरसेन की सभा में गये, औ इन्हों ने सब समाचार उन के आगे कहे; वे सुन चुप हो रहे. इस में ऊधो जी बोले कि महाराज! ये दोनों काज कीजे; पहले राजाओं को जरासिंधु से छुड़ा लीजे, पीछे चल कर यज्ञ संवारिये; क्योंकि राजसू यज्ञ का काम बिन राजा और कोई नहीं कर सकता; औ वहां बीस सहस्र नृप इकठे हैं, जिन्हें छुड़ाओगे तो वे सब गुन मान यज्ञ का काज बिन बुलाए जाकर करेंगे. महाराज! और कोई दसों दिस जीत आवेगा, तोभी इतने राजा इकठे न पावेगा; इस से अब उत्तम यही है कि हस्तिनापुर को चलिये, पांडवों से मिल मता कर जो काम करना हो सो करिये.

महाराज! इतना कह पुनि ऊधो जी बोले कि महाराज! राजा जरासिंधु बड़ा दाता औ गौ ब्राह्मन का मानने औ पूजने वाला है; जो कोई तिस से जाकर जो मंगता है सो पाता है; जाचक उस के यहां से बिमुख नहीं आता; वह झूठ नहीं बोलता, जिस से बचन बंध होता है, तिस से निबाहता है; औ दस सहस्र हाथी का बल रखता है, उस के बल की समान भीमसेन का बल है. नाथ! जो तुम वहां चलो तो भीमसेन को भी अपने साथ ले चलो, मेरी बुद्धि में आता है कि उस की मीच भीमसेन के हाथ है.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि राजा! जब ऊधो जी ने ये

बात कहीं, तभी श्री कृष्णचंद जी ने राजा उग्रसेन सूरसेन से बिदा हो सब यदुबंसियों से कहा, कि हमारा कटक साजो, हम हस्तिनापुर को चलेंगे. बात के सुनते ही सब यदुबंसी सेना साज ले आये, औ प्रभु भी आठों पटरानियों समेत कटक के साथ हो लिये. महाराज! जिस काल श्री कृष्णचंद कुटुंब सहित सब सेना ले धौंसा दे द्वारिका पुरी से हस्तिनापुर को चले, उस समय की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती; आगे हाथियों का कोठ; बायें दाहने रथ घोड़ों की ओट; बीच में रनवास, औ पीछे सब सेना साथ लिये, सब की रक्षा किये, श्री कृष्णचंद जी चले जाते थे; जहां डेरा होता था, तहां कै जोजन के बीच ऐक सुंदर सुहावना नगर बन जाता था; देस देस के नरेस भय खाय आय आय भेंट कर भेंट धरते थे, औ प्रभु तिन्हें भयातुर देख तिन का सब भांति समाधान करते थे.

निदान इसी धूमधाम से चले चले हरि सब समेत हस्तिनापुर के निकट पहुंचे; इस में किसी ने राजा युधिष्ठिर से जाय कहा, कि महाराज! कोइ न्टपति अति सेना ले बड़ी भीड़भाड़ से आप के देस पर चढ़ आया है, आप बेग उसे देखिये, नहीं तो उसे यहां पहुंचा जानिये. महाराज! इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने अति भय खाय, अपने नकुल सहदेव दोनों छोटे भाइयों को यह कह, प्रभु के सनमुख भेजा, कि तुम देखि आओ, कि कौन राजा चढ़ आता है. राजा की आज्ञा पाते ही,

सहदेव नकुल देख फिर आये, राजा कों ये बचन सुनाये.
प्रान नाथ आये हैं हरी, सुनि राजा चिंता परिहरी.

आगे अति आनंद कर राजा युधिष्ठिर ने भीम अर्जुन को बुलायके कहा, कि भाई! तुम चारों भाई आगू जाय श्री कृष्णचंद आनंदकंद को ले आओ. महाराज! राजा की आज्ञा पाय, औ प्रभु का आना सुन, वे चारों भाई अति प्रसन्न हो, भेंट पूजा की सब सामा औ बड़े बड़े पंडितों को साथ ले, बाजेगाजे से प्रभु को लेने चले. निदान अति आदर मान से मिल, बेद की बिधि से भेंट पूजा कर, ये चारों भाई श्री कृष्ण जी को सब समेत पाटंबर के पांवड़े डालते, चोआ चंदन गुलाब नीर छिड़कते, चांदी सोने के फूल बरसाते, धूप दीप नैवेद्य करते, बाजेगाजे से नगर में ले आये. राजा युधिष्ठिर ने प्रभु से मिल अति सुख माना, औ अपना जीतब सुफल जाना. आगे बाहर भीतर सब ने सब से मिल यथा योग्य परस्पर सनमान किया, औ नयनों को सुख दिया; घर बाहर सारे नगर में आनंद हो गया; औ श्री कृष्णचंद वहां रह सब को सुख देने लगे. इति

CHAPTER. LXXII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! ऐक दिन श्री कृष्णचंद, करुना सिंधु, दीन बंधु, भक्त

हितकारी, ऋषि मुनि ब्राह्मन क्षत्रियों की सभा में बैठे थे, कि राजा युधिष्ठिर ने आय अति गिड़गिड़ाय बिनती कर, हाथ जोड़, सिर नायके कहा, कि हे शिव बिरंच के ईस! तुम्हारा ध्यान करते हैं सदा सुर मुनि ऋषि जोगीस; तुम हो अलष अगोचर अभेद, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेद.

मुनि जोगेश्वर इक चित धावत, तिन के मन छिन कभू न आवत.
हम कौं घर हीं दरसन देत, मानत प्रेम भक्त के हेत.
जैसी मोहन लीला करै, काहू पै नहीं जाने परै.
माया में भुलयौ संसार, हम सों करत लोक ब्यौहार.
जो तुम कौं सुमिरत जगदीस, ताहि आपनौ जानत ईस.
अभिमानी तें हौ तुम दूर, सतबादी के जीवन मूर.

महाराज! इतना कह पुनि राजा युधिष्ठिर बोले, कि हे दीन दयाल! आप की दया से मेरे सब काम सिद्ध हुए, पर एक ही अभिलाषा रही. प्रभु बोले सो क्या? राजा ने कहा, कि महाराज! मेरा यही मनोरथ है कि राजसू यज्ञ कर आप को अर्पन करूं, तो भव सागर तरूं. इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्णचंद प्रसन्न हो बोले, कि राजा! यह तुम ने भला मनोरथ किया, इस में सुर नर मुनि ऋषि सब संतुष्ट होंगे; यह सब को भाता है, और इस का करना तुम्हें कुछ कठिन नहीं; क्योंकि तुम्हारे चारों भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, बड़े प्रतापी औ अति बली हैं; संसार में ऐसा अब कोई नहीं जो इन का साम्हना करै; पहले इन्हें भेजिये कि ये जाय दसों दिसा के राजाओं को जीत अपने बस कर आवें, पीछे आप निचिंताई से यज्ञ कीजे.

राजा! प्रभु के मुख से इतनी बात जों निकली, त्योंहीं राजा युधिष्ठिर ने अपने चारों भाइयों को बुलाय, कटक दे, चारों को चारों ओर भेज दिया; दक्षिन को सहदेव जी पधारे; पच्छिम को नकुल सिधारे; उत्तर को अर्जुन धाये; पूरब में भीमसेन जी आये. आगे कितने एक दिन के बीच, महाराज! वे चारों हरि प्रताप से सात दीप नौ खंड जीत, दसों दिसा के राजाओं को बस कर, अपने साथ ले आये. उस काल राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ श्री कृष्णचंद जी से कहा, कि महाराज! आप की सहायता से यह काम तो हुआ, अब क्या आज्ञा होती है? इस में ऊधो जी बोले, कि धर्मावतार! सब देस के नरेस तो आये; पर अब एक मगध देस का राजा जरासिंधु ही आप के बस का नहीं, और जब तक वह बस न होगा, तब तक यज्ञ भी करना सुफल न होगा. महाराज! जरासिंधु राजा जैद्रथ का बेटा महा बली बड़ा प्रतापी औ अति दानी धर्मात्मा है; हर किसी की सामर्थ नहीं जो उस का साम्हना करे. इस बात को सुन जों राजा युधिष्ठिर उदास हुए, तो

श्री कृष्णचंद बोले, कि महाराज! आप किसी बात की चिंता न कीजे, भाई भीम अर्जुन समेत हमें आज्ञा दीजे; कै तो बल छल कर हम उसे पकड़ लावें, कै मार आवें. इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने दोनों भाइयों को आज्ञा दी; तब हरि ने उन दोनों को अपने साथ ले मगध देस की बाट ली. आगे जाय पंथ में श्री कृष्ण जी ने अर्जुन औ भीम से कहा कि,

बिप्र रूप ह्वै पग धारिये, छल बल कर बैरी मारिये.

महाराज! इतनी बात कह श्री कृष्णचंद जी ने ब्राह्मन का भेष किया, उन के साथ भीम अर्जुन ने भी बिप्र भेष लिया; तीनों त्रिपुंड किये, पुस्तक कांख में लिये, अति उज्जल स्वरूप सुंदर रूप बन ठन कर ऐसे चले, कि जैसे तीनों गुन सत रज तम देह धरे जाते होंय, कै तीनों काल. निदान कितने एक दिनों में चले चले ये मगध देस में पहुंचे, औ दो पहर के समय राजा जरासिंधु की पौर पर जा खड़े हुए. इन का भेष देख पौरियों ने अपने राजा से जा कहा, कि महाराज! तीन ब्राह्मन अतिथि बड़े तेजस्वी महा पंडित अति ज्ञानी, कुछ कांक्षा किये द्वार पर खड़े हैं, हमें क्या आज्ञा होती है? महाराज! बात के सुनते ही राजा जरासिंधु उठ आया, औ इन तीनों को प्रनाम कर अति मान सनमान से घर में ले गया. आगे वह इन्हें सिंहासन पर बैठाय आप सनमुख हाथ जोड़ खड़ा हो, देख देख सोच सोच बोला.

जाचक जो पर द्वारे आवै, बड़ौ भूप सोऊ अतिथि कहावै.
बिप्र नहीं तुम जोधा बली, बात न कछू कपट की भली.
जौ ठग ठगनि रूप धर आवै, ठगि तो जाय भलौ न कहावै.
छिपै न क्षत्री क्रांति तिहारी, दीसत सूर बीर बल धारी.
तेजवंत तुम तीनों भाई, शिव बिरंच हरि से बर दाई.
मैं जान्यौ जिय कर निर्मान, कहो देव तुम आप बखान.
तुम्हरी इच्छा हो सो करैं, अपनी बाचा तें नहीं टरैं.
दानी मिथ्या कबहू न भाखै, धन तन सर्बसु कछू न राखै.
मांगौ सोई देहौं दान, सुत सुंदरि सर्वस्व परान.

महाराज! इस बात के सुनते ही श्री कृष्णचंद जी ने कहा, कि महाराज! किसी समैं राजा हरिचंद बड़ा दानी हो गया है, कि जिस की कीर्ति संसार में अब तक छाय रही है. सुनिये, एक समैं राजा हरिचंद के देस में काल पड़ा, औ अन्न बिन सब लोग मरने लगे, तब राजा ने अपना सर्बस बेच बेच सब को खिलाया. जब देस नगर धन गया, औ निर्धन हो राजा रहा, तब एक दिन

सांझ समैं यह तो कुटुंब सहित भूखा बैठा था, कि इस में बिस्वामित्र ने आय इन का सत देखने को यह बचन कहा; महाराज! मुझे धन दीजे, औ कन्या दान का फल लीजे. इस बचन के सुनते ही जो कुछ घर में था सो ला दिया; पुनि ऋषि ने कहा महाराज! मेरा काम इतने में न होगा. फिर राजा ने दास दासी बेच धन ला दिया, औ धन जन गंवाय निर्धन निर्जन हो स्त्री पुत्र को ले रहा. पुनि ऋषि ने कहा कि धर्म मूर्त्ति! इतने धन से मेरा काम न सरा, अब मैं किस के पास जाय मागूं, मुझे तो संसार में तुझ से अधिक धनवान धर्मात्मा दानी कोई नहीं दृष्ट आता; हां एक सुपच नाम चंडाल माया पात्र है, कहो तो तिस से जा धन मागूं; पर इस में भी लाज आती है, कि ऐसे दानी राजा को जाच उस से क्या जाचूं. महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा हरिचंद बिस्वामित्र को साथ ले उस चंडाल के घर गये, औ इन्हों ने तिस से कहा कि भाई! तू हमें एक बरष के लिये गहने धर, औ इन का मनोरथ पूरा कर. सुपच बोला,

कैसे टहल हमारी करि हो, रजस तामस मन तें हरि हो.
तुम नृप महा तेज बल धारी, नीच टहल है खरी हमारी.

महाराज! हमारे तो यही काम है कि मसान में जाय चौकी दें, औ जो मृतक आवे उस से कर लें, पुनि हमारे घर बार की चौकसी करें. तुम से यह हो सकै तो मैं रुपये दूं, औ तुम्हें बंधक रक्खूं. राजा ने कहा, अच्छा, मैं बरष भर तुम्हारी सेवा करूंगा, तुम इन्हें रुपये दो. महाराज! इतना बचन राजा के मुख से निकलते ही सुपच ने बिस्वामित्र को रुपये गिन दिये; वह ले अपने घर गया, औ राजा वहां रह उस की सेवा करने लगा. कितने एक दिन पीछे काल बस हो राजा हरिचंद का पुत्र रुहितास मर गया; उस मृतक को ले रानी मरघट में गई, और जौं चिता बनाय अग्नि संस्कार करने लगी, तौंहीं राजा ने आय कर मांगा.

रानी बिलख कहै दुख पाय, देखौ समझ हिये तुम राय.

यह तुम्हारा पुत्र रुहितास है, औ कर देने को मेरे पास और तो कुछ नहीं, एक यह चीर है जो पहरे खड़ी हूं. राजा ने कहा, मेरा इस में कुछ बस नहीं, मैं स्वामी के कार्य पर खड़ा हूं, औ स्वामी का काम न करूं तो मेरा सत जाय. महाराज! इस बात के सुनते ही रानी ने चीर उतारने को जौं आंचल पर हाथ डाला, तौं तीनों लोक कांप उठे; वौंहीं भगवान ने राजा रानी का सत देख पहले एक बिमान भेज दिया, औ पीछे से आय दरसन दे तीनों का उद्धार किया. महाराज! जब बिधाता ने रुहितास को जिवाय, राजा रानी को पुत्र सहित बिमान पर बैठाय, बैकुंठ जाने की आज्ञा की, तब राजा हरिचंद ने हाथ जोड़ भगवान से कहा, कि हे दीनबंधु, पतितपावन, दीन

दयाल! मैं सुपच बिना बैकुंठ धाम में कैसे जा करूं बिस्राम. इतना बचन सुन, औ राजा के मन का अभिप्राय जान, श्री भक्त हितकारी, करुना सिंधु, हरि ने पुरी समेत सुपच को भी राजा रानी औ कुंवर के साथ तारा.

यहां हरिचंद अमर पद पायौ, वहां जुगान जुग जस चलि आयौ.

महाराज! यह प्रसंग जुरासिंधु को सुनाय श्री कृष्नचंद जी ने कहा, कि महाराज! और सुनिये कि रन्तिदेव ने ऐसा तप किया, कि अठतालीस दिन बिन पानी रहा, औ जब जल पीने बैठा, तिसी समय कोई प्यासा आया; इस ने वह नीर आप न पी, उस तृषावंत को पिलाया; उस जल दान से उस ने मुक्ति पाई. पुनि राजा बलि ने अति दान किया, तो पाताल का राज लिया; औ अब तक उस का जस चला जाता है. फिर देखिये, कि उद्दाल मुनि छठे महीने अन्न खाते थे; ऐक समैं खाती बिरयां उन के यहां कोई अतिथि आया; उन्हों ने अपना भोजन आप न खाय भूखे को खिलाया, औ उस क्षुधा ही में मरे; निदान अन्न दान करने से बैकुंठ को गऐ चढ़ कर बिमान.

पुनि ऐक समय सब देवताओं को साथ ले राजा इंद्र ने जाय, दधीचि से कहा कि महाराज! हम वृतासुर के हाथ से अब बच नहीं सकते, जो आप अपना अस्थि हमें दीजे, तो उस के हाथ से बचें, नहीं तो बचना कठिन; क्योंकि वह बिन तुम्हारे हाड़ के आयुध किसी भांति न मारा जायगा. महाराज! इतनी बात के सुनते ही दधीचि ने शरीर गाय से चटवाय, जांघ का हाड़ निकाल दिया; देवताओं ने ले उस अस्थि का बज्र बनाया, औ दधीचि ने प्रान गंवाय बैकुंठ धाम पाया.

ऐसे दाता भये अपार, तिन कौ जस गावत संसार.

राजा! यों कह श्री कृष्नचंद जी ने जुरासिंधु से कहा कि महाराज! जैसे आगे और जुग में धरमात्मा दानी राजा हो गये हैं, तैसे अब इस काल में तुम हो; जों आगे उन्हों ने जाचकों की अभिलाषा पूरी की, तों तुम अब हमारी आस पुजाओ.

कहा है जाचक कहा न मांगई, दाता कहा न देय,
गृह सुत सुंदरि लोभ नहिं, तन सिर दे जस लेय.

इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही जुरासिंधु बोला, कि जाचक को दाता की पीर नहीं होती, तौभी दानी धीर अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता, इस में सुख पावै कै दुख. देखो हरि ने कपट रूप कर बावन बन, राजा बलि के पास जाय तीन पैंड पृथ्वी मांगी; उस समैं शुक्र ने बलि को चिताया, तौभी राजा ने अपना प्रन न छोड़ा.

देह समेत मही तिन दई, ताकी जग में कीरति भई.

जाचक बिष्णु कहा जस लीनौं, सर्बसु लै तौऊ हठ कीनौं.

इस से तुम पहले अपना नाम भेद कहो, तद जो तुम मांगोगे सो मैं दूंगा, मैं मिथ्या नहीं भाषता. श्री कृष्णचंद बोले, कि राजा! हम क्षत्री हैं, बासुदेव मेरा नाम है, तुम भली भांति हमें जानते हो; औ ये दोनों अर्जुन भीम हमारे फुफेरे भाई हैं; हम युद्ध करने को तुम्हारे पास आये हैं; हम से युद्ध कीजे, हम यही तुम से मांगने आये हैं, और कुछ नहीं मांगते. महाराज! यह बात श्री कृष्णचंद जी से सुनि जरासिंधु हंसकर बोला, कि मैं तुझ से क्या लड़ूं, तू मेरे सोंहीं से भाग चुका है; औ अर्जुन से भी न लड़ूंगा; क्योंकि यह बिदर्भ देस गया था करके नारी का भेष; रहा भीमसेन, कहो तो इस से लड़ूं, यह मेरी समान का है, इस से लड़ने में मुझे कुछ लाज नहीं.

पहले तुम सब भोजन करौ, पाछे मल्ल अखारे लरौ.
भोजन दै नृप बाहर आयौ, भीमसेन तहां बोल पठायौ.
अपनी गदा ताहि तिन दई, गदा दूसरी आपुन लई.
जहां सभा मंडल बन्यौ, बैठे जाय मुरारि;
जुरसिंधु अरु भीम तहां, भये ठाढ़े इक बारि.
टोपा सीस काछनी काछें, बने रूप नटुवा के आछें.

महाराज! जिस समय दोनों बीर अखाड़े में खम ठोक, गदा तान, धज पलट, झूमकर सनमुख आये, उस काल ऐसे जनाये, कि मानों दो मतंग मतवाले उठ धाये. आगे जरासिंधु ने भीमसेन से कहा, कि पहले गदा तू चला, क्योंकि तू ब्राह्मन का भेष ले मेरी पौरि पै आया था, इस से मैं पहले प्रहार तुझ पर न करूंगा. यह बात सुन भीमसेन बोले, कि राजा! हम से तुम से धर्म युद्ध है, इस में यह ज्ञान न चाहिये, जिस का जी चाहे सो पहले शस्त्र करे. महाराज! उन दोनों बीरों ने परस्पर ये बातें कर एक साथ ही गदा चलाई, औ युद्ध करने लगे.

ताकत घात आप आपनी, चोट करत बाईं दाहनी.
अंग बचाय उछरि पग धरैं, झरपहिं गदा गदा सों लरैं.
खटपट चोट गदा पटकारी, लागत शब्द कुलाहल भारी.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! इसी भांति वे दोनों बली दिन भर तो धर्म युद्ध करते, औ सांझ को घर आय एक साथ भोजन कर विश्राम. ऐसे नित लड़ते लड़ते सत्ताईस दिन भये, तब एक दिवस उन दोनों के लड़ने के समय श्री कृष्णचंद जी ने

मनहीं मन बिचार, कि यह यों न मारा जायगा; क्योंकि जब यह जन्मा था, तब दो फांक हो जन्मा था; उस समैं जरा राक्षसी ने आय, जुरासिंधु का मुंह औ नाक मूंदी, तब दोनों फांक मिल गईं. यह समाचार सुनि उस के पिता जैद्रथ ने जोतिषियों को बुलायके पूछा, कि कहो इस लड़के का नाम क्या होगा, औ कैसा होगा? जोतिषियों ने कहा कि महाराज! इस का नाम जुरासिंधु हुआ, औ यह बड़ा प्रतापी औ अजर अमर होगा; जब तक इस की संधि न फटेगी तब तक यह किसी से न मारा जायगा. इतना कह जोतिषी बिदा हो चले गये. महाराज! यह बात श्री कृष्ण जी ने मन मन सोच, औ अपना बल दे, भीमसेन को तिनका चीर सैन से जताया, कि इसे इस रीति से चीर डालो. प्रभु के चिताते ही भीमसेन ने जुरासिंधु को पकड़कर दे मारा, औ एक जांघ पर पांव दे दूसरा पांव हाथ से पकड़ यों चीर डाला कि जैसे कोई दातन चीर डाले. जुरासिंधु के मरते हीं सुर नर गंधर्ब ढोल दमामे भेर बजाय बजाय, फूल बरसाय बरसाय, जैजैकार करने लगे, औ दुख दंद जाय सारे नगर में आनंद हो गया. उसी बिरियां जुरासिंधु की नारी रोती पीटती आ श्री कृष्णचंद जी के सनमुख खड़ी हो, हाथ जोड़ बोली, कि धन्य है धन्य है नाथ तुम्हें, जो ऐसा काम किया, कि जिस ने सरबस दिया; तुम ने उस का प्रान लिया. जो जन तुम्हें सुत बित औ समर्पै देह, उस से तुम करते हो ऐसा ही नेह.

कपट रूप कर छल बल कियौ, जगत आय तुम यह जस लियौ.

महाराज! जुरासिंधु की रानी ने जब करुना कर करुनानिधान के आगे हाथ जोड़ बिनती कर यों कहा, तब प्रभु ने दयाल हो पहले जुरासिंधु की क्रिया की, पीछे उस के सुत सहदेव को बुलाय, राज तिलक दे, सिंहासन पर बिठायके कहा, कि पुत्र! नीति सहित राज कीजो, औ ऋषि, मुनि, गौ, ब्राह्मन, प्रजा की रक्षा. इति

CHAPTER. LXXIV.

श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! राजपाट पर बैठाय समझाय, श्री कृष्णचंद जी ने सहदेव से कहा, कि राजा! अब तुम जाय उन राजाओं को ले आओ, जिन्हें तुम्हारे पिता ने पहाड़ की कंदरा में मूंद रक्खा है. इतना बचन प्रभु के मुख से सुनते ही, जुरासिंधु का पुत्र सहदेव, बहुत अच्छा कर कंदरा के निकट जाय, उस के मुख से सिला उठाय, आठ सौ बीस सहस्र राजाओं को निकाल, हरि के सनमुख ले आया. आते ही हथकड़ियां बेड़ियां पहने, गले में सांकल लोहे की डाले, नख केस बढ़ाये, तन छीन, मन मलीन, मैले भेष, सब राजा प्रभु के सनमुख पांति पांति खड़े हो,

हाथ जोड़, बिनती कर बोले, हे कृपा सिंधु, दीन बंधु! आप ने भले समय आय हमारी सुध ली, नहीं तो सब मर चुके थे; तुम्हारा दरसन पाया, हमारे जी में जी आया, पिछला दुख सब गंवाया.

महाराज! इस बात के सुनते ही कृपा सागर श्री कृष्णचंद ने जों उन पर दृष्ट की, तों बात की बात में सहदेव उन को ले जाय, हथकड़ी बेड़ी कड़ी कटवाय, छौर करवाय, न्हिलवाय धुलवाय, षट रस भोजन खिलाय, वस्त्र आभूषन पहराय, शस्त्र अस्त्र बंधवाय, पुनि हरि के सोहीं लिवाय लाया. उस काल श्री कृष्णचंद जी ने उन्हें चतुर्भुज हो, संख चक्र गदा पद्म धारन कर, दरसन दिया. प्रभु का स्वरूप भूप देखते ही हाथ जोड़ बोले, नाथ! तुम संसार के कठिन बंधन से जीव को छुड़ाते हो, तुम्हें जरासिंधु की बंध से हमें छुड़ाना क्या कठिन था; जैसे आप ने कृपा कर हमें इस कठिन बंधन से छुड़ाया, तैसे ही अब हमें गृह रूप कूप से निकाल, काम क्रोध लोभ मोह से छुड़ाइये, जो हम एकांत बैठ आप का ध्यान करैं, औ भव सागर को तरैं. श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! जब सब राजाओं ने ऐसे ज्ञान वैराग्य भरे बचन कहे, तब श्री कृष्णचंद जी प्रसन्न हो बोले, कि सुनो, जिन के मन में मेरी भक्ति है, वे निःसंदेह भक्ति मुक्ति पावेंगे; बंध मोक्ष मन ही का कारन है, जिस का मन स्थिर है, तिन्हें घर औ बन समान है; तुम और किसी बात की चिंता मत करो, आनंद से घर में बैठ नीति सहित राज करो, प्रजा को पालो, गौ ब्राह्मन की सेवा में रहो, झूठ मत भाषो, काम क्रोध लोभ अभिमान तजो, भाव भक्ति से हरि को भजो, तुम निःसंदेह परम पद पाओगे; संसार में आय जिस ने अभिमान किया, वह बहुत न जिया; देखो अभिमान ने किसे किसे न खो दिया.

सहस्रबाहु अति बली बखान्यौ, परसुराम ताकौ बल भान्यौ
बैनु भूप रावन हो भयौ, गर्ब आपने सोऊ गयौ.
भौमासुर बानासुर कंस, भए गर्ब तें ते बिध्वंस.
श्रीमद गर्ब करो जिन कोय, त्यागै गर्ब सो निर्भय होय.

इतना कह श्री कृष्णचंद जी ने सब राजाओं से कहा, कि अब तुम अपने घर जाओ, कुटुंब से मिल अपना राजपाठ संभाल, हमारे न पहुंचते न पहुंचते हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर के यहां राजसू यज्ञ में शीघ्र आओ. महाराज! इतना बचन श्री कृष्णचंद जी के मुख से निकलते ही, सहदेव ने सब राजाओं के जाने का सामान जितना चाहिये, तितना बात की बात में ला उपस्थित किया; वे ले प्रभु से बिदा हो अपने अपने देशों को गये; औ श्री कृष्णचंद जी भी सहदेव को साथ ले, भीम अर्जुन सहित वहां से चल, चले चले आनंद मंगल से हस्तिनापुर आये. आगे प्रभु ने राजा

युधिष्ठिर के पास आय, जरासिंधु के मारने के समाचार और सब राजाओं के छुड़ाने के ब्यौरे समेत कह सुनाये.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! श्री कृष्णचंद आनंदकंद जी के हस्तिनापुर पहुंचते पहुंचते ही वे सब राजा भी अपनी अपनी सेना ले भेंट सहित आन पहुंचे, औ राजा युधिष्ठिर से भेंट कर भेंट दे श्री कृष्णचंद जी की आज्ञा ले हस्तिनापुर के चारों ओर जा उतरे, औ यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए. इति

CHAPTER. LXXV.

श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! जैसे यज्ञ राजा युधिष्ठिर ने किया औ सिसुपाल मारा गया, तैसे मैं सब कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनो. बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के जाते ही, चारों ओर के और जितने राजा थे, क्या सूर्यबंसी औ क्या चंद्रबंसी, तितने सब आय हस्तिनापुर में उपस्थित हुए. उस समय श्री कृष्णचंद औ राजा युधिष्ठिर ने मिलकर सब राजाओं का सब भांति शिष्टाचार कर समाधान किया, औ हरएक को एक एक काम यज्ञ का सोंपा. आगे श्री कृष्णचंद जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि महाराज! भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव सहित हम पांचो भाई तो सब राजाओं को साथ ले ऊपर की टहल करें, और आप ऋषि मुनि ब्राह्मनों को बुलाय यज्ञ का आरंभ कीजे. महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने सब ऋषि मुनि ब्राह्मनों को बुलाकर पूछा, कि महाराजो! जो जो वस्तु यज्ञ में चाहिये, सो सो आज्ञा कीजे. महाराज! इस बात के कहते ही ऋषि मुनि ब्राह्मनों ने ग्रंथ देख देख, यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिख दी, औ राजा ने वोंही मंगवाय उन के आगे धरवा दी; ऋषि मुनि ब्राह्मनों ने मिल यज्ञ की बेदी रची; चारों वेद के सब ऋषि मुनि ब्राह्मन बेदी के बीच आसन बिछाय बिछाय जा बैठे; पुनि सुच होय स्त्री सहित गंठजोड़ा बांध राजा युधिष्ठिर भी आय बैठे; औ द्रोनाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, सिसुपाल, आदि जितने योधा औ बड़े बड़े राजा थे, वे भी आन बैठे; ब्राह्मनों ने स्वस्ति बाचन कर गणेश पुजवाय, कलस स्थापन कर, गृह स्थान किया; राजा ने भरद्वाज, गौतम, बशिष्ट, बिस्वामित्र, वामदेव, परासर, व्यास, कस्यप, आदि बड़े बड़े ऋषि मुनि ब्राह्मनों का बरन किया, औ तिन्हों ने वेद मंत्र पढ़ पढ़ सब देवताओं का आवाहन किया, औ राजा से यज्ञ का संकल्प करवाय होम का आरंभ.

महाराज! मंत्र पढ़ पढ़ ऋषि मुनि ब्राह्मन आहुत देने लगे, औ देवता प्रत्यक्ष हाथ बढ़ाय बढ़ाय लेने; उस समय ब्राह्मन वेद पाठ करते थे, औ सब राजा होमने की सामग्री ला ला देते थे,

औ राजा युधिष्ठिर होमते थे, कि इस में निर्दंद यज्ञ पूरन ऊआ, औ राजा ने पूर्नाऊति दी. उस काल सुर नर मुनि सब राजा को धन्य धन्य कहने लगे, औ यक्ष गंधर्व किन्नर बाजन बजाय बजाय, जस गाय गाय, फूल बरसावने. इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! यज्ञ से निचिंत हो राजा युधिष्ठिर ने सहदेव जी को बुलायके पूछा,

पहले पूजा काकी कीजे, अक्षत तिलक कौन कौं दीजे.
कौन बड़ौ देवन कौं ईस, ताहि पूज हम नावें सीस.

सहदेव जी बोले कि महाराज! सब देवों के देव हैं बासुदेव, कोई नहीं जानता इनका भेव; ये हैं ब्रह्मा रुद्र इंद्र के ईस, इन्हीं को पहले पूज नवाइये सीस; जैसे तरव की जड़ में जल देने से सब शाखा हरी होती हैं, तैसे हरि की पूजा करने से सब देवता संतुष्ट होते हैं; यही जगत के करता हैं, औ यही उपजाते पालते मारते हैं; इन की लीला है अनंत, कोई नहीं जानता इनका अंत; येई हैं प्रभु अलख अगोचर अविनासी, इन्हीं के चरन कंवल सदा सेवती है कमला भई दासी; भक्तों के हेतु बार बार लेते हैं अवतार, तनु धर करते हैं लोक व्यौहार.

बंधु कहत घर बैठे आवें, अपनी माया मांहि भुलावें.
महा मोह हम प्रेम भुलाने, ईश्वर कौं भ्राता कर जानें.
इनते बड़ौ न दीसे कोई, पूजा प्रथम इन्हीं की होई.

महाराज! इस बात के सुनते ही सब ऋषि मुनि औ राजा बोल उठे, कि राजा! सहदेव जी ने सत्य कहा, प्रथम पूजन जोग हरि ही हैं. तब तो राजा युधिष्ठिर ने श्री कृष्णचंद जी को सिंहासन पर बिठाय, आठौं पटरानियों समेत, चंदन अक्षत पुष्प धूप दीप नैवेद्य कर पूजा, पुनि सब देवताओं ऋषियों मुनियों ब्राह्मनों और राजाओं की पूजा की; रंग रंग के जोड़े पहनाए; चंदन केसर की खौड़ें कीं; फूलों के हार पहराए; सुगंध लगाय यथा योग राजा ने सब की मनुहार की. श्री सुकदेव जी बोले कि राजा!

हरि पूजत सब कौं सुख भयौ, सिसुपाल कौं सीस भू नयौ.

कितनी एक बेर तक तो वह सिर झुकाए मन ही मन कुछ सोच बिचार करता रहा; निदान काल बस हो अति क्रोध कर सिंहासन से उतर सभा के बीच निःसंकोच निडर हो बोला, कि इस सभा में धृतराष्ट्र, दुर्योधन, भीषम, कर्न, द्रोनाचार्य आदि सब बड़े बड़े ज्ञानी मानी हैं, पर इस समय सब की गति मति मारी गई, बड़े बड़े मुनीश बैठे रहे, औ नंद गोप के सुत की पूजा भई, औ कोई

कुछ न बोला, जिस ने ब्रज में जन्म ले ग्वाल बालों की जूठी छाक खाई, तिसी की इस सभा में भई प्रभुताइ बड़ाई.

नाहिं बड़ी सब कहत अचेत, सुरपति कौ बल का गहि देत.

जिन्ने गोपी औ ग्वालनों से नेह किया, इस सभा ने तिसे ही सब से बड़ा साध बनाय दिया; जिस ने दूध दही मही, माखन घर घर चुराय खाया, उसी का जस सब ने मिल गाया; बाट घाट में जिन्ने लिया दान, तिसी का यहां ऊआ सनमान; पर नारी से जिस ने छल बल कर भोग किया, सब ने मना कर उसी को पहले तिलक दिया; ब्रज में से इंद्र की पूजा जिस ने उठाई, औ पर्वत की पूजा ठहराई, पुनि पूजा की सब सामग्री गिर के निकट लिवाय ले जाय मिस कर आप ही खाई, तो भी उसे लाज न आई; जिस की जात पांत औ मात पिता कुल धर्म का नहीं ठिकाना, तिसी को अलख अबिनासी कर सब ने माना.

इतनी कथा सुनाय श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! इसी भांति से काल बस होय राजा सिसुपाल अनेक अनेक बुरी बातें श्री कृष्णचंद जी को कहता था, औ श्री कृष्णचंद जी सभा के बीच सिंहासन पर बैठे, सुन सुन एक एक बात पर एक एक लकीर खैंचते थे; इस बीच भीष्म, कर्न, द्रोन, औ बड़े बड़े राजा हरि निंदा सुन अति क्रोध कर बोले, कि अरे मूर्ख! तू सभा में बैठा हमारे सनमुख प्रभु की निंदा करता है, रे चंडाल! चुप रह, नहीं अभी पछाड़ मार डालते हैं. महाराज! यह कह शस्त्र ले ले सब राजा सिसुपाल के मारने को उठ धाये. उस समय श्री कृष्णचंद आनंदकंद ने सब को रोककर कहा, कि तुम इस पर शस्त्र मत करो, खड़े खड़े देखो, यह आप से आपही मारा जाता है, मैं इस के सौ अपराध सहूंगा, क्योंकि मैंने बचन हारा है, सौ से बढ़ती न सहूंगा, इसी लिये मैं रेखा काढ़ता जाता हूं.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही सब ने हाथ जोड़ श्री कृष्णचंद से पूछा, कि कृपानाथ! इस का क्या भेद है जो आप इस के सौ अपराध क्षमा करियेगा, सो कृपा कर हमें समझाइये, जो हमारे मन का संदेह जाय. प्रभु बोले, कि जिस समय यह जन्मा था, तिस समय इस के तीन नेत्र औ चार भुजा थीं. यह समाचार पाय इस के पिता राजा दमोघोष ने जोतिषियों औ बड़े बड़े पंडितों को बुलायके पूछा, कि यह लड़का कैसा ऊआ, इस का बिचार कर मुझे उत्तर दो. राजा की बात सुनते ही पंडित औ जोतिषियों ने शास्त्र बिचारके कहा, कि महाराज! यह बड़ा बली औ प्रतापी होगा, और यह भी हमारे बिचार में आता है कि जिस के मिलने से इस की एक आंख औ दो बांह गिर पड़ेंगीं, यह उसी के हाथ मारा जायगा. इतना सुन इस की मा महादेवी, सूरसेन की

बेटी, बसुदेव की बहन, हमारी फुफी, अति उदास भई, औ आठ पहर पुत्र ही की चिंता में रहने लगी.

किजने एक दिन पीछे एक समैं पुत्र को लिये पिता के घर द्वारिका में आई, औ इसे सब से मिलाया. जब यह मुझ से मिला, औ इस की एक आंख औ दो बांह गिर पड़ी, तब फुफी ने मुझे बचन बंध करके कहा, कि इस की मीच तुम्हारे हाथ है, तुम इसे मत मारियो, मैं यह भीख तुम से मांगती हूं. मैं ने कहा, अच्छा, सौ अपराध हम इस के न गिनेंगे; इस उपरांत अपराध करेगा तो हनेंगे. हम से यह बचन ले फुफू सब से बिदा हो, इतना कह, पुत्र सहित अपने घर गई, कि यह सौ अपराध क्यौं करेगा, जो कृष्ण के हाथ मरेगा.

महाराज! इतनी कथा सुनाय श्री कृष्ण जी ने सब राजाओं के मन का भ्रम मिटाय, उन लकीरों को गिना, जो एक एक अपराध पर खैंची थीं, गिनते ही सौ से बढ़ती ऊई; तभी प्रभु ने सुदरसन चक्र को आज्ञा दी, उस ने झट सिसुपाल का सिर काट डाला. उस के धड़ से जो जोति निकली, सो एक बार तो आकाश को धाई, फिर आय सब के देखते श्री कृष्णचंद के मुख में समाई. यह चरित्र देख सुर नर मुनि जैजैकार करने लगे, औ पुष्प बरसावने; उस काल श्री मुरारी भक्त हितकारी ने उसे तीसरी मुक्ति दी औ उस की क्रिया की.

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा कि महाराज! तीसरी मुक्ति प्रभु ने किस भांति दी, सो मुझे समझायके कहिये. शुकदेव जी बोले कि राजा! एक बार यह हिरनकस्यप ऊआ, तब प्रभु ने नृसिंह अवतार ले तारा; दूसरी बेर रावन भया, तो हरि ने रामावतार ले इस का उद्धार किया; अब तीसरी बिरियां यह है, इसी से तीसरी मुक्ति भई. इतना सुन राजा ने मुनि से कहा कि महाराज! अब आगे कथा कहिये. श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! यज्ञ के हो चुकते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को स्त्री सहित पहराय, ब्राह्मनों को अनगिनत दान दिया; देने का काम यज्ञ में राजा दुर्योधन को था, तिस ने द्वेश कर एक की ठौर अनेक दिये, इस में उस का जस ऊआ, तोभी वह प्रसन्न न ऊआ.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी नें राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! यज्ञ के पूर्ने होते ही श्री कृष्ण जी राजा युधिष्ठिर से बिदा हो, सब सेना ले, कुटुंब सहित, हस्तिनापुर से चले चले द्वारिका पुरी पधारे, प्रभु के पऊंते ही घर घर मंगलाचार होने लगा, औ सारे नगर में आनंद हो गया. इति

CHAPTER. LXXVI.

राजा परीक्षित बोले कि महाराज! राजसू यज्ञ होने से सब कोई प्रसन्न ऊआ, एक दुर्योधन अप्रसन्न ऊआ, इस का कारन क्या है सो तुम मुझे समझायके कहो, जो मेरे मन का भ्रम जाय. श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! तुम्हारे पितामह बड़े ज्ञानी थे. जिन्हों ने यज्ञ में जिसे जैसा देखा, तिसे तैसा काम दिया, भीम को भोजन करवाने का अधिकारी किया; पूजा पर सहदेव को रक्खा; धन लाने को नकुल रहे; सेवा करने पर अर्जुन ठहरे; श्री कृष्णचंद जी ने पांव धोने औा जूठी पत्तल उठाने का काम लिया; दुर्योधन को धन बांटने का कार्य दिया; और सब जितने राजा थे तिन्हों ने एक एक काज बांट लिया. महाराज! सब ता निःकपट यज्ञ की टहल करते थे, पर एक राजा दुर्योधन ही कपट सहित काम करता था, इस से वह एक की ठैार अनेक उठाता था. निज मन में यह बात ठानके, कि इन का भंडार टूटे तो अप्रतिष्ठा होय; पर भगवत कृपा से अप्रतिष्ठा न हो और जस होता था, इस लिये वह अप्रसन्न था, और वह यह भी न जानता था कि मेरे हाथ में चक्र है, एक रुपया दूंगा ता चार इकठे होंगे.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! अब आगे कथा सुनिये, श्री कृष्णचंद जी के पधारते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को खिलाय पिलाय, पहराय, अति शिष्टाचार कर, बिदा किया; वे दल साज साज अपने अपने देस को सिधारे. आगे राजा युधिष्ठिर पांडव को कैारवों को ले, गंगा स्नान को बाजे गाजे से गये; तीर पर जाय दंडवत कर रज लगाय आचमन कर स्त्री सहित नीर में पैठे; उन के साथ सब ने स्नान किया. पुनि न्हाय धोय संध्या पूजन से निचिंत होय, बस्त्र आभूषन पहन, सब को साथ लिये, राजा युधिष्ठिर कहां आते हैं, कि जहां मय दैत्य ने मंदिर अति सुंदर सुबर्न के रतन जटित बनाऐ थे. महाराज! वहां जाय राजा युधिष्ठिर सिंहासन पर बिराजे; उस काल गंधर्व गुन गाते थे; चारन बंदी जन जस बखानते थे; सभा के बीच पातर नृत्य करती थीं; घर बाहर में मंगली लोग गाय बजाय मंगलाचार करते थे; और राजा युधिष्ठिर की सभा इंद्र की सी सभा हो रही थी. इस बीच राजा युधिष्ठिर के आने के समाचार पाय, राजा दुर्योधन भी कपट स्नेह किये वहां मिलने को बड़ी धूमधाम से आया.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! वहां मय ने चैाक के बीच ऐसा काम किया था, कि जो कोई जाता था तिसे थल में जल का भ्रम होता था, औा जल में थल का. महाराज! जों राजा दुर्योधन मंदिर में पैठा, तों उस थल देख जल का भ्रम ऊआ; उस ने वस्त्र समेट उठाय लिये, पुनि आगे बढ़ जल देख उसे थल का धोखा ऊआ; जों पांव बढ़ाया,

तों तिस के कपड़े भींगे. यह चरित्र देख सब सभा के लोग खिलखिला उठे; राजा युधिष्ठिर ने हंसी को ऐक मुंह फेर लिया. महाराज! सब के हंस पड़ते ही राजा दुर्योधन अति लज्जित हो महा क्रोध कर उलटा फिर गया, सभा में बैठ कहने लगा, कि कृष्ण का बल पाय युधिष्ठिर को अति अभिमान हुआ है, आज सभा में बैठ मेरी हांसी की, इस का पलटा मैं लूं, औ उस का गर्ब तोड़ूं तो मेरा नाम दुर्योधन, नहीं तो नहीं. इति

CHAPTER. LXXVII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जिस समय श्री कृष्णचंद औ बलराम जी हस्तिनापुर में थे, तिसी समैं सालव नाम दैत्य सिसुपाल का साथी, जो रुक्मिनी के ब्याह में श्री कृष्णचंद जी के हाथ की मार खाय भागा था, सो मन ही मन इतना कह लगा महादेव जी की तपस्या करने, कि अब मैं अपना बैर यदुबंसियों से लूंगा.

इंद्री जीत सबै बस कीनी, भूख प्यास सब ऋतु सह लीनी.
ऐसी बिधि तप लाग्यौ करन, सुमिरै महादेव के चरन.
नित उठ मुठी रेत लै खाय, करै कठिन तप शिव मन लाय.
बरष ऐक ऐसी बिधि गयौ, तब हीं महादेव बर दयौ.

कि आज से तू अजर अमर हुआ, औ ऐक रथ माया का तुझे मय दैत्य बना देगा, तू जहां जाने चाहेगा, वह तुझे तहां ले जायगा, बिमान की भांति त्रिलोकी में उसे मेरे बर से सब ठौर जाने की सामर्थ होगी.

महाराज! सदाशिव जी ने जों बर दिया, तों ऐक रथ आय इस के सनमुख खड़ा हुआ. यह शिव जी को प्रनाम कर रथ पर चढ़ द्वारिका पुरी को धरधमका; वहां जाय नगर निवासियों को अनेक अनेक भांति की पीड़ा उपजाने लगा; कभी अग्नि बरसाता था, कभी जल; कभी बृक्ष उखाड़ नगर पर फैंकता था, कभी पहाड़; उस के डर से सब नगर निवासी अति भयमान हो भाग राजा उग्रसेन के पास जा पुकारे, कि महाराज की दुहाई! दैत्य ने आय नगर में अति धूम मचाई, जो इसी भांति उपाध करैगा तो कोई जीता न रहैगा. महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने प्रद्युम्न जी औ संबू को बुलायके कहा, कि देखो हरि का पीछा ताक यह असुर आया है प्रजा को दुख देने; तुम इस का कुछ उपाय करो. राजा की आज्ञा पाय, प्रद्युम्न जी सब

कटक ले रथ पर बैठ, नगर के बाहर लड़ने को जा उपस्थित ऊए, औ संबू को भयातुर देख बोले, कि तुम किसी बात की चिंता मत करो, मैं हरि प्रताप से इस असुर को बात की बात में मार लेता हूं. इतना बचन कह प्रद्युम्न जी सेना ले शस्त्र पकड़ जों उस के सनमुख ऊए, तों उस ने ऐसी माया की, कि दिन की महा अंधेरी रात हो गई. प्रद्युम्न जी ने वोंहीं तेज बान चलाय यों महा अंधकार को दूर किया, कि जौं सूरज का तेज कुहासे को दूर करै. पुनि कई एक बान उन्हों ने ऐसे मारे, कि उस का रथ अस्तव्यस्त हो गया, औ वह घबराकर कभी भाग जाता था, कभी आय अनेक अनेक राक्षसी माया उपजाय उपजाय लड़ता था, औ प्रभु की प्रजा को अति दुख देता था.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! दोनों ओर से महा युद्ध होता ही था, कि इस बीच एकाएकी आय, सालव दैत्य के मंत्री दुबिद ने प्रद्युम्न जी की छाती में एक गदा ऐसी मारी, कि ये मूर्छा खाय गिरे; इन के गिरते ही वह किलकारी मारके पुकारा, कि मैं ने श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को मारा. महाराज! यादव तो राक्षसों से महा युद्ध कर रहे थे, उसी समय प्रद्युम्न जी को मूर्छित देख दारुक सारथी का बेटा रथ में डाल रन से ले भागा, औ नगर में ले आया; चैतन्य होते ही प्रद्युम्न जी ने अति क्रोध कर सूत से कहा,

ऐसी नाहिं उचित हो तोहि, जान अचेत भजावै मोहि.
रन तजकै तू ल्यायौ धाम, यह तो नहीं सूर कौ काम.
यदु कुल में ऐसौ नहीं कोय, तजकै खेत जो भाग्यौ होय.

क्या तैं ने कहीं मुझे भागते देखा था, जो तू आज मुझे रन से भगाय लाया; यह बात जो सुनेगा, सो मेरी हांसी औ निंदा करेगा; तैं ने यह काम भला न किया, जो बिन काम कलंक का टीका लगा दिया. महाराज! इतनी बात के सुनते ही सारथी रथ से उतर, सनमुख खड़ा हो, हाथ जोड़, सिर नाय बोला, कि हे प्रभु! तुम सब नीति जानते हो, ऐसा संसार में कोई धर्म नहीं जिसे तुम नहीं जानते; कहा है,

रथी सूर जो घायल परै, ताकौं सारथी लै नीकरै.
जौ सारथी परै खा घाव, ताहि बचाय रथी लै जाय.
लागी प्रबल गदा अति भारी, मूर्छित ह्वै सुध देह बिसारी.
तब हौं रन तें लै नीसर्यौ, स्वामि द्रोह अपजस तें डर्यौ.
घरी एक लीनौ बिश्राम, अब चलकर कीजै संग्राम.
धर्म नीति तुम तें जानिये, जग उपहास न मन आनिये.

अब तुम सबही कौं बध करि हौ, माया मय दानव की हरि हौ.

महाराज! ऐसे कह, सूत प्रद्युम्न जी को जल के निकट ले गया, वहां जाय उन्हों ने मुख हाथ पांव धोय, सावधान होय, कवच टोप पहन, धनुष बान संभाल, सारथी से कहा, भला जो भया सो भया, पर अब तू मुझे वहां ले चल, जहां दुबिद यदुबंसियों से युद्ध कर रहा है. बात के सुनते ही सारथी बात की बात में रथ वहां ले गया, जहां वह लड़ रहा था. जाते ही इन्हों ने ललकार कर कहा, कि तू इधर उधर क्या लड़ता है, आ मेरे सनमुख हो, जो तुझे सिसुपाल के पास भेजूं. यह बचन सुनते ही वह जों प्रद्युम्न जी पर आय टूटा, तों कई एक बान मार इन्हों ने उसे मार गिराया, औ संबू ने भी असुर दल काट काट समुद्र में पाटा.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! जब असुर दल से युद्ध करते करते द्वारिका में सब यदुबंसियों को सत्ताईस दिन ऊए, तब अन्तरजामी श्री कृष्णचंद जी ने हस्तिनापुर में बैठे बैठे द्वारिका की दसा देख, राजा युधिष्ठिर से कहा, कि महाराज! मैं ने एक स्वप्न में देखा कि द्वारिका में महा उपद्रव हो रहा है, औ सब यदुबंसी अति दुखी हैं, इस से अब आप आज्ञा दो तो हम द्वारिका को प्रस्थान करैं. यह बात सुन राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर कहा, जो प्रभु की इच्छा. इतना बचन राजा युधिष्ठिर के मुख से निकलते ही श्री कृष्ण बलराम सब से बिदा हो, जों पुर के बाहर निकले, तों क्या देखते हैं, कि बांई ओर एक हिरनी दौड़ी चली आती है, औ सोहीं स्वान खड़ा सिर झाड़ता है. यह अपशकुन देख हरि ने बलराम जी से कहा, कि भाई! तुम सब को साथ ले पीछे आओ, मैं आगे चलता हूं. राजा! भाई से यों कह श्री कृष्णचंद जी आगे जाय रन भूमि में क्या देखते हैं, कि असुर यदुबंसियों को चारों ओर से बड़ी मार मार रहे हैं; औ वे निपट घबराय घबराय शस्त्र चलाय रहे हैं. यह चरित्र देख हरि जों वहां खड़े हो कुछ भावित ऊए, तों पीछे से बलदेव जी भी जा पहुंचे. उस काल श्री कृष्ण जी ने बलराम जी से कहा कि भाई! तुम जाय नगर औ प्रजा की रक्षा करो, मैं इन्हें मार चला आता हूं. प्रभु की आज्ञा पाय बलदेव जी तो पुरी में पधारे, औ आप हरि वहां रन में गए, जहां प्रद्युम्न जी सालव से युद्ध कर रहे थे. यदुपति के आते ही शंख धुनि ऊई, औ सब ने जाना कि श्री कृष्णचंद आए. महाराज! प्रभु के जाते ही सालव अपना रथ उड़ाय आकाश में ले गया, औ वहां से अग्नि सम बान बरसाने लगा. उस समय श्री कृष्णचंद जी ने सोलह बान गिनकर ऐसे मारे, कि उस का रथ औ सारथी उड़ गया, औ वह लड़खड़ाय नीचे गिरा. गिरते ही संभलकर एक बान उस ने हरि की बाम भुजा में मारा, औ यों पुकारा, कि रे कृष्ण! खड़ा रह, मैं युद्ध कर तेरा बल देखता हूं, तैं ने तो

कंसासुर भौमासुर औ सिसुपाल आदि बड़े बड़े बलवान छल बल कर मारे हैं, पर अब मेरे हाथ से तेरा बचना कठिन है.

मो सों तोहि पख़ो अब काम, कपट छांडि कीजो संग्राम.
बानासुर भौमासुर बरी, तेरे मग देखत हैं हरी.
पठऊं तहां बहुरि नहि आवै, भाजे तू न बड़ाई पावै.

यह बात सुन जो श्री कृष्ण जी ने इतना कहा, कि रे मूरख अभिमानी कायर कूर! जो हैं छत्री गंभीर धीर सूर, वे पहले किसी से बड़ा बोल नहीं बोलते, तो उस ने दौड़कर हरि पर एक गदा अति क्रोधकर चलाई, सो प्रभु ने सहज सुभाव ही काट गिराई; पुनि श्री कृष्णचंद जी ने उसे एक गदा मारी, वह गदा खाय माया की ओट में जाय दो घड़ी मूर्छित रहा, फिर कपट रूप बनाय प्रभु के सनमुख आय बोला,

माय तिहारी देवकी, पठयौ मोहि अकुलाय,
रिपु सालव बसुदेव कौं, पकरे लीये जाय.

महाराज! वह असुर इतना बचन सुनाय वहां से जाय, माया का बसुदेव बनाय, बांध लाय, श्री कृष्णचंद के सोंहीं आय बोला, रे कृष्ण! देख, मैं तेरे पिता को बांध लाया, औ अब इस का सिर काट सब यदुबंसियों को मार समुद्र में पाटूंगा, पीछे तुझे मार इकछत राज करूंगा. महाराज! ऐसे कह उस ने माया के बसुदेव का सिर पकड़के श्री कृष्ण जी के देखते काट डाला, औ बरछी के फल पर रक्ख सब को दिखाया. यह माया का चरित्र देख पहले तो प्रभु को मूर्छा आई; पुनि देह संभाल मन हीं मन कहने लगे कि यह क्योंकर हुआ, जो यह बसुदेव जी को बलराम जी के रहते द्वारिका से पकड़ लाया, क्या यह उन से भी बली है जो उन के सनमुख से बसुदेव जी को ले निकल आया.

महाराज! इसी भांति की अनेक अनेक बातें कितनी एक बेर लग आसुरी माया में आय प्रभु ने कीं, औ महा चिंतित रहे; निदान ध्यान कर हरि ने देखा तो सब आसुरी माया की छाया का भेद पाया, तब तो श्री कृष्णचंद जी ने उसे ललकारा; प्रभु की ललकार सुन वह आकाश को गया, औ लगा वहां से प्रभु पर शस्त्र चलाने. इस बीच श्री कृष्णचंद जी ने कई एक बान ऐसे मारे, कि वह रथ समेत समुद्र में गिरा; गिरते ही संभल गदा ले प्रभु पर झपटा, तब तो हरि ने उसे अति क्रोध कर सुदरसन चक्र से मार गिराया, ऐसे कि जैसे सुरपति ने बृत्तासुर को मार गिराया था. महाराज! उस के गिरते ही उस के सीस की मनि निकल भूमि पर गिरी, औ जोति श्री कृष्णचंद के मुख में समाई. इति

CHAPTER. LXXVIII.

श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! अब मैं सिसुपाल के भाई बक्रदंत औ बिदूरथ की कथा कहता हूं, कि जैसे वे मारे गए. जब से सिसुपाल मारा गया, तब से वे दोनों श्री कृष्णचंद्र जी से अपने भाई का पलटा लेने का बिचार किया करते थे; निदान सालव औ द्विबिद के मरते ही अपना सब कटक ले द्वारिका पुरी पर चढ़ि आए, औ चारों ओर से घेर लगे अनेक अनेक प्रकार के जंत्र औ शस्त्र चलाने.

परयौ नगर में खरबर भारी, सुनि पुकार रथ चढ़े मुरारी

आगे श्री कृष्णचंद्र जी नगर के बाहर जाय वहां खड़े हुए, कि जहां अति कोप किये शस्त्र लिये वे दोनों असुर लड़ने को उपस्थित थे; प्रभु को देखते ही बक्रदंत महा अभिमान कर बोला, कि रे कृष्ण! तू पहले अपना शस्त्र चलाय ले, पीछे मैं तुझे मारूंगा. इतनी बात मैं ने इस लिये तुझे कही, कि मरते समय तेरे मन में यह अभिलाषा न रहे, कि मैं ने बक्रदंत पर शस्त्र न किया; तू ने तो बड़े बड़े बली मारे हैं, पर अब मेरे हाथ से जीता न बचेगा. महाराज! ऐसे कितने एक दुष्ट बचन कह, बक्रदंत ने प्रभु पर गदा चलाई, सो हरि ने सहज ही काट गिराई; पुनि दूसरी गदा ले हरि से महा युद्ध करने लगा, तब तो भगवान ने उसे मार गिराया, औ तिस का जी निकल प्रभु के मुख में समाया.

आगे बक्रदंत का मरना देख, बिदूरथ जो युद्ध करने को चढ़ आया, त्योंहीं श्री कृष्ण जी ने सुदरसन चक्र चलाया, उस ने बिदूरथ का सिर मुकुट कुंडल समेत काट गिराया; पुनि सब असुर दल को मार भगाया; उस काल,

फूले देव पहुप बरषावैं, किन्नर चारन हरि जस गावैं.
सिद्ध साध बिद्याधर सारे, जयजय चढ़े बिमान पुकारे.

पुनि सब बोले कि महाराज! आप की लीला अपरंपार है, कोई इस का भेद नहीं जानता; प्रथम हिरनकस्यप औ हिरनाकुस भए, पीछे रावन औ कुंभकरन; अब ये दंतवक्र औ सिसुपाल हो आए, तुम ने तीनों बेर इन्हें मारा औ परम मुक्ति दी, इस से तुम्हारी गति कुछ किसू से जानी नहीं जाती. महाराज! इतना कह देवता तो प्रभु को प्रनाम कर चले गए, औ हरि बलराम जी से कहने लगे, कि भाई! कौरव औ पांडवों से हुई लड़ाई, अब क्या करैं. बलदेव जी बोले, कृपा निधान! कृपा कर आप हस्तिनापुर को पधारिये, तीरथ यात्रा कर पीछे से मैं भी आता हूं. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! यह बचन सुन श्री कृष्णचंद्र जी तो वहां को पधारे, जहां कुरक्षेत्र में कौरव औ पांडव महाभारत युद्ध करते थे; औ बलराम जी तीरथ यात्रा को

निकले. आगे सब तीरथ करते करते बलदेव जी नीमषार में पहुंचे, तो वहां क्या देखते हैं, कि एक ओर ऋषि मुनि यज्ञ रच रहे हैं; औ एक ओर ऋषि मुनि की सभा में सिंहासन पर बैठे सूत जी कथा बांच रहे हैं. इन को देखते ही सौनकादि सब मुनि ऋषियों ने उठकर प्रनाम किया, औ सूत सिंहासन पर गद्दी लगाये बैठा देखता रहा.

महाराज! सूत के न उठते ही बलराम जी ने सौनकादि सब ऋषि मुनियों से कहा, कि इस मूरख को किस ने बक्ता किया, और व्यास आसन दिया; बक्ता चाहिये भक्तिवंत बिबेकी औ ज्ञानी; यह है गुन हीन ब्राह्मन औ अति अभिमानी; मुनि चाहिये निर्लोभी औ परमारथी, यह है महा लोभी औ आप स्वारथी; ज्ञान हीन अविवेकी को यह व्यास गादी फबती नहीं, इसे मारें तो क्या, पर यहां से निकाल दिया चाहिये. इस बात के सुनते ही सौनकादि बड़े बड़े मुनि ऋषि अति बिनती कर बोले, कि महाराज! तुम हो बीर धीर सकल धर्म नीति के जान, यह है कायर अधीर अविवेकी अभिमानी अज्ञान; इस का अपराध क्षमा कीजे, क्योंकि यह व्यास गादी पर बैठा है, औ ब्रह्मा ने यज्ञ कर्म के लिये इसे यहां स्थापित किया है.

आसन गर्ब मूढ़ मन धर्‍यौ, उठि प्रनाम तुम कौं नहीं कर्‍यौ.
यही नाथ! याकौ अपराध, परी चूक है तौ यह साध.
सूत हि मारे पातक होय, जग में भलौ कहै नहीं कोय.
निर्फल बचन नजाय तिहारे, यह तुम निज मन मांहि बिचारे.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही बलराम जी ने एक कुश उठाय, सहज सुभाय सूत को मार, उस के लगते वह मर गया. यह चरित्र देख सौनकादि ऋषि मुनि हाहाकार कर अति उदास हो बोले, कि महाराज! जो बात होनी थी सो तो हुई, पर अब कृपा कर हमारी चिंता मेटिये. प्रभु बोले, तुम्हें किस बात की इच्छा है, सो कहो, हम पूरी करें. मुनियों ने कहा, महाराज! हमारे यज्ञ करने में किसी बात का बिघ्न न होय, यही हमारी बासना है, सो पूरी कीजे, औ जगत में जस लीजे. इतना बचन मुनियों के मुख से निकलते ही, अंतरजामी बलराम जी ने सूत के पुत्र को बुलवाय, व्यास गादी पर बैठायके कहा, यह अपने बाप से अधिक बक्ता होगा, औ मैं ने इसे अमर पद दे चिरंजीव किया, अब तुम निचिंताई से यज्ञ करो. इति

CHAPTER. LXXIX.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! बलराम जी की आज्ञा पाय सौनकादि सब ऋषि मुनि अति

प्रसन्न हो जों यज्ञ करने लगें, तों जालव नाम दैत्य लव का बेटा आय, महा मेघ कर बादल गरजाय, बड़ी भयंकर अति काली आंधी चलाय, लगा आकाश से रुधिर औ मल मूच बरसावने, और अनेक अनेक उपद्रव मचाने.

महाराज! दैत्य की यह अनीति देखि बलदेव जी ने हल मूसल का आवाहन किया, वे आय उपस्थित ऊए. पुनि महा क्रोध कर प्रभु ने जालव को हल से खैंच एक मूसल उस के सिर में ऐसा मारा कि,

फूट्यौ मस्तक छूटे प्रान, रुधिर प्रवाह भयौ तिहिं स्थान.
कर भुज डारि पख्यौ विकरार, निकरे लोचन एने बार.

जालव के मरते ही सब मुनियों ने अति संतुष्ट हो बलदेव जी की पूजा की, औ बऊत सी स्तुति कर भेट दी. फिर बलराम सुखधाम वहां से बिदा हो, तीरथ याचा को निकले, तो महाराज! सब तीरथ कर पृथ्वी प्रदक्षना करते करते वहां पऊंचे, कि जहां कुरक्षेच में दुर्योधन औ भीमसेन महा युद्ध करते थे, औ पांडव समेत श्री कृष्णचंद औ बड़े बड़े राजा खड़े देखते थे. बलराम जी के जाते ही दोनों बीरों ने प्रनाम किया; एक ने गुरु जान, दूसरे ने बंधु मान. महाराज! उन दोनों को लड़ता देख बलदेव जी बोले,

सुभट समान प्रबल दोऊ बीर, अब संग्राम तजऊ तुम धीर.
कौर पंडु कौ राखऊ बंस, बंधु मिच सब भए बिध्वंस.
दोऊ सुनि बोले सिर नाय, अब रन तें उनख्यौ नहीं जाय.

पुनि दुर्योधन बोला, कि गुरु देव! मैं आप के सनमुख झूठ नहीं भाषता, आप मेरी बात मन दे सुनिये; यह जो महाभारत युद्ध होता है, औ लोग मारे गए औ जाते हैं औ जांयगे, सो तुम्हारे भाई श्री कृष्णचंद जी के मते से; पांडव केवल श्री कृष्ण जी के बल से लड़ते हैं, नहीं इन की क्या सामर्थ थी जो ये कौरवों से लड़ते; ये बापरे तो हरि के बस ऐसे हो रहे हैं, कि जैसे काठ की पुतली नटुए के बस होय; जिधर वह चलावे तिधर वह चले; उन को यह उचित न था, जो पांडवों की सहायता कर हम से इतना देष करें; दूसासन की भीम से भुजा उखड़ाई; औ मेरी जांघ में गदा लगवाई: तुम से अधिक हम क्या कहेंगे इस समय.

जो हरि करें सोई अब होय, या बातें जाने सब कोय.

यह बचन दुर्योधन के मुख से निकलते ही, इतना कह बलराम जी श्री कृष्णचंद के निकट आए, कि तुम भी उपाध करने में कुछ घाट नहीं; औ बोले, कि भाई! तुम ने यह क्या किया जो

युद्ध करवाय दूसासन की भुजा उखड़वाई, औ दुर्योधन की जांघ कटवाई. यह धर्म युद्ध की रीति नहीं हैं, कि कोई बलवान हो किसी की भुजा उखाड़े, कै कटि के नीचे शस्त्र चलावे; हां धर्म युद्ध यह हैं कि एक एक को ललकार सनमुख शस्त्र करे. श्री कृष्णचंद बोले कि भाई! तुम नहीं जानते, ये कौरव बड़े अधर्मी अन्याई हैं, इन की अनीति कुछ कही नहीं जाती; पहले इन्हों ने दूसासन शकुन भगदंत के कहे जुआ खेल कपट कर, राजा युधिष्ठिर का सर्वस जीत लिया; दूसासन द्रोपदी को हाथ पकड़ लाया, इस से उस के हाथ भीमसेन ने उखाड़े; दुर्योधन ने सभा के बीच द्रोपदी को जांघ पर बैठने को कहा, इसी से उस की जांघ काटी गई.

इतना कह पुनि श्री कृष्णचंद बोले कि भाई! तुम नहीं जानते, इसी भांति की जो जो अनीति कौरवों ने पांडवों के साथ की है, सो हम कहां तक कहैंगे; इस से यह भारत की आग किसी रीति से अब न बुझेगी, तुम इस का कुछ उपाय मत करो. महाराज! इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही बलराम जी कुरुक्षेत्र से चलि द्वारिका पुरी में आये, औ राजा उग्रसेन सूरसेन से भेंट कर हाथ जोड़ कहने लगे, कि महाराज! आप के पुन्य प्रताप से हम सब तीरथ यात्रा तो कर आये, पर एक अपराध हम से हुआ. राजा उग्रसेन बोले सो क्या? बलराम जी ने कहा, महाराज! नीमषार में जाय हम ने सूत को मारा, तिस की हत्या हमें लगी, अब आप की आज्ञा होय तो पुनि नीमषार जाय, यज्ञ के दरसन कर, तीरथ न्हाय, हत्या का पाप मिटाय आवें, पीछे ब्राह्मन भोजन करवाय जात को जिमावें, जिस से जग में जस पावें. राजा उग्रसेन बोले, अच्छा, आप हो आइये. महाराज! राजा की आज्ञा पाय बलराम जी कितने एक यदुबंसियों को साथ ले, नीमषार जाय, स्नान दान कर, शुद्ध हो आये; पुनि पुरोहित को बुलाय, होम करवाय, ब्राह्मन जिमाय, जात को खिलाय, लोक रीति कर पवित्र हुए. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले, महाराज!

जो यह चरित्र सुने मन लाय, ताकौ सब ही पाप नसाय. इति

CHAPTER. LXXX.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! अब मैं सुदामा की कथा कहता हूं, कि जैसे वह प्रभु के पास गया, औ उस का दरिद्र कटा, सो तुम मन दे सुनौ. दक्षिन दिसा की ओर है एक द्राविड़ देस, तहां बिप्र औ बनिक बसे थे नरेस; जिन के राज में घर घर होता था भजन सुमिरन औ हरि का ध्यान, पुनि सब करते थे तप यज्ञ धर्म दान, और साध संत गौ ब्राह्मन का सनमान.

ऐसे बसैं सबै तिहिं ठौर, हरि बिन कछू न जानै और.

तिसी देस में सुदामा नाम ब्राह्मन श्री कृष्नचंद का गुरु भाई, अति दीन, तन छीन, महा दरिद्री, ऐसा, कि जिस के घर पै न घास, न खाने को कुछ पास रहता था. एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्र से अति घबराय महा दुख पाय, पति के निकट जाय, भय खाय, डरती कांपती बोली, कि महाराज! अब इस दरिद्र के हाथ से महा दुख पाते हैं, जो आप इसे खोया चाहिये तो मैं एक उपाय बताऊं. ब्राह्मन बोला सो क्या? कहा, तुम्हारे परम मित्र त्रिलोकी नाथ द्वारिका बासी श्री कृष्नचंद आनंदकंद हैं, जो उन के पास जाओ तो यह जाय, क्योंकि वे अर्थ धर्म काम मोक्ष के दाता हैं.

महाराज! जब ब्राह्मनी ने ऐसे समझायकर कहा, तब सुदामा बोला, कि हे प्रिये! बिन दिये श्री कृष्नचंद भी किसी को कुछ नहीं देते; मैं भली भांति से जानता हूं कि जन्म भर मैं ने किसी को कभी कुछ नहीं दिया, बिन दिये कहां से पाऊंगा; हां तेरे कहे से जाऊंगा, तो श्री कृष्न जी के दरसन कर आऊंगा. इस बात के सुनते ही ब्राह्मनी ने एक अति पुराने चौले वस्त्र में थोड़े से चांवल बांध ला दिये प्रभु की भेट के लिये; और डोर लोटा औ लाठी ला आगे धरी, तब तो सुदामा डोर लोटा कांधे पर डाल, चांवल की पोटली कांख में दबाय, लाठी हाथ में ले, गनेस को मनाय, श्री कृष्नचंद जी का ध्यान कर, द्वारिका पुरी को पधारा.

महाराज! बाट ही में चलते चलते सुदामा मन ही मन कहने लगा, कि भला, धन तो मेरी प्रारब्ध में नहीं, पर द्वारिका जाने से श्री कृष्नचंद आनंदकंद का दरसन तो करूंगा. इसी भांति से सोच बिचार करता करता सुदामा तीन पहर के बीच द्वारिका पुरी में पहुंचा, तो क्या देखता है, कि नगर के चारों ओर समुद्र है, औ बीच में पुरी. वह पुरी कैसी है, कि जिस के चहुं ओर बन उपबन फूल फल रहे हैं; तड़ाग वापी इंदारों पर रहंट परोहे चल रहे हैं; ठौर ठौर गायों के यूथ के यूथ चर रहे हैं; तिन के साथ साथ ग्वाल बाल न्यारे ही कुतूहल करते हैं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! सुदामा बन उपबन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय देखे तो कंचन के मनिमय मंदिर महा सुंदर जगमगाय रहे हैं; ठांव ठांव अथाईयों में यदुबंसी इंद्र की सी सभा किये बैठे हैं; हाट बाट चौहटों में नाना प्रकार की बस्तु बिक रही है; घर घर जिधर तिधर गान दान हरि भजन औ प्रभु का जस हो रहा है; औ सारे नगर निवासी महा आनंद में हैं. महाराज! यह चरित्र देखता देखता, औ श्री कृष्नचंद का मंदिर पूछता पूछता, सुदामा जा प्रभु की सिंह पौर पर खड़ा हुआ; इस ने किसी से डरते डरते पूछा कि

श्री कृष्णचंद जी कहां बिराजते हैं? उस ने कहा कि देवता! आप मंदिर भीतर जाओ, सनमुख ही श्री कृष्णचंद जी रत्न सिंहासन पर बैठे हैं.

महाराज! इतना बचन सुन सुदामा जों भीतर गया, तों देखते ही श्री कृष्णचंद सिंहासन से उतर, आगू बढ़, भेंट कर, अति प्यार से हाथ पकड़ उसे ले गये; पुनि सिंहासन पर बिठाय, पांव धोय, चरनामृत लिया; आगे चंदन चरच, अक्षत लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप कर, प्रभु ने सुदामा की पूजा की.

इतनौ करिकै जोरे हाथ, कुशल क्षेम पूछत यदुनाथ.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज! यह चरित्र देख श्री रुक्मिनी जी समेत आठों पट रानियां औ सोलह सहस्र आठ सौ रानियां और सब यदुबंसी जो उस समय वहां थे, मन हीं मन यों कहने लगे, कि इस दलिद्री, दुर्बल, मलीन, वस्त्र हीन, ब्राह्मन ने ऐसा क्या अगले जन्म पुन्य किया था, जो त्रिलोकी नाथ ने इसे इतना माना. महाराज! अंतरजामी श्री कृष्णचंद उस काल सब के मन की बात समझ, उन का संदेह मिटाने को सुदामा से गुरु के घर की बातें करने लगे, कि भाई! तुम्हें वह सुध है जो एक दिन गुरु पत्नी ने हमैं तुम्हें ईंधन लेने भेजा था, और जब बन से ईंधन ले गठड़ियां बांध सिर पर धर घर को चले, तब आंधी और मेह आया, औ लगा मूसला धार बरसने; जल थल चारों ओर भर गया; हम तुम भींगकर महा दुख पाय, जाड़ा खाय, रात भर एक बृक्ष के नीचे रहे; भोर ही गुरुदेव बन में ढूंढने आये, औ अति करुना कर असीस दे हमें तुम्हें अपने साथ घर लिवाय लाये.

इतना कह पुनि श्री कृष्णचंद जी बोले कि भाई! जब से तुम गुरुदेव के यहां से बिछड़े, तब से हम ने तुम्हारा समाचार न पाया था, कि कहां थे, औ क्या करते थे, अब आय दरस दिखाय तुम ने हमें महा सुख दिया, औ घर पवित्र किया. सुदामा बोला, हे कृपा सिंधु! दीन बंधु! स्वामी अंतरजामी! तुम सब जानते हो, कोई बात संसार में ऐसी नहीं जो तुम से छिपी है. इति

CHAPTER. LXXXI.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! अंतरजामी श्री कृष्ण जी ने सुदामा की बात सुन, औ उस के अनेक मनोरथ समझ, हंसकर कहा कि भाई! भाभी ने हमारे लिये क्या भेंट भेजी है, सो देते क्यों नहीं, कांख में किस लिये दबाय रहे हो. महाराज! यह बचन सुन सुदामा तो सकुचाय मुरझाय रहा, औ प्रभु ने झट चांवल की पोटली उस की कांख से निकाल ली; पुनि खोल उस में

से अति रुचि कर दो मुट्ठी चांवल खाये, और जो तीसरी मुट्ठी भरी, तो श्री रुक्मिनी जी ने हरि का हाथ पकड़ा, औ कहा कि महाराज! आप ने दो लोक तो इसे दिये, अब अपने रहने को भी कोई ठौर रक्खोगे के नहीं; यह तो ब्राह्मन सुशील कुलीन अति बैरागी महा त्यागी सा दृष्ट आता है; क्यौंकि इसे बिभौ पाने से कुछ हर्ष न हुआ, इस से मैं ने जाना कि ये लोभ हान समान जानते हैं, इन्हें पाने का हर्ष, न जाने का शोक.

इतनी बात रुक्मिनी जी के मुख से निकलते ही श्री कृष्णचंद जी ने कहा कि हे प्रिये! यह मेरा परम मित्र है, इस के गुन मैं कहां तक बखानूं, सदा सर्बदा मेरे स्नेह में मगन रहता है, और उस के आगे संसार के सुख को तृनवत समझता है.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! ऐसे अनेक अनेक प्रकार की बातें कर, प्रभु रुक्मिनी जी को समझाय, सुदामा को मंदिर में लिवाय ले गये. आगे षट रस भोजन करवाय, पान खिलाय, हरि ने सुदामा को फेन सी सेज पर ले जाय बैठाया. वह पथ का हारा थका तो था ही, सेज पर जाय सुख पाय सो गया. प्रभु ने उस समय बिश्वकर्मा को बुलायके कहा, कि तुम अभी जाय सुदामा के मंदिर अति सुन्दर कंचन रत्न के बनाय, तिन में अष्ट सिद्ध नव निद्धि धर आओ, जो इसे किसी बात की कांक्षा न रहे. इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही बिश्वकर्मा वहां जाय बात की बात में बनाय आया, औ हरि से कह अपने स्थान को गया.

भोर होते ही सुदामा उठ स्नान ध्यान भजन पूजा से निचिंत होय प्रभु के पास बिदा होने गया; उस समय श्री कृष्णचंद जी मुख से तो कुछ न बोल सके, पर प्रेम में मगन हो आंखें डबडबाय सिथल हो देख रहे. सुदामा बिदा हो प्रनाम कर अपने घर को चला, औ पंथ में जाय मन हीं मन बिचार करने लगा, कि भला भया जो मैं ने प्रभु से कुछ न मांगा, जो उन से कुछ मांगता तो वे देते तो सही, पर मुझे लोभी लालची समझते. कुछ चिंता नहीं, ब्राह्मनी को मैं समझाय लूंगा; श्री कृष्णचंद जी ने मेरा अति मान सनमान किया, औ मुझे निर्लोभी जाना, यही मुझे लाख है. महाराज! ऐसे सोच बिचार करता करता सुदामा अपने गांव के निकट आया, तो क्या देखता है, कि न वह ठांव है, न वह टूटी मढैया, वहां तो एक इंद्र पुरी सी बस रही है. देखते ही सुदामा अति दुखित हो कहने लगा, कि हे नाथ! तू ने यह क्या किया? एक दुख तो था ही, दूसरा और दिया; यहां से मेरी झोंपड़ी क्या हुई, और ब्राह्मनी कहां गई, किस से पूछूं, औ किधर ढूंढूं?

इतना कह द्वार पर जाय सुदामा ने द्वारपाल से पूछा, कि यह मंदिर अति सुंदर किस के हैं? द्वारपाल ने कहा, श्री कृष्णचंद के मित्र सुदामा के हैं. यह बात सुन जों सुदामा कुछ कहने को हुआ, तों भीतर से देख उस की ब्राह्मनी अच्छे वस्त्र आभूषन पहने, नख सिख से सिंगार किये, पान खाये, सुगंध लगाये, सखियों को साथ लिये, पति के निकट आई.

पायन पर पाटंबर डारे, हाथ जोर ये बचन उचारे.
ठाढ़े क्यौं मंदिर पग धारौ, मन सों सोच करौ तुम न्यारौ.
तुम पाछे बिस्वकर्मा आये, तिन मंदिर पल मांझ बनाये.

महाराज! इतनी बात ब्राह्मनी के मुख से सुन, सुदामा जी मंदिर में गये, औ अति बिभौ देख महा उदास भये. ब्राह्मनी बोली स्वामी! धन पाय लोग प्रसन्न होते हैं, तुम उदास हुए, इस का कारन क्या है, सो कृपा कर कहिये, जो मेरे मन का संदेह जाय. सुदामा बोला, कि हे प्रिये! यह माया बड़ी ठगनी है, इस ने सारे संसार को ठगा है ठगती है औ ठगेगी, सो प्रभु ने मुझे दी, औ मेरे प्रेम की प्रतीति न की; मैं ने उन से कब मांगी थी, जो उन्हों ने मुझे दी, इसी से मेरा चित उदास है. ब्राह्मनी बोली, स्वामी! तुम ने तो श्री कृष्णचंद जी से कुछ न मांगा था, पर वे अंतरजामी घट घट की जानते हैं, मेरे मन में धन की वासना थी, सो प्रभु ने पूरी की, तुम अपने मन में और कुछ मत समझो. इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! इस प्रसंग को जो सदा सुने सुनावेगा, सो जन जगत में आय दुख कभी न पावेगा, औ अंत काल बैकुंठ धाम जावेगा. इति

CHAPTER. LXXXII.

श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! अब मैं प्रभु के कुरक्षेत्र जाने की कथा कहता हूं तुम चित दे सुनो, कि जैसे द्वारिका से सब यदुबंसियों को साथ ले श्री कृष्णचंद औ बलराम जी सूर्य ग्रहन न्हाने कुरक्षेत्र गये. राजा ने कहा महाराज! आप कहिये, मैं मन दे सुनता हूं. पुनि श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! एक समय सूर्य ग्रहन के समाचार पाय श्री कृष्णचंद औ बलदेव जी ने राजा उग्रसेन के पास जायके कहा, कि महाराज! बहुत दिन पीछे सूर्य ग्रहन आया है, जो इस पर्ब को कुरक्षेत्र में चलकर कीजे तो बड़ा पुन्य होय; क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि कुरक्षेत्र में जो दान पुन्य करिये सो सहस्र गुना होय. इतनी बात के सुनते ही यदुबंसियों ने श्री कृष्णचंद जी से पूछा कि महाराज! कुरक्षेत्र ऐसा तीर्थ कैसे हुआ, सो कृपा कर हमें समझायके कहिये.

श्री शुकदेव जी बोले, कि सुनो, यमदग्नि ऋषि बड़े ज्ञानी ध्यानी तपस्वी तेजस्वी थे; तिन के तीन पुत्र हुए; उन में सब से बड़े परशुराम, सो बैराग कर घर छोड़ चित्रकूट में जाय रहे, औ सदाशिव की तपस्या करने लगे. लड़कों के होते ही यमदग्नि ऋषि गृहस्थाश्रम छोड़, बैराग कर, स्त्री सहित बन में जाय तप करने लगे. उन की स्त्री का नाम रेनुका, सो एक दिन अपने बहन को नोतने गई, उस की बहन राजा सहस्रार्जुन की स्त्री थी. नोता देते ही अहंकार कर राजा सहस्रार्जुन की रानी रेनुका की बहन हंसकर बोली, कि बहन! तुम हमें हमारे कटक समेत जिमाय सको ते। नोता दो, नहीं ते। न दो.

महाराज! यह बात सुन रेनुका अपना सा मुंह ले चुपचाप वहां से उठ अपने घर आई; इसे उदास देख यमदग्नि ऋषि ने पूछा, कि आज क्या है जो तू अनमनी हो रही है. महाराज! बात के पूछते ही रेनुका ने रोकर सब जों की तों बात कही. सुनते ही यमदग्नि ऋषि ने स्त्री से कहा कि अच्छा, तू जायके अभी अपनी बहन को कटक समेत नोत आ. पति की आज्ञा पाय रेनुका बहन के घर जाय नोत आई, उस की बहन ने अपने स्वामी से कहा, कि कल तुम्हें हमें दल समेत यमदग्नि ऋषि के यहां भोजन करने जाना है. स्त्री की बात सुन अच्छा कह वह हंस कर चुप हो रहा; भोर होते ही यमदग्नि उठ कर राजा इंद्र के पास गये, औ कामधेनु मांग लाये, पुनि जाय राजा सहस्रार्जुन को बुलाय लाये; वह कटक समेत आया, तिसे यमदग्नि जी ने इच्छा भोजन खिलाया.

कटक समेत भोजन कर राजा सहस्रार्जुन अति लज्जित हुआ, औ मन हीं मन कहने लगा, कि इस ने इतने लोगों के खाने की सामग्री रात भर में कहां पाई, औ कैसे बनाई, इस का भेद कुछ जाना नहीं जाता. इतना कह बिदा होय, उस ने अपने घर जाय, यों कह, एक ब्राह्मन को भेज दिया, कि देवता! तुम यमदग्नि के घर जाय इस बात का भेद लाओ, कि उस ने किस के बल से एक दिन के बीच मुझे कटक समेत नोत जिमाया. इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मन ने झट जाय देख आय सहस्रार्जुन से कहा, कि महाराज! उस के घर में कामधेनु है, उसी के प्रभाव से उस ने तुम्हें एक दिन में नोत जिमाया. यह समाचार सुन सहस्रार्जुन ने उसी ब्राह्मन से कहा, कि देवता! तुम जाय हमारी ओर से यमदग्नि ऋषि से कहो, कि सहस्रार्जुन ने कामधेनु मांगी है.

बात के सुनते ही वह ब्राह्मन संदेसा ले ऋषि के पास गया, औ उस ने सहस्रार्जुन की कही बात कही. ऋषि बोले, कि यह गाय हमारी नहीं जो हम दें, यह तो राजा इंद्र की है, हम इसे दे नहीं सकते, तुम जाय अपने राजा से कहो. बात के कहते ही ब्राह्मन ने आय राजा

सहस्त्रार्जुन से कहा, कि महाराज! ऋषि ने कहा है, कामधेनु हमारी नहीं, यह तो राजा इंद्र की है, इसे हम दे नहीं सकते. इतनी बात ब्राह्मन के मुख से निकलते ही सहस्त्रार्जुन ने अपने कितने ऐक जोधाओं को बुलायके कहा, तुम अभी जाय यमदग्नि के घर से कामधेनु खोल लाओ.

स्वामी की आज्ञा पाय जोधा ऋषि के स्थान पर गये, औ जों धेनु को खोल यमदग्नि के सनमुख हो ले चले, तों ऋषि ने दौड़कर बाट में जाय कामधेनु को रोका. यह समाचार पाय, क्रोधकर सहस्त्रार्जुन ने आ, ऋषि का सिर काट डाला, कामधेनु भाग इंद्र के यहां गई, रेनुका आय पति के पास खड़ी भई.

सिर खसोट लोटत फिरै, बैठि रहै गहि पाय,
छाती पीटे रुदन करि, पिउ पिउ कहि बिललाय.

उस काल रेनुका का बिलबिलाना औ रोना सुन दसों दिसा के दिग पाल कांप उठे, औ परस्रुराम जी का तप करते आसन डिगा, औ ध्यान छूटा. ध्यान के छूटते ही जान कर परस्रुराम जी अपना कुठार ले वहां आये, जहां पिता की लोथ पड़ी थी, औ माता पीटती खड़ी थी. देखते ही परस्रुराम जी को महा कोप ऊआ; इस में रेनुका ने पति के मारे जाने का सब भेद पुच को रो रो कह सुनाया. बात के सुनते ही परस्रुराम जो इतना कह वहां गये, जहां सहस्त्रार्जुन अपनी सभा में बैठा था, कि माता! पहले मैं अपने पिता के बैरी को मारि आऊं, तब आय पिता को उठाऊंगा. उसे देखते ही परस्रुराम जी कोप कर बोले,

अरे क्रूर कायर कुल द्रोही, तात मारि दुख दीनौं मोही.

ऐसे कह जब फरसा ले परस्रुराम जी महा कोप में आये, तब वह भी धनुष बान ले इन के सोहीं खड़ा ऊआ; दोनों बली महा युद्ध करने लगे; निदान लड़ते लड़ते परस्रुराम जी ने चार घड़ी के बीच सहस्त्रार्जुन को मार गिराया; पुनि उस का कटक चढ़ि आया, तिसे भी इन्हों ने उसी के पास काट डाला; फिर व्हां से आय पिता की गति करी, औ माता को समझा पुनि उसी ठौर परस्रुराम जी ने रुद्र यज्ञ किया, तभी से वह स्थान क्षेच कहकर प्रसिद्ध ऊआ; व्हां जाकर ग्रहन में जो कोई दान स्नान तप यज्ञ करता है, उसे सहस्र गुना फल होता है.

इतनी कथा सुनाय श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! इस प्रसंग के सुनते ही सब यदुबंसियों ने प्रसन्न हो श्री क्रृष्णचंद जी से कहा कि महाराज! शीघ्र कुरक्षेच को चलिये, अब बिलंब न करिये; क्योंकि पर्व पर पऊंचा चाहिये. बात के सुनते ही श्री क्रृष्णचंद औ बलराम जी ने राजा उग्रसेन से पूछा कि महाराज! सब कोई कुरक्षेच को चलेगा, यहां पुरी की

चौकसी को कौन रहेगा. राजा उग्रसेन ने कहा, अनिरुद्ध जी को रख चलिये. राजा की आज्ञा पाय प्रभु ने अनिरुद्ध को बुलाय समझायकर कहा, कि बेटा! तुम यहां रहो, गौ ब्राह्मन की रक्षा करो, औ प्रजा को पालो, हम राजा जी के साथ सब यदुबंसियों समेत कुरक्षेत्र न्हाय आवें. अनिरुद्ध जी ने कहा, जो आज्ञा. महाराज! एक अनिरुद्ध जी को पुरी की रखवाली में छोड़ सूरसेन, बसुदेव, उद्धव, अक्रूर, कृतबंमा आदि छोटे बड़े सब यदुबंसी अपनी अपनी स्त्रियों समेत राजा उग्रसेन के साथ कुरक्षेत्र चलने को उपस्थित हुए. जिस समैं कटक समेत राजा उग्रसेन ने पुरी के बाहर डेरा किया, उस काल सब जाय मिले; तिन के पीछे से श्री कृष्णचंद जी भी भाई भौजाई को साथ ले, आठों पटरानी औ सोलह सहस्र आठ सौ रानी औ बेटों पोतों समेत जाय मिले. प्रभु के पहुंचते ही राजा उग्रसेन ने वहां से डेरा उठाया, औ राजा इंद्र की भांति बड़ी घूमधाम से आगे को प्रस्थान किया.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! कितने एक दिनों में चले चले श्री कृष्णचंद सब यदुबंसियों समेत आनंद मंगल से कुरक्षेत्र में पहुंचे; वहां जाय पर्व में सब ने स्नान किया, औ यथा शक्ति हरएक ने हाथी घोड़ा रथ पालकी वस्त्र शस्त्र रत्न आभूषन अन धन दान दिया, पुनि वहां सबों ने डेरे डाले. महाराज! श्री कृष्णचंद औ बलराम जी के कुरक्षेत्र जाने के समाचार पाय, चहुं ओर के राजा कुटुंब सहित अपनी अपनी सब सेना ले ले वहां आय आय श्री कृष्ण बलराम जी को मिले. पुनि सब कौरव पांडव भी अपना अपना दल ले सकुटुंब वहां जाय मिले; उस काल कुंती औ द्रौपदी यदुबंसियों के रनवास में जाय सब से मिलीं; आगे कुंती ने भाई के सनमुख जाय कहा कि भाई! मैं बड़ी अभागी, जिस दिन से मांगी, उसी दिन से दुख उठाती हूं, तुम ने जब से ब्याह दी, तब से मेरी सुधि कभी न ली, औ राम कृष्ण जो सब के हैं सुखदाई, उन को भी मेरी दया कुछ न आई. महाराज! इस बात के सुनते ही करुना कर आंखें भर बसुदेव जी बोले, कि बहन! तू मुझे क्या कहती है, इस में मेरा कुछ बस नहीं, कर्म की गति जानी नहीं जाती, हरि इच्छा प्रबल है, देखो कंस के हाथ मैं ने भी क्या क्या दुख न पाया.

प्रभु आधीन सकल जग आय, किन दुख करौ देख जग भाय.

महाराज! इतना कह बहन को समझाय बुझाय बसुदेव जी वहां गए जहां सब राजा राजा उग्रसेन की सभा में बैठे थे, औ राजा दुर्योधन आदि बड़े बड़े नृप औ पांडव उग्रसेन ही की बड़ाई करते थे, कि राजा! तुम बड़भागी हो, जो सदा श्री कृष्णचंद का दरसन पाते हो, औ जन्म जन्म का पाप गंवाते हो; जिन्हें शिव बिरंच आदि सब देवता खोजते फिरें, सो प्रभु तुम्हारी सदा रक्षा करें.

जिन का भेद जोगी जती मुनि ऋषि न पावैं, सो हरि तुम्हारी आज्ञा लेन आवैं; जो है सब जग के ईस, वेई तुम्हें निवावते हैं सीस.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! ऐसे सब राजा आय आय राजा उग्रसेन की प्रसंसा करते थे, औ वे यथा योग सब का समाधान; इस में श्री कृष्ण बलराम जी का आना सुन, नंद उपनंद भी सकुटुंब सब गोपी गोप ग्वाल बाल समेत आन पहुंचे, स्नान दान से सुचित हो नंद जी वहां गये जहां पुत्र सहित बसुदेव देवकी बिराजते थे; इन्हें देखते ही बसुदेव जी उठकर मिले, औ दोनों ने परस्पर प्रेम कर ऐसे सुख माना, कि जैसे कोई गई वस्तु पाय सुख माने. आगे बसुदेव जी ने नंदराय जी से ब्रज की पिछली सब बात कह सुनाई, जैसे नंदराय जी ने श्री कृष्ण बलराम जी को पाला था. महाराज! इस बात के सुनते ही नंदराय जी नयनों में नीर भर बसुदेव जी का मुख देख रहे; उस काल श्री कृष्ण बलदेव जी प्रथम नंद जसोदा जी को यथा योग दंडवत प्रनाम कर, पुनि ग्वाल बालों से जाय मिले; तहां गोपियों ने आय हरि का चंद्रमुख निरख, अपने नयन चकोरों को सुख दिया, औ जीतब का फल लिया. इतना कह श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! बसुदेव, देवकी, रोहनी, श्री कृष्ण, बलराम से मिल, जो कुछ प्रेम नंद उपनंद जसोदा गोपी गोप ग्वाल बालों ने किया, सो मुझ से कहा नहीं जाता, वह देखे ही बन आवे, निदान सब को स्नेह में निपट व्याकुल देख श्री कृष्णचंद जी बोले कि सुनो,

मेरी भक्ति जो प्रानी करै, भव सागर निर्भय सो तरै.
तन मन धन तुम अर्पन कीन्हो, नेह निरंतर कर मोहि चीन्हो.
तुम सम बड़भागी नहीं कोय, ब्रह्मा रुद्र इंद्र किन होय.
जोगेश्वर के ध्यान न आवौ, तुम संग रह नित प्रेम बढ़ावौ.
हौं सबही के घट घट रहौं, अगम अगाध जु बानी कहौं.

जैसे तेज जल अग्नि पृथ्वी आकाश का है देह में बास, तैसे सब घट में मेरा है प्रकाश. श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! जब श्री कृष्णचंद ने यह सब भेद कह सुनाया, तब सब ब्रज बासियों को धीरज आया. इति.

CHAPTER. LXXXIII.

श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! जैसे द्रौपदी औ श्री कृष्णचंद जी की स्त्रियों में परस्पर बातें हुईं, सो मैं प्रसंग कहता हूं, तुम सुनो. एक दिन कौरव औ पांडवों की स्त्रियां श्री कृष्णचंद जी

औ नारियों के पास बैठीं थीं औ प्रभु के चरित्र औ गुन गाती थीं; इस में कुछ बात जो चली तो द्रौपदी ने श्री रुक्मिनी जी से कहा, कि हे सुंदरि! कह तू ने श्री कृष्नचंद जी को कैसे पाया. श्री रुक्मिनी जी बोलीं,

सुनौ द्रौपदी तुम चित लाय, जैसे प्रभु ने किये उपाय.

मेरे पिता का तो मनोरथ था कि मैं अपनी कन्या श्री कृष्नचंद को दूं, औ भाई ने राजा सिसुपाल को देने का मन किया; वह बरात ले ब्याहन को आया, औ श्री कृष्नचंद जी को मैं ने ब्राह्मन भेज बुलाया; ब्याह के दिन मैं जौं गौरि की पूजा कर घर को चली, तों श्री कृष्नचंद जी ने सब असुर दल के बीच से मुझे उठाय ले रथ में बैठाय अपनी बाट ली; तिस पीछे समाचार पाय सब असुर दल प्रभु पर आय टूटा, सो हरि ने सहज ही मार भगाया; पुनि मुझे ले द्वारिका पधारे; वहां जाते ही राजा उग्रसेन सूरसेन बसुदेव जी ने वेद की बिधि से श्री कृष्नचंद जी के साथ मेरा ब्याह किया, बिवाह के समाचार पाय मेरे पिता ने बहुत सा यौतुक भिजवाय दिया.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! जैसे द्रौपदी जी ने श्री रुक्मिनी से पूछा औ उन्हों ने कहा, तैसे ही द्रौपदी जी ने सतभामा, जंबावती, कालिंदी, भद्रा, सत्या, मित्रबिंदा, लक्ष्मना आदि श्री कृष्नचंद की सोलह सहस्र आठ सौ पटरानियों से पूछा औ एक एक ने सब समाचार अपने अपने बिवाह का ब्यौरे समेत कहा. इति

CHAPTER. LXXXIV.

श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! अब मैं सब ऋषियों के आने की, औ बसुदेव जी के यज्ञ करने की कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनौ. महाराज! एक दिन राजा उग्रसेन सूरसेन बसुदेव श्री कृष्न बलराम सब यदुबंसियों समेत सभा किये बैठे थे, औ सब देस देस के नरेस वहां उपस्थित थे, कि इस बीच श्री कृष्नचंद आनंदकंद के दरसन की अभिलाषा कर, व्यास, वशिष्ट, विश्वामित्र, वामदेव, परासर, भृगु, पुलस्ति, भरद्वाज, मारकंडेय आदि अठासी सहस्र ऋषि वहां आये, औ तिन के साथ नारद जी भी. उन्हें देखते ही सभा की सभा सब उठ खड़ी हुई; पुनि सब दंडवत कर पाटंबर के पांवड़े डाल, सब को सभा में ले गये; आगे श्री कृष्नचंद ने सब को आसन पर बैठाय, पांव धोय चरनामृत ले पिया, औ सारी सभा पर छिड़का; फिर चंदन अक्षत पुष्प धूप दीप नैवेद्य कर, भगवान ने सब की पूजा कर परिक्रमा की; पुनि हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो हरि बोले, कि धन्य भाग हमारे, जो आप ने आय घर बैठे दरसन दिया; साध का दरसन गंगा के स्नान

समान है; जिस ने साध का दरसन पाया, उस ने जन्म जन्म का पाप गंवाया. इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी बोले, कि महाराज!

श्री भगवान बचन जब कहे, तब सब ऋषि बिचारत रहे.

कि जो प्रभु है जोति स्वरूप, औ सकल सृष्टि का करता, सो जब यह बात कहैं तब और की किस ने चलाई; मन हीं मन सब मुनियों ने जब इतना कहा, तब नारद जी बोले,

सुनौ सभा तुम सब मन लाय, हरि माया जानी नहीं जाय.

ये आपही ब्रह्मा हो उपजावते हैं; बिष्णु हो पालते हैं; शिव हो संहारते हैं; इन की गति अपरंपार है, इस में किसी की बुद्धि कुछ काम नहीं करती; पर इतना इन की कृपा से हम जानते हैं, कि साधों के सुख देने को, औ दुष्टों के मारने को, औ सनातन धर्म चलाने को, बार बार अवतार ले प्रभु आते हैं. महाराज! जों इतनी बात कह नारद जी सभा से उठने को हुए, तों बसुदेव जी सनमुख आय हाथ जोड़ बिनती कर बोले कि हे ऋषिराय! मनुष संसार में आय कर्म से कैसे छूटे, सो कृपा कर कहिये. महाराज! यह बात बसुदेव जी के मुख से निकलते ही सब मुनि ऋषि नारद जी का मुख देख रहे, तब नारद जी ने मुनियों के मन का अभिप्राय समझ कर कहा, कि हे देवताओं! तुम इस बात का अचरज मत करो, श्री कृष्ण की माया प्रबल है, इस ने सारे संसार को जीत रक्खा है, इसी से बसुदेव जी ने यह बात कही, औ दूसरे ऐसे भी कहा है, कि जो जन जिस के समीप रहता है, वह उस का गुन प्रभाव औ प्रताप माया के बस हो नहीं जानता, जैसे,

गंगा बासी अनत हि जाइं, तज के गंग कूप जल न्हाई.

यों ही यादव भये अयाने, नाहीं कछू कृष्ण गति जाने.

इतनी बात कह नारद जी ने मुनियों के मन का संदेह मिटाय, बसुदेव जी से कहा, कि महाराज! शास्त्र में कहा है, जो नर तीरथ, दान, तप, ब्रत, यज्ञ, करता है, सो संसार के बंधन से छूट परम गति पाता है. इस बात के सुनते ही प्रसन्न हो बसुदेव जी ने बात की बात में सब यज्ञ की सामा मंगाय उपस्थित की, औ ऋषियों औ मुनियों से कहा, कि कृपा कर यज्ञ का आरंभ कीजे. महाराज! बसुदेव जी के मुख से इतना बचन निकलते ही, सब ब्राह्मनों ने यज्ञ का स्थान बनाय संवारा; इस बीच स्त्रियों समेत बसुदेव जी बेदी में जा बैठे सब राजा औ यादव यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए.

इतनी कथा सुनाय श्री सुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज! जिस समय बसुदेव जी

बेदी में जाय बैठे, उस काल बेद की बिधि से मुनियों ने यज्ञ का आरंभ किया, औ लगे बेद मंत्र पढ़ पढ़ आहुत देने, औ देवता सदेह भाग आय आय लेने. महाराज! जिस काल यज्ञ होने लगा, उस काल उधर किन्नर गंधर्व भेर दुंदभी बजाय बजाय गुन गाते थे; चारन बंदी जन जस बखानते थे; उरबसी आदि अपसरा नाचती थीं; औ देवता अपने अपने बिमानों में बैठे फूल बरसावते थे; औ इधर सब मंगली लोग गाय बजाय मंगलाचार करते थे, औ जाचक जैजैकार. इस में यज्ञ पूरन हुआ, औ बसुदेव जी ने पूर्नाहुत दे, ब्राह्मनों को पाटंबर पहराय, अलंकृत कर रत्न धन बहुत सा दिया, औ उन्हों ने बेद मंत्र पढ़ पढ़ आशीर्बाद किया. आगे सब देस देस के नरेसों को भी बसुदेव जी ने पहराया औ जिमाया; पुनि उन्हों ने यज्ञ की भेंट करकर बिदा हो अपनी अपनी बाट ली. महाराज! सब राजाओं के जाते ही, नारद जी समेत सारे ऋषि मुनि भी बिदा हुए; पुनि नंदराय जी गोपी गोप ग्वाल बाल समेत जब बसुदेव जी से बिदा होने लगे, उस समय की बात कुछ कही नहीं जाती; इधर तो यदुबंसी करुना कर अनेक कनेक प्रकार की बातें करते थे; औ उधर सब ब्रजबासी; उस का बखान कुछ कहा नहीं जाय, वह सुख देखे ही बनिआय; निदान बसुदेव जी औ श्री कृष्न बलराम जी ने सब समेत नंदराय जी को समझाय बुझाय पहराय औ बहुत सा धन दे बिदा किया. इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! इस भांति श्री कृष्नचंद औ बलराम जी पर्ब न्हाय यज्ञ कर सब समेत जब द्वारिका पुरी में आये, तो घर घर आनंद मंगल भये बधाये. इति

CHAPTER. LXXXV.

श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! द्वारिका पुरी के बीच एक दिन श्री कृष्नचंद औ बलराम जी जों बसुदेव जी के पास गये, तों वे इन दोनों भाइयों को देख यह बात मन में बिचार उठ खड़े हुए, कि कुरुक्षेत्र में नारद जी ने कहा था कि श्री कृष्नचंद जगत के करता हैं; औ हाथ जोड़ बोले, कि हे प्रभु! अलख अगोचर अबिनासी! सदा सेवती है तुम्हें कमला भई दासी; तुम हो सब देवों के देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव; तुम्हारी ही जोति है चांद सूरज पृथ्वी आकाश में; तुम्हीं करते हो सब ठौर प्रकाश; तुम्हारी माया है प्रबल, उस ने सारे संसार को भुला रक्खा है; त्रिलोकी में सुर नर मुनि ऐसा कोई नहीं जो उस के हाथ से बचा हो. महाराज! इतना कह पुनि बसुदेव जी बोले कि नाथ!

कोउ न भेद तुम्हारे जाने, बेदन मांझ अगाध बखाने.

शत्रु मित्र कोऊ न निहारै, पुत्र पिता न सहोदर प्यारै.
पृथ्वी भार हरन अवतारै, जन के हेत भेष बहु धरै.

महाराज! ऐसे कह बसुदेव जी बोले कि हे करुना सिंधु दीन बंधु! जैसे आप ने अनेक अनेक पतितों को तारा, तैसे कृपा कर मेरा भी निस्तार कीजे, जो भव सागर के पार हो आप के गुन गाऊं. श्री कृष्णचंद बोले कि हे पिता! तुम ज्ञानी होय पुत्रों की बड़ाई क्यों करते हो, टुक आप ही मन में बिचारो कि भगवत की लीला अपरंपार है, उस का पार किसी ने आज तक नहीं पाया; देखो वह,

घट घट माहि जोति व्है रहै, ताही सों जग निर्गुन कहै.
आप ही सिरजे आप ही हरै, रहै मिल्यौ बांध्यौ नहीं परै.
भू आकाश बायु जल जोति, पंच तत्वते देह जो होति.
प्रभु की शक्ति सबनि में रहै, बेद माहिं बिधि ऐसें कहै.

महाराज! इतनी बात श्री कृष्णचंद जी के मुख से सुनते ही, बसुदेव जी मोह बस होय चुपकर हरि का मुख देख रहे; तब प्रभु वहां से चल माता के निकट गये तो पुत्र का मुख देखते ही देवकी जी बोलीं, हे श्री कृष्णचंद आनंदकंद! ऐक दुख मुझे जब न तब साले है. प्रभु बोले सो क्या? देवकी जी ने कहा कि पुत्र! तुम्हारे छह बड़े भाई जो कंस ने मार डाले हैं, उन का दुख मेरे मन से नहीं जाता.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! बात के कहते श्री कृष्णचंद जी इतना कह पाताल पुरी को गये, कि माता! तुम अब मत कुढ़ो, मैं अपने भाइयों को अभी जाय ले आता हूं. प्रभु के जाते ही समाचार पाय, राजा बलि आये, अति धूमधाम से पाटंबर के पांवड़े डाल, निज मंदिर में लिवाय लेगया; आगे सिंहासन पर बिठाय, राजा बलि ने चंदन अक्षत पुष्प चढ़ाय, धूप दीप नैवेद्य धर श्री कृष्णचंद की पूजा की; पुनि सनमुख खड़ा हो हाथ जोड़ अति स्तुति कर बोला, कि महाराज! आप का आना यहां कैसे हुआ? हरि बोले, कि राजा! सतयुग में मरीचि ऋषि नाम ऐक ऋषि बड़े ब्रह्मचारी, ज्ञानी, सत्यबादी, औ हरि भक्त थे; उस की स्त्री का नाम उरना; तिसके छह बेटे; ऐक दिन वे छहों भाई तरुन अवस्था में प्रजापति के सनमुख आ हंसे, उन को हंसता देख प्रजापति ने महा कोप कर यह श्राप दिया, कि तुम जाय अवतार ले असुर हो. महाराज! इस बात के सुनते ही ऋषि पुत्र अति भय खाय, प्रजापति के चरनों पर जाय गिरे, औ बहुत गिड़गिड़ाय अति बिनती कर बोले, कि कृपा सिंधु! आप ने श्राप तो दिया, पर अब कृपा कर कहिये, कि इस श्राप से

हम कब मोक्ष पावेंगे. उन के दीन बचन सुन प्रजापति ने दयाल हो कहा, कि तुम श्री कृष्णचंद के दरसन पाय मुक्ति होगे. महाराज!

इतनौ कहत प्रान तज गए, ते हरिनाकुस पुत्र जु भए.
पुनि बसुदेव के जन्मे जाय, तिन कौं हत्यौ कंस ने आय.
मारत तिन्हैं माया लै आई, इह ठां रखि गई सुखदाई.

उन का दुख माता देवकी करती हैं, इसी लिये हम यहां आए हैं, कि अपने भाइयों को ले जाय माता को दीजे, औ उन के चित्त की चिंता दूर कीजे. श्री सुकदेव जी बोले कि राजा! इतना बचन हरि के मुख से निकलते ही राजा बलि ने छहों बालक ला दिये, औ बहुत सी भेटें आगे धरीं; तब प्रभु वहां से भाइयों को साथ ले माता के पास आए; माता पुत्रों को देख अति प्रसन्न हुई. इस बात को सुन सारी पुरी में आनंद हुआ, औ उन का स्राप छूटा. इति

CHAPTER. LXXXVI.

श्री सुकदेव जी बोले कि राजा! जैसे द्वारिका से अर्जुन श्री कृष्णचंद जी की बहन सुभद्रा को हरि ले गये, औ जैसे श्री कृष्णचंद मिथला में जाय रहे, तैसे मैं कथा कहता हूं, तुम मन लगाय सुनौ. देवकी की बेटी श्री कृष्ण जी से छोटी, जिस का नाम सुभद्रा, जब ब्याहन जोग हुई, तब बसुदेव जी ने कितने एक यदुबंसी औ श्री कृष्ण बलराम जी को बुलायके कहा, कि अब कन्या ब्याहन जोग भई, कहो किसे दें. बलराम जी बोले कि कहा है, ब्याह बैर प्रीति समान से कीजे; एक बात मेरे मन में आई है कि यह कन्या दुर्योधन को दीजे तो जगत में जस औ बड़ाई लीजे. श्री कृष्णचंद ने कहा, मेरे बिचार में आता है जो अर्जुन को लड़की दें तो संसार में जस लें. श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! बलराम जी के कहने पर तो कोई कुछ न बोला, पर श्री कृष्णचंद जी के मुख से बात निकलते ही सब पुकार उठे, कि अर्जुन को कन्या देना अति उत्तम है. इस बात के सुनते ही बलराम जी बुरा मान वहां से उठ गए, औ तिन का बुरा मानना देख सब लोग चुप रहे. आगे ये समाचार पाय अर्जुन सन्यासी का भेष बनाय, दंड कमंडल ले, द्वारिका में जाय, एक भली सी ठौर देख मृगछाला बिछाय आसन मार बैठा.

चार मास बरषा भरि रह्यौ, काहू मरम न ताकौ लह्यौ.
अतिथ जान सब सेवन लागे, बिष्नु हेतु तासों अनुरागे.
ताकौ भेद कृष्ण सब जान्यौ, काहू सों तिन नाहि बखान्यौ.

महाराज! एक दिन बलदेव जी भी जिमाने अर्जुन को साथ कर घर लिवाय ले गये; जों अर्जुन भोजन करने बैठे, तों चंद्र बदनी, मृग लोचनी, सुभद्रा जी दृष्ट आईं; देखते ही उधर तो अर्जुन मोहित हो सब की दीठ बचाय फिर फिर देखने लगे, औ मन ही मन यह बिचार करने, कि देखिये बिधाता कब जन्मपत्री की बिधि मिलावे; औ इधर सुभद्रा जी इन के रूप की छटा देख रीझ मन मन यों कहती थीं, कि

हे कोऊ नृपति नाहिं सन्यासी, का कारन यह भयो उदासी.

महाराज! इतना कह उधर तो सुभद्रा जी घर में जाय पति के मिलन की चिंता करने लगीं; औ इधर भोजन कर अर्जुन अपने आसन पर आय, प्रिया के मिलन को अनेक अनेक प्रकार की भावना करने लगे. इस में कितने दिन पीछे एक समैं शिवरात्र के दिन, सब पुरबासी क्या स्त्री क्या पुरुष नगर के बाहर शिव पूजन को गये; तहां सुभद्रा जी अपनी सखी सहेलियों समेत गईं; उन के जाने का समाचार पाय अर्जुन भी रथ पर चढ़, धनुष बान ले, वहां जाय उपस्थित हुए. महाराज! जों शिव पूजन कर सखियों को साथ ले सुभद्रा जी फिरीं, तों देखते ही सोच संकोच तज अर्जुन ने हाथ पकड़ उठाय सुभद्रा को रथ में बैठाय अपनी बाट ली.

सुनिकै राम कोप अति कर्‍यौ, हल मूसल लै कांधे धर्‍यौ.
राते नयन रक्त से कारे, घन सम गाज बोल उच्चारे.
अबही जाय प्रलै मैं करि हौं, भुव उठायकर माथे धरि हौं.
मेरी बहन सुभद्रा प्यारी, ताकौं कैसे हरै भिखारी.
अब हौं जहां सन्यासी पाऊं, तिनकौ सब कुल खोज मिटाऊं.

महाराज! बलराम जी तो महा क्रोध में बक झक रहे ही थे, कि इस बात के समाचार पाय प्रद्युम्न अनिरुद्ध संबू औ बड़े बड़े यादव बलदेव जी के सनमुख आय हाथ जोड़ जोड़ बोले, कि महाराज! हमें आज्ञा होय तो जाय शत्रु को पकड़ लावैं.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जिस समय बलराम जी सब यदुबंसियों को साथ ले अर्जुन के पीछे चलने को उपस्थित हुए, उस काल श्री कृष्णचंद जी ने जाय बलदेव जी को सुभद्रा हरन का सब भेद समझाय औ अति बिनती कर कहा, कि भाई! अर्जुन एक तो हमारी फुफी का बेटा, औ दूसरे परम मित्र, उस ने जाने अनजाने, समझे बिन समझे, यह कर्म किया तो किया, पर हमें उस से लड़ना किसी भांति उचित नहीं, यह धर्म बिरुद्ध औ लोक बिरुद्ध है, इस बात को जो सुनेगा सो कहेगा, कि यदुबंसियों की प्रीति है बालू की सी भींत. इतनी बात के

सुनते ही बलराम जी सिर धुन झुंझलाकर बोले कि भाई! यह तुम्हारा ही काम है कि आग लगाय पानी को दौड़ना, नहीं तो अर्जुन की क्या सामर्थ थी जो हमारी बहन को ले जाता. इतना कह मन ही मन पछताय ताव पेच खाय बलराम जी भाई का मुख देख, हल मूसल पटक बैठ रहे, औ उन के साथ सब यदुबंसी भी.

श्री शुकदेव जी बोले कि राजा! इधर तो श्री कृष्णचंद जी ने सब को समझाय बुझाय रक्खा, औ उधर अर्जुन ने घर जाय बेद की बिधि से सुभद्रा के साथ ब्याह किया. ब्याह के समाचार पाय श्री कृष्ण बलराम जी ने वस्त्र आभूषन, दास दासी, हाथी घोड़े रथ, औ बहुत से रुपये एक ब्राह्मन के हाथ संकल्प कर हस्तिनापुर भेज दिये. आगे श्री मुरारी भक्त हितकारी रथ पर बैठ मंथिला को चले, जहां स्रुतदेव बहुलास नाम एक राजा एक ब्राह्मन दो भक्त थे. महाराज! प्रभु के चलते ही नारद वामदेव व्यास अत्रि परशुराम आदि कितने एक मुनि आनि मिले, औ श्री कृष्णचंद जी के साथ हो लिये. पुनि जिस देस में हो प्रभु जाते थे, तहां के राजा आगू आय आय पूज पूज भेट धरते जाते थे; निदान चले चले कितने एक दिनों में प्रभु वहां पधारे; हरि के आने के समाचार पाय वे दोनों जैसे बैठे थे तैसे ही भेट ले उठ धाये, औ श्री कृष्णचंद के पास आये. प्रभु का दरसन करते ही दोनों भेट धर दंडवत कर हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो अति बिनती कर बोले, कि हे कृपा सिंधु दीन बंधु! आपने बड़ी दया की, जो हम से पतितों को दरसन दे पावन किया, औ जन्म मरन का निबेड़ा चुका दिया,

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! अंतरजामी श्री कृष्णचंद उन दोनों भक्तों के मन की भक्ति देखि, दो स्वरूप धारन कर दोनों के घर जाय रहे; उन्हों ने मन मानता सब राखचाव किया, औ हरि ने कितने एक दिन वहां ठहर उन्हें अधिक सुख दिया. आगे प्रभु उन के मन का मनोरथ पूरा कर ज्ञान दृढ़ाय जब द्वारिका को चले, तब ऋषि मुनि पंथ से बिदा हुए, औ हरि द्वारिका में जा बिराजे. इति

CHAPTER. LXXXVII.

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा कि महाराज! आप जो आगे कह आये कि बेद ने परम ईश्वर की स्तुति की, सो निर्गुन ब्रह्म की स्तुति बेद ने क्योंकर की, यह मुझे समझाकर कहो जो मेरे मन का संदेह जाय. श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! सुनिये, कि जिसने बुद्धि इंद्री मन प्रान धर्म अर्थ काम मोक्ष को बनाया है, सो प्रभु सदा निर्गुन रूप रहता

है; पर जब ब्रह्मांड रचता है, तब सरगुन स्वरूप होता है; इस से निर्गुन सगुन वही एक ईश्वर है.

इतना कह पुनि शुकदेव मुनि बोले कि राजा! जो प्रश्न तुम ने की, सोई प्रश्न एक समय नारद जी ने नरनारायन से की थी. राजा परीक्षित ने कहा कि महाराज! यह प्रसंग मुझे समझा कर कहिये जो मेरे मन का संदेह जाय. शुकदेव जी बोले कि राजा! सत युग में एक समैं नारद जी ने सत लोक में जाय, जहां नरनारायन अनेक मुनियों के संग बैठे तप करते थे, पूछा, कि महाराज! निराकार ब्रह्म की स्तुति वेद किस भांति करते हैं, सो कृपा कर कहिये. नरनारायन बोले, कि सुन नारद! जो संदेह तू ने मुझ से पूछा, यही संदेह एक समय जनलोक में जहां सनातनादि ऋषि बैठे तप करते थे, हुआ था; तद सनंदन मुनि ने कथा कहि सब का संदेह मिटाया. नारद जी बोले महाराज! मैं भी तो वहीं रहता हूं, जो यह प्रसंग चलता तो मैं भी सुनता. नरनारायन ने कहा, नारद जी! जब तुम सेतद्वीप में भगवत दरसन को गये थे, तभी यह प्रसंग चला था, इस से तुम ने नहीं सुना.

इतनी बात सुन नारद जी ने पूछा महाराज! वहां क्या प्रसंग चला था सो कृपा कर कहिये. नरनारायन बोले, सुन नारद! जद मुनियों ने यह प्रश्न की, तद सनंदन मुनि कहने लगे, कि सुनो, जिस समय महा प्रलय होय चौदह ब्रह्मांड जलाकार हो जाते हैं, उस समैं पूरन ब्रह्म अकेले सोते रहते हैं; जब भगवान को सृष्टि करने की इच्छा होती है, तब उन के स्वास से वेद निकल हाथ जोड़ स्तुति करते हैं, ऐसे कि जैसे कोई राजा अपने स्थान पर सोता हो, औ बंदी जन भोर ही उस का जस गाय गाय उसी को जगावें, इस लिये कि चैतन्य हो शीघ्र अपने कार्य को करे.

इतना प्रसंग कह नरनारायन बोले कि सुन नारद! प्रभु के मुख से निकल वेद यह कहते हैं, कि हे नाथ! बेग चैतन्य हो सृष्टि रचो, औ जीवों के मन से अपनी माया दूर करो; क्योंकि वे तुम्हारे रूप को पहचानें; माया तुम्हारी प्रबल है, यह सब जीवों को अज्ञान कर रखती है; जो इस से छूटे तो जीव को तुम्हारे समझने का ज्ञान हो. हे नाथ! तुम बिन इसे कोई बस नहीं कर सकता; जिस के हृदे में ज्ञान रूप हो तुम बिराजते हो, सोई इस माया को जीतता है, नहीं तो किस की सामर्थ है जो माया के हाथ से बचे; तुम सब के करता हो, सब जीव तुम्हीं से उत्पनि हो तुम्हीं में समाते हैं; ऐसे कि जैसे पृथ्वी से अनेक वस्तु हो पुनि पृथ्वी में मिल जाती हैं; कोई किसी देवता की पूजा स्तुति करे, पर वह तुम्हारी ही पूजा स्तुति होती है, ऐसे कि जैसे कोई कंचन के अनेक आभरन बनाय अनेक नाम धरे, पर वह कंचन ही है; तिसी भांति तुम्हारे अनेक रूप हैं,

और ज्ञान कर देखिये तो कोई कुछ नहीं, जिधर देखिये तिधर तुम हीं तुम दृष्ट आते हो. नाथ! तुम्हारी माया अपरंपार है; यही सत रज तम तीन गुन हो तीन स्वरूप धारन कर सृष्टि को उपजाय पाल नाश करती है; इस का भेद न किसी ने पाया, न कोई पावेगा; इस से जीव को उचित यह है कि सब बासना छोड़ तुम्हारा ध्यान करे, इसी में इस का कल्यान है. महाराज! इतना प्रसंग सुनाय नरनारायन ने नारद से कहा कि हे नारद! जब सनंदन मुनि ने पुरातन कथा कह सब के मन का संदेह दूर किया, तब सनकादि मुनियों ने वेद की बिधि से सनंदन मुनि की पूजा की.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजा! यह नारायन नारद का संबाद जो कोई सुनेगा, सो निस्संदेह भक्ति पदारथ पाय मुक्त होगा; जो कथा पूरन ब्रह्म की बेद ने गाई, सोई कथा सनंदन मुनि ने सनकादि मुनियों को सुनाई; पुनि वही कथा नरनारायन ने नारद के आगे गाई, नारद से व्यास ने पाई, व्यास ने मुझे पढ़ाई, सो मैं ने अब तुम्हें सुनाई; इस कथा को जो जन सुने सुनावेगा, सो मन मानता फल पावेगा; जो पुन्य होता है तप यज्ञ दान ब्रत तीरथ करने में, सोई पुन्य होता है इस कथा के कहने सुने में. इति

CHAPTER. LXXXVIII.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! भगवत की अद्भुत लीला है, इसे सब कोई जानता है, जो जन हरि की पूजा करे, सो दरिद्री होय, औ और देव को माने से धनवान. देखो, हरि हर की कैसी रीति है, ये लक्ष्मी पति, वे गौरी पति; ये धरे बनमाल, वे मुंडमाल; ये चक्रपानि, वे त्रिशूलपानि; ये धरनीधर, वे गंगाधर; ये मुरली बजावें, वे सींगी; ये बैकुंठ नाथ, वे कैलाश बासी; ये प्रतिपालें, वे संहारें; ये चरचें चंदन, वे लगावें भभूत; ये ओढ़ें अंबर, वे बाघंबर; ये पढ़ें बेद, वे आगम; इन का बाहन गरुड़, उन का नंदी; ये रहें ग्वाल बालों में, वे भूत प्रेतों में;

दोऊ प्रभु की उलटी रीति, जित इच्छा तित कीजे प्रीति.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! राजा युधिष्ठिर से श्री कृष्णचंद ने कहा है, कि हे युधिष्ठिर! जिस पर मैं अनुग्रह करता हूं, हौले हौले उस का सब धन खोता हूं; इस लिये कि धन हीन को भाई बंधु स्त्री पुत्र आदि सब कुटुंब के लोग तज देते हैं, तब तिसे बैराग उपजता है; बैराग होने से धन जन की माया छोड़, निरमोही हो, मन लगाय मेरा भजन करता

है; भजन के प्रताप से अटल निर्बान पद पाता है. इतना कह पुनि शुकदेव जी कहने लगे कि महाराज! और देवता की पूजा करने से मन कामना पूरी होती है, पर मुक्ति नहीं मिलती.

यह प्रसंग सुनाय मुनि ने पुनि राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! एक समय कश्यप का पुत्र बिकासुर तप करने की अभिलाषा कर जो घर से निकला, तो पंथ में उसे नारद मुनि मिले; नारद जी को देखते ही इस ने दंडवत कर, हाथ जोड़, सनमुख खड़े हो, अति दीनता कर पूछा, कि महाराज! ब्रह्मा बिस्नु महादेव इन तीनों देवताओं में शीघ्र बरदाता कौन है, सो कृपा कर कहो तो मैं उन्हीं की तपस्या करूं. नारद जी बोले, कि सुन बिकासुर! इन तीनों देवताओं में महादेव जी बड़े बरदाइक हैं; इन्हें न रीझते बिलंब, न खीजते; देखो, शिव जी ने थोड़े से तप करने से प्रसन्न हो सहस्रार्जुन को सहस्र हाथ दिया, औ अल्प ही अपराध में क्रोध कर उस का नाश किया. महाराज! इतना कह नारद मुनि तो चले गये; औ बिकासुर अपने स्थान पर आय महादेव का अति तप यज्ञ करने लगा; सात दिन के बीच उस ने छुरी से अपने शरीर का मांस सब काट काट होम दिया, आठवें दिन जब सिर काटने का मन किया, तब भोलानाथ ने आय उस का हाथ पकड़ के कहा, कि मैं तुझ से प्रसन्न हुआ, जो तेरी इच्छा में आवे सो बर मांग, मैं तुझे अभी दूंगा. इतना बचन शिव जी के मुख से निकलते ही बिकासुर हाथ जोड़कर बोला,

ऐसो बर दीजै अबै, जाके सिर धरों हाथ,
भस्म होय सो पलक में, करहु कृपा तुम नाथ!

महाराज! बात के कहते ही महादेव जी ने उसे मुंह मांगा बर दिया; बर पाय वह शिव ही के सिर पर हाथ धरने गया, उस काल भय खाय महादेव जी आसन छोड़ भागे; उन के पीछे असुर भी दौड़ा. महाराज! सदाशिव जी जहां जहां फिरे, तहां तहां वह भी उन के पीछे ही लगा आया; निदान अति ब्याकुल हो महादेव जी बैकुंठ में गये; इन को महा दुखित देख भक्त हितकारी बैकुंठ नाथ श्री मुरारी करुना निधान करुना कर बिप्र भेष धर बिकासुर के सनमुख जाय बोले, कि हे असुर राय! तुम इन के पीछे क्यों श्रम करते हो, यह मुझे समझाकर कहो. बात के सुनते ही बिकासुर ने सब भेद कह सुनाया. पुनि भगवान बोले कि हे असुर राय! तुम सा सयाना हो धोखा खाय, यह बड़े अचरज की बात है, इस नंगमुनंगे बावले भांग धतूरा खानेवाले जोगी की बात कौन सत्य माने; यह सदा छार लगाये सर्प लिपटाये, भयानक भेष किये, भूत प्रेतों को संग लिये, श्मशान में रहता है; इस की बात किस के जी में सच आवे. महाराज! यह बात कह श्री नारायन बोले कि हे असुर राय! जो तुम मेरा कहा झूठ मानो तो अपने सिर पर हाथ रख देख लो.

महाराज! प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही, माया के बस अज्ञान हो, जों बिकासुर ने अपने सिर पर हाथ रक्खा, तों जलकर भस्म का ढेर ज्ञआ. असुर के मरते ही सुरपुर में आनंद के बाजन बाजने लगे, औ देवता जैजैकार कर फूल बरसावने; विद्याधर गंधर्ब किन्नर हरि गुन गाने; उस काल हरि ने हर की अति स्तुति कर बिदा किया, औ बिकासुर को मोक्ष पदारथ दिया. श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! इस प्रसंग को जो सुने सुनावेगा, सो निस्संदेह हरि हर की कृपा से परम पद पावेगा. इति

CHAPTER. LXXXIX·

शुकदेव जी बोले कि महाराज! एक समय सरस्वती के तीर सब ऋषि मुनि बैठे तप यज्ञ करते थे, कि उन में से किसी ने पूछा, कि ब्रह्मा बिष्णु महेश इन तीनों देवताओं में बड़ा कौन है, सो कृपा कर कहो. इस में किसी ने कहा, शिव; किसी ने कहा, बिष्णु; किसी ने कहा, ब्रह्मा; पर सब ने मिल एक को बड़ा न बताया, तब कई एक बड़े बड़े मुनीशों ऋषीशों ने कहा, कि हम यों तो किसी की बात नहीं मानते, पर हां जो कोई इन तीनों देवताओं की जाकर परीक्षा कर आवे औ धर्म स्वरूपी कहै, तो उस का कहना सत्य मानें.

महाराज! यह बात सुन सब ने प्रमान की, औ ब्रह्मा के पुत्र भृगु को तीनों देवताओं की परीक्षा कर आने को आज्ञा दी. आज्ञा पाय भृगु मुनि प्रथम ब्रह्मलोक में गये, औ चुपचाप ब्रह्मा की सभा में जा बैठे, न दंडवत की, न स्तुति, न परिक्रमा दी. राजा! पुत्र का अनाचार देख ब्रह्मा ने महा कोप किया, औ चाहा कि श्राप दूं, पर पुत्र की ममता कर न दिया. उस काल भृगु ब्रह्मा को रजोगुन में आसक्त देख वहां से उठ कैलाश में गया, औ जहां शिव पार्वती बिराजते थे, तहां जा खड़ा रहा. इसे देख शिव जी खड़े हो जों हाथ पसार मिलने को ऊए, तों यह बैठ गया; बैठते ही शिव जी ने अति क्रोध किया, औ इस के मारने को त्रिसूल हाथ में लिया. उस समय श्री पार्वती जी ने अति बिनती कर पाओं पड़ महादेव जी को समझाया, औ कहा, कि यह तुम्हारा छोटा भाई है, इस का अपराध क्षमा कीजे. कहा है,

बालक सों जो चूक कछू परै, साध न कबहू मन में धरै.

महाराज! जब पार्वती जी ने शिव जी को समझाकर ठंडा किया, तब भृगु महादेव जी को तमोगुन में लीन देख चल खड़े ऊए. पुनि बैकुंठ में गये, जहां भगवान मनिमय कंचन के छपरखट पर फूलों की सेज में लक्ष्मी के साथ सोते थे; जाते ही भृगु ने भगवान के हृदे में एक लात ऐसी

मारी कि वे नींद से चौंक पड़े; मुनि को देख लक्ष्मी को छोड़, छपरखट से उतर, हरि भृगु जी का पांव सिर आंखों से लगाय लगे दाबने, औ यों कहने, कि हे ऋषि राय! मेरा अपराध क्षमा कीजे, मेरे हृदय कठोर की चोट तुम्हारे कोमल कमल चरन में अनजाने लगी, यह दोष चित्त में न लीजे. इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही भृगु जी अति प्रसन्न हो स्तुति कर बिदा हो वहां आए, जहां सरस्वती तीर सब ऋषि मुनि बैठे थे. आते ही भृगु जी ने तीनौं देवताओं का भेद सब ओं का तों कह सुनाया, कि.

ब्रह्मा रजस में लपटान्यौ, महादेव तामस में सान्यौ.
बिष्णु जु सात्विक मांहिं प्रधान, तिन तें बड़ो देव नहीं आन.
सुनत ऋषिन कौ संसौ गयौ, सब ही के मन आनंद भयौ.
बिष्णु प्रसंसा सब ने करी, अबिचल भक्ति हृदे में धरी.

इतनी कथा सुनाय श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! मैं अंतर कथा कहता हूं, तुम मन लगाय सुनौ. द्वारिका पुरी में राजा उग्रसेन तो धर्मराज करते थे, औ श्री कृष्णचंद बलराम उन की आज्ञाकारी; राजा के राज से सब लोग अपने अपने स्वधर्म में सावधान, काज कर्म में सज्ञान रहते, औ आनंद चैन करते थे; तहां ऐक ब्राह्मन भी अति सुशील धरमिष्ट रहता था. ऐक समैं उस के पुत्र हो मर गया; वह उस मरे पुत्र को ले राजा उग्रसेन के द्वार पर गया, औ जो उस के मुंह में आया सो कहने लगा, कि तुम बड़े अधर्मी दुष्कर्मी पापी हो, तुम्हारे ही कर्म धर्म से प्रजा दुख पाती है, औ मेरा भी पुत्र तुम्हारे ही पाप से मरा.

महाराज! इसी भांति की अनेक अनेक बातें कह मरा लड़का राजद्वार पर रख, ब्राह्मन अपने घर आया; आगे उस के आठ बेटे हुऐ, औ आठों को वह उसी रीति से राजद्वार पर रख आया; जब नवां पुत्र होने को हुआ, तब वह ब्राह्मन फिर राजा उग्रसेन की सभा में जा श्री कृष्णचंद जी के सनमुख खड़ा हो पुत्रों के मरने का दुख सुमिर सुमिर रोरो यों कहने लगा, धिःकार है राजा औ इस के राज को! पुनि धिःकार है उन लोगों को जो इस अधर्मी की सेवा करते हैं! औ धिःकार है मुझे जो इस पुरी में रहता हूं! जो इन पापियों के देस में न रहता, तो मेरे पुत्र बचते, इन्हीं के अधर्म से मेरे पुत्र मरे, औ किसी ने उपराला न किया.

महाराज! इसी ढब की सभा के बीच खड़े हो ब्राह्मन ने ऐसे बहुत सी बातें कहीं, पर कोई कुछ न बोला; निदान श्री कृष्णचंद के पास बैठा सुन सुन घबराकर अर्जुन बोला, कि हे देवता! तू किस के आगे यह बात कहे है, औ क्यों इतना खेद करे है, इस सभा में कोई धनुर्धर नहीं

जो तेरा दुख दूर करे; आज कल के राजा आपकाजी हैं, पर दुःख निवारन नहीं जो प्रजा को सुख दें, औ गौ ब्राह्मन की रक्षा करें. ऐसे सुनाय, पुनि अर्जुन ने ब्राह्मन से कहा, कि देवता! अब तुम जाय अपने घर निचिंत हो बैठो, जब तुम्हारे लड़का होने का दिन आवे, तब तुम मेरे पास आइयो, मैं तुम्हारे साथ चलूंगा, औ लड़के को न मरने दूंगा. महाराज! इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मन खिजलायके बोला, कि मैं इस सभा के बीच श्री कृष्ण बलराम प्रद्युम्न औ अनिरुद्ध छुड़ाय ऐसा बलवान किसी को नहीं देखता, जो मेरे पुत्र को काल के हाथ से बचावे. अर्जुन बोला कि ब्राह्मन! तू मुझे नहीं जानता कि मेरा नाम धनंजय है, मैं तुम से प्रतिज्ञा करता हूं, कि जो मैं तेरा सुत काल के हाथ से न बचाऊं, तो तेरे मरे हुए लड़के जहां पाऊं तहां से ले आय तुझे दिखाऊं, औ वे भी न मिले तो गांडीव धनुष समेत अपने तईं अग्नि में जलाऊं. महाराज! प्रतिज्ञा कर जब अर्जुन ने ऐसे कहा, तब वह ब्राह्मन संतोष कर अपने घर गया. पुनि पुत्र होने के समय बिप्र अर्जुन के निकट आया; उस काल अर्जुन धनुष बान ले उस के साथ उठ धाया. आगे वहां जाय बिप्र का घर अर्जुन ने बानों से ऐसा छाया, कि जिस में पवन भी प्रवेश न कर सके, औ आप धनुष बान लिये उस के चारों ओर फिरने लगा.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! अर्जुन ने बहुत सा उपाय बालक के बचाने को किया, पर न बचा; और दिन बालक होने के समय रोता था, उस दिन सांस भी न लिया, बरन पेट ही से मरा निकला. मरे लड़के का होना सुन लज्जित हो अर्जुन श्री कृष्णचंद के निकट आया, औ उस के पीछे ब्राह्मन भी. महाराज! आते ही ऐ ऐ वह ब्राह्मन कहने लगा, कि रे अर्जुन! धिक्कार है तुझे औ तेरे जीतब को, जो मिथ्या बचन कह संसार में लोगों को मुख दिखाता है. अरे नपुंसक! जो तू मेरे पुत्र को काल से न बचा सकता था, तो तैंने प्रतिज्ञा क्यों की थी कि मैं तेरे पुत्र को बचाऊंगा, औ न बचासकूंगा तो तेरे मरे हुए सब पुत्र ला दूंगा.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही अर्जुन धनुष बान ले वहां से उठ चला चला संजमनी पुरी में धर्मराज के पास गया; इसे देख धर्मराज उठ खड़ा हुआ, औ हाथ जोड़ स्तुति कर बोला कि महाराज! आप का आगमन यहां कैसे हुआ? अर्जुन बोला, कि मैं अमुक ब्राह्मन के बालक लेने आया हूं, धर्मराज ने कहा, कि यहां वे बालक नहीं आये. महाराज! इतना बचन धर्मराज के मुख से निकलते ही अर्जुन वहां से बिदा हो सब ठौर फिरा, पर उस ने ब्राह्मन के लड़कों को कहीं न पाया; निदान अछता पछता द्वारिका पुरी में आया, औ चिता बनाय धनुष बान समेत जलने को उपस्थित हुआ. आगे अग्नि जलाय अर्जुन जों चाहे कि चिता पर बैठे, तों श्री मुरारी गर्बप्रहारी

ने आय हाथ पकड़ा, औ हंसके कहा, कि हे अर्जुन! तू मत जलै, तेरी प्रतिज्ञा मैं पूरी करूंगा, जहां उस ब्राह्मन के पुत्र होंगे, तहां से ला दूंगा. महाराज! ऐसे कह त्रिलोकी नाथ रथ पर बैठ अर्जुन को साथ ले पूरब दिसा की ओर को चले, औ सात समुद्र पार हो लोकालोक पर्बत के निकट पहुंचे; वहां जाय रथ से उतर एक अति अंधेरी कंदरा में पैठे; उस समय श्री कृष्नचंद जी ने सुदरसन चक्र को आज्ञा की, वह कोटि सूर्य का प्रकाश किये प्रभु के आगे आगे महा अंधकार को टालता चला.

तम तज केतिक आगे गए, जल में तबै जु पैठत भए.
महा तरंग तासु में लसे, मूंदि आंखि ये ता में धसे.
पहुंचे जुते शेष जी जहां, कृष्न अरु अर्जुन पहुंचे तहां.

जाते ही आंख खोलकर देखा कि एक बड़ा लंबा चौड़ा ऊंचा कंचन का मनिमय मंदिर अति सुंदर है, तहां शेष जी के सीस पर रतन जड़ित सिंहासन धरा है, तिस पर स्याम घन रूप, सुंदर स्वरूप, चंद बदन, कंवल नयन, किरीट कुंडल पहने, पीत बसन ओढे, पीतांबर काछे, बनमाल, मुक्तमाल डाले, आप प्रभु मोहनी मूरति बिराजे हैं, औ ब्रह्मा रुद्र इंद्र आदि सब देवता सनमुख खड़े स्तुति करते हैं. महाराज! ऐसा स्वरूप देख अर्जुन औ श्री कृष्नचंद जी ने प्रभु के सोंहीं जाय, दंडवत कर, हाथ जोड़, अपने जाने का सब कारन कहा; बात के सुनते ही प्रभु ने ब्राह्मन के बालक सब मंगाय दीने, औ अर्जुन ने देख भाल प्रसन्न हो लीने, तब प्रभु बोले,

तुम दोऊ मेरी कला जु आहि, हरि अर्जुन देखौ चित चाहि.
भार उतारन भुव पर गए, साधु संत कौं बहु सुख दए.
असुर दैत्य तुम सब संहारे, सुर नर मुनि के काज संवारे.
मेरे अंस जु तुम में द्वै हैं, पूरन काम तुम्हारे ह्वै हैं.

इतना कह भगवान ने अर्जुन औ श्री कृष्न जी को बिदा किया; ये बालक ले पुरी में आए, द्विज के पुत्र द्विज ने पाए; घर घर आनंद मंगल भए बधाए. इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज!

जो यह कथा सुने धर ध्यान, तिन के पुत्र होंय कल्यान. इति

CHAPTER. XC.

श्री सुकदेव जी बोले कि महाराज! द्वारिका पुरी में श्री कृष्नचंद सदा बिराजें; रिद्धि सिद्धि

सब यदुबंसियों के घर घर रजें; नर नारी बसन आभूषन ले नव बेष बनावें; चोआ चंदन अरगजा सुगंध लगावें; महाजन हाट बाट चौहटे झाड़ बुहार छिड़कावें, तहां देस देस के ब्योपारी अनेक अनेक पदारथ बेचने को लावें; जिधर तिधर पुरबासी कुतूहल करें; ठौर ठौर ब्राह्मन बेद उचरें; घर घर में लोग कथा पुरान सुने सुनावें; साध संत आठों जाम हरि जस गावें; सारथी रथ घुड़ बहल जोत जोत राजद्वार पर लावें; रथी महारथी गजपति अश्वपति सूर बीर रावत जोधा यादव राजा को जुहार करने आवें; गुनी जन नाचें गावें बजावें रिझावें; बंदी जन चारन जस बखान कर कर हाथी घोड़े बस्त्र शस्त्र अन धन कंचन के रतन जटित आभूषन पावें.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज! उधर तो राजा उग्रसेन की राजधानी में इसी रीति से भांति भांति के कुतूहल हो रहे थे, औ इधर श्री कृष्णचंद आनंदकंद सोलह सहस्र एक सौ आठ युवतियों के साथ नित्य बिहार करें; कभी युवतियां प्रेम में आसक्त हो प्रभु का बेष बनाव करें; कभी हरि आसक्त हो युवतियों को सिंगारें. और जो परस्पर लीला क्रीड़ा करें सो अकथ हैं, मुझ से कही नहीं जातीं, वह देखे ही बनि आवे. इतना कह सुकदेव जी बोले कि महाराज! एक दिन उस समय श्री कृष्णचंद सब युवतियों के साथ बिहार करते थे, औ प्रभु के नाना प्रकार के चरित्र देख किन्नर गंधर्व बीन पखावज भेर दुंदुभी बजाय बजाय गुन गाते थे, और एक समा हो रहा था, कि इस में बिहार करते करते जो कुछ प्रभु के मन में आया, तो सब को साथ ले सरोवर के तीर जाय नीर में पैठ जल क्रीड़ा करने लगे. आगे जल क्रीड़ा करते करते सब स्त्रीं श्री कृष्णचंद के प्रेम में मगन हो तन मन की सुरत भुलाय, एक चकवा चकवी को सरोवर के वारपार बैठे बोलते देख बोलीं,

हे चकई तू दुख क्यों रोवै, पिय बियोग तैं रैन न सोवै.
अति ब्याकुल ह्वै पियहि पुकारे, हम लौं तू निज पियहि संम्हारे.
हम तो तिन की चेरी भईं, ऐसें कहि आगे कों गईं.

पुनि समुद्र से कहने लगीं, कि हे समुद्र! तू जो लंबी सांस लेता है, औ रात दिन जागता है, सो क्या तुझे किसी का बियोग है, कै चौदह रत्न गये का सोग है. इतना कह फिर चंद्रमा को देख बोलीं, हे चंद्रमा! तू क्यों तन छीन मन मलीन हो रहा है, क्या तुझे राजरोग हुआ जो दिन दिन घटता बढ़ता है, कै श्री कृष्णचंद को देख जैसे हमारी गति मति भूलती है, तैसे तेरी भी भूली है.

इतनी कथा कह श्री सुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज! इसी भांति सब युवतियों ने

पवन, मेघ, कोकिल, पर्वत, नदी हंस से अनेक अनेक बातें कहीं, सो जान लीजे. आगे सब स्त्री श्री कृष्णचंद के साथ बिहार करें, औ सदा सेवा में रहें, प्रभु के गुन गावें, औ मन बांछित फल पावें; प्रभु गृहस्थ धर्म से गृहस्थाश्रम चलावें. महाराज! सोलह सहस्र एक सै आठ श्री कृष्णचंद की रानी जो प्रथम बखानी, तिन में एक एक रानी के दस दस पुत्र औ एक एक कन्या थी, औ उन की संतान अनगिनत ऊई, सो मेरी सामर्थ नहीं जो तिन का बखान करूं; पर मैं इतना जानता हूं, कि तीन करोड़ अट्ठासी सहस्र एक सै चटसाल थीं, श्री कृष्णचंद की संतान के पढ़ाने को, औ इतने ही पांडे थे. आगे श्री कृष्णचंद जी के जितने बेटे पोते नाती ऊए, रूप बल पराक्रम धन धर्म में कोई कम न था, एक एक से बढ़कर था, उन का बरनन मैं कहां तक करूं. इतना कह ऋषि बोले महाराज! मैं ने ब्रज औ द्वारिका की लीला गाई, यह है सब की सुखदाई; जो जन इसे प्रेम सहित गावेगा, सो निःसंदेह भक्ति मुक्ति पदारथ पावेगा; जो फल होता है तप यज्ञ दान ब्रत तीरथ स्नान करने से, सो फल मिलता है हरि कथा सुनने सुनाने से. इति संपूर्णम्

संवत ससि बसु गय छिती, माघ पाख अंधियार.
छप्यौ ग्रंथ पुनि सोधि यह, तिथि बारसि रतवार.

ईसा सन ईश्वर नयन अयन गयन भुई लेख, मास जनेवरी सोरहीं छपा ग्रंथ यह पेख.

A

VOCABULARY,

K,HUREE BOLEE AND ENGLISH,

OF THE

PRINCIPAL WORDS

OCCURRING IN

THE PREM SAGUR.

CALCUTTA:

PRINTED AT THE HINDOOSTANEE PRESS,

1825.

WELLCOME INSTITUTE LIBRARY

A VOCABULARY,

KHURIEE BOLEE AND ENGLISH,

OF THE

PRINCIPAL WORDS

OCCURRING IN

THE PREM SAGUR.

अंकु *unk*

S. अ *u*, An inseparable particle, signifying negation, or privation; as अधर्म *udhurm*, injustice, from धर्म justice. As a negative prefix to words beginning with a vowel, अ is changed to अन्, as अ and अंत, form अनंत *ununt*.

S. अंकवार *unkwar*, f. An embrace, the bosom. अंकवार भरना *unkwar bhurna*, v. a. To embrace.

S. अंकस *unkus* } (S. अंकुश) m. The iron
S. अंकुस *unkoos*, } hook, with which elephants are guided, or driven.

अंत *unt*

S. अंगुरी *ungooree*, (S. अंगुली) f. A finger.

S. अंगीकारकरना *ungeekar-kurna*, v. a. To accept, to receive, to agree to.

K. अंगोछा *ungochha*, m. A cloth with which *Hindoos* wipe themselves after bathing; a towel.

S. अंत *unt*, 1 m. End, completion. 2 adv. After all, at last.

S. अंतर *untur*, 1 m. Intermediate space, interval. 2 Heart. 3 Difference. 4 Other.

S. अंतरगति *unturguti*, f. The emotions of the heart, inward sensations. (अंतर

within, and गति motion.)

S. अंतरिक्ष *unturiksh*, or *unturichh*, } m.
S. अंतरीक्ष *untureechh*, }
The sky or atmosphere.

S. अंतर्जामी *unturjamee*, Acquainted with the heart. (An epithet of the deity; S. अंतर the heart, and जामी who knows.)

S. अंतर्ध्यान होना *unturdhyan-hona*, v. n. To vanish, to disappear, to be concealed. (From S. अंतर्द्धान *unturdhan*, disappearance, concealment.)

S. अंतर्पट *unturput*, } m. A curtain, a
S अंतरपट *unturput*, } skreen. (अंतर between, and पट cloth.)

S. अंतरहोना *untur-hona*, v. n. See अंतर्ध्यान होना.

S. अंधाकुआ *undha kꝏa*, } m. A well over-
S. अंधाकूप *undha koop*, } grown by bushes or weeds. (अंध dark, and कुआ or S. कूप a well.)

K. अंधेर *undher*, m. Injustice, tyranny, oppression. अंधेरकरना *undher kurna*, v. a. To act unjustly, to tyrannize, to oppress.

S. अंधेरा *undhera*, (S. अंधकार) adj. Dark.

S. अन्न *unn*, m. Food, grain.

S. अंब *umb*, (S. आम्र) m. A mangoe, a mangoe tree.

S. अंबर *umbur*, [1] m, Cloth. [2] The sky or atmosphere.

A. अंबारी *umbaree*, (A. عماری) f. A litter, (used on an elephant, or camel.)

S. अंबिका *umbika*, f. A name of the goddess Parbutee.

S. अंस *uns*, (S. अंश) m. A part, division, portion, share.

K. अऊत *uoot*, [1] m. One who has no offspring. [2] Met. An unmarried man.

S. अकथ *ukuth*, adj. Unspeakable, unutterable, unfit to be spoken, obscene. (S. अ neg. and कथ्य fit to be spoken.)

S. अकवार *ukwar*, See अंकवार.

S. अकर्म *ukurm*, m. Bad action, sin, vice. (अ priv. and कर्म action.)

S. अकाम *ukam*, } adj. Unprofitable,
S. अकारथ *ukaruth*, } fruitless, yielding no return, vain.

S. अकाल *ukal*, [1] m. A famine, a general scarcity. [2] Unseasonable, premature. (अ priv. and काल time.)

S. अकुलाना *ukꝏlana*, v. n. To be agitated, distracted, confused, confounded. (From S. आकुल.)

S. अकुलीना *ukꝏleena*, adj. Not noble,

plebeian, ignoble, of a mean extraction. (अ priv. and कुलीन noble.)

S. अखल uk,hul, adj. See अखिल.

S. अखंड uk,hund, adj. Unbroken, whole, entire. (अ neg. and खड broken.)

K. अखारा uk,hara, ¹ m. A palœstra, or place for wrestling, a scene. ² Court, circus.

S. अखिल uk,hil, adj. All, the whole, every, entire. (अ neg. and खिल separated.)

S. अखैबृक्ष uk,hue brichch,h, See अक्षैवृक्ष.

S. अक्षत uchch,hut, or ukshut, m. Whole or unbroken rice used in oblations. (अ neg. and क्षत wounded.)

S. अक्षैवृक्ष uch,hue-brichch,h, or ukshue briksh, m. An undecayable tree, (S. अ priv. क्षय destruction, and वृक्ष a tree.)

S. अक्षौहिणी uchch,huohinee, or ukshuohinee, f. A complete army consisting of 109,350 foot, 65,610 horse, 21,870 chariots, and 21,870 elephants.

S. अगम ugum, adj. Impassable, unfordable, inaccessible, unaccomplishable, incomprehensible. (S. अ neg. and गम्य passable, accessible.)

S. अगहन ug-hun, (S. अग्रहायण) m. The name of an *Hindoo* month. (Part of November and December.)

K. अगाऊजाना uga,oo-jana, v. a. To advance to meet a person.

S. अगाध ugad,h, adj. Bottomless, unfathomable, very deep. (अ priv. and गाध fixed place.)

S. अगोचर ugochur, adj. Imperceptible, invisible. (अ neg. and गोचर perceptible.)

K. अगौनीकरना uguonee kurna, v. a. To advance to meet the bridegroom.

S. अग्नि ugni, f. Fire.

S. अग्निसंस्कार ugni sungskar, m. Funeral ceremonies, as burning a dead body, &c. (अग्नि fire, and संस्कार consecration.)

S. अघ ug,h, m. Sin, guilt, wickedness.

K. अघाना ug,hana, ¹ v. n. To surfeit, to be satiated. ² adj. Satiated.

K. अचंभा uchumb,ha, m. Wonderful thing, cause of astonishment.

S. अचरज uchruj, (S. आश्चर्य) m. Wonder, astonishment.

S. अचल uchul, ¹ adj. Immoveable, fixed. ² m. A mountain. (अ neg. and चल what goes.)

K. अचानक uchanuk, adv. Suddenly, unawares, unexpectedly.

S. अचाना uchana, v. a. To rinse the mouth after eating. (from S. आचमन)

S. अचार uchar, (S. आचार) m. Conduct,

common practice, usage, a rule of conduct.

S. अचेतहोना *uchet hona* v. n. To be insensible, to be thoughtless.

K. अछत *uch,hut,* pres. part. Remaining, existing, continuing.

K. अछताना पछताना *uch,htana puch,htana,* v. n. To regret, to lament, to repent of.

S. अज *uj,* (S. अद्य) [1] adv. To-day, now. [2] m. A he goat.

S. अजगर *ujgur,* m. A boa, or large serpent. (S. अजगर; अज a goat, and गर who swallows.)

S. अजगुत *ujgoot,* See अद्भुत.

S. अजर *ujur,* adj. Not subject to decrepitude or the infirmities of age, undecayable. (अ neg. and जरा decay.)

S. अजहू *uj-hoo,* adv. To-day also, even now, just now. (अज q. v. and हू an emphatic particle, or particle of identification.)

S. अजान *ujan,* adj. See अज्ञान.

S. अजिन *ujin,* m. A hide, used as a seat, bed, &c. by the religious student; generally the hide of an antelope.

S. अजीत *ujeet,* adj. Invincible. (S. अ neg. and जित conquered.)

S. अज्ञा *ugnya,* (S. आज्ञा) f. Command, order.

S. अज्ञान *ugyan,* adj. Ignorant, simple, innocent. (अ priv. and ज्ञान knowledge.)

S. अज्ञानता *ugyanuta,* f. Ignorance, simplicity, innocence. (अ priv. and ज्ञानता knowledge.)

K. अटकल *utkul,* [1] f. Guess, conjecture, judgement, opinion. [2] Quantity, size.

S. अटन *utun,* m. plur. of अटा q. v.

S. अटना *utna,* v. n. [1] To be contained. [2] To be filled. [3] To wander, to perambulate, to walk about. (From S. root अट to go.)

S. अटल *utul,* adj. Immoveable, fixed; of determined resolution. (अ neg. and टल to be agitated or confused.)

K. अटपटी *utputee,* adj. Inconsiderate, irregular, unstudied, thoughtless.

S. अटा *uta,* (S. अट्ट) f. An upper room, a balcony.

K. अड *ur,* f. Contention, contrariety, obstinacy.

S. अडोल *udol,* adj. Immoveable, unshaken. (अ neg. and S. डोल what swings.)

S. अति *uti,* adv. Very, very much, exceedingly.

S. अतिथ *utit,h,* (S. अतिथि) m. A guest.

S. अतिसार *utisar,* m. Diarrhœa, or dysentery.

S. अतीत *uteet,* adj. Past, elapsed.

S. अत्र *utru,* adv. In this place, here, herein.

S. अथ *ut,hu,* conj. or inceptive particle; it serves to introduce a remark, a question, an affirmation, &c. and corresponds to, now, (inceptive or premising), thus, so, further, moreover, &c.

K. अथाईं *ut,ha,een,* f. A place where people meet to converse and amuse themselves.

S. अथाह *ut,hah,* adj. Unfathomable, bottomless, very deep. (S. अ priv. and स्थाय place.)

S. अद्भुत *udb,hoot,* adj. Surprising, wonderful.

S. अधबना *ud,h-buna,* adj. Half made, half prepared.

S. अधबर *ud,h-bur,* adv. Half way, in the middle.

S. अधम *ud,hum,* adj. Mean, vile, wretched, contemptible.

S. अधर *ud,hur,* [1] m. The lip. [2] (K.) Empty space, the space between heaven and earth.

S. अधरामृत *ud,huramritu,* m. The nectar of the lips. (अधर and अमृत. q. v.)

S. अधर्म *ud,hurmu,* m. Injustice, sin, crime. (अ priv. and धर्म्म virtue, or moral merit.)

S. अधर्मी *ud,hurmee,* adj. Unjust, sinful, criminal.

S. अधिक *ud,hik,* adj. More, greater, exceeding, additional, augmented.

S. अधिकाई *ud,hika,ee,* (S. आधिक्य) f. Increase, augmentation, excess, abundance.

S. अधिकार *ud,hikar,* m. A kingdom, a government, an estate, a right, a privilege, an inheritance.

S. अधिकारी *ud,hikaree,* adj. [1] Possessing a right or title to. [2] m. A proprietor, one invested with power and authority.

S. अधिराज *ud,hi-raj,* m. A great king, a sovereign, an emperor. (अधि a particle implying superiority, and राज a king.)

S. अधीन *ud,heen,* adj. [1] Submissive, obedient. [2] Dependent, subject to the controul of another, subservient.

S. अधीनता *ud,heenuta,* f. [1] Submission, obedience. [2] Servitude, subjection.

S. अधीर *ud,heer,* adj. Hasty, precipitate, irresolute, unsteady. (अ priv. and धीर firm, steady.)

S. अधीरता *ud,heerta,* f. Haste, precipitation, irresolution, unsteadiness. (अ neg.

धीरता firmness.)

K. अधूरा *ud,hoora*, adj. Half ready, unfinished; immature (a fœtus). अधूराजाना *ud,hoora jana*, v. n. To miscarry, (a female.)

S. अध्यक्ष *ud,hyuksh*, or *ud,hyuchh*, m. A master, a lord, a chief, a governor, a superintendant.

S. अध्याय *ud,hyayu*, m. A chapter or section of a book.

S. अनंग *unung*, m. A name of Kamu, the *Hindoo* god of love. (अन priv. and अंग body, bodiless: having been reduced to ashes, by the eye of Shivu, for having disturbed his devotions, and rendered him enamoured of Parbutee.)

S. अनंत *ununt*, [1] adj. Endless, eternal. [2] m. The chief of the *Nagus*, or serpent race, that inhabit the infernal regions: the couch and constant attendant of Vishnoo. (अन priv. and अंत end.)

K. अनखाना *unk,hana*, v. n. To be angry, or displeased, to be peevish or fretful.

S. अनघ *unug,h*, adj. Sinless, innocent. (अन् neg. and अघ sin guilt.)

K. अनट *unut*, f. A knot.

S. अनत *unut*, (S. अन्यत्र) adv. Elsewhere, in another place.

S. अनधन *und,hun*, m. Wealth, both in grain and corn. (S. अन्न food, and धन wealth.)

S. अनाचार *unachar*, m. Improper conduct, neglect of moral or religious observance. (अन् priv. and आचार conduct.)

S. अनीति *uneeti*, f. Injustice, immorality. (अ priv. and नीति justice, morality.)

S. अनुग *unoog*, f. A follower, a servant. (अनु after, and ग who goes.)

S. अनुचित *unoochit*, adj. Improper, unbecoming. (अन neg. and उचित proper.)

S. अनुज *unooj*, adj. Younger, junior. (अनु after, and ज to be born.)

S. अनुमान *unooman*, m. An inference, a guess, a hypothesis.

S. अनुराग *unoorag*, m. Affection, love passion.

S. अनुसरना *unoosurna*, v. n. To follow a person, to follow upon some previous circumstance. (From S. अनुसरण.)

K. अनूठा *unoot,ha*, adj. Rare, wonderful, uncommon.

S. अनूप *unoop*, adj. Incomparable. (S. अनूपमा; अन् priv. and उपमा comparison, example.)

S. अनेक *unek*, adj. Much, many, abundant. (अन् neg. and एक one.)

S. अनगनित *un-gunit,* } adj. Uncounted,
S. अनगिनत *un-ginut,* } innumerable, numberless. (S. अ priv. and गणित counted.)

S. अनजाना *unjana,* adj. Unknown, ignorant. अनजाने *unjane,* adv. Ignorantly, not knowing, uuwittingly.

S. अनमना *unmuna,* (S. उन्मनाः) adj. Thoughtful, agitated, regretting.

S. अन्यथा *unyut,ha,* adv. [1] Otherwise, in a different manner. [2] Inaccurately, untruly.

S. अनरस *unrus,* m. Coolness between friends; want of flavor or enjoyment. (S. अ priv. and रस taste, flavour.)

S. अन्यायी *unyayee,* adj. Unjust, oppressive. (अ neg. and न्यायी just.)

K. अनवट *unwut,* m. A ring furnished with little balls, worn on the great toe

K. अनसुनीकरना *unsoonee kurna,* v. n. To pretend not to hear, (what is spoken), to disregard.

K. अन्हवाना *un,hwana,* v. a. To wash, to bathe.

K. अन्हाना *un,hana,* v. n. To wash, to bathe.

S. अपजस *upujus,* m. Infamy, ignominy, dishonour. (S. अप reverse, and यश fame, reputation.)

S. अपमान *upuman,* m. Disrespect, dishonor, an affront. (अप reverse, and मान respect.)

S. अपरंपार *upurumpar,* adj. Boundless, infinite. (अ priv. पर other, and पार bound, limit, the opposite side.)

S. अपराध *upurad,h,* m. Offence, fault, transgression.

S. अपराधी *upurad,hee,* m. A criminal, a sinner, an offender.

S. अपवित्र *upubitru,* adj. Unclean, defiled, impure. (अ neg. and पवित्र clean, undefiled.)

S. अपशकुन *upshukoon,* m. Any unlucky or inauspicious object or omen, a portent. (अप bad, and शकुन omen.)

S. अपसरा *upsura,* (S. अप्सरा) f. An *Upsura,* or heavenly courtesan.

S. अपार *upar,* adj. Boundless, excessive. (अ priv. and पार.)

S. अपावन *upawun,* adj. Defiling, polluting. (अ priv. and पावन purifying.)

S. अवनी *ubunee,* f. The earth.

S. अबला *ubula,* [1] adj. Weak, powerless. [2] f. A woman. (अ priv. and बल strength.)

S. अवली *ubulee,* (S. आवलि) f. A row, a range, a continuous line.

S. अबाक ubak, adj. Dumb, silent. (S. अ priv. and वाक voice, speech.)

S. अबिनासी ubinasee, adj. Indecayable, imperishable. (S. अ priv. and विनशी destruction, annihilation.)

S. अबेर uber, f. Delay, lateness. (S. अ priv. and बेला time.)

S. अभय ub,hue, adj. Without fear, fearless. (अ priv. and भय fear.)

S. अभरन ub,hurun, (S. आभरण) m. Jewels, ornaments, decoration.

S. अभरम ub,hurum, adj. Without credit, or character, disgraced. (अ priv. and भरम credit.) अभरमकरना ub,hurum kurna, v. a. To disgrace.

S. अभागा ub,haga, adj. Unfortunate, destitute. (अ priv. and भाग्य fortune.)

S. अभिप्राय ub,hiprayu, m. Intention, design, purpose, wish, desire.

S. अभिमान ub,himan, m. Pride, haughtiness.

S. अभिमानी ub,himanee, adj. Proud, haughty.

S. अभिलाषा ub,hilak,ha or ub,hilasha, (S. अभिलाष) f. Wish, desire.

S. अभिषेक ub,hishek, m. [1] Bathing, baptizing. [2] Installation to office, usually performed by annointing among the Hindoos. (अभि prep. and root सिच to sprinkle.)

S. अभेद ub,hed, } S. अभेव ub,hew, } adj. [1] Indivisible, inseparable, impenetrable. [2] Known, public. (अ priv. भिद्य penetrable, and (K.) भेद a secret, a mystery.)

S. अभ्यास ub,hyas, Practice. exercise, study, the frequent repetition of a thing in order to fix it on the mind.

S. अमर umur, adj. Undying, immortal, everlasting. (अ neg. and मर what dies.)

S. अमराई umra,ee, f. A garden of mangoe trees. (From S. आम्रराजि a row of mangoe trees.)

S. अमर्यादा umuryad, f. Disrespect, indignity. (अ neg. and मर्यादा dignity.)

S. अमित umit, adj. Unmeasured, literately or figuratively. (अ neg. and मित measured.)

S. अमी umee, S. अमृत q. v.

S. अमुक umook, ind. Such an one, a certain person.

S. अमोघ umog,h, adj. Productive, fruitful, effectual. (अ neg. and मोघ vain, barren.)

S. अमृत umrit, m. The water of life, nectar, ambrosia. (अ neg. and मृत what is dead: *lit.* what is immortal, or what makes so.)

S. अयाना *uyana*, adj. Ignorant, unknowing, witless, simple. (From S. अ priv. and ज्ञान knowledge.)

S. अयुत *uyoot*, adj. Ten thousand.

S. अयुक्त *uyookt*, ¹ m. Violence, oppression, compulsion. ² adj. Unfit. (अ neg. and युक्त right, proper.)

K. अरगजा *urguja*, m. The name of a perfume, of a yellowish colour, compounded of several ingredients.

S. अरगा *urga*, (S. अलग्न) adj. Separate, apart, distinct.

S. अरगाना *urgana*, ¹ v. a. To separate, to put on one side. ² v. n. To be separated, to be set apart.

S. अरघ *urug,h*, } m. An oblation of eight
S. अर्घ *urg,h*, } ingredients offered to a god or *Brahmun*.

K. अरझना *uruj,hna*, v. n. To be raveled, or entangled, involved, (as the hair, or *met.* the heart.)

S. अरना *urna*, ¹ m. A wild buffalo, (From S. अरण्य a forest.) ² (K.) v. n. To stop, to hesitate.

K. अरबराना *urburana*, v. n. To hurry, to be confused, confounded, perplexed, agitated, embarrassed, &c.

S. अराधना *uradhna*, v. a. To worship, to adore. (From S. आराधन.)

S. अरि *uri*, m. An enemy.

S. अरी *uree*, (S. अरि) ¹ m. An enemy. ² (S. अरे) interj. A disrespectful mode of calling to or addressing; Holla! ho! O! hear you!

K. अरु *uroo*, conj. And, also.

S. अरुन *uroon*, (S. अरुण) ¹ m. The sun; also of his charioteer or the dawn. ² adj. Dark red.

S. अरुनाई *uroona,ee*, (S. अरुणता) f. A dark red colour.

S. अरे *ure*, interj. A disrespectful mode of calling or address.

S. अर्क *urk*, m. ¹ The sun. ² The name of a plant. (*Calatrapos gigantea.*)

S. अर्चि *urchi*, ¹ m. Flame. ² Light, splendor, radiance.

S. अर्जुन *urjoon*, m. ¹ The third son of Pundoo, and friend of Krishnu. ² The name of a tree. (*Terminalia alata glabra.*)

S. अर्थ *urt,h*, m. ¹ Meaning, signification. ² Cause, sake. ³ Intention, design, motive. ⁴ Wealth, property, substance.

S. अर्द्ध *urd,h*, adj. Half.

S. अर्द्धांग *urd,hangu*, m. Half the body; palsy affecting one side, or the upper or

lower part of the body, *hemiplegia.* (अर्द्ध half, अंग the body.) अर्द्धांगधारना To assume a body half male and half female.

S. अर्पनकरना *urpun kurna,* } v. a. To present an offering. (From S. अर्पण.)
S. अर्पना *urpna,* }

S. अर्ब *urb,* (S. अर्बुद) adj. An hundred millions.

S. अर्बाक *urbak,* (S. अर्व्वाक) [1] adj. Low, inferior, vile. [2] adv. Former, prior in time.

S. अर्भक *urbhuk,* m. A child.

S. अलंकार *ulunkar,* m. [1] Ornament, or jewel. [2] Rhetorick.

S. अलंकृत *ulunkrit,* adj. Adorned, ornamented, embellished.

S. अलक *uluk,* f. A ringlet, a curl of hair.

S. अलकावलि *ulukabuli,* f. A row of side curls. (अलक and आवलि a row.)

S. अलख *ulukh,* adj. Invisible, unseen. (S. अ neg. and लक्ष्य distinguishable.)

S. अलग *ulug,* } adj. Separate, apart, distinct, loose, unconfined.
S. अलगा *ulga,* }
(S. अ neg. and लग्न joined.) See अरगा.

S. अलाप *ulap,* (S. आलाप) [1] m. Discourse, conversation. [2] f. Prelude to singing.

S. अल्प *ulp,* adj. Little, small, few, short.

S. अवंतिका *uvuntika,* f. The name of a city, the modern Oujein.

S. अवकाश *uvukash,* m. Leisure, opportunity.

S. अवतरना *uvuturna,* v. a. To descend, especially as an incarnation of the deity. (From S. अवतरण.)

S. अवतार *uvutar,* m. Descent of a deity from heaven.

S. अवदीच *uvudeech,* (S. उदीच्य.) m. The name of a tribe of *Goojratee Brahmuns.*

S. अवध *uwudh,* (S. अवधि) [1] m. Agreement, engagement. [2] Time, period. [3] (S. अयोध्या) A name of the province of Oude. [4] adj. Sacred, inviolable. (S. अवध्य, अ neg. and बध्य fit to be killed.)

S. अवलंब *uvulumb,* m. Asylum, protection.

S. अवलोकन *uvulokun,* m. The looking at any object, the surveying of an object.

S. अवसर *uvusur,* m. Leisure, opportunity.

S. अवस्था *uvusthu,* f. A state, condition.

S. अवश्य *uvushyu,* adv. Certainly, necessarily, positively, actually, really.

S. अविचल *uvichul,* adj. Motionless, unmoved, unshaken, resolute, firm.

S. अशुगुन *ushoogoon,* m. Bad omen, por-

tent. (S. अ neg. and शकुन good omen.)

S. अशुभ *ushoob,h,* adj. Unfavourable, inauspicious. (अ neg. and शुभ well.)

S. अश्वपति *ushwu-puti,* m. A person of rank attended by horsemen, a horseman. (अश्व a horse, and पति a lord, master.)

S. अश्वमेध *ushwumed,h,* m. The ceremony of sacrificing a horse. (अश्व a horse, and मेध a sacrifice.)

S. अष्टधातु *ushtu d,hat,* m. The eight metals, reckoned as follows by the *Hindoos;* gold, silver, copper, brass, tin, bell-metal, lead, and iron. (S. अष्ट eight, and धातु metal.)

S. अष्टमी *ushtumee,* f. The eighth day of the lunar fortnight.

S. अष्टसिद्धि *ushtu sidd,hi,* m. The eight *Sidd'his,* the name of a superiour order of beings; a personification of the powers and laws of nature. When they are subjected to the will by holiness and austerities, whatever the fancy desires may be obtained; universal sovereignty may acquired, and implicit obedience to any command enforced; the magnitude, weight, or levity of the body may be increased or diminished to an indefinite degree; and it may be rendered invisible, and transported in an instant to any part of the universe.

S. अष्टांगप्रनाम *ushtangu prunam,* m. Prostration, in salutation or adoration, so as to touch the ground with the eight principal parts of man, viz. the hands, feet, thigh, breast, eyes, head, words, and mind. (S. अष्ट eight, अंग member, and प्रणाम obeisance.)

S. असमंजस *usmunjus,* m. Doubt, suspense, uncertainty.

S. असीस *usees,* (S. आशिस) m. Blessing, benediction, return of compliment from a superiour.

S. असुर *usoor,* m. A demon. (अ neg. and सुर a deity.

S. असोक *usok,* m. [1] Ease, tranquillity, cheerfulness. [2] The name of a tree, *Jonesia Asoca.* (S. अ neg. and शोक sorrow, grief.)

S. अस्त *ust,* m. [1] Setting, (as the sun, &c.) [2] (S. अस्थि) A bone.

S. अस्तव्यस्त *ustuvyust,* adj. Dispersed, scattered, in confusion, helter skelter.

S. अहंकार *uhunkar,* m. Arrogance, haughtiness, pride.

S. अहंकारी *uhunkaree,* adj. Arrogant, haughty, proud.

S. अहल्या *uhulya*. f. Wife of Guotumu, a saint, and philosopher.

S. अहार *uhar*, (S. आहार) m. Aliment, food, victuals.

S. अहि *uhi*, m. A snake or serpent.

S. अहित m. *uhit*, [1] An enemy. [2] Enmity, want of affection. (अ neg. and हित friendly.)

S. अहीर *uheer*, (S. आभिर) m. A particular cast in India, whose business it is to attend on cows; a cowherd.

K. अहेर *uher*, m. [1] Chase, hunting. [2] Prey, game.

S. अहे *uhe*, } (S. अह or ह) interj. O!
S. अहो *uho*, } sign of the vocative.

आ *a*,

S. आंक *ank*, (S. अंक) m. [1] A figure, a number. [2] A mark, or spot.

K. आंखडबडबाना *ank,h dubdubana*, v. n. The eyes to fill with tears.

K. आंखमिचौली *ank,h michuolee*, f. Blind man's buff.

S. आंग *ang*, (S. अंग) m. [1] The body. [2] A limb or member.

S. आंगना *angna*, (S. अंगण) m. A yard, area, court, inclosed space adjoining to a house.

S. आंचल *anchul*, (S. अंचल) m. The end or hem of a cloth, veil, shawl, &c.

S. आंव *anw*, (S. आम) m. The glutinous whitish matter, or mucus, voided by those afflicted with a tenesmus.

S. आक *ak*, (S. अर्क) m. Curled flowered gigantic swallow wort.

S. आकार *akar*, m. Form, appearance.

S. आकाश *akash*, m. [1] The sky, the firmament. [2] Space, air, the atmosphere.

S. आकाशबानी *akash-banee*, f. A voice from heaven, revelation. (S. आकाश and बाणी voice.)

S. आखत *ak,hut*, (S. अक्षत q. v.)

S. आखेट *ak,het*, m. The chase, hunting.

S. आगम *agum*, m. [1] Futurity. [2] A *Shastru* containing spells and incantations dictated by Muhadevu. आगमबांधना *agum band,hna*, v. a. To determine the future, to prophesy, predict, foretell.

S. आगमन *agumun*, m. Coming, arriving, arrival.

S. आगार *agar*, m. A house.

S. आचरन *achurun*, (S. आचरण) m. Manner of life, established rule of conduct, behaviour, custom, practise, institute, religious observance.

S. आचमन *achumun*, m. Act of sipping a

little water from the palm of the hand by way of purification.

S. आचार achar, m. See आचरन.

S. आचारी acharee, adj. Practising, (what is good), strict in the observance of religious ceremonies.

S. आछे ach,hen, (S. अच्छ) adj. plur. Good, excellent, well.

S. आजीविका ajeevika, f. Means of supporting life, subsistence, livelihood.

S. आज्ञा agya, f. An order, a command.

S. अज्ञाकारी agyakaree, adj. Acting according to order, obedient.

K. आड़ ar, f. [1] A skreen, shelter, concealment, protection. [2] An horizontal line drawn across the forehead. [3] Prevention, stop, hindrance.

K. आड़ा ara, adj. Oblique, crooked, across.

K. आड़ी aree, f. A tone or tune in musick.

K. आड़ेआना are ana, v. n. To protect, to become a protection,

S. आतंक atunk, } m. [1] Fear, apprehension. [2] Affliction, pain.
S. आतंग atung, } [3] Parade, ostentation, show, pomp.

S. आतप atup, m. Sun-beams, sun-shine.

S. आतुर atoor, adj. Agitated, restless, distressed, afflicted.

S. आत्मा atma, f. The soul, the body, the self, the mind, the understanding.

S. आदअंत ad-unt, [1] adj. From the first till the last, from the beginning to the end. [2] m. The beginning and the end. (S. आद्यंत; comp. of आदि first, and अंत end).

S. आदर adur, m. Respect, reverence, act of treating with attention and deference, politeness. आदर मान adur-man, m. Respect and honour.

S. आदि adi, [1] adj. First, prior. [2] adv. (in comp.) Other, et-cetera.

S. आदिपुरुष adi-poorosh, m. One of the names of VISHNOO, (Lit. The first male).

S. आधान ad,han, m. [1] Pregnancy, conception. [2] A ceremony practised as conducive to conception.

S. आधार ad,har, m. [1] A patron, supporter, one on whom dependance is placed for assistance. [2] (S. आहार) Food, aliment, victuals, nourishment.

S. आधासीसी ad,ha seesee, f. A pain affecting the half of the head, *Hemicrania*, (S. अर्द्ध half, and शिर the head.)

S. आधीन ad,heen, (S, अधीन) adj. Submissive, obedient, dependant, humble, docile.

S. आधीनता ad,heenuta, (S. अधीनता) f.

Submission, obedience, obsequiousness, servility, humility.

S. आन an; [1] (S. आज्ञा) f. Order, command. [2] (S. अन्य) adj. Other [3] (K.) Bashfulness, modesty, shame. [4] An oath. [5] (P.) A graceful attitude; affectation, pride.

S. आनंद anund, m. Pleasure, delight, felicity.

S. आनक anuk, m. A kettle drum.

S. आनन anun, m. The face, the mouth,

S. आनना anna, v. a. To bring. (From S. आनयन.)

K. आनिहौं anihuon, 1st. pers. sing. fut. ten. of आनना q. v.

S. आप ap, m. Water.

S. आपकाजी ap-kajee, adj. Attending to own business, engaged in own affairs. (आप self, and कार्य्य business.)

S. आपदा apuda, (S. आपद्) f. Misfortune, calamity.

S. आपन्न apunnu, adj. [1] Unfortunate, afflicted. [2] Gained, obtained, acquired. [3] A refugee, one who comes for shelter or protection.

S. आफू ap,hoo, m. Opium. (From S. अफेन, or अहि a serpent, and फेन foam.

S. आभरन ab,hurun, (S. आभरण) m. Jewels, ornaments, decoration.

S. आभूषन ab,hook,hun, (S. आभूषण) m. See the preceding word.

S. आभा ab,ha, f. Beauty, splendor.

S. आम am, [1] adj. Raw, undressed, unripe. [2] m. Provisions, victuals, (undressed.) [3] (S. आम्र) The mango tree or fruit.

S. आमय amuyu, m. Sickness, disease.

S. आमर्ष amursh, m. [1] Anger, wrath. [2] Envy, impatience of another's success, peevishness.

S. आमिष amish, m. Flesh.

S. आमोद amod, m. Fragrance, odour.

S. आयत ayut, adj. [1] Long, wide. [2] (K.) m. Sun-beam, sunshine.

K. आयसु ayusœ, m. Order, command.

S. आयु ayœ, m. Age.

S. आयुध ayœd,h, m. A weapon in general.

S. आरंभ arumb,h, m. A beginning, a commencement.

S. आर्चा archa, (S. अर्च्चा) f. [1] Worship. [2] An image.

S. आरज aruj, (S. आर्य्य) adj. Respectable, venerable.

S. आरत arut, (S. आर्त्त) adj. Distressed, grieved, afflicted.

S. आरता arta, (S. आरात्रिक) m. A ceremony attending marriage. When the

bridegroom first comes to the house of the bride, he is received by her relations, who present to him, and move circularly, round his head, a platter, painted and divided into several compartments: in the middle of it is a lamp made with flour, filled with *Ghee* and having several wicks lighted.

S. आरति *arti*, (S. आर्त्ति) f. Pain, distress, affliction.

S. आरस *arus*, m. See आलस्य.

S. आराति *arati*, m. An enemy.

S. आराम *aram*, m. ¹ A pleasure garden. ² (P.) Ease, health, comfort.

S. आरूढ *aroor̤hu*, (S. आरोह) adj. Mounted on a horse or any thing else.

S. आरोहन *arohun*, m. A ladder, a staircase.

S. आलान *alan*, m. The post to which an elephant is tied, or the rope that ties him.

S. आलवाल *albal*, m. A circular bason round the root of a tree for the purpose of watering it.

S. आलय *aluy*, m. A house, an habitation.

S. आलस्य *alusyu*, m. Laziness, sloth, inactivity.

S. आला *āla*, (S. आलय) ¹ m. A small recess in a pillar or wall for holding a lamp, &c. ² (S. आर्द्र) adj. Wet.

S. आलाप *alap*, ¹ f. Prelude to singing. ² m. Speaking to, address, conversation.

S. आलापना *alapna*, v.a. To tune the voice, to run over the different notes previous to singing, to catch the proper key, to time. (From S. आलापन.)

S. आली *alee*, f. A woman's female friend.

S. आवर्दा *awurda*, (S. आयुर्दय) f. The allotted period of any one's life, a life time, an age.

K. आवनौं *awunon̤*, v. n. To come.

K. आवभक्ति *awb̤hukti*, | f. A civil reception or salutation, welcome.
K. आवभगत *awb̤hugut*,
K. आवभगति *awb̤huguti*,

S. आवलि *avuli*, f. A row, a range, a continuous line.

S. आवाहन *avahun*, m. Calling, summons.

S. आशक्त *ashukt*, (S. आसक्त) adj. Fond, attached, enamoured, addicted, devoted to, strongly inclined to.

S. आशक्ति *ashukti*, (S. आसक्ति) f. Fondness.

S. आशीर्बाद *asheerbad*, m. Blessing, benediction.

S. आश्चर्य *ashchuryu*, ¹ adj. Astonishing, wonderful. ² m. Amazement, astonishment, surprise.

S. आस as, (S. आशा) f. Hope, dependance.

S. आसन asun, m. [1] A stool, a seat. [2] The inside or under part of the thigh, आसन मारना asun marna, v. n. To sit, (particularly in an attitude practised by *Jogees* or devotees.)

S. आसमन्तात् asumuntat, [1] adv. All round, on every side. [2] Wholly, altogether. (आ and सम् prep. अंत end.)

S. आसय asuy, (S. आशय) m. [1] An asylum, abode or retreat. [2] Meaning, intention.

S. आसव asuv, m. Rum, spirit distilled from sugar or molasses.

S. आसिख asikh, (S. आशिस) m. [1] A blessing, a benediction. [2] Instruction.

S. आसीन aseen, adj. Sitting, seated.

S. आस्पद aspud, m. [1] A place, a situation. [2] Dignity, rank.

K. आहट ahut, f. Sound, noise.

K. आहि ahi, Is.

S. आहुत ahoot, (S. आहुति) m. Offering oblations with fire to the deities, a burnt-offering.

S. आह्निक ahnik, (from अह्न a day.) m. The constant or daily ceremonies of religion.

इ i,

S. इंदारा indara, (S. अंधु) m. A large well of masonry.

S. इंद्र indru, m. The sovereign of the gods, who presides over the atmosphere; the Indian Jove.

S. इद्रानी indranee, (S. इंद्राणी) [1] f. The wife of Indru. [2] The name of a medicine or plant.

S. इंद्रासन indrasun, m. The throne of Indru. (इंद्र, and आसन a seat.)

S. इंद्री indree, (S. इंद्रिय) f. The organs of action and perception. The *Hindoos* reckon them as follows: those of the former are, the hand, the foot, the voice, the organ of generation, and the organ of excretion; and those of the latter are, the mind, the eye, the ear, the nose, the tongue, and the skin.

S. इंधन indhun, m. Fuel; wood, grass, &c. used for the purpose.

S. इक ik, (S. एक) adj. One. इकसार iksar, adj. Alike, similar.

S. इकछत्रराजकरना ikchhut raj kurna, To hold universal dominion. (इक one, छत्र S. छत्र an umbrella, *the ensign of royalty*, and राजकरना To govern.)

S. इकटक *iktuk*, v. a. A fixed looking at any thing without closing the eyes. See नकना.

S. K. इकसार *iksar*, adj. Alike, similar.

S. इच्छा *ichchha*, f. Wish, desire.

S. इछन *ichchhun*, (S. ईक्षण) m. [1] An eye. [2] Sight, seeing.

S. इत *it*, (S. अत्र) adv. Here.

S. इति *iti*, conj. A word usually written at the end of a book, letter, &c. signifying that it is finished; as زيادہ حد in *Persian*, تم in *Arabic*, and *finis* with us.

K. इतो *ituo*, adj. This much, so much.

S. इभ *ibh*, m. An elephant.

S. इमरती *imrutee*, (From अमृत) [1] adj. Nectareous. [2] f. A kind of sweetmeat. [3] A small vessel for drinking out of. [4] A kind of cloth.

S. इलायची *ilaechee*, (S. एला) f. Large cardamums.

S. इष्ट *ishtu*, [1] part. Desired, approved, reverenced, adored, respected, beloved. [2] m. A god, a deity, a beloved person, any thing wished for.

S. इह् *ihu*, pron. This. इहि *ihi*, This very. इहिठां *ihithan*, Here, in this very place.

ई *ee*,

K. ईंडुआ *eendhωa*, m. A roll or round fold on which a burthen is carried on the head.

S. ईंधन *eendhun*, See इंधन.

S. ईख *eekh*, (S. इक्षु) f. Sugar-cane.

S. ईठ *eeth*. See इष्ट.

S. ईश्वर *eeshwur*, m. God.

S. ईश्वरता *eeshwuruta*, f. Godhead, devinity.

S. ईस *ees*, (ईश) m. [1] God; a name of Shivu. [2] Lord, master, chief or head.

उ *ω*,

S. उकत *ωkut*, } f. Speech, voice, langu-
S. उक्ति *ωkti*, } age. उकतबनाना *ωkut bunana*, v. a. To make up a story, to invent, to contrive.

S. उखड़ाना *ωkhrana*, v. a. To break or pluck up, to eradicate. (S. उत्, and खड break.)

S. उगलना *ωgulna*, v. a. To spit out, to vomit. (From S. उद्गल.)

S. उघड़ना *ωghurna*, The intr. of the following word.

S. उघाड़ना *ωgharna*, v. a. [1] To unveil, to uncover. [2] To open, to unclose.

(From S. उद्वाहन.)

S. उचरना oochurna, v. n. To speak, to pronounce, to utter. (From S. उच्चारण.)

S. उचकना oochukna, [1] v. n. To rise, to be raised or lifted. [2] To leap or bound, to spring up.

S. उचारना oocharna, v. n. See उचरना.

S. उचित oochit, adj. Proper, becoming.

S. उच्च oochch, adj. High, tall, lofty.

S. उछरना ooch,hurna, } v. n. [1] To leap or bound. [2] To spring up (as water in a fountain,) to spring or fly up. (S. उत् and चल move.)
S उछलना ooch,hulna, }

S. उच्छिष्ट oochch,hisht, m. The remainder of food, orts, leavings.

K. उजागर oojagur, adj. [1] Famous, celebrated. [2] Light, splendid.

S. उजाड़ना oojarna, v. a. To lay waste, to desolate, to injure, to expose to loss.

S. उजाला oojala, [1] m. Light, splendor, brightness. [2] adj. See उज्जल.

S. उज्जल oojjul, adj. Clean, clear, bright, luminous, splendid. (S. उज्ज्वल उत् and ज्वल shine.)

K. उझकना ooj,hukna, [1] v. a. To peep, to spy. [2] See उचकना.

K. उत oot, adv. There, thither.

S. उतरनहोना ooturun hona, v. n. To be freed from debt; to descend, to alight. (From S. उत्तीर्ण.)

S. उत्तम oottum, adj. Best, excellent, principal, first, chief.

S. उत्तर oottur, m. [1] An answer. [2] The north.

S. उत्तरार्द्ध oottur ard,h, adj. The last half. (उत्तर subsequent, posterior, and अर्द्ध half.)

S. उत्पत्ति ootputti, f. Birth, origin, production.

S. उत्सव ootsuv, m. Rejoicing, festival.

K. उथलना oot,hulna, v. n. To overset, to overturn.

S. उदक ooduk, m. Water,

S. उदर oodur, m. The belly.

S. उदासी oodasee, [1] adj. Lonely, retired, dejected. [2] (S. उदासीन) m. An hermit or anchorite, a cynic, a misantrophe.

S. उदैहोना oodue hona, v. n. To rise, (as the sun, &c. From S उदय.)

S. उद्धारना oodd,harna, v. a. To liberate, to discharge. (From S. उद्धारण.)

K. उधेड़नौं ood,hernuon, v. a. To undo, to unravel.

K. उनहार oonhar, [1] f. Manner, appearance. [2] adj. Like, resembling.

S. उन्मेष oonmesh, m. Winking, twink-

ling of the eyelids.

K. उपंग *ωpung*, m. A kind of musical instrument.

S. उपकार *ωpukar*, m. Favour, kindness, benefit, assistance.

S. उपकारी *ωpukaree*, adj. Assisting, helping, beneficent.

K. उपज *ωpuj*, f. Any thing spoken or sung extempore.

K. उपजाना *ωpjana*, v. a. To create, to produce, to make to grow.

K. उपड़ना *ωpurna*, v. n. To be imprinted with the mark of any thing.

S. उपदेस *ωpudes*, (S. उपदेश) m. Advice, counsel.

S. उपद्रव *ωpudruvu*, m. Violence, injury, injustice.

S. उपनंद *ωpunund*, m. A relation of Nund, Krishnu's foster father. (उप near, and नंद.)

S. उपरांत *ωpurant*, adv. After, afterwards. (S. उपरि over, and अंत end.)

K. उपराला *ωprala*, m. Aid, assistance. उपराला करना *ωprala kurna*, v. a. To take one's part, to protect, to stickle for.

S. उपबन *ωpubun*, m. A grove, a garden. (उप like, and बन a wood.)

S. उपवेद *ωpuved*, m. A division of *Hindoo* science deduced immediately from the *Vedus*: four works are included under this denomination, and severally entitled, *Ayωsh*, *Gund̦hurvu*, *D̦hunωsh*, and *Sțhaputyu*; the first was delivered to mankind by Bruhma, Indru, D̦hunwunturi, and five other deities, and comprises the theory of disorders and medicines, with the practical methods of curing diseases; the second, or music, was invented and explained by B̦hurutu; the third *ωpuvedu* was composed by Vishwamitru on the fabrication and use of arms and implements handled in war by the tribe of *Kshutriyus*; and Vishwukurma revealed the fourth in various treatises on sixty-four mechanical arts, for the improvement of such as exercise them. (उप *prep*. near, and वेद the *Vedus*.)

S. उपस्थित *ωpusțhit*, adj. Ready, present.

S. उपहास *ωpuhas*, m. Laughter, fun, sport.

S. उपाध *ωpad̦h*, f. Violence, injury, injustice.

S. उपाधी *ωpad̦hee*, adj. Violent, unjust.

K. उपाना *ωpana*, v. a. To create, produce, earn, get.

S. उपाय *ωpae,* m. Remedy, plan, scheme.

S. उपास *ωpas,* (S. उपवास) m. A fast.

K. उफनना *ωp,hunna,* v. n. To boil over.

S. उबटन *ωbtun,* (S. उद्वर्त्तन) m. A paste for scouring the skin previous to bathing.

S उबटना *ωbutna,* v. a. To rub on the body a detergent application called उबटन q. v.

S. उबारना *ωbarna,* v. a. To set at liberty, to liberate, to release. (S. उद्धार.)

K. उभक *ωb,huk,* m. A bear.

S. उल्मुक *ωlmωk,* m. A fire-brand, wood burning or burnt to charcoal.

S. उर *ωr,* (S. उरस) m. The breast, the bosom. उरलाना *ωr lana,* v. a. To caress, to fondle.

S. उर्वसी, S. उरबसी *ωrbusee,* f. [1] The name of one of the courtezans of *Swurgu* or Indru's heaven. [2] An ornament worn on the breast.

K. उलहना *ωluhna,* [1] m. A complaint, an accusation. [2] (S. उत् and रुह् grow.) v. n. To grow, to vegetate.

S. उलूखल *ωlook,hul,* m. A wooden mortar.

S. उषा *ωsha,* or *ωk,ha,* f. [1] The wife of Unirωdd,hu, the son of Kamudevu. [2] Early morn, day-break.

S. उसरना *ωsurna,* v. n. To retreat, shrink from, recede. (From S. अपसरण.)

S. उसास *ωsas,* (S. उच्छ्वास) m. Breath.

ऊ *oo,*

S. ऊंच *oonch,* (S. उच्च) adj. High, tall, lofty.

K. ऊत *oot,* m. [1] One who dies without leaving issue. [2] *Met.* an unmarried man. See अऊत.

S. ऊतर *ootur,* m. See उत्तर.

S. ऊधो *ood,ho,* (S. उद्धव) m. The name of a friend and companion of Krishnu.

S. ऊबट *oobut,* adj. Impassable, steep, inaccessible. (S. अव priv. and बाट road.)

S. ऊर्द्ध्वपुंड *oord,h pωnd,* m. A perpendicular line, delineated on the forehead by the *Vueshnuvus,* or worshippers of Vishnω. (S. ऊर्द्ध्व raised, elevated, and पुंड्र painting, delineation.)

S. ऊर्द्ध्वसांस *oord,h sans,* m. Deep inspiration, gasp. (S. ऊर्द्ध्व high, and श्वास breath.)

S. ऊषा *oosha,* or *ook,ha,* f. The name of the wife of Unirωdd,hu, the son of Kamudevu.

ऋ ri,

S. ऋचा richa, f. A magical invocation, a mystical prayer of the *Vedus.*

S. ऋतु ritoo, f. A season.

S. ऋन rin, (S. ऋण) m. Borrowing, debt.

S. ऋद्धि riddhi, f. Increase, wealth, prosperity.

S. ऋनिया riniya, (S. ऋणी) m. A debtor.

S. ऋषि rishi, or rikhi, m. A sage.

S. ऋषीश risheesh, or rikheesh, m. A chief of the *rikhees* or saints. (Comp. of ऋषि a saint, and ईश lord.)

ए e,

S. एकतरज्वर *ekutura jwur,* A tertian ague. (S. एकांतरज्वर; composed of एक one (day), अंतर intervening, and ज्वर a fever.)

S. एकांत *ekant,* adj. Aside, apart, alone.

S एकाएकी *ekaekee,* adv. All at once, suddenly.

S. एकादशी *ekadushee,* f. The eleventh day of the lunar fortnight.

ऐ ue,

K. ऐंठ *uenth,* f. A coil, a twist, a convolution.

S. ऐश्वर्य्य *ueshwuryu,* m. Grandeur, glory, pomp, wealth, majesty, state.

ओ o,

K. ओक *ok,* m. 1 A house, a dwelling. 2 An asylum, a place of refuge.

S. ओघ *ogh,* m. Multitude, agregate (in general,) a collection.

K. ओंडा *onda,* adj. Deep.

K. ओंधा *ondha,* adj. Upside down, overturned.

S. ओखली *okhlee,* (S. उलूखल) f. A wooden mortar.

K. ओट *ot,* f. Protection, shade, shelter, partition, skreen.

K. ओड़न *orun,* m. A shield, a target.

S. ओढ़ना *orhna,* 1 v. a. To put on (dress.) 2 m. Sheet, cloak, or mantle. (From S. root ऊर्णु cover.)

S. ओढ़नी *orhnee,* f. A smaller sheet, a veil or woman's mantle.

S. ओदा *oda,* (S. आर्द्र) adj. Wet, moist, damp.

S. ओधे *odhe,* See अधिकारी.

K. ओप *op,* f. Beauty, elegance, brightness, polish.

K. ओर *or,* f. 1 Boundary, limit. 2 Way, side (ward.)

K. ओसीसा *oseesa*, m. ¹ The head of a bed or resting place. ² A pillow, a cushion.

औ *uo*,

K. औ *uo*, conj. And, also.

K. औंगी *uongee*, f. Silence, dumbness.

S. औगुन *uogoon*, m. Blemish, vice, defect. (S. अवगुण; अव *prep.* implying bad, &c. and गुण quality.)

S. औघट *uoghut*, adj. Inaccessible, steep, unfrequented. (S. अव, and root घट्ट go.)

K. औचक *uochuk*, } adv. Suddenly, unawares, unexpectedly.
K. औचट *uochut*, }

K. औंडा *uonda*, See ओंडा.

S. औतार *uotar*, (S. अवतार) m. Descent, (especially of a deity from heaven.)

S. औदात *uodat*, (S. अवदात) adj. White, (the colour.)

K. औंधना *uondhana*, v. a. To turn upside down, to overturn.

S. औसर *uosur*, (S. अवसर) m. Time, leisure, opportunity.

K. औसेर *uoser*, m. Anxiety, solicitude.

क *k*,

S. कंकन *kunkun*, (S. कंकण) m. A bracelet or ornament of the wrist.

S. कंकर *kunkur*, (S. कर्क्कर) m. A nodule of lime stone.

S. कंचन *kunchun*, (S. कांचन) m. Gold. कंचनखचित *kunchun khuchit*, adj. Inlaid with gold.

S. कंचु *kunchoo*, (S. कंचुक) m. A bodice or jacket.

S. कंज *kunj*, m. A lotus. (कं water, and ज born, produced.)

S. कंठ *kunth*, m. ¹ The throat, the wind pipe. ² Voice.

S. कंठला *kunthla*, m. A necklace composed of pieces of gold, silver, &c. put on children to avert evil. (S. कंठ, and माला a necklace.)

S. कंत *kunt*, (S. कांत) m. A husband, sweet-heart.

S. कंद *kund*, m. ¹ A bulbous or tuberous root. ² One of an esculent sort.

S. कंदरा *kundura*, m. An artificial or natural cave, a chasm in a mountain.

S. कंध *kundh*, (S. स्कंध) m. The shoulder.

S. कंवल *kunwul*, m. A lotus. कंवलनैन *kunwul nuen*, adj. Having eyes like the flowers of the lotus. कंवलदह *kunwul duh*, m. Very deep water abounding with lotuses.

S. कंस *kungsu*, m. The uncle and ene-

my of Krishnu, by whom he was slain.

K. कका kuka, m. A paternal uncle.

S. कचनारि kuchnari, (S. कंचनार) f. A tree, the flowers of which are a delicate vegetable. (*Bauhinia variegata.*)

K. कचैारी kuchuoree, f. A dish made of wheaten bread and pulse.

S. कछु kuchch,hu, (S. कच्छप) m. A tortoise, a turtle.

S. कछलंपट kuch,h-lumput, adj. Incontinent, lewd, dissolute. (S. कक्ष a cloth worn to conceal the privities, and लंपट false.)

K. कछु kuch,hoo, } neut. pron. Any,
K. कछू kuch,hoo, } some, something, little, whatever.

S. कट kut̤, (S. कटि q. v.)

S. कटक kut̤uk, m. An army.

S. कटाक्ष kut̤ach,h, or kut̤aksh, m. Ogling, a leer, a glance or side look. (कट to go, and अक्षि the eye.)

S. कटार kut̤ar, (S. कट्टार) m. A dagger.

S. कटि kut̤i, f. The reins, the loins. कटि केहरी kut̤i kehuree, adj. Having a waist elegant as the lion's, (epithet of a woman.) (S. कटि, and केसरी a lion.)

S. कठंदर kut̤hundur, m. The wind dropsy, *tympany*. (S. काष्ठोदर, from काष्ठ wood, and उदर the belly; the belly being as hard as wood.)

S. कठिन kut̤hin, adj. Difficult, painful, troublesome.

S. कठोरता kut̤horuta, f. Relentlessness, cruelty.

K. कड़कना kuṛukna, v. n. To crack, to crackle.

K. कड़खा kuṛk,ha, m. Encouraging the soldiers in the time of battle, by pointing out the good effects of steadiness and valour, extolling the actions of former heroes, &c.: war-song to encourage combatants.

K. कड़खैत kuṛk,huet, m. A kind of bard in *Indian* armies, whose office it is to encourage the soldiers by the exhortations called कड़खा.

K. कड़ा kuṛa, adj. ¹ Hard, stiff. ² Harsh, obdurate.

S. कड़ोड़ kuṛor, (S. कोटि) adj. Ten millions.

K. कढ़ना kuṛhna, v. n. ¹ To be extracted, drawn, pulled out; to escape, rise, slip, issue, spring. ² To be drawn or painted, (as a picture.)

S. कत kut, ind. ¹ (S. कुत्र) Where; whither? ² (S. कथम्) Why?

S. कथना kut,hna, v. a. To tell, to say, to

relate. (From S. root कथ to speak.)

S. कथा *kut̤ha,* f. A story, tale, fable, relation, narrative.

S. कदन *kudun,* m. A killer, a destroyer.

S. कदम *kudum,* (S. कदंब) m. The name of a tree. (*Nauclea orientalis.*)

S. कन *kun,* (S. कण) m. ¹ Grain, corn. ² A grain, a minute particle.

S. कनक *kunuk,* m. ¹ Gold. ² The plant *D̤hutoora* or thorn apple. (*Dhatura metel.*)

S. कन्या *kunya,* f. ¹ A girl not above ten years of age. ² A daughter. ³ A maiden. ⁴ The sign Virgo. कन्यादान *kunya dan,* Giving a girl in marriage.

K. कन्हैया *kun̤hueya,* m. A name of Krishnu.

S. कपट *kuput̤,* ¹ adj. Designing, insincere. ² m. Fraud, deceit, trick. कपटरूपधारी *kuput̤roop d̤haree,* A hypocrite.

S. कपटी *kuput̤ee,* adj. Insincere, false, deceitful.

K. कपड़ेंहोना *kupron̤ hona,* v. n. To have the menses.

S. कपाट *kupat̤,* m. A shutter, the leaf of a door.

S. कपार *kupar,* } m. ¹ The skull, the cranium. ² Fate, destiny.
S. कपाल *kupal,* }

S. कपि *kupi,* m. A monkey.

S. कपुत्र *kupootru,* } (S. कुपुत्र) m. A bad or degenerate son.
S. कपूत *kupoot,* }

S. कपूर *kupoor,* (S. कर्पूर) m. Camphor.

S. कपोत *kupot,* m. A pigeon.

S. कपोल *kupol,* m. The cheek. कपोलगेंडुआ *kupol gend̤ooa,* m. A small pillow of a circular shape to rest the cheek upon. (S. कपोल, and गेंडुक a ball.)

S. कबंध *kubund̤h,* m. A headless trunk, especially retaining the powers of action.

S. कबरा *kubra,* (S. कर्बुर) adj. Grey, dirty white, variegated.

S. कमंडल *kumundul,* (S. कमंडलु) m. An earthen or wooden water pot used by the ascetic and religious student.

S. कमल *kumul,* m. A lotus.

S. कमला *kumula,* f. A name of Luchṇmee.

S. कमोदिनी *kumodinee,* (S. कुमुदिनी) f. A sort of water lily; described as expanding its petals during the night, and closing them in the day time. (*Menyanthes Indica, or Cristata.*)

K. कमोरी *kumoree,* f. A small earthen pot.

S. कर *kur,* m. ¹ The hand. ² Tribute, duty, tax, fee.

S. करकस kurkus, (S. कर्कश) adj. Harsh, obdurate, violent, sharp, contumelious.

S. करताल kurtal, m. A musical instrument, a kind of small cymbal; the word may also imply beating time with the hands. (कर the hand, and ताल musical time.)

S. करनफूल kurun p,hool, m. A kind of ear-ring. (S. कर्ण the ear, and फुल्ल a flower.)

S. करम kurum, } m. [1] Business, action.
S. कर्म kurm, } [2] Fortune, fate, destiny.

S. करवीर kuruveer, m. The name of a flower. (Nerium odorum.)

K. करारा kurara, m. The perpendicular bank of a river, &c. side, brink, bank.

S. करुना kuroona, (S. करुणा) f. Tenderness, compassion, mercy. करुनानिधान kuroonanid,han, The abode of mercy.

S. कर्कस kurkus, See करकस.

S. कर्ता kurta, m. [1] Maker, author, doer, creator, agent. [2] A proprietor, master. [3] A husband.

S. कल kul, (S. कल्य) f. Ease, tranquility, quiet, rest.

S. कला kula, f. [1] A digit or 1-16th part of the moon's diameter. [2] A division of time, about 8 seconds. [3] A part, a portion. [4] Art, trick.

S. कलंक kulunk, m. Calumny, reflection, scandal, spot, obloquy.

K. कलमलाना kulmulana, v. n. To fidget, to writhe.

S. कलस kulus, m. [1] The spire or ornament on the top of a dome, a pinnacle. [2] A water-pot.

S. कलसी kulsee, f. Dimin. of the preceding word.

S. कलसस्थापनकरना kulus st,hapun kurna, v. a. To make an offering of a jar of water to any deity; five twigs of the following sacred trees are previously placed in it, namely, the Ushwutt,hu (Ficus Religiosa), Vutu (Ficus Indica), oodoombur (Ficus Glomerata), Shumee (Mimosa Albida), and Amru or mango. (S. कलश a water-pot, and स्थापन placing.)

S. कलि kuli, f. [1] A bud, an unblown flower, blossom. [2] The fourth or present age of the world, according to the Hindoos.

S. कलेऊ kule,oo, (S. कल्याहार) m. Cold meat, stale victuals, a luncheon, a breakfast.

S. कलेस kules, (S. क्लेश) m. [1] Sickness,

pain, trouble, affliction, vexation. [2] Quarrel, contention.

S. कलोल *kulol,* (S. कल्लोल) f. Friskiness, wantonness, play, sport.

S. कल्पतरु *kulpu turoo,* } m. One of the
S. कल्पवृक्ष *kulpu brich,h,* } fabulous trees of INDRU's heaven or *Swurgu*; a tree which yields whatever may be desired. (कल्प a resolve, a purpose, and तरु or वृक्ष a tree.)

K. कलमलाना *kulmulana,* v. n. To flutter, to writhe, to fidget.

S. कल्यान *kulyan,* (S. कल्याण) m. Welfare, prosperity.

S. कवच *kuvuch,* m. Mail or armour.

S. कवि *kuvi,* m. A poet.

S. कष्ट *kusht,* m. Affliction, pain, want, penury.

S. कष्टी *kushtee,* adj. Suffering, afflicted, in want.

K. कसक *kusuk,* m. Pain, affliction.

K. कसकना *kusukna,* v. n. To suffer pain, to be painful.

K. कहा *kuha,* pron. What? which? how? why?

S. कहावत *kuhawut,* (S. कथावर्त) f. A proverb, saying, an adage.

K. का *ka,* pron. Whom? what? which?

S. कांख *kank,h,* (S. कक्ष) f. The armpit.

S. कांक्षा *kanch,ha,* or *kangsha,* f. Desire, wish, inclination.

S. कांठा *kant,ha,* (S. कंठा) Near, proximate.

S. कांस *kans,* (S. काश) m. A species of grass. (*Saccharum spontaneum.*)

K. काई *kaee,* f. The green scum on the surface of stagnate pools, or the green mould that sticks to walls and pavements.

S. काग *kag,* (S. काक) m. A crow.

K. काचा *kacha,* adj. [1] Unripe, raw. [2] Simple, unknowing.

S. काछ *kach,h,* (S. कच्छ) [1] m. A cloth worn round the hips passing between the legs and tucked in behind. [2] The upper part of the thigh.

S. काछना *kach,hna,* v. a. To bind on or tie up the काछ *kach,h,* q. v.

S. काछनी *kach,hnee,* f. A cloth worn over the काछ *kach,h,* q. v.

S. काज *kaj,* (S. कार्य्य) m. Business, affair, a work, an action.

S. काठ *kat,h,* (S. काष्ठ) m. Wood. काठ कबाड *kat,h kubar,* Wooden articles.

K. काढना *kar,hna,* v. a. [1] To draw forth, (as a sword,) to take out, to extricate. [2] To draw, to paint, to delineate.

S. कातर *katur*, adj. Distressed, agitated with distress, confused.

S. कादो *kaduo*, (S. कर्द्दम) m. Slime, mud, mire.

S. कान *kan*, [1] (S. कर्ण) m. The ear. [2] (K.) f. Modesty, shame. कानिकरना *kan kurna*, v. n. To be ashamed.

K. कान्ह *kan,h*, } m. One of the names
K. कान्हर *kan,hur*, } of KRISHNU.

S. काम *kam*, m. [1] Desire, wish, inclination. [2] The god of love, the *Indian* CUPID. [3] (S. कर्म्म) Business.

S. कामकेलि *kam keli*, f. Amorous dalliance, coition. (काम love, desire, and केलि play.)

S. कामदेव *kamdew*, m. The god of love, the *Indian* CUPID.

S. कामना *kamuna*, f. Desire, wish, inclination.

S. कामरि *kamuri*, } (S. कम्बल) f. A blan-
S. कामरी *kamuree*, } ket.

S. कामातुर *kamatoor*, adj. Libidinous, lustful, distracted with lust. (काम desire, and आतुर afflicted, distressed.)

S. कामिनी *kaminee*, f. A loving or affectionate woman.

S. कायक *kayuk*, (S. कायिक) adj. Bodily, personal.

S. कायर *kayur*, (S. कातर) adj. Timid, timorous, coward.

S. कारज *karuj*, (S. कार्य्य) m. Business, an action, affair, work, profession, &c.

S. कारन *karun*, (S. कारण) m. Account, cause, reason, occasion.

S. कार्त्तिक *kartik*, m. Name of a *Hindoo* month, the full moon of which is near *Krittika* or the Pleiades, (October-November).

S. काल *kal*, m. [1] Death. [2] Season, time. [3] Dearth, famine. [4] (S. कल्य) To-morrow.

S. कालिन्दी *kalindee*, f. A name of the river *Jumoona*.

S. काली *kalee*, (S. कालिय) [1] m. The name of a serpent with an hundred and ten hoods which was vanquished by KRISHNU. [2] f. (S.) The name of a *Hindoo* goddess.

S. कालीदह *kalee-duh*, m. The name of a whirlpool in the river *Jumoona* in which the serpent *Kalee* lived. (S. कालिय, and ह्रद very deep water.)

K. काहे *kahe*, pron. Why? wherefore?

S. किंकनी *kinkunee*, (S. किंकिणी) f. A girdle of small bells worn by women.

S. कित *kit*, (S. कुत्र) adv. Where? whither?

S. किती *kitee*, (S. कति) How much? how many?

K. किन *kin*, (pron. interrog. plur. inflect. Who? which?

S. किन्नर *kinnur*, m. A demigod attached to the service of Kooveru the god of riches, a celestial quirister or musician.

S. किम् *kim*, pron. What? which? how?

S. किरन *kirun*, (S. किरण) f. A ray of light, a sun or moon-beam.

S. किरीट *kireet*, m. A crest, a diadem.

S. किल्कारीमारना *kilkaree marna*, v. n. To express pleasure by any sound or cry, to shout. (From किलकिला sound expressing joy.)

S. किशोर *kishor*, m. A child, a son.

S. किसान *kisan*, (S. कृषिमान) m. A husbandman.

S. कीट *keet*, m. An insect, a worm, a reptile.

K. कीनी *keenee*, 3d pers. sing. fem. perf. tense of करनौ.

S. कीर *keer*, m. A parrot.

S. कीरत *keerut*, } f. Fame, renown.
S. कीर्त्ति *keerti*, }

S. कु *koo*, A particle of depreciation prefixed to nouns, and implying, ¹ Sin, guilt. ² Reproach, contempt. ³ Diminution, littleness.

S. कुंचकी *koonchukee*, (S. कंचुक) f. A bodice.

S. कुंज *koonj*, m. An arbour.

S. कुंड *koond*, m. ¹ A hole in the ground for receiving and preserving consecrated fire. ² A pool, a well, a spring or basin of water, especially consecrated to some holy purpose or person.

S. कुंडल *koondul*, m. An ear-ring.

S. कुंती *koontee*, f. The wife of Pandoo, and mother of the Panduvu princes by as many gods.

K. कुंदन *koondun*, m. Pure gold.

S. कुंवर *koonwur*, (S. कुमार) m. ¹ A boy, a son, a child. ² The son of a *Raja*, a prince.

S. कुंभ *koomb'h*, m. A water-pot.

S. कुच *kooch*, m. A breast a pap, bosom.

S. कुटिल *kootil*, adj. Crooked, bent, perverse, untoward.

S. कुटुम *kootoom*, } m. Kin, family, tribe,
S. कुटुम्ब *kootoomb*, } cast, relative.

S. कुटुमी *kootoomee*, (S. कुटुम्बी) m. A householder, a pater-familias.

K. कुटेव *kootew*, f. Bad habit. (कु bad, and टेव habit, nature.)

S. कुठार *koothar*, m. An axe.

K. कुढना *koorhna*, v. n. To grieve, to mourn, to lament, to pine.

S. कुतूहल *kootoohul*, m. Sport, pastime, festivity; a show, a spectacle.

S. कुदाल *koodal*, m. A kind of hoe or spade.

S. कुनबा *koonba*, (S. कुटुम्ब) m. Tribe, cast, family, brotherhood.

S. कुबड़ा *koobra*, } (S. कुब्ज) adj. Hump-backed, crooked.
S. कुबजा *koobja*, }

S. कुमति *koomuti*, adj. Wicked, vicious. (कु bad, and मति mind, understanding.)

S. कुमद *koomud*, } m. A white esculent lotus, that expands its petals during the night, and closes them in the day time. (*Nymphæa esculenta.*)
S. कुमुद *koomood*, }

K. कुम्हलाना *koomhlana*, v. n. To wither, to fade, to dry up.

S. कुरुक्षेत्र *koorooch,hetru*, or *koorookshtru*, m. The country near *Dihlee*, the scene of the great battle between the Kooroos and Pandoos. (S. कुरु the Kooroo race, and क्षेत्र a field.)

S. कुल *kool*, m. Family, race, tribe. कुलदेवी *koolu-devee*, f. Any female deity worshipped in particular by a family through successive generations.

S. कुलद्रोही *koolu-drohee*, m. One who brings disgrace or reproach upon his family. (कुल, and द्रोही an injurer.)

S. कुलपूज *koolu-pooj*, m. The object of worship or of reverence of a family; a family priest. (S. कुल family, and पूज्य fit to be worshipped.)

S. कुलबधु *koolu-bud,hoo*, f. A virtuous woman of a noble family. (कुल family, and बधू a woman.)

S. कुलवान *kooluvan*, adj. Well-born, of good or noble family, of noble descent.

S. कुलाहल *koolahul*, (S. कोलाहल) m. A loud and confused sound, a great and indistinct noise, tumult, uproar.

S. कुलीन *kooleen*, adj. See कुलबान.

S. कुल्हाड़ी *kool,haree*, (S. कुठार) f. An axe.

S. कुबेर *koober*, m. The *Indian* Plutus, the god of wealth.

S. कुशल *kooshul*, }
S. कुशलक्षेम *kooshul ch,hem*, } f. Health,
S. कुशरात *kooshurat*, } happiness,
S. कुशलात *kooshulat*, } welfare.
S. कुसरात *koosurat*, }

K. कुहराम *koohram*, m. Lamentation, weeping.

S. कुहासा *koohasa*, (S. कुहेलिका) m. A fog, a mist.

S. कुहूक *koohook*, (S. कुहूक) f. The notes of the *Kokila*, q. v.

S. कुहूकना *koohookna*, v. n. To sound, as *Koels* do. (From S. कुहूक the *Kokila's* cry.)

S. कूकर *kookur*, (S. कुकुर) m. A dog.

K. कूढ *koorh*, adj. Foolish, stupid, simpleton.

S. कूप *koop*, m. A well.

S. कृत *kritu*, part. pass. Made, done, composed.

S. कृतघ्नी *kritu-ghnee*, adj. Ungrateful, neglectful of favours, an ingrate. (कृत what has been done, and घ्नी who kills or destroys.)

S. कृतारथ *kritaruth*, adj. [1] The granting of a supplication, the fulfilment of a request. [2] Successful, having obtained one's purpose or accomplished one's design. (S. कृतार्थ; comp. of कृत, and अर्थ purpose.)

S. कृपन *kripun*, (S. कृपण) adj. Miserly, avaricious.

S. कृपा *kripa*, f. Favour, kindness, mercy, pity, compassion. कृपानिधान The abode of mercy. कृपासिंधु Ocean of grace or mercy.

S. कृपालु *kripaloo*, adj. Compassionate, merciful, liberal, kind, benevolent.

S. कृष्ण *krishnu*, [1] m. The deity so named. [2] adj. Black or dark blue.

S. कृष्णावतार *krishnavutar*, m. An incarnation of the god Vishnoo in the form of Krishnu. (कृष्ण, and अवतार descent, or incarnation of the deity.)

S. कृसता *krisuta*, (S. कृशता) f. Slenderness, spareness, leanness.

S. केतिक *ketik*, adj. Some, a few, a little.

S. केलि *keli*, f. Play, sport, pastime.

S. केवल *kewul*, adv. Only, solely.

S. केस *kes*, (S. केश) m. The hair of the head.

S. केसर *kesur*, m. Saffron.

S. केसरिया *kesuriya*, (S. केसरीय) adj. Saffron coloured.

S. केहरी *kehuree*, (S. केसरी) m. A lion.

S. कै *kue*, (S. कति) [1] How many? [2] Several. [3] (K.) conj. Or, either.

S. कैंचली *kuenchulee*, (S. कंचुक) f. The slough or skin of a snake.

S. कैलास *kuelas*, m. The name of a mountain, placed by the *Hindoos* amongst the *Himaluyu* or snowy range to the north of *Hindoostan*: it is the fabulous residence of Kooveru, and the favourite haunt of Shivu.

K. कैसो *kuesuo*, pron. How? in what manner? what sort of?

K. कैहौं *kuehuon*, 1st. pers. sing. fut. tense of करनौं.

K. को *ko*, pron. Who? which? what?

S. कोऊ *kooo*, (S. कोपि) Any, anybody, one, a, somebody.

S. कोक *kok*, m. ¹ Scientia modorum diversorum coeundi a quodam Kok *Pundit* explicata, unde nomen. ² The ruddy goose.

S. कोकिल *kokil*, f. The black or Indian cuckoo. कोकिलबैनी *kokil-buenee*, adj. Speaking like the *Kokil*, eloquent as the *Kokil*.

S. कोख *kokh*, (S. कुक्षि) f. The womb, the abdomen.

S. कोखबंध *kokh-bundh*, adj. Barren. (S. कुक्षि the womb, abdomen, and बंध्या barren.)

S. कोट *kot*, (S. कोट्ट) m. A fort, castle, strong-hold.

S. कोटि *koti*, adj. A *Crore*, or ten millions.

S. कोढ *korh*, (S. कुष्ठ) m. The leprosy.

S. कोढी *korhee*, (S. कुष्ठी) m. A leper,

S. कोप *kop*, m. Rage, passion, anger.

S. कोपना *kopna*, v. n. To be angry, to be wrath, to rage.

S. कोमल *komul*, adj. Soft, tender, mild.

S. कोमलता *komuluta*, f. Softness, placidity, mildness.

K. कोर *kor*, ¹ f. Point. ² (S. क्रोड) Edge, border, margin, side. ³ (S. कोटि) m. A *Crore*, or ten millions.

K. कोरा *kora*, adj. New, unused, fresh: (applied chiefly to clothes, earthen vessels, and paper.)

S. कोलाहल *kolahul*, m. A confused or mingled sound, a noise made by many, tumult, uproar.

K. कौ *kuo*, postpos. Of, belonging to.

K. कौं *kuon*, postpos. To, for.

S. कौंता *kuonta*, f. See कुंती.

S. कौर *kuor*, (S. कवल) m. A mouthful.

S. कौरपंडु *kuorpundoo*, (S. कौरवपांडव) m. The *Kuoruvus* and the *Panduvus*, the patronymicks of two families descended from Kooroo by their respective fathers Dhriturashtru, and Pandoo.

S. कौला *kuola*, (S. कूल) m. Corner, side, (of a room, &.)

S. क्यारी *kyaree*, (S. केदार) f. A bed (of a garden.)

S. क्रांति *kranti*, (S. कांति) f. Splendour, lustre.

S. क्रिया *kriya*, f. ¹ Deed, an act, action. ² A religious act. ³ Obsequies. ⁴ A verb.

क्रियाकर्म kriya-kurm, m. Performance of obsequies.

S. क्रीड़ा kreera, f. Play, game, pastime.

S. क्रूर kroor, adj. Cruel, pitiless, hard-hearted, harsh, savage.

S. क्रोध krod,h, m. Anger, passion.

S. क्रोधी krod,hee, } adj. Angry, passionate, wrathful.
S. क्रोधवान krod,hwan, }

S. क्षई ch,hu,ee, (S. क्षय) f. Pulmonary consumption.

S. क्षत्री ch,hutree, (S. क्षत्रिय) m. A man of the second or military tribe of *Hindoos*.

S. क्षन ch,hun, or kshun, (S. क्षण) m. A moment or instant.

S. क्षमना ch,humna, v. a. To pardon, to forgive. (S. root क्षम bear, endure.)

S. क्षमा ch,huma, or kshuma, f. Pardon, forgiveness.

S. क्षित ch,hit, (S. क्षिति) f. The earth.

S. क्षिमा ch,hima, (S. क्षमा q. v.)

S. क्षीर ch,heer, or ksheer, m. Milk.

S. क्षुधा ch,hood,ha, or kshood,ha, f. Hunger.

S. क्षेत्र ch,hetru, or kshetru, m. A field.

S. क्षेम ch,hem, or kshem, m. Health, happiness, welfare.

S. क्षौर ch,huor, or kshuor, m. The shaving of the head or beard.

ख k,h,

S. खंजन k,hunjun, m. Name of a small bird, a wagtail.

S. खंड k,hund, m. [1] A piece, a part, a fragment, a portion, division of a house. [2] A chapter, a section. [3] Sugar (coarse.)

S. खंभ k,humb,h, (S. स्तंभ) m. A post, a pillar.

K. खंमठोकना k,hum t,hokna, v. a. To strike the hand against the arms preparatory to wrestling, &c., to challenge (as wrestlers do.)

S. खग k,hug, m. A bird in general.

K. खटकना k,hutukna, v. n. [1] To rankle, to pierce (as a thorn.) [2] To doubt, to be apprehensive.

K. खटका k,hutka, f. [1]Doubt, apprehension. [2] Sound of footsteps.

S. खटछप्पर k,hut ch,huppur, m. A bedstead with curtains. (S. खट्वा a bedstead, and (K.) छप्पर a roof.)

K. खटपट k,hutput, f. [1]Wrangling, contention, quarrel. [2] Clashing of weapons.

S. खटीक k,huteek, (S. खट्टिक) m. A hunter, one who lives by killing and selling game.

K. खड़क k,huruk, f. A cow-house or cow-shed.

S. खड्ग *k,hurug,* (S. खड्ग) m. A sword or scimetar.

S. खड़ी *k,huree,* (S. खटिका) f. Chalk.

S. खन *k,hun,* m. A division of a house, a story, a flight of rooms. (See खंड)

S. खप्पर *k,huppur,* (S. खर्पर) m. [1] The skull, the cranium. [2] An earthen cup used by *Jogees.*

S. खर *k,hur,* m. An ass. (Pers. خر)

K. खरक *k,huruk,* See खड़क.

K. खरबर *k,hurbur,* f. [1] Sound of a horse's feet in galloping. [2] Hurry, bustle, commotion, tumult.

K. खरा *k,hura,* adj. Pure, prime, best sort, genuine, honest, candid, sincere.

K. खलबल *k,hulbul,* f. Hurry, bustle, agitation, alarm, tumult.

K. खसोटना *k,husotna,* v. a. To pull, to pluck, to pull the hair, to scratch, to tear.

S. खांडा *k,handa,* (S. खड्ग) m. A straight double edged sword.

S. खाई *k,ha,ee,* (S. खात) f. A ditch, a moat.

S. खाज *k,haj,* (S. खर्जू) f. The itch.

K. खाजा *k,haja,* m. Name of a sweetmeat like pie-crust.

S. खानि *k,hani,* (S. खनि) f. A mine.

S. खिरनी *k,hirnee,* (S. क्षीरी) f. Name of a fruit and tree. (*Mimusops kauki.*)

K. खिलना *k,hilna,* v. n. [1] To blow (as a flower.) [2] To be delighted, to laugh.

K. खिसलना *k,hisulna,* v. n. To slip.

K. खिसायरहना *k,hisae ruhna,* v. n. To flinch, to draw back, to be abashed.

S. खीजना *k,heejna,* v. n. To be angry, to be vexed. (From S. खिद pain, grief.)

S. खुजलाहट *k,hoojlahut,* f. Itching, scratching.

K. खुंस *k,hoons,* m. Animosity, spite, rancour. खुनसाना *k,hoons-ana,* v. n. To be angry.

S. खुर *k,hoor,* m. A (cloven) hoof.

S. खूंदना *k,hoondna,* v. a. To dig up (as, the earth with the feet.) From S. क्षुद.

S. खेत *k,het,* (S. क्षेत्र) m. [1] A field, a field of battle. [2] A sacred or holy place.

S. खेद *k,hed,* m. Sorrow, grief, affliction.

K. खोज *k,hoj,* m. [1] Search, inquiry. [2] Trace, mark.

K. खोह *k,hoh,* m. A cavern, abyss, a pit.

K. खौड़ *k,huor,* f. The marks which *Hindoos* make on their foreheads with sandal wood, saffron, &c.

K. खौलना *k,huolna,* v. n. To boil, to be agitated by heat.

S. ख्याल *khyal*, (S. खेला) m. Sport; fun; pastime.

ग *gu*;

S. गंगाजमनी *gunga-jumnee*, f. A kind of ear-ring.

S. गंगाधर *gungadhur*; m. An epithet of Shivu. (गंगा the *Ganges*; and धर who possesses or receives; Shivu is fabled to have received for a period the *Ganges* in his matted hair.)

S. गंठजोड़ाबांधना *gunth jora bandhna*, v. a. To tie together the skirts of the mantles of the bride and bridegroom: a ceremony attending marriage performed by the *Poorohit*, or officiating priest. (From S. ग्रंथिबंधन *lit.* tying the knot.)

S. गंडा *gunda*, (S. गंड) m. [1] A ring, a circle, a kind of horse collar. [2] A knotted string tied round the neck of a child, &c. as a preservative against evil.

K. गंडासा *gundasa*, m. A sort of axe, a pole-axe.

S. गंधर्ब *gundhurb*, m. A celestial musician, a class of demigods who inhabit Indru's heaven and form the orchestra at all the banquets of the principal deities.

S. गंभीर *gumbheer*, adj. Deep (as water, but applied metaphorically to sound, intellect, &c. as in English.)

S. गज *guj*, m. An elephant. गजगमनी *guj-gumunee*, or गजगौनी *guj-guonee*, adj. f. Walking (stately) like an elephant: an epithet made use of to express a graceful gait in a female.

S. K. गजगाह *guj-gah*, m. A string composed of several tassels made of the hair of a species of ox, and suspended as an ornament from an elephant's neck, or is fastened to a horse's ears, extending on both sides to the saddle.

S. गजपति *guj-puti*, m. The master or rider of an elephant, the title of a *Raja*.

S. गजपाल *guj-pal*, m. An elephant driver or keeper.

S. गजमनिह *guj-munihu*, m. See the following word. (S. गज an elephant, and मणि a jewel.)

S. गजमोती *guj motee*, f. An elephant pearl: it is a popular idea of the *Hindoos*, that the finest pearls are to be found in the heads of elephants. (S. गज and मुक्ता a pearl.)

K. गजरा *gujra*, m. An ornament for the

wrist, a bracelet.

S. गड़ना gurna, v. n. To be driven into the earth, as a stake, &c. to enter, to penetrate, to lie, to sink, to be buried. (From S. गर्त्त a hole.)

K. गड़गूदर gurgoodur, m. Any old tattered clothes, rags and tatters.

S. गढ़ना gur,hna, (S. गढ़नं) [1] v. a. To malleate, to form by hammering. [2] To make, to form. [3] v. n. To be made, formed or fashioned.

K. गढ़ gur,h, m. A fort, a castle.

K. गढ़ी gur,hee, f. A small fort or castle.

S. गत gut, } f. [1] Funeral rites. [2] Salvation. [3] State, condition.
S. गति guti, } [4] Custom, habit, usage, way. [5] Motion, procedure, march, pace, gait. गतकरना gut, or guti kurna, v. a. To perform the funeral rites.

S. गदा guda, f. A mace, a club.

S. गदाधर gudad,hur, m. A name of Krishnu. (गदा, and धर who holds: Krishnu, or Vishnoo, is represented holding a mace in one of his hands.)

K. गद्दी guddee, f. [1] A cushion, pad or anything stuffed. [2] A seat. [3] A sovereign's throne.

S. गन gun, (S. गण) m. Troops of inferior deities considered as Shivu's attendants, and under the especial superintendance of Guneshu. [2] A troop, a flock, a multitude.

S. गनना gunna, v. a. To count, reckon, number. (From S. गणन)

S. गमन gumun, m. Going in general.

S. गया guya, f. The name of a city in the province of *Bihar*, and a celebrated place of pilgrimage.

S. गयाली guyalee, m. A class of *Guya Brahmuns*, who officiate in certain religious ceremonies performed by pilgrims at that place. (S. गयालय; comp. of गया, and आलय a house; whose abode is in *Guya.*)

S. गरजना gurujna, v. n. [1] To bellow, to roar. [2] To thunder. (From S. गर्जन)

S. गरुड़ guroor, m. The bird and vehicle of Vishnoo; he is generally represented as a being something between a man and a bird, and considered as sovereign of the feathered race.

S. गर्जन gurjun, m. [1] Bellowing, roaring. [2] Thunder.

S. गर्भ gurb,h, m. Pregnancy.

S. गर्भवती gurb,hwutee, adj. Pregnant.

S. गर्व gurb, m. Vanity, pride.

S. गल gul, m. The neck, throat. गलबहियां डालना gul buhiyan dalna, v. a. To throw one's arms around another's neck. गलाघोटना gula g,hotna, v. a. To throttle, to choke.

K. गली gulee, f. A narrow lane.

S. गवन guwun, (S. गमन) m. Going, moving.

S. गवरी guwuree, (S. गौरी) f. A name of the goddess PARBUTEE.

S. K. गहना guhna, [1] v. a. To lay hold of, to handle, to seize, to catch, to take. (From S. ग्रहण). [2] (K.) m. Ornaments, jewels.

K. गांडा ganda, m. Sugar-cane.

S. गांडीव gandeevu, m. The name of the bow of URJOONU.

S. गाम gam, } (S. ग्राम) m. A village.
S. गांव ganw, }

S. गागरी gagree, (S. गर्गरी) f. A water vessel, a guglet.

S. गाजना gajna, v. n. See गरजना.

S. गाजाबाजा gaja baja, m. The sound or clangour of various musical instruments. See बाजा.

S. गाडा gara, (S. गंत्री) m. A cart, a carriage.

S. गात gat, (S. गात्र) m. The body.

K. गादी gadee, f. Same as गद्दी q. v.

S. गायक gayuk, m. A singer.

S. गारी garee, (S. गालि) f. Abuse.

S. गाहक gahuk, (S. ग्राहक) m. A chapman, a purchaser.

K. गाहना gahna, v. a. [1] To inquire, to search, to seek. [2] To thrash, to tread.

K. गाहिगाहि gahi gahi, (plu. per. part. of गाहना) Having inquired or sought repeatedly.

K. गिड़गिड़ाना girgirana, v. a. To beseech, to implore earnestly and humbly.

S. गिद्ध gid,h, (S. गृध्र) m. A vulture.

K. गिरगिट girgit, m. [1] A lizard. [2] A chameleon.

S. गिरि giri, m. A hill, mountain. गिरि धारनकरना giri d,harun kurna, To uphold or support a mountain.

S. गिरिजा girija, f. A name of the goddess PARBUTEE, as daughter of the personified HIMALUYU mountain. (गिरि a mountain, and जा born; mountain-born.)

S. गिरिधारी girid,haree, m. A name of KRISHNU. (गिरि, and धारी one who sustains.)

S. गिरिराज giri-raj, m. [1] A name of the hill of *Govurd,hun*, the *Parnassus* of

the *Hindoos*. 2 A name of KRISHNU. (गिरि, and राज king.)

S. गीध *geedh*, (S. गृध्र) m. A vulture.

S. गुंज *gœnj*, (S. गुंजा) f. The seed of *Abrus precatorius*, or the shrub itself. गुंजहार *gœnj-har*, m. A necklace composed of the *Goonja* seed.

K. गुद्दा *gœdda*, m. A bough, a branch.

S. गुन *gœn*, (S. गुण) m. 1 A quality, an attribute or property in general, (but especially of excellence, &c.) 2 A property of humanity of which three are particularized, namely, the *Sutwu*, *Ruju* and *Tumu*, or principles of truth or existence, passion or foulness, and darkness or ignorance. 3 A string, a rope. 4 A favour, a kindness. गुनकरना *gœn kurna*, To benefit. गुनका पलटादेना *gœn ka pulta dena*, To repay a benefit. गुनछांडना *gœn chhandna*, To pass over a person's good qualities. गुनमान्ना *gœn manna*, To acknowledge a favour.

S. गुनगाहक *gœn-gahuk*, m. A discerner of merit, a patron of learning. (S. गुण good quality, and ग्राहक one who lays hold of.)

S. गुनवान *gœnwan*, (S. गुणवान) adj. Possessed of talent or virtue; virtuous, accomplished, skilful.

S. गुनी *gœnee*, (S. गुणी) 1 adj. Possessed of any quality or art; virtuous, skilful, dexterous. 2 (K.) m. A snake-catcher, one who charms the snakes.

S. गुप्ती *gœptee*, f. A hidden sword. (From S. गुप्त hidden, concealed.)

S. गुफा *gœpha*, (S. गुहा) f. A cave.

S. गुरु *gœrœ*, 1 m. A spiritual preceptor, pastor, tutor. 2 adj. Heavy, weighty. 3 Great, (large or eminent.)

S. गुरुमुखहोना *gœrœ mœkh hona*, v. n. To receive from a *Gœrœ* the initiatory *Muntru* or mystical prayer peculiar to the deity adopted for worship in particular, who is thence termed the *Ishtu Devuta* or chosen god; to become a scholar.

S. गुलाई *gœlaee*, (S. गोलता) f. Roundness, rotundity.

K. गुलाल *gœlal*, m. A farinaceous powder died red, which the *Hindoos* throw on each other during the *Holee*.

S. गुहना *gœhnuon*, v. a. 1 To thread, to string. 2 To plait, to braid. (From S. गुंफनं.)

S. गूंजना *goonjna*, v. n. To resound, to hum, to buzz, to growl. (From S.

गुंजन to produce inarticulate, agreeable sounds.)

S. गूजर goojur, (S. गुर्ज्जर) m. Name of an inferior cast among *Hindoos*, so denominated, being originally from *Goojrat*.

K. गूजरी goojree, f. [1] The female of गूजर, q. v. [2] Name of an ornament worn on the wrists or feet.

K. गूंझा goonjha, m. A sort of sweetmeat.

S. गूथना goothna, v. a. See गुहनौ.

S. गृह grihu, m. A house, dwelling.

S. गृहस्थ grihusthu, m. A householder, a man of the second class, or he who after having finished his studies and been invested with the sacred thread, performs the duties of the master of a house, and father of a family. (गृह a house, and स्थ who stays or abides.)

S. गृहस्थाश्रम grihusthashrum, m. The profession or condition of a householder or married man. (गृहस्थ a householder, and आश्रम an order or religious state.)

S. गेंडा genda, (S. गंड) m. A rhinoceros.

S. गेंद gend, (S. गेंदुक) f. A ball (to play with.)

S. गेंदतडीखेलना gend turee khelna, v. n. To play at striking a ball. (गेंद, and तडी from तड an imitative sound.)

S. गेरू geroo, (S. गवेरुक or गैरिक) m. A kind of red earth or ochre.

S. गेह geh, m. A house, dwelling.

S. गैया gueya, (S. गौः) f. A cow.

K. गैल guel, f. A road.

K. गोड gor, m. The leg, foot.

K. गोद god, f. The lap, bosom. गोदपसारना god pusarna, To ask, to beg. गोदलेना god lena, To adopt.

S. गोप gop, m. Name of a *Hindoo* cast, a cowherd. (गो a cow, and प who preserves.)

S. गोपाल gopal, m. [1] A name of Krishnu. [2] A cowherd. (गो the earth, or a cow, and पाल who preserves.)

S. गोपालक go-paluk, m. See the preceding word. (गो, and पालक a preserver.)

S. गोपी gopee, The female of गोप q. v.

S. गोबर gobur, (S. गोमय) m. Cow-dung.

S. गोरस gorus, m. Milk, buttermilk, curdled milk. (गो a cow, and रस juice.)

S. गोरा gora, (S. गौर) Fair (complexioned.)

S. गोवना gowuna, v. a. To conceal, to hide. (From S. गोपन.)

S. गोविंद gobind, m. A name of Krishnu.

S. गौ guo, f. A cow.

S. गौर guor, S. गौरा guora, S. गौरी guoree, } f. A name of the goddess Parvutee.

S. ग्रह gruh, m. ¹ A planet. ² (S. गृह) A house, dwelling.

S. ग्रहन gruhun, (S. ग्रहण) m. ¹ An eclipse. ² Seizing, taking,

S. ग्रहस्थापन gruhu st,hapun, m. Invoking the presence of the nine planets. (ग्रह a planet, and स्थापन placing.)

S. ग्राह grah, m. A shark; or, according to some, the *Gangetic* alligator.

S. ग्रीषम greek,hum, (S. ग्रीष्म) m. The name of the 4th of the six seasons, including from 15th of *Buesak,h* to 15th *Asharh* (June-July), the summer season.

S. ग्रेह greh, (S. गेह) m. A house, dwelling.

S. ग्वाल gwal, (S. गोपाल) m. A cowherd.

S. ग्वालनि gwaluni, (S. गोपिनी) The female of ग्वाल q. v.

K. ग्वैंडा gwuenda, ¹ m. Suburb, vicinage. ² adv. Near.

घ g,hu,

S. घंटाली g,huntalee, f. A small bell.

S. घट g,hut, m. ¹ A water-pot. ² The body. ³ (K.) Mind, heart, thought, soul.

K. घटना g,hutna, v. n. To abate, to decrease, to be depressed.

S. घटा g,huta, f. ¹ Cloudiness, gathering of the clouds. ² Clouds. ³ Crowds.

K. घटाटोप g,hutatop, m. A covering of a *Palkee* or carriage.

K. घड़ियाल g,huriyal, m. A crocodile.

S. घन g,hun, m. ¹ Gathering of the clouds. ² Clouds.

S. घनघोर g,hun-g,hor, ¹ m. Thunder, any loud noise. ² adj. Loud-sounding. (घन, and घोर terrifick.)

S. घनतनबरन g,hun tun burun, Whose body is of the colour of the clouds, an epithet of Krishnu. (S. घन clouds, तनु body, and वर्ण colour.)

S. घनस्याम g,hunsyam, ¹ adj. Black as a cloud, black clouds. ² m. A name of Krishnu. (S. घन, and श्याम black or dark blue.)

S. घना g,huna, (S. घन) adj. Thick, close, confused, numerous, much, many.

K. घबराना g,hubrana, v. n. To be confused, confounded, perplexed, agitated, embarrassed, &c.

K. घमंड g,humund, m. Pride, haughtiness.

S. घरबार g,hurbar, m. Family.

S. घरी g,huree, (S. घटिका) f. ¹ An hour,

or the space of 24 minutes. ² (K.) Fold, plait.

K. घहराना g,huhrana, v. n. To thunder. *Met.* To roar, to bawl.

K. घाघरा g,hag,hra, m. A petticoat.

S. घाट g,hat, (S. घट्ट) ¹ m. A landing place, a quay, ferry, pass, bathing place on a river side. ² (K.) Want, abatement, deficiency.

K. घात g,hat, f. Aim, snare, ambuscade, opportunity. घाततकना *g,hat takna,* To watch an opportunity.

S. घातक g,hatuk, s. A murderer, maimer, enemy.

S. घातुक g,hatook, adj. Mischievous, injurious, murderous, cruel.

K. घायल g,hayul, adj. Wounded.

K. घालना g,halna, v. a. ¹ To desolate, to ruin. ² To thrust in, to throw.

K. घाव g,haw, m. A wound, a sore.

K. घिरना g,hirna, v. n. To be surrounded, enclosed. ² To gather (as, the clouds.)

K. घुंघची g,hoong,hchee, f. A small red and black seed. (*Abrus precatorius.*)

K. घुटनोंचलना g,hootnon chulna, v. n. To crawl about on the knees (as, a child.)

S. K घुडचढा g,hoor-chur,ha, m. A horseman. (घुड contract. of घोडा from S. घोटक, and चढा.)

S. K. घुडबहल g,hoor-buhul, f. A four wheeled carriage, for riding in, drawn by horses.

S. घुन g,hoon, (S. घुण) m. Name of an insect (destructive to wood, meal, grain and flour,) a weevil.

K. घुरकना g,hoorukna, v. a. To browbeat, to reprimand, to frown at.

K. घूंघची g,hoong,hchee, f. See घुंघची.

S. घूंघट g,hoong,hut, (S. जवनिका) f. A veil, concealing the face with a veil, &c. घूंघटकरना *g,hoong,hut kurna,* v. a. To veil.

K. घूंघरू g,hoong,hroo, m. Name of an ornament, worn round the ankles, with bells fastened to it.

S. घूमघुमाला g,hoomg,hoomala, adj. Loose (as a robe), full.

S. घूमना g,hoomna, v. n. To go round, to turn, to roll, to wheel. (From S. घूर्ण.)

K. घेर g,her, ¹ adj. Round, surrounding, enclosing. ² Loose as a robe, full. ³ Winding, meandering. ⁴ m. Circuit, circumference. (From घेरना.)

K. घेरना g,herna, v. a. To surround.

K. घेवर g,hewur, f. A kind of sweetmeat.

S. घोर g,hor, adj. Frightful, horrible.

S. घोरनिद्रा *ghor nidra*, Deep sleep.

K. घोलना *gholna*, v. a. To mix with a liquid, to dissolve.

च *chu*,

S. चंचल *chunchul*, adj. [1] Trembling, tremulous. [2] Restless, wanton, playful. [3] Perishable.

S. चंचलाई *chunchulaee*, (S. चंचलता) f. [1] Restlessness, playfulness. [2] Perishableness.

S. चंडाल *chundal*, m. A man of the lowest Hindoo cast. *Met* a wretch.

K. चंडोल *chundol*, m. A sort of sedan.

S. चंद *chund*, m. The moon. चंद्रवदनी *chundru budunee*, or चंदमुखी *chund mookhee*, adj. Having a countenance beautiful as the moon.

S. चंदन *chundun*, m. Sandal-wood, or tree. (*Sirium myrtifolium.*)

S. चंद्र *chundru*, m. The moon.

S. चद्रकला *chundru kula*, f. A digit, or one-sixteenth part of the moon's diameter.

S. चंद्रबंसी *chundru bungsee*, (S. चंद्रवंशी) m. [1] Descendant of the moon. [2] The name of a tribe of *Kshutriyus* who claim descent from the moon.

S. चंद्रमा *chundruma*, m. See चंद्र.

S. चंद्रहार *chundru har*, m. A necklace composed of circular pieces of gold, silver, &c. (चंद्र the moon, and हार a necklace; each piece resembling the moon in shape.)

S. चंद्रिका *chundrika*, f. The moon-shine, the moon-beams.

S. चंपक *chumpuk*, m. A tree bearing a yellow fragrant flower. (*Michelia Champaca.*) चंपकबरनी *chumpuk burnee*, adj. Of the colour of the *Chumpu* flower, i. e. gold-coloured.

S. चंपा *chumpa*, See the preceding word.

S. चंवर *chunwur*, (S. चमर or चामर) m. A *Chuonree*; the tail of the *Bos grunniens*, a species of ox, used to whisk off flies, &c.

S. चकवा *chukwa*, (S. चक्रवाक) m. The ruddy goose. (*Anas Casarca.*)

S. चकवी *chukwee*, } (S. चक्रवाकी) Fem. of
S. चकई *chukuee*, } the preceding word.

S. चकित *chukit*, adj. Astonished.

S. चकोर *chukor*, m. The *Bartavelle*, or *Greek* partridge; said to be enamoured of the moon, and to eat fire at the full moon. (*Perdix rufa.*)

S. चक्र *chukru*, m. A discus, or sharp circular missile weapon.

S. चक्रित *chukrit*, (S. चकित q. v.)

S. चख *chuk,h*, (S. चक्षु) m. The eye.

K. चचोरना *chuchorna*, v. a. To suck (a dry substance from which nothing can be obtained.)

S. चट *chuṭ*, (S. झटिति) adv. Quickly, instantly.

K. चटक *chuṭuk*, [1] f. Glitter, splendour. [2] adj. Intelligent, quick.

K. चटकना *chuṭukna*, v. n. [1] To crackle (as wood on the fire), to crack. [2] To split.

K. चटकीला *chuṭkeela*, adj. Glittering, splendid.

K. चटवाना *chuṭwana*, v. a. To make lick or lap up.

S. चटसाल *chuṭsal*, m. A school, an academy. (S. चटु a boy, and शाला a house.)

K. चड़चड़ाना *churchuṛana*, v. n. To crack.

K. चढ़ना *chuṛ,hna*, v. a. To ascend, mount, advance, attack, embark, rise, climb, soar, spread, swell, ride.

S. चतुर *chutoor*, adj. Cunning, sly, shrewd, aware, knowing.

S. चतुर्थ *chutoort,h*, adj. Fourth.

S. चतुर्दशी *chutoordushee*, adj. The fourteenth day of the moon's age.

S. चतुर्भुज *chutoorb,hooj*, m. A name of Vishnoo. (चतुर four, and भुज an arm; the four armed.)

K. चपना *chupna*, v. n. [1] To submit, to stoop, to be abashed. [2] To be crushed or squeezed.

S. चपल *chupul*, adj. [1] Tremulous, shaking. [2] Wanton, restless, volatile.

S. चपला *chupula*, f. Lightning.

K. चमक *chumuk*, f. Glitter, splendor.

K. चमचमाना *chumchumana*, v. n. To sparkle, to shine, to glitter.

S. चर *chur*, adj. Moveable, loco-motive; animate.

S. चरचना *churuchna*, v. a. To smear or plaster the body with sandal wood, &c. (From S. चर्चा perfuming.)

S. चरन *churun*, (S. चरण) m. The foot.

S. चरनामृत *churunamritu*, m. The water with which an idol's or a *Brahmun's* feet have been washed. (S. चरणामृत; comp. of चरण, and अमृत nectar, ambrosia.)

S. चरनोदक *churunoduk*, m. See the preceding. (S. चरणोदक; comp. of चरण, and उदक water.)

K. चरपरा *churpura*, adj. [1] Acrid, hot (as pepper.) [2] Smart (in conversation.)

S. चरित *churit*, }
S. चरित्र *churitru*, } m. Nature, disposition, conduct, behavi-

our; history.

K. चहुआ churwa, m. A large pot.

S. चर्चा churcha, f. [1] Talking over past events, recapitulating former occurrences, mentioning, argument. [2] Perfuming by plastering the body with sandal-wood, &c.

S. चर्म churm, m. A skin, hide, leather. (*Pers.* چرم)

S. चलित्तर chulittur, (S. चरित्र q. v.)

P. K. चहचहाना chuhchuhana, v. n. To sing, to whistle, to warble (as birds.)

S. चहुं chuhoon, (S. चतुर) adj. Four. चहुं ओर chuhoon or, adv. On all sides.

S. चहुंचक्क chuhoon chukk, Circumjacent, all around. (S. चतुश्चक्र; comp. of चतुर, and चक्र a realm, a region.)

S. चहुंदिस chuhoon dis, See the preceding. (S. चतुर्दिशा; चतुर, and दिशा region, quarter.)

S. चांदना chandna, (S. चांद्री) m. Light.

S. चांदनी chandnee, (S. चांद्री) f. [1] The moon-beams. [2] A white cloth spread over a carpet. [3] Any thing white and shining.

K. चाचा chacha, m. Paternal uncle, father's brother.

S. चातक chatuk, m. Name of a bird. (*Coculus melanoleucos.*)

S. चातुर chatoor, (S. चतुर) adj. [1] Clever, cunning, sly, shrewd, wise, knowing. [2] Four.

S. चाम cham, (S. चर्म्म) m. Hide, skin, leather.

K. चाय chae, m. Eagerness, pleasure, taste.

S. चारन charun, (S. चारण) m. A kind of bard, a paneygerist.

S. चारु charoo, adj. Beautiful, elegant, agreeable, pleasing.

K. चव chaw, m. See चाय.

K. चाहना chahna, v. a. [1] To love, to like, to desire, to need, to require. [2] To see. चाह रहनौं chah ruhnuon, v. a. and n. To watch, to observe, &c.

K. चाहीता chaheeta, adj. Agreeable, desirable, beloved; sub. A sweet-heart, one beloved.

S. चिंघाडना ching harna, v. n. To scream, to screech, (applied properly to the elephant.)

S. चिंघाडा ching hara, (S. चीत्कार) m. Scream, screech, clamour.

S. चिंतित chintit, adj. Thoughtful, reflective, anxious.

S. चिंता chinta, f. Thought, consideration,

reflection, anxiety.

S. चित chit, }
S. चित्त chitt, } m. Mind, life, soul, heart, memory. चितचाय chit chae, Pleasing to the mind, satisfactory, what the heart desires. चितचोर chit-chor, Heart-stealer, heart-stealing or alluring. चितलाना chit lana, v. n. To be attentive, to be attached, to apply to.

S. चिता chita, f. A funeral pile.

S. चिताना chitana, v. a. To caution, to warn, to apprize. (From S. चेतनं; root चित् to know.)

K. चितैनौ chituenuon, v. a. To see, to look at, to behold,

K. चितौना chituona, v. a. To see, to look at, to behold.

S. चित्र chitru, m. A picture. चित्रशाला A picture room, a gallery of pictures.

S. चित्रविचित्र chitru bichitru, adj. Of various colours.

K. चित्वन chitwun, f. Sight, a look, a glance.

S. चिन्ह chin,h, (S. चिह्न) m. A mark, a spot, a scar, a token by which any thing is known.

S. चिर chir, ind. A long time.

S. चिरंजी chirunjee, adj. Long-lived. (S. चिरं long, and जीवि living, or lived.)

K. चिरौंजी chiruonjee, f. Nut of the *Chironjia sapida.*

K. चिरवाना chirwana, v. a. To cause to tear or be torn.

S. चीतना cheetna, v. a. [1] (From चित्र) To draw, to paint. [2] (चिंतन) To wish.

S. चीतल cheetul, (S. चित्रल) adj. Spotted, variegated, speckled (colour.)

S. चीता cheeta, (S. चित्रक) m. [1] A panther, or small hunting leopard. [2] (चेतना) Wish. [3] Understanding, wisdom.

S. चीन्हौं cheenn,huon, v. a. To know, to recognise. (From S. चिह्न; see चिन्ह.)

S. चीर cheer, m. Cloths, attire.

S. चुआन chωan, f. A reservoir, a cistern. (From चूना choona, To leak, S. root च्यु to move.) चुआनखाई chω,an kha,ee, A deep ditch with water springing at the bottom.

P. चुचुहाना chωchωhana, v. n. To sing, to whistle, to warble (as birds.)

K. चुटकी chωtkee, f. [1] A pinch. [2] Snapping of the fingers.

K. चुन्ना chωnna, v. a. [1] To pick, to gather, to choose, to select. [2] To pick up food (as birds.) [3] To place in order. [4] To plait (cloth.)

K. चुपरनौं chωpurnuon, v. n. To varnish,

to cover, to smooth, to annoint.

K. चुभकी chœbhkee, f. A plunge in water, a dip, a dive.

S. चुरी chœree, (S. चूडा) f. A kind of bracelet.

S. चुल्लू chœlloo, (S. चुलुक) m. The palm of the hand contracted so as to hold water.

K. चुहचुहाना chœhchœhana, v. n. To glow as a colour, to die a deep colour.

K. चुहचुहा chœhchœha, adj. Deeply coloured.

K. चूक chook, f. An error, fault, inadvertency, blunder, mistake.

S. चूवनौं choowunuon, v. n. To drop, to leak, to ooze, to exude. (From च्यवनं.)

S. चेत chet, verbal. n. m. (From चेतना) Memory, remembrance, thought, perception, consciousness, circumspection.

S. चेतना chetna, v. a. To remember, to think of, to reflect, to be aware, to recover the senses. (From S. चेतनं)

S. चेरा chera, (S. चेड) m. A slave brought up in the house, a pupil.

S. चेरी cheree, (S. चेडी) f. A slave-girl, a girl-servant.

S. चेला chela, (S. चेड) m. A pupil, a disciple.

S. चेष्टा cheshta, f. Endeavour, application, motion, bodily act or function.

S. चैतन्य chuetunyu, m. [1] Reason, understanding, perception, the possession of the proper use of the faculties; adj. In possession of the senses, awake, rational, sensitive, cautious, attentive, aware, perceiving. [2] An animal or sentient being.

K. चैन chuen, m. Ease, relief, repose, tranquillity.

S. चोंच chonch, (S. चंचु) f. [1] A beak, bill. [2] A point.

K. चोआ choa, m. [1] The name of a perfume. [2] The pod or skin of any kind of pulse.

K. चोखा chokha, adj. Pure, unadulterated, genuine, good, fine, sharp.

K. चोखी chokhee, adj. f. Sharp (tone in musick.)

S. चोटी chotee, (S. चूडा) f. [1] A lock of hair left on the top of the head, the hair braided behind, cue. [2] Top, summit.

S. चोला chola, m. A garment worn by a bride at her marriage. (From S. चोली a bodice, a jacket.)

K. चोवा chowa, m. See चोआ.

P. चौंतरा chuontura, (چبوترہ) m. A terrace

or mound to sit and converse upon.

K. चैाक भरना या पूरना chuok b,hurna or poorna, v. a. To fill a chuok or square with coloured meal, perfumes, sweetmeats, &c. on some occasion of rejoicing.

K. चैाकस chuokus, adj. [1] Cautious, watchful, diligent, active, clever, intelligent. [2] Full weight.

K. चैाकसी chuokusee, f. Watching, diligence, attention.

K. चैाका chuoka, m. [1] The space in which *Hindoos* dress their victuals. [2] A square slab of marble, &c. a square space of ground. [3] The four front teeth.

S. चैाथ chuot,h, (S. चतुर्थी) f. The fourth lunar day.

S. चैादस chuodus, (S. चतुर्दशी) f. The fourteenth day of the lunar fortnight.

K. P. चैादानिया chuodaniya, m. } An ornament
K. P. चैादानी chuodanee, f. } (formed of four pearls) worn in the ears. (चै *in comp.* four, and دانه a grain, a seed.)

S. चैापाई chuopa,ee, (S. चतुष्पदी) f. A sort of metre consisting of four *Pudus* or lines.

S. चैामुखा chuo mook,ha, m. A lamp-stand with four partitions or burners. (S. चतुर्मुख four-faced.)

S. चैामुखी chuo-mook,hee, f. One of the names of *Devee*. (S. चतुर् four, and मुख face; the four-faced.)

S. चैाहटा chuo-huta, m. A market where four roads meet. (चै *in comp.* four roads, and S. हट्ट a market.)

छ ch,hu,

K. छकड़ा ch,hukra, m. A cart.

K. छकना ch,hukna, v. n. [1] To be content, satiated, gratified. [2] To be afflicted, harassed, astonished.

S. छटा ch,huta, f. Splendour, brilliancy, lustre.

K. छड़ा ch,hura, m. An ornament made of pearls worn in the ears.

K. छड़ी ch,huree, f. A switch, cane.

S. छत्र ch,hutru, m. An umbrella.

K. छनाक ch,hunak, The sound of a drop of water falling on a hot plate, hissing.

S. छल ch,hul, m. Fraud, trick, deception, knavery, artifice.

S. छलना ch,hulna, v. a. To deceive, to cheat. (From S. छलनं)

S. छली ch,hulee, adj. Deceitful, frauda-

lent, artful, treacherous, false, perfidious, betrayer.

K. छल्ला ch,hulla, m. A ring (ornamental)

S. छवि ch,huvi, f. Beauty, splendour, brilliance.

K. छांटना ch,hantna, v. a. [1] To clip, to prune, to lop, to trim, to dress, to select. [2] To separate the husk from grain by pounding it in a mortar.

K. छांडना ch,handna, v. a. To let go, release, loose, forsake, abandon, vomit.

S. छांह ch,hanh, (S. छाया) f. [1] Shade, shadow. [2] The reflection of any object in a mirror, &c.

K. छाक ch,hak, m. Ready prepared food carried out by labourers and husbandmen when they proceed to their daily work, a luncheon.

S. छाजना ch,hajna, v. n. [1] To thatch. [2] To befit, to become. (From S. छादनं)

S. छात ch,hat, (S. छत्र) f. Roof.

S. छाना ch,hana, v. a. To thatch, cover, spread, shade, roof. (From S. छादनं)

K. छाप ch,hap, f. A seal-ring.

K. छापा ch,hapa, m. [1] Sectarial marks representing a lotus, trident, &c. delineated on the body by the *Vueshnuvus* or worshippers of VISHNOO. [2] Print, stamp, impression.

S. छार ch,har, (S. क्षार) f. Ashes.

K. छिंगुली ch,hingoolee, f. The little finger.

K. छिटकना ch,hitukna, v. n. To be scattered or dissipated, to spread.

K. छिटकाना ch,hitkana, v. a. To dissipate, to disperse, to scatter.

S. छिती ch,hitee, (S. क्षिति) f. The earth. छितीछान ch,hitee ch,han, Covering the earth, prostrate on the ground. छिती छानहोना ch,hitee ch,han hona, v. n. To be dispersed or scattered.

S. छिन ch,hin, (S. क्षण) m. A moment or instant.

S. छींका ch,heenka, (S. शिक्य) m. A network of strings or cords to hang any thing on, the cords of a *Buhungee*.

S. छीन ch,heen, (S. क्षीण) adj. Emaciated, wasted, thin, slender.

K. छेकना ch,hekna, v. a. To stop, detain, prevent, retain, bar, restrain.

S. छेरी ch,heree, (S. छागी) f. A goat.

ज ju,

S. जंतु juntoo, m. An animal, a sentient being, creature.

S. जंत्र juntru, (S. यंत्र) m. [1] An amulet.

² A musical instrument. ³ An instrument, an engine.

K. जकड़ना *jukurna*, v. a. To tighten, to draw tight (as a knot,) to bind, to fasten, to tie, to pinion.

S. जग *jug*, } m. The world, the uni-
S. जगत *jugut*, } verse. जगतउजागर *jugut oojagur*, Enlightening the world.

S. जगदीश *jugudeesh*, m. An appellation of Vishnoo and of Shivu. (जगत् the universe, and ईश lord.)

K. जगमगा *jugmuga*, adj. Glittering, splendid.

K. जगमगाना *jugmugana*, v. n. To glitter, to shine.

S. जग्य *jugnyu*, (S. यज्ञ) m. A sacrifice or religious ceremony in which oblations are presented.

S. जटा *juta*, f. Matted hair. जटाजूट The matted hair of Shivu rolled on his head. जटाधारी *juta-dharee*, adj. Whose hair is matted.

S. जटित *jutit*, pass. part. Set, studded (with jewels.)

S. जड़ *jur*, ¹ m. An inanimate body, what is void of life, a blockhead, idiot, dolt. ² (S. जटा) f. A root, origin.

S. जड़ाऊ *jura,oo*, (S. जटित) adj. Set, studded with jewels.

S. जतन *jutun*, (S. यत्न) m. Carefulness, remedy, care, effort, endeavour.

S. जताना *jutana*, v. a. (From यत्न) To inform of, to caution, to remind, to declare, to admonish.

S. जती *jutee*, (S. यति) m. A sage whose passions are completely under subjection.

S. जथा *jut,ha*, (S. यथा) adv. As, so, like, in the manner of, according to, to the utmost of. जथार्थ *jut,harth*, adv. In fact, exactly, truly. जथाजोग्य *jut,ha jogyu*, In a proper manner, suitably, properly.

S. जन *jun*, m. Man, individually or collectively, a man, mankind.

S. जननी *jununee*, f. A mother.

S. जनलोक *junu lok*, m. One of the seven *Lokus*, or divisions of the world; the region inhabited by pious men after their decease. (जन man, and लोक a world.)

S. जनवासा *junwasa*, m. The place at the bride's house where the bridegroom and his train are received. (S. जन्य the friend, attendant, or companion of a bride or bridegroom, and वास abode, residence.)

S. जन्ना junna, v. n. To produce young, to be delivered of child. (From S. जननं, root जन produce.)

S. जनेऊ june,oo, } (S. यज्ञोपवीत) m. The
S. जनो juno, } *Brahmunical* thread.

S. जन्म junmu, m. Birth, production.

S. जन्मदिन junmu din, m. Birthday.

S. जन्मपत्री junmu putree, f. Horoscope, nativity. जन्मपत्रीकीबिधिमिलना junmu putree kee bid,hi milna, To meet one's fate.

S. जन्मभूमि junmu b,hoomi, f. Birthplace.

S. जन्मोत्सव junmotsuv, m. A festival commemorating the birth of Krishnu. (जन्म birth, and उत्सव a festival.)

S. जप jup, m. Muttering prayers, repeating inaudibly passages from the scriptures, charms, names of a deity, counting silently the beads of a rosary, &c.

S. जपनो jupnuon, v. n. To count one's beads, to repeat the name of God internally, to recite the bead-roll, to make mention. (From S. root जप.)

S. जम jum, (S. यम) m. The regent of worlds below; or death, and judge of departed souls. जमदूत jum doot, Messenger of *Jum* or of death.

S. जमधर jumd,hur, m. A dagger. (S. यम Pluto, and धार sharp edge.)

S. जमाना jumana, v. a. [1] To collect. [2] To sum up. [3] To coagulate, to freeze or make ice. [4] To pace in the manege. (From S. यम bind, restrain.)

S. जम्ना jumna, [1] Intran. of the preceding word. [2] (S. जन्म) To grow, to germinate.

S. जय jue, f. Conquest, victory, triumph, bravo! huzza! all hail! जयजयकार jue-jue kar, m. Rejoicings, triumph, exultation. जयमाल jue-mal, f. Necklace or garland of victory.

S. जर jur, (S. जटा) f. A root.

S. जल jul, m. Water.

S. जलंदर julundur, m. The dropsy. (S. जलोदर; comp. of जल, and उदर the belly.)

S. जलक्रीडा julu kreera, f. Playing in the water. (जल, and क्रीडा pastime, play.)

S. जलचर jul-chur, m. Moving in water, aquatic (animal. जल, and चर to go.)

S. जलथल jul t,hul, m. Ground half covered with water, marshy ground. (Comp. of जल water, and स्थल dry ground.)

S. जलधारा julu d,hara, f. A stream or current of water.

S. जलाकार julakar, m. Appearance or semblance of water. (Comp. of जल, and आकार.)

K. जलेबी *julebee,* f. A kind of sweet meat.

S. जव *juw,* (S. यव) m. Barley.

S. जस *jus,* (S. यशः) m. Celebrity, reputation, fame.

S. जसी *jusee,* (S. यशस्वी) adj. Famous, celebrated, renowned.

S. जसुदा *jusooda,* S. जसुमति *jusoomuti,* S. जसोदा *jusoda,* S. जसोमति *jusomuti,* (S. यशोदा) f. The foster mother of Krishnu, and wife of Nund.

S. जागरन *jagurun,* (S. जागरण) m. Vigil, waking, wakefulness (in a religious ceremony, or prayer.)

S. जांघ *jangh,* (S. जंघा) f. The thigh.

S. जाचक *jachuk,* (S. याचक) m. A solicitor, a beggar, one who asks or solicits.

S. जाचना *jachna,* v. a. To want, to need, to require, to implore, to solicit, to beg. (From S. याचनं.)

S. जात *jat,* f. See जाति.

S. जातकर्म *jat kurmu,* m. A sacrificial ceremony directed to be performed at the birth of a child. (जात birth, and कर्म्म an act.)

S. जाति *jati,* f. [1] Class, tribe, sect, class, race. [2] Birth, production. (Root जन to be born or produced.) *Arab.* ذات.

S. जाती *jatee,* f. Great flowered Jasmine. (*J. Grandiflorum.*)

S. जान *jan,* (S. ज्ञानी) adj. Wise, intelligent.

S. जाननौं *jannuon,* v. a. To know, to understand, to comprehend, to suppose. (From S. ज्ञान.)

S. जानौं *januon,* [1] v. n. To go. (S. root या to move.) [2] (from जाननौं) Understand, suppose; that is, videlicet.

S. जाप *jap,* m. Muttering prayers, repeating inaudibly passages from the scriptures, charms, names of a deity, counting silently the beads of a rosary.

S. जाम *jam,* (S. याम) m. The eighth part of a day, a watch of three hours.

S. जामवंत *jamwunt,* (S. जाम्बुवत्) m. A fabulous bear, father-in-law to Krishnu.

S. जामिनी *jaminee,* (S. यामिनी) f. Night.

S. जायपत्री *jaeputree,* (S. जातीपत्री) f. Mace.

S. जायफल *jaephul,* (S. जातिफल) m. Nutmeg.

S. जार *jar,* m. A paramour, a gallant. (*Pers.* يار)

S. जारनौं *jarnuon,* v. a. To burn, to kindle, to inflame, to light. (From S. ज्वालनं.)

S. जाली *jalee*, (S. जाल) f. Lattice, grate, trellis-work.

S. जावित्री *jawitree*, (S. जातीपत्री) f. Mace.

K. जासु *jasœ*, pron. From or of whom.

S. जित *jit*, (S. यत्र) adv. Where.

S. जितेंद्री *jitendree*, m. One who has completely subdued his passions, a sage, an ascetic. (S. जितेंद्रिय; comp. of जित conquered, and इंद्रिय an organ of sense.)

K. जिन *jin*, [1] pron. rel. infl. pl. Whom, what. [2] A prohibitive particle, Don't.

S. जिमाना *jimana*, v. a. To feed, to entertain. (From S. जेमनं)

K. जिहिं *jihin*, infl. pron. (of जो) That, what, who, whom.

S. जीतब *jeetub*, (S. जीवंत) m. Life, existence.

S. जीमना *jeemna*, v. a. To eat. (From S. जेमनं)

P. जील *jeel*, f. A high note or tone in music, the treble. (*Pers.* زیر)

S. जीव *jeew*, [1] m. Animated being, animal; life, soul. [2] A sweetheart, a lover. [3] interj. Bravo.

S. जीहारना *jeeharna*, v. n. To be discouraged, to be depressed from fear, to be spiritless.

S. जुआरी *jœaree*, (S. द्यूतकारी) m. A gambler.

S. जुग *jœg*, (S. युग) m. [1] One of the four great *Hindoo* periods. [2] A pair. जुगानुजुग *jœganœ jœg*, Ages of ages, from age to age, for ages. जुगजुग *jœg jœg*, adv. Constantly, eternally.

K. जुगनी *jœgnee*, f. [1] A fire fly. [2] An ornament worn round the neck.

S. जुझाऊबाजना *jœjhaoo bajna*, v. n. To sound warlike instruments in battle. (From S. युद्ध battle.)

S. जुटना *jœtna*, v. n. To close with, to engage in close fight, to unite, to close, to join. (From S. युक्त.)

S. जुरनौं *jœrnuon*, v. n. To unite, to be joined. (From S. युक्त.)

S. जुवती *jœvutee*, (S. युवती) f. A young woman, a damsel.

K. जुहार *jœhar*, f. *Hindoo* salutation, obeisance.

K. जू *joo*, Lord! master! sir!

S. जूही *joohee*, (S. यूथी) f. Jasmine. (*J. Auriculatum.*)

S. जेवना *jewna*, v. a. See जीमना.

S. जेठ *jet,h*, (S. ज्येष्ठ) [1] m. Husband's elder brother. [2] Name of a *Hindoo* month, (the full moon of which is near

ज्येष्ठ) June-July. [3] adj. Older, elder, first-born.

K. जेवरी *jewree,* f. A cord, a string.

S. जेष्ठ *jeshth,* See जेठ.

K. जेहुर *jehur,* f. The name of a female ornament.

S. जै *jue,* (S. जय) f. Conquest, victory, triumph, bravo! huzza! all hail! जैजैकार *jue-jue-kar,* Cries of victory, rejoicings, triumph, exultation. जैमाल *jue-mal,* See जय.

S. जैहौ *juehuo,* 2 pers. plur. fut. ten. of जानों to go. (S. root या to move.)

S. जोग *jog,* [1] (S. योग) m. A fortunate moment, a lucky conjuncture, opportunity. [2] Penance, devotion. [3] Junction, fitting. [4] Certain divisions of a great circle, measured upon the Ecliptick. (*See Asiat. Res. Vol.* IX *p.* 365.) [5] (S. योग्य) adj. Possible, capable, fit, (in comp. it answers to *able, worthy,* &c.)

S. जोगमाया *jog-maya,* f. A deceptive power which *Jogees* are supposed to possess. (S. योग penance, and माया illusion.)

S. जोगिनी *joginee,* (S. योगिनी) [1] A class of female deities attendant on the goddess Devee. [2] In astrology, spirits governing periods of good and ill luck.

S. जोगेश्वर *jogeshwur,* m. [1] A name of Shivu. [2] A devotee, an adorer. (S. योग penance, devotion, and ईश्वर a chief.)

S. जोति *joti,* (S. ज्योति) f. [1] Brilliancy, lustre, light. [2] The sun-beams, the flame of a candle or lamp. [3] Vision.

S. जोतीस्वरूप *jotee swuroop,* adj. Luminous, an epithet of God. (S. ज्योतिः light or splendour, and स्वरूप natural state.)

S. जोधा *jodha,* (S. योद्धा) m. A warriour, a combatant.

S. जोबन *jobun,* (S. यौवन) m. [1] Puberty, youth. [2] *Met.* breast, bubby.

K. जोवनों *jowunuon,* v. a. To see, to look at, to regard.

S. ज्ञान *gyan,* m. [1] Understanding, intellect, intelligence, knowledge. [2] Knowledge of a specific and religious kind, which tends to exempt the soul from further transmigration.

S. ज्ञानवान *gyan-van,* adj. Intelligent, knowing.

S. ज्ञानी *gyanee,* [1] adj. Wise, intelligent, knowing. [2] m. A sage, one possessing religious wisdom or *Gyan* (ज्ञान) as above.

S. ज्यानों *jyanuon,* v. a. [1] To cause to

live, to give life to, to recover any one almost dead. ² To foster, to patronise. (From S. जीवनं)

K. ज्वार jwar, f. The name of a grain, *Indian* corn.

S. ज्वाला jwala, f. Flame.

झ j,hu,

K. झंखना j,hunk,hna, }
K. झंखनौं j,hunk,hnuon, } v. n. To rave, to chatter, to lament.

K. झंगा j,hunga, m. An upper garment or vest.

K झकोरनौं j,hukornuon, v. a. ¹ To shake. ² To drive as wind and rain in a squall.

K. झगड़ालू j,hugraloo, adj. Quarrelsome, wrangling.

K. झगा j,huga, m. See झंगा.

K. झगुला j,hugoola, m. A frock or shirt.

S. झट j,hut, (S. झटिति) adj. Quick. झटसे j,hut se, or झटपट j,hut put, adv. Quickly, hastily.

K. झटकना j,hutukna, ¹ v. a. To touse, to twitch, to pull. ² v. n. To become lean. झटकलेना j,hutuk lena, v. a. To snatch.

K. झड़ी j,huree, f. Continued rain, showers, storm, wet weather.

K. झपटना j,huputna, v. n. To snatch, to spring, to attack suddenly, to spring or pounce upon.

K. झमझम j,humj,hum, adv. Heavily and during the whole day (raining).

K. झमझमाना j,humj,humana, v. n. To sparkle, to shine, to glitter.

K. झर j,hur, f. ¹ Heavy rain. ² The heat from a fire.

S. झरना j,hurna, (S. क्षर) ¹ m. A spring, a cascade. ² v. n. To fall off (as, fruit, leaves, &c. from the tree.)

K. झरफना j,hurup,hna, v. n. To spar, to fight (as cocks, &c.), to contend.

S. झरोखा j,hurok,ha, (S. गवाक्ष Bull's eye; air hole, round window), m. A lattice, a window.

K. झल j,hul, f. ¹ Passion, anger, jealousy. ² The heat from a fire.

K. झलझलाना j,hulj,hulana, v. n. ¹ To glitter. ² To be in a passion.

K. झलाबोर j,hulabor, ¹ adj. Splendid, shining, covered with jewels and ornaments. ² f. Splendour.

K. झाड़खंड j,harkhund, ¹ adj. Bushy. ² m. A forest, the forest of *Buejnath*.

S. झारी j,haree, (From झरना) f. ¹ A pitcher with a long neck and a spout to it, an ewer. ² (K.) Forest, wood, underwood,

brushwood.

K. झाल j̣hal, m. A large basket.

K. झालर j̣halur, f. Fringe.

K. झिलम j̣hilum, f. ¹ Armour, a coat of mail. ² The visor of a helmet.

K. झुंड j̣hoond, m. Crowd, flock, swarm. झुंडकेझुंड j̣hoond ke j̣hoond, Crowds, &c. *used intensively.*

K. झुलसना j̣hoolusna, v. n. To be scorched, singed or seared.

K. झूमना j̣hoomna, v. n. To wave, to move the head up and down, to slumber, to move loose, to gather (the clouds.)

A. झूल j̣hool, (corrupt. of *Arab.* جل jool) f. Body clothes of cattle, housings.

S. झूलना j̣hoolna, ¹ v. n. To swing (for exercise). ² To swing, to dangle, to hang, to oscillate. ³ m. A kind of poem, (From S. दोलनं.)

S. झूला j̣hoola, m. A swing, the rope on which people swing.

K. झोका j̣hoka, m. A blow, a contact, collision, a gust or current (of wind.)

K. झोंटा j̣honṭa, m. ¹ The hair of the head. (S. जटा Hair matted.) ² The motion of a swing.

K. झोंपड़ी j̣houpree, f. A cottage, a hut.

K. झोंरा j̣honra, m. A bunch, a cluster (of fruit.)

K. झोला j̣hola, m. ¹ A palsy, *paralysis.* ² A knapsack, a wallet.

K. झोली j̣holee, f. A wallet.

ट ṭu.

K. टंकना ṭunkna, v. n. To be stitched.

K. टकोर ṭukor, f. ¹ The sound of a drum. ² A fillip, tap.

K. टटका ṭuṭka, adj. Fresh, new, recent.

K. टटोलना ṭuṭolna, v. a. To feel for, to grope, to search for by feeling, to touch.

K. टरना ṭurna, v. n. ¹ To give way,
K. टलना ṭulna, to shrink from. ² To pass away, to disappear.

K. टसकना ṭusukna, v. n. ¹ To move, to shake. ² To be pained.

K. टहल ṭuhul, or टहल टकोर ṭuhul ṭukor, f. Housewifery, housekeeping, duty, service, business, work, drudgery. टहल टकोर करना ṭuhul ṭukor kurna, v. a. To serve, to drudge.

K. टहलुआ ṭuhlooa, m. A manager of household concerns, a servant.

K. टाप ṭap, f. ¹ A stroke with the fore foot of a horse. ² The sound of a

horse's hoof in travelling.

K. टापना *tapna*, v. n. To paw with the fore feet (as, a horse who is impatient).

K. टापू *tapoo*, m. An island.

K. टारना *tarna*, } v. a. [1] To evade, to prevaricate, to put off, to postpone. [2] To drive out of the way, to move, to prevent.
K. टालना *talna*, }

S. टीका *teeka*, (S. तिलक) m. [1] A mark or marks made with coloured earths or unguents upon the forehead, and between the eye-brows, either as an ornament or sectarial distinction. [2] An ornament worn on the forehead. [3] The nuptial gifts or engagement. [4] (S.) A commentary. टीका भेजना *teeka b,hejna*, To send the nuptial gifts, which are presented by the relations of the bride to the bridegroom. टीका लेना *teeka lena*, To accept the nuptial gifts.

K. टीडी *teedee*, f. A locust.

K. टीला *teela*, m. A rising ground, a small hill, a ridge, a hillock.

K. टुंडियां चढ़ाना *toondiyan chur,hana*, v. a. To tie the hands behind the back.

S. टुक *took*, (S. स्तोक) adj. A little.

S. टूक *took*, (S. स्तोक) m. A piece, a little, a fragment, a bit.

S. टूटना *tootna*, v. n. [1] To break forth upon, to assault, to attack, to charge, to invade. [2] To break. (From S. त्रोटनं)

K. टेक *tek*, f. [1] A prop, a pillar, reliance. [2] A promise, vow. टेक रहना *tek ruhna*, To lean upon.

S. टेकना *tekna*, v. a. To support, to prop.

K. टेर *ter*, f. [1] Tune. [2] Voice.

K. टेरना *terna*, v. n. [1] To bawl, to roar to, to call loudly, to shout, to holla. [2] To tune.

K. टेव *tew*, f. Habit, custom.

K. टेहला *tehla*, m. The customs of marriage.

K. टोप *top*, } m. A helmet, cap, hat.
K. टोपा *topa*, }

K. टोल *tol*, m. } A company, a society.
K. टोली *tolee*, f. }

ठ *t,hu*,

K. ठई *t,hu ee*, 3 pers. sing. fem. of perf. tense of ठान्ना q. v.

S. ठकुराई *t,hukoora,ee*, (S. ठक्कुरता) f. [1] Godship, divinity. [2] Chiefship, mastership.

K. ठग *t,hug*, m. A cheat, an impostor, a robber.

K. ठगना *t,hugna*, v. a. To cheat, to deceive.

K. ठगनी t̤hugnee, f. A female robber or cheat.

K. ठगौरी t̤huguoree, f. Cheat, trick.

K. ठट्ठ t̤hutt̤h, m. Throng, crowd.

K. ठनकना t̤hunukna, v. n. ¹ To throb, to shoot (as, the pain of a head ache.) ² To jingle, to tinkle, to clink.

K. ठये t̤huye, 3 pers. plur. mas. perf. tense of ठान्ना q. v.

K. ठहराना t̤huhrana, v. a. To fix, to stop, to determine, to settle.

S. ठां t̤han, } (S. स्थान) m. Place, residence
S. ठांव t̤hanw, }

K. ठाढो t̤har̤huo, adj. Erect, standing.

K. ठान्ना t̤hanna, v. a. To resolve, to determine, to be intent on, to intend, to set one's heart on.

K. ठुसकना t̤hoosukna, v. n. To weep but not aloud.

K. ठीकठाक t̤heek t̤hak, adj. Exact, fit, proper, accurate; properly, fitly. ठीक ठाक करना t̤heek t̤hak kurna, v. a. To put to rights, to correct, to adjust.

S. ठोंठ t̤honth, (S. त्रोटि) f. The beak or bill of a bird.

K. ठोकर t̤hokur, f. Tripping or striking the foot against any thing, a kick, a stumble ठोकरखाना t̤hokur khana, v. n. To trip, to stumble.

K ठोढी t̤hor̤hee, f. The chin.

K. ठौर t̤huor, f. Place, residence.

ड ḍu,

K. डकारना ḍukarna, v. n. ¹ To bellow, to low. ² To belch.

K. डंक ḍunk, f. The sting of a reptile, particularly of a scorpion. डंकमारना ḍunk marna, v. a. To sting.

S. डंका ḍunka, (S. ढक्का) m. A double drum, a kettle drum.

K. डगमगाना ḍugmugana, v. n. To totter, to stagger.

P. डफ ḍuph, (Pers. دف) m. A tambourine.

K. डबडबाना ḍubḍubana, v. a. To fill with water or tears (the eyes.) आखें या आंसू डबडबाना ankhen or ansoo ḍubḍubana, To be on the point of shedding tears.

K. डबोना ḍubona, v. a. To drown (literally or figuratively,) to ruin, to destroy, &c.

S. डमरू ḍumroo, m. A sort of small drum shaped like an hour glass, held in one hand, and beaten with the fingers.

K. डरपना ḍurupna, v. n. To fear, be frightened.

K. डरवना ḍurawna, ¹ v. a. To frighten.

² adj. Frightful, terrifying.

K. डला ḍula, m. ¹ A large lump, a clod. ² A large basket.

S. डसना ḍusna, v. a. To bite or sting (as, a venomous animal). From S. दंशनं.

K. डहडहा ḍuhḍuha, adj. Flourishing, blooming, green, fresh; pleasing.

S. डाकिनी ḍakinee, f. A kind of female imp or evil being, a witch.

S. डाभ ḍabh, (S. दर्भ) m. The name of a sacrificial grass. *(Poa cynosuroides.)*

K. डार ḍar, f. A branch, a bough.

K. डिगना ḍigna, v. n. ¹ To shake, to vibrate, to tremble, to quaver, to move. ² To shrink.

K. डुबकी ḍoobkee, f. A dip, a dive.

K. डेंडि ḍonḍee, f. Proclamation by beat of drum.

S. डोलाना ḍolana, v. a. To agitate, to shake, to swing. (From S. दोलनं.)

K. डोर ḍor, f. String, cord, rope.

S. डोलना ḍolna, v. n. ¹ To roam, ramble, rove. ² To move, to shake, or be shaken. ³ To swing. (From S. दोलनं.)

S. डोला ḍola, (S. दोला) m. A kind of sedan.

K. डोढी ḍuoṛhee, ¹ f. A threshold, a door, an antichamber. ² adj. f. Half as much again. ³ Raised one half higher (a tone in musick.)

ढ ḍhu,

K. ढंढोरा ḍhunḍhora, m. See डेंडी.

K. ढंढोरिया ḍhunḍhoriya, m. A crier, a proclaimer by beat of drum.

K. ढकना ḍhukna, ¹ v. a. To cover, to conceal. ² m. A lid, a cover.

K. ढब ḍhub, m. Manner, way, style.

K. ढवाना ḍhuwana, v. a. To cause be knocked down or razed, (a building, &c.)

K. ढाक ḍhak, m. Name of a tree. *(Butea frondosa.)*

S. ढाढस ḍhaṛhus, (S. दाढ्य) m. and f. Firmness of mind, confidence, animation, encouragement, comfort. ढाढस बंधाना ḍhaṛhus bundhana, v. a. To encourage, to comfort, to keep in spirits. ढाढस देना ḍhaṛhus dena, v. a. To animate.

K. ढाढी ḍhaṛhee, m. A kind of musician, a singer.

K. ढाना ḍhana, v. a. To break, to knock down or raze, to demolish (a building, &c.)

S. ढिग ḍhig, (S. दिग) m. and f. Side;

near, close to.

S. ढुंढना d̤hoond̤hna, } v. a. To seek, to
S. ढूंढना d̤hoond̤hna, }
search for. (From S. ढुंढन.)

K. ढेढी d̤her̤hee, f. An ornament worn in the ear.

K. ढेर d̤her, [1] m. A heap. [2] adj. Much, abundant, enough.

K. ढोर d̤hor, m. Cattle.

S. ढोल d̤hol, m. A large drum.

त tu,

S. तकना tukna, [1] v. a. To look at, to observe, to aim at, to watch. [2] v. n. To be looked at, to be stared at. (From S. तर्क shine, investigate.)

S. तंत्र tuntru, m. [1] The name of a religious treatise teaching peculiar and mystical formula, and rites for the worship of the deities, or the attainment of superhuman power: it is mostly in the form of a dialogue between Shivu and Doorga, who are the peculiar deities of the *Tantrikus*. [2] Charm, enchantment.

S. तक्षक tuchchuk, or tukshuk, m. One of the principal *Nagus* or serpents of *Patalu*. A snake of a middle size and of a red colour.

S. तजना tujna, v. a. To abandon, to desert, to quit, to leave. (From S. त्यजन)

S. तट tut, m. A shore or bank

K. तड़का tur̤ka, m. Dawn of day. तड़के tur̤ke, adv. In the morning early,

K. तड़फड़ाना turp̤hur̤ana, v. n. To flutter, to palpitate.

S. तड़ाग turag, m. A pond, a pool.

S. तत्काल tut-kal, adv. At that time, then.

S. तत्क्षण tut-chhun, or kshun, adv. At that instant, instantly, immediately,

S. तत्ता tutta, (S. तप्त) adj. Hot, fiery, passionate, furious, outrageous.

S. तद् tud, (S. तदा) adv. Then, at that time.

S. तधी tud̤hee, (S. तदाहि) adv. At that very time.

S. तन tun, (S. तनु) m. The body. (*P.* تن)

S. तनक tunuk, (S. तनुक) [1] adj. Slight, small, a little. [2] adv. Slightly.

S. तनु tunoo, m. The body.

S. तनी tunee, (S. तनया) f. [1] A daughter. [2] (K.) A string with which garments are tied.

P. तप tup, f. A fever.

S. तप tup, f. [1] Heat, warmth. [2] (S. तपः) Devout austerity, religious penance.

S. तपत *tuput*, (S. तप्त) [1] f. Heat. [2] adj. Hot, warm, fervent.

S. तपन *tupun*, [1] f. Heat, glow, fervour, warmth. [2] m. The sun.

S. तपसी *tupsee*, (S. तपस्वी) m. An ascetick, a performer of austere devotion.

S. तपस्या *tupusya*, f. Devout austerity, religious penance.

S. तपाना *tupana*, v. a. To heat, to warm. (From S. तापनं.)

S. तपी *tupee*, m. See तपसी.

S. तम *tum*, (S. तमः m. [1] The third of the qualities incident to the state of humanity, the *Tumu goon*, or property of darkness, whence proceed folly, ignorance, mental blindness, worldly delusion, &c. [2] Darkness, gloom.

S. तमाल *tumal*, m. The name of a tree noted for the dark hue of its blossoms. (*Xanthocymus pictorius.*)

S. तर *tur*, (S. तल) adv. Below, underneath.

S. तरंग *turung*, m. [1] A wave. [2] Whim, conceit, fancy, caprice.

S. तरन *turun*, (S. तरण) m. [1] Passing over; escaping, being saved. [2] One who is saved or delivered.

S. तरना *turna*, v. n. To cross over, to be ferried; to be saved. (From S. तरणं.)

S. तरपन *turpun*, (S. तर्पण) m. A libation of water to the manes of deceased ancestors; satisfaction, gratification.

S. तरव *turuv*, (S. तरु) m. A tree.

S. तरवर *turwur*, m. Any large tree. (S. तरु a tree, and वर excellent.)

S. तरसना *turusna*, v. n. [1] To long, to desire anxiously. [2] To pity. (From S. तर्षणं.)

K. तरफना *turup,hna*, v. n. To flutter, to palpitate, to be agitated.

S. तरु *turoo*, m. A tree.

S. तरुन *turoon*, (S. तरुण) adj. Young, juvenile, adult.

S. तरुनाई *turoona,ee*, (S. तरुणता) f. Adolescence, youth, puberty.

K. तलफना *tulup,hna*, v. n. See तरफना.

S. तांडव *tanduv*, (S. ताण्डव) m. Dancing, especially with violent gesticulation, and particularly applied to the frantic dance of the god Shivu, and his votaries.

S. तांता *tanta*, (S. तन्ति) m. [1] A string (of camels, horses, &c.), a drove. [2] A row, a range, a series.

K. ताइत *ta,it*, m. An amulet, a charm.

S. ताकना *takna*, v. a. To stare at, to see,

to spy, to watch, to look for. (From S. तर्क.)

S. ताड *tar,* (S. ताल) m. The palm tree. (*Borassus flabelliformis.*)

S. तात *tat,* ¹ m. Father. ² (S. तप्त) adj. Hot, warm.

K. तातनी *tatnee,* pron. inf. Of her, that or it.

K. तातनै *tatnuo,* pron. inf. Of him, that or it.

K. ताते *tate,* pron. inf. From him, her, that or it.

S. तान *tan,* f. A tune, the key note in musick.

S. तानना *tanna,* v. a. To extend, to stretch, to expand, to pull. (From S. तनन.)

S. तामस *tamus,* ¹ adj. Partaking or influenced by the principle of inertness, ignorance or mental darkness, inert, stupid, ignorant. ² m. (S. तमस्) Darkness, illusion, irascibility.

S. तामसी *tamusee,* or तमस्वी *tumuswee,* adj. Dark, irascible, vindictive.

S. तारन *tarun,* (S. तारण) m. ¹ One that sets free or delivers. ² The act of freeing, salvation, deliverance. तारनतरन *tarun turun,* The saviour, and the person saved. See तरन.

S तारना *tarna,* v. a. To free, to rid, to exempt from further transmigration, to absolve from sin, to save. (From S. तारण.)

S. तारि *tari,* (S. तारी q. v.)

S ताल *tal,* m. ¹ Beating time in music, musical time or measure. ² Slapping or clapping the hands together, or against the arms, &c. ³ The palm tree, (*Borassus flabelliformis*). ⁴ (S. तडाग) A pond. ताल ठोकना या मारन *tal thokna,* or *marna,* v. a. To strike the hand against the arms preparatory to wrestling.

S. ताला *tala,* (S. ताल) m. A lock.

S. ताली *talee,* f. ¹ Clapping of the hands together. ² A key.

S P. ताव *taw,* (S. ताप or P. تاب) f. ¹ Heat. ²Passion, rage. ³Strength, power. ⁴ Splendor, dignity. ⁵ Twist, coil, contortion. तावपेचखाना *taw pech khana,* v. n. ¹ To be heated. ² To be angry.

K. तासु *tasoo,* } pron. inf. Of him,
K. तासुकौ *tasookuo,* } that or it.

K. ताहि *tahi,* pron. inf. To him, her, or it.

S. तिगन *tigun,* (S. त्रिगुण) adj. Threefold, triple.

S. तिजारी *tijaree*, (S. त्रितीयज्वर) f. A tertian fever.

S. तित *tit*, (S. तत्र) adv. Thither, there.

S. तिथ *tit,h*, (S. तिथि) f. A lunar day.

S. तिबारा *tibara*, ¹ adj. Thrice. ² m. A hall or room with three doors. (S. त्रि three, and बार time, a door.)

S. तिय *tiyu*, (S. स्त्री) f. A woman.

S. तिरना *tirna*, v. n. To swim. (S. root तॄ swim.)

S. तिलक *tiluk*, m. A mark or marks made with coloured earths or unguents upon the forehead, and between the eye-brows, either as an ornament or a sectarial distinction.

K. तिहरा *tihra*, adj. Triple, threefold.

K. तिहरे *tihure*, m. }
K. तिहारी *tiharee*, f. } pron. Your, of you.
K. तिहारे *tihare*, m. }
K. तिहारौ *tiharuo*, m. }

K. तिहूं *tihoon*, adj. Three.

S. तीखा *teek,ha*, (S. तीक्ष्ण) adj. ¹ Pungent, hot. ² Angry, passionate. ³ Sharp, penetrating.

S. तीखी *teek,hee*, adj. f. Sharp (tone in musick). See the preceding word.

S. तीछन *teech,hun*, See तीखा.

S. तीता *teeta*, (S. तिक्त) adj. ¹ Bitter. ² Pungent, hot.

S. तीय *teeyu*, (S. स्त्री) f. A woman or female in general.

K. तीयल *teeyul*, f. A suit (of female's clothes.)

S. तीर *teer*, m. ¹ The bank of a river, the shore of the sea. ² Near.

S. तीरथ *teeruth*, (S. तीर्थ) m. A holy spot visited by pilgrims.

S. तुंग *toong*, adj. High, tall.

K. तुतराना *tootrana*, v. n. To lisp, to speak imperfectly as a child.

T. तुपक *toopuk*, m. A musket.

K. तुमतनौ *toomtunuo*, pron. inf. Your, of you.

K. तुरंग *toorung*, m. A horse.

S. तुरंत *toorunt*, } (S. त्वरित) adv. Quickly,
S. तुरत *toorut*, } instantly, directly.

K. तुरही *toorhee*, f. A trumpet, a clarion.

S. तुल *tool*, (S. तुल्य) adj. Alike, like. तुलकर खड़े रहना *toolkur k,hure ruhna*, v. n. To stand front to front, ready for battle or opposed.

S. तुलसी *toolsee*, f. A small shrub held in veneration by the *Hindoos*, holy basil, (*Ocymum Sanctum*) : *Toolsee* or Toolusee was a nymph beloved by Krishnu, and by him metamorphosed into

this plant. तुलसीकाहीर toolsee ka heera, f. Beads made of the wood of the Toolsee plant.

S. तृतीय triteeyu, adj. Third.

S. तृन trin, (S. तृण) m. Grass.

S. तृणवत् trinu-vut, adj. Like grass, like a straw; worthless, insignificant. (S. तृण, and वत् aff. of comparison.)

S. ते te, pron. They, those.

K. ते te, postpos. From, by, with.

K. तें ten, [1] pron. Thou. [2] postpos. From, by, with, in, than.

S. तेज tej, (S. तेजस) m. [1] Ardour, splendour, glory, strength, energy. [2] Fire.

S. तेजमान tejman, | S. तेजवंत tejwunt, | S. तेजस्वी tejuswee, } adj. Glorious, splendid, energetick.

S. तेरस terus, (S. त्रयोदशी) f. The thirteenth day of the lunar fortnight.

S. तेल tel, (S. तैल) m. Oil तेलचढाना tel chuṛhana, v.a. To annoint the head, shoulders, and hands and feet of the bride and bridegroom with oil mixed with turmerick during the marriage ceremony.

K. तेह teh, m. Anger, passion, vehemence.

K. तेहर tehur, f. A female ornament worn round the ankles.

K. तोतला totla, adj. Lisping, stuttering, stammering, speaking imperfectly as a child.

S. तोरन torun, (S. तोरण) m. Strings of flowers suspended across gateways on public festivals.

K. तोहि tohi, pron. inf. To or for thee, thee.

S. तोहू tuohoo, (S. तदापि) adv. Still, then even, nevertheless.

S. त्रास tras, m. Fear, alarm, terrour.

S. त्राह trah, (S. त्राहि) interj. Mercy! save! त्राहकार trah kar, Cry for mercy or deliverance. त्राहित्राहिकरना trahi trahi kurna, v. a. To cry out for mercy.

S. त्रिपुंड tripoond, m. Three horizontal lines delineated on the forehead by the Shuevus, and Shaktus, or followers of Shivu, and Shukti respectively. (S. त्रि three, and पुंड्र painting, delineation.)

S. त्रिवेनी trivenee, f. The confluence of three sacred rivers; especially applied to that of the Ganges, Jumoona, and supposed Suruswutee under ground at Ilahabad. (S. त्रि three, and वेणी a braid of hair.)

S. त्रिभंगा tribhunga, adj. Standing awry, or bending; properly, with legs, loins,

and neck bent. (S. त्रि three, and भंग broken.)

S. त्रिभुवन trib,hoovun, m. The three worlds, viz. heaven, earth, and hell; the universe. (त्रि three, and भुवन a world.)

S. त्रिया triya, (S. स्त्री) f. A woman, or female in general.

S. त्रिलोक trilok, m. See त्रिभुवन. (त्रि three, and लोक a world.)

S. त्रिलोकी trilokee, f. The aggregate of the three worlds, or heaven, earth, and hell collectively; the universe. (त्रि three, लोक a world, and ई aff. with the sense of aggregation.)

S. त्रिशूल trishool, m. A trident, a three pointed pike or spear, especially borne by Shivu. (त्रि three, and शूल a dart.)

S. त्याग tyag, m. Abandonment, leaving, forsaking, renouncing.

S. त्यागना tyagna, v. a. To leave, to forsake, to abandon, to desert. (From S. त्याग.)

S. त्यागी tyagee, m. An abandoner, a deserter, but chiefly applied to the religious ascetick or him who abandons terrestrial objects, thoughts, passions, &c.

थ t,hu,

S. थंभ t,humb,h, (S. स्तंभ) m. A post, a pillar.

S. थंभना t,humb,hna, v. n. [1] To cease, to be restrained, to stop. [2] To be supported. (From S. स्तंभनं.)

S. थकना t,hukna, v. n. To be wearied or fatigued, to tire. (From S. स्थग्.)

S. थकित t,hukit (S. स्थगित) adj. Wearied, stopped, motionless, astonished.

K. थरथराना t,hurt,hurana,
K. थरहरना t,hurhurna,
K. थरहराना t,hurhurana,
} v. n. To tremble, to quiver, to shiver, to shake.

S. थल t,hul, (S. स्थल) m. Place, firm or dry ground. थलचर t,hul-chur, adj. Moving on land, terrestrial (an animal.)

S. थाना t,hana, (S. स्थान) m. A station, a guard.

S. थांभ t,hamb,h, (S. स्तंभ) m. A post, a pillar, a support, obstacle.

S. थांभना t,hamb,hna, v. a. [1] To support, to prop. [2] To shield, to protect, to shelter. [3] To prevent, to withhold, to restrain. [4] To stop, to pull up (a horse), to bear, to assist, to resist. (From S. स्तंभनं.)

S. थार t,har, } (S. स्थाल) m. A large flat
S. थाल t,hal, } dish.

K. थाह t,hah, f. Bottom, ford.

S. थिर t,hir, (S. स्थिर) adj. Fixed, stable, settled.

K. थेईथेई t,he,ee t,he,ee, f. Merry-making. थेईथेईकरना t,he,ee t,he,ee kurna, To make merry.

द du,

S. दंड dund, m. [1] A stick, a staff. [2] Punishment, castigation by amercement or putting to death, fine, penalty.

S. दंडवत् dunduvut, f. *Hindoo* salutation, bow, obeisance, prostration.

S. दंतीला dunteela, (S. दंतुर) adj. Having large or prominent tusks (an elephant, boar, &c.)

S. दक्षिना duch,hina, } (S. दक्षिणा) f. Pre-
S. दछना duch,hna, } sents to *Brahmuns* upon solemn or sacrificial occasions, fee.

K. दड़कना durukna, v. n. To split, to be rent or torn, to crack.

S. दधि dud,hi, m. Sour, thick milk, coagulated milk. दधिकादों dud,hi kaduon, (S. दधिकर्दम) Coagulated milk and clay thrown by people at each other in sport on the festival of Krishnu's birth day.

K. दपटना duputna, v. n. [1] To gallop, to rush. [2] To rebuke, to reprimand.

K. दपटाना duptana, (caus. of दपटना) v. a. To gallop.

K. दबेपाव dube panw, With silent steps, softly, gently.

K. दमक dumuk, f. [1] Glitter. [2] Ardour.

P. दमामा dumama, (*Pers.* دمامه) m. A large kettle drum.

S. दयाल duyal, (S. दयालु) adj. Merciful, compassionate, gracious, benevolent.

S. दरस durus, m. [1] Sight, seeing. [2] Conjunction of sun and moon, or day of new moon. (S. दर्श; root दृश to see.)

S. दरिद्र duridru, (S. दारिद्र्य) m. Wretchedness, poverty, indigence.

S. दरिद्री duridree, (S. दरिद्र) adj. Poor, wretched, indigent.

S. दर्पन durpun, (S. दर्पण) m. A mirror.

K. दर्राना durrana, v. n. To go straight and quickly, without fear or delay, to go straight forwards.

S. दल dul, m. [1] The leaf of a tree. [2] A large army. [3] A heap or quantity.

S. दलबादल dul badul, m. A mass of clouds. (S. दल and बारिद a cloud.)

S. दलन dulun, m. Dividing, tearing asunder, splitting.

S. दलना dulna, v. a. To grind coarsely, to split pulse. (From S. दलनं.)

S. दशम dushum, adj. Tenth.

S. दशमी dushumee, f. The tenth day of the lunar fortnight.

S. दसन dusun, m. A tooth. (S. दशन; root दंश bite.)

S. दसा dusa, (S. दशा) f. Condition, state, circumstances.

S. दसोंद्वार duson dwar, m. The ten passages for the actions of the faculties; namely, the eyes, ears, nostrils, mouth, penis, anus, and crown of the head: there are however properly only nine, the last not being acknowledged in any *Sunskrit* works of authority which have been consulted. (S. दश ten, and द्वार a gate: or, according to the foregoing observation, नवद्वार; नव nine, and द्वार.)

S. दह duh, (S. ह्रद) m. Very deep water, abyss. कंवलदह kunwul duh, A place abounding in water lilies.

K. दहउदहउजलना duhurduhur julna, v. n. To burn with great fury.

K. दहाडना duharna, v. n. To roar (as, a tiger).

S. दही duhee, (S. दधि) m. Thick sour milk, coagulated milk.

S. दहेंडी duhuendee, f. A vessel in which sour milk is kept. (Comp. of दही from S. दधि dud,hi, and हंडी a vessel.)

S. दहनौं duhnuon, v. n. To burn. (From S. दहनं)

S. दह्यौ duhyuo, [1] See दही. [2] 3 pers. sing. perf. tense of दहनौं q. v.

S. दांत dant, (S. दंत) m. A tooth. दांत पीसना dant peesna, To gnash the teeth, to grin.

K. दांव danw, m. [1] Ambuscade, ambush, snare. [2] Time, turn, opportunity, vicissitude. [3] Twisting of one another in wrestling. दांवचलना danw chulna, To have the advantage. दांवचलाना danw chulana, To take advantage of. दांव पकरना danw pukurna, v. a. To wrestle. दांवबैठना danw buet,hna, v. n. To lie in ambush, to lurk.

S. दाइक da,ik, } (S. दायक) m. Giving, a
S. दाई da,ee, } donor.

K. दाऊ da,oo, m. [1] An appellation of a father or of an elder brother. [2] Used by contraction for Buludevu, Krishnu's foster brother.

S. दाख dak,h, (S. द्राक्षा) f. A raisin, grape.

S. दाडिम darim, m. The pomegranate. (*Punica Granatum.*)

S. दातन datun, (S. दंतधावन) f. A tooth-brush.

S. दाद dad, (S. दद्रु) m. A ringworm, herpes.

S. दादुर dadoor, (S. दर्दुर) m. A frog.

S. दान dan, m. Gift, donation, alms, act of giving or bestowing.

S. दानव danuv, m. A demon, a titan or giant. (From दनु the mother of these beings.)

S. दानी danee, adj. Munificent, liberal, bountiful, charitable, giving.

S. दाम dam, f. A rope, cord, string.

S. दामिनी daminee, (S. सौदामिनी) f. Lightning.

S. दायक dayuk, m. Giver, a donor.

K. दायजा daeja, m. A dowry, portion.

S. दारा dara, f. A wife.

K. दाव daw, See दांव.

S. दावाग्नि davagni, f. The conflagration of a forest, kindled by a tempest or some other cause. (दाव a forest, and अग्नि fire.)

S. दावानल davanul, f. See the preceding. (दाव a forest, and अनल fire.)

S. दास das, m. A male servant or slave.

S. दासी dasee, f. A maidservant.

S. दाह dah, f. Burning, heat. दाहदेना dah dena, To light the funeral pile.

S. दाहना dahna, (S. दक्षिण) [1] adj. Right, (opposed to left.) [2] v. a. To burn. (From S. दाहनं)

S. दिग dig, m. [1] Quarter, region, tract, side, way-wards (as, उत्तरदिग ootur-dig, Northwards). The *Hindoos* reckon ten *digs* (which are mentioned under दिगपाल dig-pal.) [2] Point (of the compass). दिगसूल dig sool, See दिसासूल disa sool.

S. दिगंबर digumbur, [1] adj. Naked. [2] m. An order of *Hindoo* asceticks, who go naked: they are worshippers of Shivu. (Comp. of दिग् inflection of दिश् space, and अंबर vestment; whose only garment is the atmosphere.)

S. दिगपाल dig-pal, m. The ten guardian deities of the quarters and points: Bruhmu presides over the zenith; Ununtu, the nadir; Indru, the east; Ugni, the S. E.; Yumu, the south; Nuerritu, the S. W.; Vuroonu, the

west; Puvunu, the N. W.; Kooveru, the north; and Shivu, the N. E. (दिग् quarter or point of the compass, and पाल who preserves or protects).

S. दिन *din*, m. Day. दिनकाटना *din katna*, To pass away the time.

S. दिया *diya*, (S. दीप) m. A lamp.

S. दिवस *divus*, m. A day.

S. दिसा *disa*, (S. दिशा) f. Side, quarter, point (of the compass).

S. दिसाशूल *disa sool*, m. The quarter towards which it is deemed unlucky to travel on particular days. (S. दिशा quarter, and शूल a thorn.)

S. दीठ *deet,h*, } (S. दृष्टि) f. Sight, a look,
S. दीठि *deet,hi*, } a glance, vision.

S. दीन *deen*, adj. Poor, needy, indigent. दीन दयाल *deen duyal*, Merciful to the poor, दीनानाथ *deena nat,h*, Lord of the poor, and दीनबंधु *deen bund,hoo*, The friend of the poor, are epithets of the Deity.

S. दीनता *deenuta*, f. Poverty, indigence; humility.

S. दीनौ *deenuo*, 3 pers. sing. perf. tense of देनौं to give. (From S. दान.)

S. दीप *deep*, m. ¹ A lamp. ² (S. द्वीप) An island; a continent, a region or clime of the earth.

S. दीसना *deesna*, v. a. To look, to see, to appear. (From S. root दृश to see.)

S. दुंदुभी *doondoob,hee*, m. A large kettle drum.

S. दुख *dook,h*, (S. दुःख) m. Pain, grief, affliction. दुखदाइ *dook,h-daee*, or दुखदानी *dook,h-danee*, adj. Giving or occasioning pain, troublesome, vexatious. दुख हर्त्ता *dook,h-hurta*, Dispeller of grief or pain.

S. दुखारी *dook,haree*, } (S. दुःखी) adj.
S. दुखियारी *dook,hiyaree*, }
Afflicted, in distress or pain, sick.

S. दुगन *doogun*, (S. द्विगुण) adj. Twofold, double.

S. दुति *dooti*, (S. द्युति) f. Splendour, light, beauty.

S. दुबधा *doobd,ha*, (S. द्वैविध्य) f. Doubt, suspense, uncertainty.

S. दुर् *door*, prep. A depreciative particle, implying, ¹ Pain, trouble, (bad, difficult, ill); ² Inferiority, (bad, vile, contemptible.)

K. दुरना *doorna*, v. n. To be hidden, to be concealed, to be absent, to disappear, to lurk.

K. दुराना *doorana*, v. a. To conceal, to hide.

S. दुर्भिक्ष doorbhichh or doorbhiksh, m. A scarcity, a famine. (दुर् difficult, and भिक्ष begging.)

S. दुर्योधन dooryodhun, m. The elder of the Kooroo princes, and leader in the war against his cousins the Pandoos, and Krishnu, the subject of the *Muhabharut.*

S. दुर्लभ doorlubh, adj. Difficult to be obtained, hard to be acquired, rare. (दुर् difficult, and लभ to obtain or gain.)

K. दुलत्ती doolattee, f. Kick (of a quadruped.)

S. दुवार doowar, (S. द्वार) m. A door.

S. दुष्कर्मी doosh kurmee, m. A sinner, a criminal. (दुर् bad, and कर्मी a doer.)

S. दुष्ट doosht, adj. Wicked, depraved.

S. दुहाई doohaee, (S. द्वौ two, and हाहा alas) f. ¹ Crying out for justice, exclamation. ² An oath, plaint; (q. d. twice alas.) दुहाईतिहाइकरना doohaee tihaee kurna, To make reiterated complaints.

S. दूत doot, m. A messenger, an ambassador.

S. दूध doodh, (S. दुग्ध) m. Milk. दूधाभाती doodha bhatee, f. A ceremony performed the fourth day after marriage, wherein the bride and bridegroom eat milk, boiled rice, and sugar together.

S. दृग drig, m. The eye. (Root दृश to see.)

S. दृढ dirh, adj. Firm, strong.

S. दृढता dirhuta, f. Firmness, strength.

S. दृढाना dirhana, v. a. To strengthen. (From S. दृढ strong.)

S. दृष्ट drisht, (S. दृष्टि) f. ¹ Sight, vision. ² The eye. (Root दृश see.)

S. दृष्टकूट drishtu koot, m. An enigma, a riddle. (दृष्ट obvious or seen, and कूट illusion, trick, deception.)

S. दृष्टांत drishtant, m. A parable, a simile, an example. (दृष्ट seen, and अंत end.)

S. देव dev, m. A god, a deity.

S. देवकी devukee, f. Devukee, the daughter of Devuku, wife of Vusoodevu, and mother of Krishnu.

S. देवी devee, f. ¹ A goddess. ² A name very commonly applied to the goddess Doorga.

S. देह deh, f. The body. देहदुराना deh doorana, To conceal or cover the privities. देहसंभालना deh sumbhalna, To keep up one's spirits, to be firm, to recover one's self.

S. देहु dehoo, 2 per. sing imp. mood of देना to give, &c.

S. दैत्य duetyu, m. A demon, a titan or

giant. (From दिति the mother of these beings.)

S. दैवी duevee, adv. By chance, accidentally.

S. दैहो duehuo, 2 per. plur. fut. tense of देनैं.

S. दोना dona, (S. दमन) m. ¹ The name of a flower, (a species of *Artemesia.*) ² (K.) Leaves folded up in the shape of a cup for holding betel, flowers, sweatmeats, &c.

S. दोष dosh, or dokh, m. A crime, a fault, blame.

S. दोहता dohta, (S. दौहित्र) m. Son-in-law, daughter's son.

S. दोहना dohna, v. a. To milk. (From S. दोहनं; root दुह milk.)

S. दोहनी dohnee, f. A vessel for holding milk, a milkpail.

S. दोहा doha, (S. द्विपद) m. A couplet.

S. द्यौरानी dyuoranee, (From S. देवर) f. Husband's younger brothers wife.

S. द्रव्य druvyu, m. ¹ Wealth, property. ² Substance, matter, a thing.

S. द्राविड dravir, m. The name of the country which terminates the peninsula of *India;* its northern limits appear to lie between the twelfth and thirteenth degrees of north latitude.

S. द्रुम droomu, m. A tree in general.

S. द्रोह droh, m. Spite, malice, hatred, injury.

S. द्रोहिया drohiya, } adj. Spiteful, malicious, inimical, mischievous.
S. द्रोही drohee, }

S. द्वादश dwadushu, adj. Twelve.

S. द्वादशी dwadushee, f. The twelfth day of the lunar fortnight.

S. द्वापर dwapur, m. The third *Yoog*, or age of the *Hindoos,* comprising a period of 864,000 years.

S. द्वार dwar, m. A door, a gate.

S. द्वारिका dwarika, f. The name of a *Hindoo* holy place on the shore of the western sea, near the mouth of the gulf of *Kutch.*

S. द्विज dwiju, m. A man of either of the three first classes, a regenerate man. द्वि two, twice, and ज born; the *Brahmuns Kshutriyus,* and *Vueshyus* are initiated into their respective tribes, by investiture with the sacred thread, which is called a second birth.)

S. द्वितीय dwiteeyu, adj. Second.

S. द्वेष dwesh, m. Enmity, hatred.

S. द्वै dwue, (S. द्वौ) adj. Two.

ध d,hu,

K. धकधकाना d,hukd,hukana, v. n. To palpitate.

S. धज d,huj, (S. ध्वज) f. [1] Shape, form. [2] Attitude, posture. धजपलटना d,huj-pulutna, To change one's attitude in sword-playing, &c.

K. धड d,hur, m. The body.

K. धडकना d,hurukna, v. n. To palpitate.

K. धडक d,huruk, verbal n. f. [1] Palpitation. [2] Fear.

K. धडका d,hurka, m. [1] Fear, doubt, suspense. [2] Palpitation.

S. धतूरा d,hutoora, (S. धत्तूर) m. The plant *D'hutooru*, or thorn apple.

S. धन d,hun, [1] m. Riches, wealth. [2] (S. धन्य) interject. An expression of praise, worthy of greatness or glory! Fortunate! Well done! धनमान या धनवान d,hun-man, or d,hun-wun, adj. Wealthy, affluent, rich.

S. धनंजय d,hununjue, m. [1] A name of Urjoonu. [2] Fire, or its deity. (धन riches, and जय conquering.)

S. धनंध d,hunandh, adj. Blinded by wealth or riches, purse-proud. (धन, and अंध blind.)

S. धनी d,hunee, [1] adj Rich, wealthy, fortunate. [2] m. Owner, proprietor.

S. धनुर्धर d,hunoor-d,hur, m. [1] A name of Urjoonu. [2] An archer, one armed with a bow. (धनुष a bow, and धर who holds.)

S. धनुष d,hunoosh, or d,hunookh, m. A bow. धनुषधरा d,hunoosh d,hura, A ceremony in honor of Shivu.

K. धमका d,humka, m. Noise produced by the fall of any heavy body, thump.

K. धमाल d,humal, m. [1] Name of a chime or time in musick. [2] Kind of song which is sung during the *Holee*, or festival held at the approach of the vernal equinox.

K. धरधमकना d,hur-d,humukna, v. n. To proceed with tumultuous rapidity, to move with violence, to rush.

S. धरना d,hurna, v. a. [1] To place, to put down, to assume, to put on. [2] To give in charge. [3] To seize, to catch, to lay hold of, to hold. धरनादेना या बैठना d,hurna dena, or buet,hna, A mode of extorting payment of a debt or compliance with any demand: see *Asiat. Res. Vol. 4 Art. 22.* (From S. धरण; root धृ hold, bear.)

S. धरनी d,hurunee, (S. धरणी) f. The earth.

S. धरम *d,hurum,* (S. धर्म्म q. v.)

S. धरमात्मा *d,hurmatma,* adj. Virtuous, just. (S. धर्म्मात्मा; comp. of धर्म्म, and आत्मा natural disposition.)

S. धर्म्म *d,hurm,* m. [1] Virtue, religion, justice; or those attributes personified. [2] Usage, practice, the customary observances of cast, sect, &c. [3] Duty, especially that enjoined by the *Vedus.*

S. धर्म्मराज *d,hurmu-raj,* m. [1] The just king, i. e. Yumu or Pluto. [2] (for धर्म्म राज्य) A kingdom where justice is administered. धर्म्मराजकरना *d,hurm raj kurna,* To govern justly.

S. धर्म्मात्मा *d,hurmatma,* adj. Virtuous, holy, pious.

S. धर्म्मावतार *d,hurmavutar,* m. An incarnation of D'hurmu, god of justice: used as term of respect. (धर्म्म justice, and अवतार descent, or incarnation of the deity.)

S. धर्म्मिष्ठ *d,hurmishtu,* adj. Virtuous, inclined to the performance of duty.

K. धसना *d,husna,* v. n. To enter, to sink, to be pierced or penetrated, to be thrust into, stuck into.

K. धांधल *d,hand,hul,* f. Wrangling, subterfuge, trick, cheating, juggle.

S. धाना *d,hana,* v. n. [1] To run, to make haste; to toil and labour, to drudge. (From S. धावनं) [2] To worship. (From S. ध्यान religious meditation.)

S. धाम *d,ham,* m. A dwelling, a house, a place.

S. धाय *d,hae,* (S. धात्री) f. A nurse.

K. धायमाररोना *d,hae mar rona,* To cry, to groan, to weep bitterly. See धाह.

S. धार *d,har,* (S. धारा) f. [1] Stream, current. [2] Edge of a sword, &c. [3] A line lineament.

S. धारना *d,harna,* v. a. To hold, to bear, to have, to keep, to place, to owe, to sustain, to support, to uphold. (From S. धारणं root धृ hold, bear.)

S. धारन *d,harun,* verbal n. s. Holding, bearing, sustaining, upholding, assuming, keeping.

S. धारा *d,hara,* f. Stream, current.

S. धावना *d,hawna,* v. n. [1] To range, to roam, to rove. [2] To run, to run at. (From S. धावनं) [3] To worship. (From S. ध्यान religious meditation.)

K. धाह *d,hah,* f. Cry, noise. धाहमारना *d,hah marna,* To cry, to groan.

S. धिक्कार *d,hikkar,* m. Curse, anathema.

S. धीमर *d,heemur,* (S. धीवर) m. A fisher-

man, name of a cast of fishermen.

S. धीर d,heer, [1] adj. Resolute, firm, steady, patient, sedate. [2] (S. धैर्य्य) m. Resolution, firmness, patience, deliberateness, sedateness.

S. धीरज d,heeruj, (S. धैर्य्य) m. See 2 sig. of the preceding word.

K. धुकधुकी d,hookd,hookee, [1] m. An ornament worn on the breast. [2] Perturbation, anxiety, apprehension. [3] Consideration, reflection.

K. धुकुड़पुकड़ d,hookoor pookoor, f. Palpitation, agitation.

S. धुन d,hoon, (S. ध्यान) f. [1] Inclination, propensity, application, diligence, perseverance, ardour, ambition, assiduity. [2] (S. ध्वनि) Sound, musical sound.

S. धुनि d,hooni, (S. ध्वनि) f. Sound, musical sound.

S. धूप d,hoop, f. [1] A perfume burnt by *Hindoos* at the time of worshipping. [2] (K.) Sunshine.

S. धूम d,hoom, [1] m. Smoke. [2] (K.) f. Tumult, bustle, noise, fame. धूमधाम d,hoom d,ham, f. Pomp, parade, tumult, bustle, noise.

S. धूम्र d,hoomra, (S. धूम्र) adj. Purple; compounded of black and red, the colour of smoke.

S. धूलि d,hooli, f. Dust.

S. धेनु d,henoo, f. A cow, a milch cow, one which has lately calved.

K. धोखा d,hok,ha, m. [1] Deceit, deception. [2] Disappointment. [3] Doubt, hesitation. [4] A scarecrow. [5] Any thing imaginary, not real, a vapour resembling water at a distance. (Fr. *mirage.*) धोखादेना d,hok,ha dena, To deceive. धोखाखाना d,hok,ha k,hana, To be deceived.

S. धोती d,hotee, (S. धौत्र) f. A cloth worn round the waist, passing between the legs, and tucked in behind.

K. धोप d,hop, f. A kind of sword.

K. धौंसा d,huonsa, m. A large kettle drum.

S. धौरा d,huora, } (S. धवल) adj. White.
S. धौला d,huola, }

S. ध्यान d,hyan, m. Reflection, thought, meditation, consideration, advertency.

S. ध्यानी d,hyanee, adj. Considerate, contemplative, given to meditation (on devine matters), religious.

S. ध्यानौं d,hyanuon, } v. a. To meditate
S. ध्यावनौ d,hyawnuon, } on, to think on, to adore, to know. (From S. ध्यान q. v.)

S. ध्वजा d,hwuja, f. A flag, a banner.

S. ध्वनि d,hwuni, f. Sound, musical sound.

न nu.

S. नंग nung, }
S. नंगा nunga, } (S. नग्न) adj. [1] Naked. [2] Shameless. नंगामुंगा या नंगमुनंगा *nunga mœnga*, or *nung mœnunga*, adj. Naked.

S. नंद *nund*, [1] m. Name of the fosterfather of Krishnu. [2] (S. ननंद्दा) f. A sister-in-law, husbands's sister.

S. नंदन *nundun*, m. [1] A son. [2] The grove or garden of Indru.

S. नंदलाल *nund lal*, m. The darling of Nund, i. e. Krishnu. (S. नंद, and लाल darling, dear; root लड sport.)

S. नक्षत्र *nuchch,hutru*, or *nukshutru* m. [1] A lunar mansion, or constellation in the moon's path, a star or asterism: the *Hindoos* besides the common division of the zodiack into twelve signs, divide it into twenty-seven *Nukshutrus*, two and a quarter of which are included in each sign; each *Nukshutru* has its appropriate name.

S. नक्षत्री *nuchch,hutree*, adj. Born under a fortunate planet, fortunate.

S. नख *nuk,h*, m. A finger or toe nail. नख सिख से *nuk,h sik,h se*, From tip to toe, entirely, throughout, *(lit.)* from the (toe) nails to the hair on the crown of the head.

S. नग *nug*, m. [1] A mountain. [2] (K.) A jewel, a gem, a precious stone.

S. नगन *nugun*, (S. नग्न) adj. Naked.

S. नगर *nugur*, m. A city, a town.

S. नगरनारी *nugur-naree*, f. A courtesan. (नगर, and नारी a woman.)

S. नग्न *nugnu*, adj. Naked.

S. नट *nuṭ*, m. The name of a tribe who are generally jugglers, ropedancers, &c. a tumbler.

S. नटुआ *nuṭœ,a*, }
S. नटुवा *nuṭœwa*, } m. See the preceding.

S. नथ *nut,h*, (S. नाथ) f. [1] A large ring worn in the nose. [2] A rope passed through the nose of a draft ox.

S. नथना *nut,hna*, [1] m. A nostril, a ring for the nose. [2] v. n. To have the nose pierced (a bullock.) नथनेचढाना *nut,hne chuṛ,hana*, To be angry or displeased.

S. नथनी *nut,hnee*, (S. नाथ) f. [1] A small ring worn in the nose. [2] A ring inserted in the hilt of a sword.

S. नदी *nudee*, f. A river.

S. ननद *nunud*, (S. ननंद्दा) f. A sister-in-law, husband's sister.

S. नपुंसक *nupoongsuk*, ¹ m. An hermaphrodite, an eunuch. ² adj. Neuter (gender), unmanly, coward.

S. नभ *nub,h*, (S. नभः) m. The sky or atmosphere.

S. नभचर *nub,h-chur*, adj. What moves in the sky, aerial; a bird. (S. नभश्चर; comp. of नभः, and चर to go.)

S. नमः *numuh*, Aptote noun. Salutation, reverence.

S. नयन *nuyun*, m. The eye.

S. नर *nur*, m. Man, individually or collectively, a man, a male, mankind.

S. नरक *nuruk*, m. Hell.

S. नरपति *nur-puti*, m. A king, a sovereign. (नर, and पति lord, chief.)

S. नरपुर *nurpoor*, m. One of the three *Lokus* or regions of the universe, the abode of man, the earth.

S. नरेस *nures*, m. A king, a prince. (S. नरेश; comp. of नर man, and ईश lord, ruler.)

S. नवजोबना *nuvu jobuna*, f. A girl just grown up to puberty. (S. नवयौवना; नव fresh, यौवनं youth, and आ fem. affix.)

S. नवबाला *nuvu bala*, f. See the preceding word. (नव, and बाला a young female.)

S. नवनिधि *nuvu nid,hi*, f. The treasure of Kooveru the god of riches, consisting of nine fabulous gems. (नव nine, and निधि riches.) *See Note in* Wilson's *Meg'ha Duta, Page* 86.

S. नवम *nuvum*, adj. Ninth.

S. नवड़ा *nuwara*, (from नाव, S. नौः) m. ¹ A boat. ² A particular kind of boat.

S. नसाना *nusana*, ¹ v. a. To destroy, to annihilate, to spoil, to squander. ² v. n. To be destroyed or annihilated. (From S. नाशनं.)

S. नांड़िया *nanriya*, (S. नंदि) m. The bull and vehicle of Shivu.

S. नाग *nag*, m. A snake (*Coluber naja*), and a sort of demigod shaped as a serpent. नागलोक *nag-lok*, *Patalu*, the infernal regions, or the abode of serpents and Hydras.

S. नागनि *naguni*, (S. नागिनी) f. A serpent (female.)

S. नागपत्नी *nag-putnee*, f. See the preceding. (नाग, and पत्नी a wife.)

S. नागपास *nag pas*,
S. नागफांस *nag p,hans*, } f. A running noose of a rope, &c. a sort of noose or knot, used in battle to entangle an enemy. (S. नाग a snake, and पाश a noose or snare.)

S. नातर *natur*, (S. नान्यतर or नान्यथा) adv. (If) not (then) otherwise, else.

S. नाती *natee*, (S. नप्ता) m. Grandson, daughter's son.

S. नाथ *nat,h*, [1] m. A husband, a lord, a master. [2] f. The string in a bullock's nose.

S. नाथना *nat,hna*, v. a. To bore a bullock's nose and put a string in it to guide him by. (From S. नाथ q. v.)

S. नाना *nana*, adj. Various. नानाप्रकार *na-na prukar*, m. Various modes, methods, kinds, sorts.

S. नारद *narud*, m. The name of a Moo-NEE or saint, the son of BRUHMA.

S. नारयन *narayun*, (S. नारायण) m. One of the names of VISHNOO.

S. नारी *naree*, f. [1] A woman in general, a female. [2] (S. नाडी) The pulse.

S. P. नाँव *naņw*, (corrup. of नाम or نام) m. Name.

S. नाव *nao*, (S. नौः) f. A boat, ship, vessel.

S. नावना *nawna*, v. a. [1] To bend downwards, to bow. [2] To cause to submit to, to cause to stoop. (From S. नमनं)

S. नाश *nash*, } n. Non-existence, anni-
S. नास *nas*, } hilation, death.

K. नाहर *nahur*, m. A tiger.

S. निकंटक *nikuntuk*, adj. [1] Happy, without enmity or opposition. [2] Plain, easy. (S. निः priv. and कंटक a thorn, a paltry foe.)

S. निकंद *nikund*, adj. Rooted up, extirpated. (From S. निः priv. and कंद a root.)

S. निकट *nikut*, adj. Near, proximate, about.

S. निकरना *nikurna*, } v. n. To issue,
S. निकलना *nikulna*, } to be extracted,
S. निकसना *nikusna*, } drawn, pulled or taken out, to come out, to be uttered, to be taken off, to prove, to turn out, to begin, to be invented, to escape, to rise, slip, spring. (S. निष्कासनं).

S. निखंग *nik,hung*, (S. निषंग) f. A quiver.

S. निगम *nigum*, m. The *Vedus*, or holy writ.

S. निगमनिवासी *nigum nivasee*, Dwelling in the *Vedus*, a name of BRUHMA. (निगम, and निवासी an inhabitant.)

S. निचंत *nichunt*, } (S. निश्चिन्त) adj. Free
S. निचिंत *nichint*, } from thought, anxiety, or care, unconcerned, careless, at leisure.

S. निचंताई *nichunta,ee*, } f. Carelessness,
S. निचिंताई *nichinta,ee*, } fearlessness, thoughtlessness, uncon-

cern, leisure. (S. निश्चिंता; comp. of निः priv. and चिंता anxiety, thought.)

K. निछावर *nich,hawur*, f. A propitiatory offering, sacrifice, victim.

S. निज *nij*, adj. Own, particular, individual, personal. निजका *nij ka*, adj. Own, peculiar.

S. निठुर *nit,hoor*, (S. निष्ठुर) adj. Harsh, obdurate, relentless, cruel.

S. निठुरई *nit,hoora,ee*, (S. निष्ठुरता) f. Cruelty, obduracy.

S. निडर *nidur*, [1] adj. Fearless. [2] adv. Without fear, fearlessly. (S. निर्डर; comp. of निर् priv. and डर fear.)

S. निढाल *nid,hal*, } adj. Still, motionless.
S. निढोल *nid,hol*, }
(S. निर् priv. and डोल what swings.)

S. नित *nit*, (S. नित्य) adv. Always, continually, constant, ever.

S. नितप्रति *nit pruti*, (S. प्रतिनित्य) See the preceding.

S. नित्यकर्म *nityu kurm*, m. The constant or daily ceremonies of religion, the religious duties which are of constant recurrence. (S. नित्य, and कर्म्म act, action.)

S. निदान *nidan*, adv. At last, at length, lastly, after all, altogether.

S. निद्रा *nidra*, f. Sleep.

K. निधड़क *nid,huruk*, adv. or adj. Without fear, fearlessly, abruptly.

S. निधान *nid,han*, m. A place, house, mansion, abode, receptacle.

S. निबड़ना *niburna*, v. n. To be spent, to be ended. (From S. निर्व्राण.)

S. निबाह *nibah*, (S. निर्वाह) m. [1] Accomplishment, performance, sufficiency, supply. [2] Performing or keeping an engagement.

S. निबाहना *nibahna*, v. a. [1] To accomplish. [2] To protect, to guard, to take care of. [3] To keep one's faith. [4] To behave. [5] To afford. [6] To conduct, to perform. (From S. निर्वहनं.)

S. निबेड़ना *niberna*, v. a. To put an end to, to end, to perform, to spend. (From S. निवर्त्तनं.)

S. निबेड़ा *nibera*, (from निबेड़ना) m. End, finishing.

S. निमित्त *nimitt*, m. Cause, motive, instrument, for the sake. *Met.* Fortune. निमित्ती या निमित्त मान *nimittee* or *nimittman*, adj. Prosperous.

S. नियाय *niyae*, (S. न्याय) m. [1] Justice, equity. [2] Reason, argument, disputation, sophistry, logick. नियायकरना *nyae*

kurna, To judge, to administer justice, to decide.

S. निरंकार *nirunkar*, Without form (the deity), incorporeal. (S. निराकार; comp. of निर् priv. and आकार form.)

S. निरंतर *niruntur*, adj. or adv. Without interval, incessantly, constantly. (निर् priv. and अंतर interval.)

S. निरखना *niruk,hna*, v. a. To look at, to view, to see. (From S. निरीक्षणं.)

S. निरतक *nirtuk*, (S. नर्त्तक) m. A dancer.

S. निराकार *nirakar*, adj. Without form or figure, incorporeal.

K. निराला *nirala*, adj. ¹ Pure, mere, simple, unmixed, unalloyed. ² Rare, strange, odd. ³ Separate, apart, distinct. निराले में *nirale men*, Apart, in private.

S. निरास *niras*, adj. Hopeless. (S. निर् priv. and आशा hope.)

S. निरूप *niroop*, (S. नीरूप) adj. Without form (the deity), incorporeal.

S. निर्गुन *nirgoon*, adj. ¹ Without passions or human qualities (an epithet of the deity). ² Without estimable qualities, worthless, unskilful. ³ Unstrung, as a necklace. (S. निर् priv. and गुण quality, a string, skill.)

S. निर्दई *nirduee*, adj. Mercilessness. (S. निर् priv. and दया tenderness, compassion, clemency.)

S. निर्द्वंद *nirdwund*, adj. Without quarrel or dispute, peaceably. (S. निर् priv. and द्वंद quarrel, dispute.)

S. निर्धार *nird,har*, m. Ascertaining, settling or fixing with accuracy.

S. निर्बंस *nirbuns*, adj. ¹ Without offspring, childless. ² Extinct, as a race or family. (S. निर् priv. and वंश race or lineage.)

S. निर्भय *nirb,hue*, adj. Fearless, free from fear, undaunted. (निर् priv. and भय fear.)

S. निर्मल *nirmul*, adj. Pure, limpid, clean, transparent, spotless. (निर् priv. and मल sin, filth, excretion.)

S. निरमोही *nirmohee*, } adj. Not fascinated, without affection, free from attachment, unkind. (S. निर् priv. and मोह fainting, &c.)
S. निर्मोही *nirmohee*, }

S. निर्वान *nirvan*, (S. निर्वाण) ¹adj. Extinguished, extinct. ² m. Beatitude, emancipation from matter and reunion with the deity.

S. निवाना *niwana*, } v. a. ¹ To bend downwards, to bow. ² To cause to submit to, to cause to stoop. (From S. नमनं).
S. निवावना *niwawna*, }

S. निवारना *niwarna*, v. a. To prevent, to hinder, to prohibit. (From S. निवारणं.)

S. निवास *nivas*, m. Dwelling, residence.

S. निवासी *nivasee*, m. An inhabitant.

S. निश्चय *nishchue*, [1] m. Certainty or ascertainment: trust, belief, faith. [2] adj Actual, real, ascertained. [3] adv. Actually, certainly, indubitably.

S. निस *nis*, (S. निशा) f. Night.

S. निसंक *nisunk*, adj Fearless, free from doubt or suspicion. (S. निःशंक; comp. of निः for निर् priv. and शंका fear, doubt.)

S. निसचर *nis-chur*, m. [1] A demon. [2] A robber, a thief. [3] A prowler. [4] A nocturnal animal, an animal that watches and feeds by night. (S. निशा night, and चर to go.)

S. निसरना *nisurna*, v. n. To issue, to go forth, to come out. (From S. निःसरणं.)

S. निसास *nisas*, (S. निःश्वास) m. Breath.

S. निसि *nisi*, (S. निशा) f. Night.

S. निसेनी *nisenee*, (S. निःश्रेणी) f. A wooden ladder, a ladder.

S. निस्कपट *niskuput*, adj. Without fraud or deceit, open, artless, honest, sincere. (S. निष्कपट; निः for निर् priv. and कपट fraud, deceit.)

S. निस्तार *nistar*, m. Release, acquittal, salvation, beatitude.

S. निस्तारना *nistarna*, v. a. To release, to acquit, to beatify or exempt the soul from further transmigration. (From S. निस्तारणं.)

S. निस्संदेह *nissundeh*, [1] adj. Free from doubt, undoubted. [2] adv. Undoubtedly. (निः for निर् priv. and संदेह doubt.)

S. निहचै *nihchue*, (S. निश्चय. q. v.)

S. निहारनौ *niharnuon*, v. a. To look at, to watch, to look after, to spy, to see. (From S. निहारणं.)

P. नीकौ *neekuo*, adj. Good, beautiful, elegant. (*Pers.* نیکو).

S. नीच *neech*, adj. [1] Low, base, mean, vulgar. [2] Below, beneath, under, down.

S. नींद *need*, (S. निद्रा) f. Sleep.

S. नीर *neer*, m. Water.

S. नीलंबर *neelumbur*, m. A dark blue garment. (S नीलांबर; comp. of नील dark blue, and अंबर vestment).

S. नीला *neela*, (S. नील) adj. Dark blue or black.

S. नीलमनि *neel muni*, m. A gem of a blue colour, the sapphire. (S. नील, and मणि a jewel.)

S. नीसरना *neesurna*, } v. n. See निसरना.
S. नीसरनौं *neesurnuon*, }

S. नूपुर *noopoor*, f. A ring or ornament for the ankles and toes.

S. नृत्य *nrityu*, m. Dance, dancing.

S. नृत्यक *nrityuk*, m. A dancer.

S. नृत्यकारी *nrityukaree*, (S. नृत्यकारिणी) f. A dancer.

S. नृप *nripu*, m. A king, a prince. (Comp. of नृ man, and प who preserves or protects.)

S. नृपति *nriputi*, m. A king, a prince. (नृ man, and पति lord, ruler.)

K. नेक *nek*, adj. A little, little.

S. नेती *netee*, (S. नेत्र) f. A cord used to whirl round the churn-staff with.

S. नेम *nem*, (S. नियम) m. [1] A vow, compact, agreement. [2] Any religious observance voluntarily practised.

S. नेरै *neruo*, (S. निकट) adv. Near, beside.

S. नेह *neh*, (S. स्नेह) m. [1] Affection, friendship, kindness. [2] Oil.

K. नैक *nuek*, See नेक.

S. नैन *nuen*, (S. नयन) m. The eye.

S. नैवेद्य *nuevedyu*, m. Food consecrated to the deity, an oblation.

S. नौंतना *nuontna*, v. a. To invite. (From S. निमंत्रणं)

S. नौखंडपृथ्वीका *nuo k,hund prit,hwee ka*, The nine climes or divisions of the earth: they are usually denominated the nine *Dweepus* (islands), or *Vurshus* (countries), which constitute *Jumboo Dweepu* the centrical portion of the world, or the known world.

S. नौगरी *nuoguree*, f. A female ornament worn on the wrist.

K. नौछावर *nuoch,hawur*, m. A propitiatory offering, sacrifice, victim.

S. नौढना *nuor,hna*, v. n. [1] To bend. [2] To incline downwards. [3] To be obedient, to stoop. (From S. नमनं.)

S. नौढाना *nuor hana*, v. a. To bow, to bend.

S. नौतना *nuotna*, v. a. To invite. (From S. निमंत्रणं.)

S. नौता *nuota*, (S. निमंत्रणं) m. An invitation.

S. न्याय *nyayu*, m. [1] Justice, equity. [2] Logick. See नियाय.

K. न्यारा *nyara*, adj. Distinct, different, separate, apart, aloof, extraordinary, uncommon.

प *p*,

S. पकौड़ी *pukuoree*, (S. पक्ववटी) A kind of dish made of pease-meal.

S. पंचक *punchuk*, (S. प्रत्यञ्चा) f. A bow-string.

S. पंचखन punchu k,hun, adj. Consisting of five floors or stories (a house, &c.) (From S. पंच five, खंड a part, division.)

S. पंचतत्व punchu tutwu, m. The five elements or principles according to the *Hindoos*, namely, earth, water, fire, air, and space or ether.

S. पंचम punchumu, adj. Fifth.

S. पंचमी punchumee, f. The fifth day of the lunar fortnight.

S. K. पंचलडा punch-lura, adj. Consisting of five rows or strings (a necklace, &c.) (S. पंच five, and K. लड row.)

S. पंचाध्याई punchad,hya,ee, f. The aggregate of five chapters of the *Shree Bhaguvut*, comprising a detail of the sports of KRISHNU with the *Gopees*. (S. पंचाध्यायी; comp. of पंच five, अध्याय a chapter or section, and ई with the sense of aggregation.)

S. पंछी punch,hee, (S. पक्षी) m. A bird in general.

S. पंडित pundit, adj. Wise, learned; m. A wise or learned *Brahmun*.

S. पंडु pundoo, (S. पांडु) m. The name of a sovereign of ancient *Delhi*, and nominal father of YOODHISHTHIR, and the other four *Panduvu* princes.

S. पंथ punt,h, (S. पथ) m. A road, path, way.

S. पकवान pukwan, m. Sweetmeats, victuals fried in melted butter or oil. (S. पक्वान्न; composed of पक्व cooked, and अन्न food.)

S. पछ puch,h, or puksh, m. [1] A wing, feather. [2] The half of a lunar month, or fortnight comprising fifteen days. [3] Side, party, assistance, adherence.

K. पखावज pukhawuj, f. A kind of drum, a timbrel.

S. पग pug, (S. पद) m. The foot. पगधारना *pug dharna*, To travel, to go, to leave, to depart. पगपटतारबाजना *pug put tar bajna*, To beat time with the foot.

S. पचना puchna, v. n. [1] To be digested. [2] To rot. [3] To be consumed; to take pains, to labour. (From S. पचनं.)

S. पछताना puch,htana, v. a. To regret, to repent. (From S. पश्चात्तापनं)

S. पछतावा puch,htawa, m. Regret, concern, sorrow, contrition, penitence. (S. पश्चात्ताप; comp. of पश्चात् after, and ताप pain, sorrow, distress.)

K. पछाड puch,har, verbal n. f. (from पछाडना) [1] A fall. [2] The act of winnowing. पछाडखाना *puch,har k,hana*, To fall down, to suffer pain.

K. पछाड़ना puchharna, v. a. To throw down, to abase, to conquer.

S. पट put, [1] m. Cloth. [2] (S. पटन) The sound of falling or beating. [3] (K.) A shutter, the valve of a folding door. [4] adj. Upside down, overturned.

K. पटकना putukna, [1] v. a. To dash against any thing, to throw on the ground with violence, to knock. [2] v. n To crackle, to crack.

K. पटकाना putkana, } v. a. See 1 sig. of
K. पटकारना putkarna, } the preceding word.

S. पटरानी put-ranee, f. A queen who is installed or consecrated with the king. (S. पट्ट a throne, and राज्ञी a queen.)

S. पटड़ा putra, (S. पट्ट) m. A plank, a plank to sit on, a plank on which a washerman beats clothes. पटड़ा कर देना putra kur dena, To deprive one of his power or strength, to convict an adversary and leave him without reply.

S. पटा puta, m. [1] (S. पट्टिश) A foil, a wooden scimitar for cudgelling with. [2] (S. पट्ट) A board on which *Hindoos* sit whilst eating their meals, or performing religious ceremonies.

K. S. पट्टा putta, m. [1] Name of harness. [2] A dog-collar. [3] A lock of hair. [4] (S. पट्ट) A deed, particularly a title deed to land or a deed of lease.

K. पठाना puthana, } v. a. To send.
K. पठौना puthuona, }

S. पत put, [1] (S. पट्ट) f. Good name, honour, character. [2] (S. पति) m. A lord, master, husband.

S. पतंग putung, m. [1] A moth. [2] A child's kite. [3] The sun.

S. पताका putaka, f. A banner, a flag.

S. पति puti, [1] m. A lord, master, husband. [2] (S. पट्ट) f. Good name, honor, character.

S. पतित putit, adj. Fallen, abject; guilty, abandoned. पतितपावन putit pawun, adj. Purifying the guilty (an epithet of the deity.)

S. पतियाना putiyana, v. a. To confide in, to trust, to depend on, to believe. (From S. प्रत्ययनं.)

S. पतिव्रता putivruta, adj. f. Chaste (woman.)

S. पत्तल puttul, f. A plate or trencher formed of leaves. (S. पत्रावली; comp. of पत्र a leaf, and आवली a row or range.)

S. पत्थर putthur, (S. प्रस्तर) m. A stone.

S. पत्नी *putnee*, f. A wedded woman, a wife.

S. पत्रा *putra*, (S. पत्र) m. An almanack, an ephemeris.

S. पथ *put,h*, m. A road, path, way.

S. पद *pud*, m. [1] Foot. [2] Footstep, step. [3] Rank, character, dignity. [4] Place, station. [5] (In grammar) A word.

S. पदम *pudum*, (S. पद्म) m. [1] A lotus. (*Nelumbium speciosum. Willd.*) [2] Ten billions.

S. पदवी *pudvee*, f. [1] Rank, character. [2] Title, titular name, surname, patronymick. [3] A road, a path.

S. पदारथ *pudarut,h*, (S. पदार्थ) m. [1] Thing, substantial or material form of being; a rarity, a good, a blessing, a delicacy or exquisite food. [2] The meaning of a word. [3] A category or predicament in logick, of which seven are maintained, viz. substance, quality, action, identity, variety, relation, and non-existence.

S. पद्म *pudmu*, See पदम.

S. पधारना *pud,harna*, v. n. To go, to proceed, to depart, to arrive. (From S. पद the foot, and धारणं placing.)

S. पन *pun*, [1] (S. पण) m. A vow, promise, resolution. [2] (K.) A termination, affixed to nouns, answering to the *English* terminations *ship*, *hood*, *ness*, &c. as कुंवारपन *koonwar-pun*, Batchelorship. लड़कपन *luruk-pun*, Childhood. See GILCHRIST's *Gr. p.* 170.

S. पनघट *pun-g,hut*, m. A passage to a river, a stair or quay for drawing water. (S. पानीय water, and घट्ट a quay or landing place.)

S. पनच *punuch*, (S. प्रत्यञ्चा) f. The string of a bow.

S. पनवाड़ी *punwaree*, (S. पर्णवाटी) f. A betel garden.

S. पंनवारा *punwara*, m. A plate or dish made of leaves to eat on. (S. पर्णावलि; comp. of पर्ण a leaf, and आवलि a row.)

S. पनहारी *pun-haree*, (S. पानीयहारिणी) f. A woman who carries water on her head.

S. पन्नग *punnug*, m. A snake or serpent.

S. परंपरा *purumpura*, f. Communication from one to another in succession, tradition.

S. पय *pue*, [1] (S. पयस्) m. Milk. [2] (S. उपरि) adv. On, upon, over, at, to, nevertheless, yet. [3] conj. But. [4] (K.) f. A fault.

S. पर *pur*, [1] adj. Other, strange, foreign;

परदेस *pur-des*, Abroad. [2] adv. and conj. Over, above, through, after, at, by, for, of; but. [3] (S. उपरि) prep. On, upon, at, notwithstanding.

S. परंतु *puruntoo*, conj. But.

K. पपिहा *pupiha*, } m. A sparrow-hawk.
K. पपीहा *pupeeha*, } (*Falco nisus.*)

S. परकाजी *pur-kajee*, adj. Attentive to the business or interest of others, serving others, beneficent. (S. पर other, and कार्य्यी an agent, doer.)

S. परचा *purcha*, } (S. परीक्षा) m. Exami-
S. परचौ *purchuo*, } nation, trial, proof, experiment.

S. परजंक *purjunk*, (S. पर्य्यंक) m. A bedstead.

S. परजा *purja*, (S. प्रजा) f. A subject, tenant, renter.

S. परतज्ञा *purtugnya*, (S. प्रतिज्ञा) f. Agreement, compact, promise, stipulation.

S. परतीत *purteet*, (S. प्रतीत) f. Faith, confidence, trust. परतीत करना *purteet kurna*, To believe, to trust.

S. परबस *pur-bus*, adj. Depending on the will of another, under the authority of another, dependant, precarious. (S. पर another, and वश्य governable.)

S. परम *purum*, adj. First, excellent, supreme, best. परमानंद *purum anund*, Great pleasure. परमगति *purum-guti*, f. Eternal felicity, heavenly bliss. परमधाम *purum-dham*, m. Paradise. परमपद *purum-pud*, m. Heaven or beatitude.

S. परमार्थ *purumarth*, m. The first pursuit, the best end, virtue, merit. (परम, and अर्थ meaning, intention.)

S. परमार्थी *purumarthee*, adj. Religious, seeking the best end, virtuous.

S. परमेश्वर *purmeshwur*, m. The first and supreme Lord, God, the Almighty. (Comp. of परम, and ईश्वर a ruler, chief.)

S. परबीन *purbeen*, (S. प्रवीण) adj. Skilful, intelligent, accomplished, knowing.

S. P. परसना *purusna*, v.a. [1](from S. स्पर्शन) To touch. [2] (from P. پرستیدن) To worship.

S. परसपर *puruspur*, } adv. Mutually, re-
S. परस्पर *puruspur*, } ciprocally.

S. पराक्रम *purakrum*, m. Strength, power, prowess.

S. पराक्रमी *purakrumee*, adj. Powerful, bold, strong, vigorous.

K. परात *purat*, f. A large plate.

S. परान *puran*, (S. प्राण) m. [1] Breath. [2] Soul, life. [3] Sweetheart, mistress. प्रानपति *pran-puti*, Soul's lord.

S. परिक्रमा *purikruma*, f. Act of going round to the right by way of adoration, circumambulation.

S. परिहरना *purihurna*, v. a. [1] To leave, to forsake, to abandon, to desert. [2] To take away, to clear off. (From S. परिहरणं.)

S. परीक्षा *pureechha*, or *pureeksha*, f. Examination, trial, proof.

S. परीक्षित *pureechhit*, or *pureekshit*, [1] adj. Examined, tried, proved. [2] m. The name of the grandson of URJOONU.

K. परेखा *purekha*, m. Regret, concern, contrition, repentance.

S. परोपकार *puropkar*, m. The helping of others, beneficence. (Comp. of पर other, and उपकार assistance.)

S. परोपकारी *puropukaree*, adj. Acting for others, beneficent, hospitable. (Comp. of पर other, and उपकारी doing good, kind.)

S. परोसना *purosna*, v. a. To serve up dinner, to distribute food to guests, &c. (From S. परिवेषणं.)

K. परोहा *puroha*, m. A leathern bucket for drawing water with.

S. पर्ब *purb*, (S. पर्व्व) m. [1] A festival, a holyday, an anniversary festival, feast. [2] (K) A gem, a flat diamond.

S. पल *pul*, m. [1] A moment, the 60th part of a Ghuree or Dund; $2\frac{1}{2}$ Puls are equal to one minute. [2] (Cont. of P. पलक q. v.)

P. पलक *puluk*, m. The eye-lid.

K. पलटना *pulutna*, v. n. To return, to turn back, to retreat; to overturn, to rebound; to change.

K. पलटा *pulta*, m. Turn, stead, exchange, recompense, revenge, retaliation.

S. पलवाना *pulwana*, v. a. To cause to nourish, to bring up, &c. (From S. पालनं.)

S. पलाना *pulana*, v. n. To flee, to run away, to escape. (From S. पलायनं.)

K. पल्लू *pulloo*, m. The hem or border of a garment.

S. पवन *puwun*, [1] f. Air, wind. [2] m. Regent of the winds, and of the N. W. quarter. पवन को पूत *puwun kuo poot*, The son of PUVUNU, i. e. The ape HUNOOMAN.

S. पवित्र *puvitru*, adj. Pure, holy, undefiled, clean.

S. पशु *pushoo*, m. A beast in general.

S. पशुपालक *pushoo paluk*, m. A cowherd.

(पशु, and पालक a preserver.)

S. पषान pukhan, or pushan, (S. पाषाण) m. A stone, a rock.

S. पहरुआ puhrooa, (S. प्रहरी) m. A watchman, a sentinel.

K. पहल puhul, m. A flock of cotton.

S. पहिरावन puhirawun, S. पहिरावनी puhirawunee, (S. परिधान) f. Vestments bestowed on guests at a wedding, dress, clothing.

K. पहुंची puhoonchee, f. An ornament worn on the wrist.

K. पहुडना puhoorna, v. n. To lie down, to repose, to lie, to rest.

S. पहुप puhoop, (S. पुष्प) m. A flower.

S. पहुनई puhoonuee, (S. प्राघुणता) f. Entertainment, hospitality.

S. पांडव panduvu, m. A *Panduvu* or descendant of *Pandoo*, especially applied to YOOD,HISHT,HIRU and his four brothers.

S. पांडे pande, (S. पंडित) m. A title of *Brahmuns*, a schoolmaster.

S. पांत pant, S. पांति panti, (S. पंक्ति) f. ¹ A rank of soldiers, a row. ² A line (of writing.) जातपांति *jat panti*, f. A pedigree.

S. पांवडा panwra, m. A cloth or carpet spread to walk on.

S. पाक pak, m. An electuary medicine, confection.

S. पाकड pakur, (S. पर्कटी) m. The waved leaved *Indian* fig tree. (*Ficus venosa.*)

K. पाखर pakhur, f. Iron armour for the defence of a horse or elephant.

S. पाछें pachhen, (S. पश्चात्) adv. After, behind, afterwards, in the absence.

S. पाट pat, (S. पट्ट) m. ¹ Silk. ² A throne.

S. पाटंबर patumbur, m. Silk cloth, a silk garment. (S. पट्टांबर; comp. of पट्ट silk, and अंबर cloth, apparel.)

S. पाटी patee, (S. पट्टिका) f. ¹ The side pieces of a bedstead. ² A kind of board on which children learn to write. ³ Divisions of the hair which is combed towards the two sides and divided by a line in the middle. ⁴ A kind of sweetmeat. ⁵ A kind of mat.

K. पाटना patna, v. a. ¹ To roof, to cover. ² To fill, to fill up, to overstock.

S. पाठ path, m. A reading, lecture, perusal (of a book,) lesson.

S. पाठक pathuk, m. ¹ He that gives lessons, a teacher, a professor, ² A title of *Brahmuns*.

S. पाठशाला path-shala, f. A college, a

school.

S. पाढा pad,ha, or par,ha, (S. पृषतः) m. A hog-deer. *(Cervus porcinus.)*

S. पातक patuk, m. Sin, crime.

S. पातकी patukee, adj. m. Sinner, criminal.

K. पातर patur, [1] f. A prostitute, a dancing girl. [2] adj. Weak, lean.

S. पाती patee, f. [1] (S. पत्री) A letter, note, epistle. [2] (S. पत्र) A leaf.

S. पात्र patru, m. A vessel; adj. Worthy, able, eligible, fit, capable.

S. पाथर pat,hur, (S. प्रस्तर) m. A stone.

S. पान pan, m. [1] Drinking in general. [2] (S. पाणि) The hand. [3] (S. पर्ण) A leaf; betle-leaf *(leaves of Piper-betel.)*

S. पानि pani, (S. पाणि) m. The hand.

S. पानी panee, (S. पानीय) m. [1] Water. [2] Sperm. [3] Lustre. [4] (K.) Character, honour. पानीदेना panee dena, To offer a libation of water to satisfy the manes of a deceased person, after his corpse has been burnt.

S. पाप pap, m. Sin, crime.

S. पापड papur, (S. पर्पट) m. A thin crisp cake made of any grain of the pea kind.

S. पापनी papnee, (S. पापिनी) adj. f. Criminal, a sinner, wicked (woman.)

S. पापी papee, adj. m. A sinner, a criminal.

S. पारस parus, m. The philosopher's stone. (S. स्पर्शमणि; comp. of स्पर्श touching, and मणि a gem.)

S. पार्वती parvutee, f. The goddess PARVUTEE, and wife of SHIVU.

S. पारवार par-war, (S. पारावार) adv. [1] On both sides (of a river). [2] Quite through, through and through.

S. पालन palun, m. Bringing up, preserving, cherishing, rearing, breeding, nourishing.

S. पालना palna, [1] v. a. To preserve, to protect, to nourish, to cherish, to bring up, to rear, to breed, to educate. [2] m. A cradle. (From S. पालनं.)

S. पाला pala, (S. प्रालेय) m. [1] Frost, hoarfrost. [2] Trust, charge. [3] Leaves of a tree named *jhurberee* (a species of *Zizyphus.)* पाले पडना pale purna, v. a. To fall within the power of another.

S. पालागन pa-lagun, (S. पादलग्न) m. Obeisance by embracing the feet, reverence, respect, veneration.

S. पावन pawun, adj. Pure, holy, sacred, purifying.

S. पावना pawna, v. a. To get, to acquire, to find, to overtake, to reach, to accept, to obtain. (From S. प्रापणं.)

S. पाषंड pakhundu or pashundu, } adj.
S. पाषंडी pakhundee or pashundee, }
Hypocritical, deceitful, heretical.

S. पाषंड्य pakhundyu or pashundyu, m. Wickedness, deceit, hypocrisy, heresy.

S. पासा pasa, (S. पाशक) m. A die (plur. पासे, dice, the oblong dice with which *Chuopur* is played); a throw of dice.

S. पाहुना pahoona, (S. प्राघुण) m. A guest.

S. पिउ pi,oo, (S. प्रिय) adj. Beloved, dear; m. Husband, sweetheart, lover.

S. पिंगल pingul, ¹ m. Name of a fabulous being in the form of a serpent, to whom a treatise on prosody is ascribed. ² adj. Tawny (colour.)

S. पिक pik, m. The *Kokilu* or *Koel*, the black or *Indian* cuckoo; the *Kokilu* makes a prominent figure in *Hindoo* poetry, and is supposed by his musical cry to inspire pleasing and tender emotions.

S. पिकबयनी pik buyunee, } adj. Possessing a voice like
S. पिकबैनी pik buenee, }
the *Kokilu*; an epithet of a female. (S. पिक, and वाणी voice.)

K. पिछौरा pich,huora, m. A cloth or sheet worn round the waist, or thrown carelessly over the head.

K. पिछौरी pich,huoree, f. Dimin. of the preceding.

S. पिता pita, m. A father.

S. पितांबर pitambur, m. See पीतांबर.

S. पितामह pitamuhu, m. ¹ A paternal grandfather. ² A name of BRUHMA, the great father of all.

S. पिनाक pinak, m. ¹ The bow of SHIVU. ² A musical instrument of one string shaped like a bow.

S. पिय piyu, See पी.

S. पिरथी pirt,hee, (S. पृथ्वी) f. The earth.

S. पिलना pilna, ¹ v. a. To attack, to assault. ² v. n. To be bruised, thrashed, treaded, pressed, ground. (From S. पेलनं.)

S. पी pee, (S. प्रिय) ¹ adj. Beloved. ² m. A husband, lover, sweetheart.

S. पीटना peetna, (from S. पीडनं) v. a. To beat, to thrash, to dash, to strike, to knock, to pound. छातीपीटना ch,hatee peetna, To lament, to regret, to repent.

S. पीठ peet,h, (S. पृष्ठ) f. The back. पीठ परहाथफेरना peet,h pur hat,h p,herna, To pat on the back, to encourage. पीठदेना peet,h dena, ¹ To run away, to flee. ² To turn, to shrink from, to veer. ³ To turn away in displeasure.

S. पीढा *peerha*; (S. पीठ) m. A stool, a chair.

S. पीढाबंध *peerha bundh*, (S. पीठबंध) m. A preface or introduction to a book.

S. पीढी *peerhee*, (S. पीठ) f. [1] A stool or chair. [2] A generation of progenitors.

S. पीत *peet*, [1] adj. Yellow. [2] (S. प्रीति) f. Love, affection, kindness.

S. पीतांबर *peetambur*, m. A silk cloth of a yellow colour; (vulgarly) a silk cloth. (S. पीतांबर; comp. of पीत yellow, and अंबर cloth, apparel.)

S. पीति *peeti*, (S. प्रीति) f. Love, affection, kindness, friendship.

S. पीपल *peepul*, (S. पिप्पल) [1] m. The holy fig tree. *(Ficus religiosa.)* [2] (S. पिप्पली) f. Long pepper. *(Piper longum.)*

S. पीर *peer*, (S. पीडा) f. Pain, sickness; feeling, pity, compassion, mercy.

S. पीरा *peera*, (S. पीत) adj. Yellow.

S. पुंज *poonj*, m. A heap, a quantity, a collection.

K. पुकारना *pookarna*, v. a. To call aloud, to bawl, to cry out.

S. पुजवाना *poojwana*, v. a. (caus. of पूजना) To cause to worship. (From S. पूजनं.)

S. पुजापा *poojapa*, (from S. पूजा) m. The apparatus of worshipping.

S. पुतली *pootlee*, (S. पुत्तली) f. [1] The pupil of the eye. [2] An image, a puppet, an idol. [3] The frog of a horse's foot.

S. पुत्र *pootru*, m. A son.

S. पुत्री *pootree*, f. A daughter.

S. पुन *poon*, / S. पुनि *pooni*, } (S. पुनः) adv. Again, then.

S. पुन्य *poonyu*, (S. पुण्य) m. Virtue, moral or religious merit.

S. पुन्यवान *poonyuwan*, (S. पुण्यवान) adj. Virtuous, righteous, charitable.

S. पुन्यात्मा *poonyatma*, (S. पुण्यात्मा) adj. Virtuous, holy, religious, charitable.

S. पुर *poor*, m. A city, a town.

S. पुरन *pooran*, (S. पुराण) m. A *Pooranu* or sacred and poetical work, supposed to be compiled or composed by the poet Vyasu, and comprising the whole body of *Hindoo* theology: each *Pooranu* treats of five topics especially; the creation; the destruction, and renovation of worlds; the genealogy of gods and heroes; the reigns of the *Munoos*, and the transactions of their descendants; there are eighteen acknowledged *Pooranus*; [1] Bruhmu; [2] *Pudmu*, or the lotus; [3] *Bruhmandu*, or the *Egg* of *Bruhma*; [4] Ugni, or

fire; [5] VISHNOO; [6] GUROORU, his bird or vehicle; [7] *Bruhmu vuevurtu*, or transformations of BRUHMA; [8] SHIVU; [9] *Lingu;* [10] NARUDU, son of BRUHMA; [11] SKUNDU, son of SHIVU; [12] *Markundeyu*, so called from a sage of that name; [13] *Bhuvishyut*, or prophetick; [14] *Mutsyu*, or the fish; [15] *Vurahu*, or boar; [16] *Koormu*, or tortoise; [17] *Vamunu*, or dwarf; and [18] The *Bhaguvut*, or life of KRISHNU, which last is by some considered as a spurious and modern work: the *Pooranus* are reckoned to contain four hundred thousand stanzas: there are also, eighteen *OOpupooranus*, or similar poems of inferior sanctity, and different appellations; the whole constitute the popular or poetical creed of the *Hindoos*, and some of them or particular parts of them, are very generally read and studied.

S. पुरी *pooree*, f. See पुर.

S. पुरुष *poorosh*, m. A man, generally or individually, a male, mankind.

S. पुरुषाः *pooroshah*, m. pl. (of पुरुष) Ancestors, the ancients, predecessors.

S. पुरुषार्थ *pooroshurut,h*, } m. Manliness,
S. पुरुषार्थ *pooroshart,h*, } boldness, generousness.

S. पुरोहित *poorohit*, m. A family priest, conducting all the ceremonials and sacrifices of a house or family.

S. पुर्खा *poork,ha*, (S. पुरुष) m. An old man, an elder, an ancestor.

S. पुष्प *pooshp*, m. A flower, blossom.

S. पुस्तक *poostuk*, f. A book.

S. पूंछ *poonch,h*, (S. पुच्छ) f. A tail.

S. पूज *pooj*, (S. पूज्य) adj. To be worshipped, deserving respect, venerable.

S. पूजना *poojna*, [1] (from S. पूजन) v. a. To worship, to adore, to venerate. [2] (for पूरना) v. n. To be accomplished, fulfilled, completed, perfected.

S. पूजा *pooja*, f. Worship, adoration, veneration, devotion.

S. पूतना *pootna*, f. Name of a giantess who was killed by KRISHNU.

S. पूनो *poonuo*, }
S. पून्यो *poonyuo*, } (S. पौर्णमासी or पूर्णिमा) f. The day of full moon.
S. पूरनवासी *poorunwasee*, }

S. पूरन *poorun*, (S. पूर्ण) adj. Entire, complete, exact, full, perfect, total, ripe.

S. पूरब *poorub*, (S पूर्व or पूर्व) [1] m. East. [2] adj. Eastern. [3] Prior, former.

S. पूरा *poora*, (S. पूर्ण) adj. See पूरन.

S. पूरी pooree, (S. पूर:) f. A kind of fresh cake fried in butter or G,hee.

S. पूर्नमा poornuma, (S. पूर्णिमा) f. The day of full moon.

S. पूर्नाहुत poornahoot, }
S. पूर्नाहुति poornahooti, } f. The oblation presented at the conclusion of a religious sacrifice, the final oblation. (S. पूर्णाहुति; comp. of पूर्ण complete, perfect, and आहुति a burnt offering.)

S. पूर्वार्द्ध poorvard,h, adj. The former or prior half. (Comp. of पूर्व, and अर्द्ध.)

S. पूस poos, (S. पौष) m. The name of the 9th solar month, according to some systems, the full moon of which is near पुष्या or γ and δ of Cancer. (December-January.)

S. पृथी prit,hee, }
S. पृथ्वी prit,hwee, } f. The earth.

S. पृथीनाथ prit,hee-nat,h, m. Lord of the earth; a sovereign, a king. (S. पृथ्वी, and नाथ.)

S. पैंताना pentana, m. The foot of a bed, the side towards the feet. (S. पादान्त; comp. of पाद the foot, and अंत boundary, end, near.)

S. पेखना pek,hna, v. a. To see. (From S. प्रेक्षणं.)

S. पेट pet, m. ¹ The belly ² Pregnancy, the womb. ³ The bore (of a gun, &c.) ⁴ Cavity, capacity. पेटपोंछन pet ponch,hun, The last child of a woman.

S. पेटी petee, (from पेट) f. A belly-band, a girth. ² A portmanteau. ³ A box or tumbril. ⁴ The thorax, chest.

S. पेड़ा pera, (S. पिंड) m. ¹ A kind of sweetmeat made with curds. ² A globular mass of leaven prepared for baking.

S. पेलना pelna, (from S. पेलनं) v. a. ¹ To shove, to push. ² To stuff, to cram. पेलपाल pel-pal, part. Shoving, pushing, &c.

S. पै pue, ¹ (S. पय:) m. Milk. ² Water. ³ (S. उपरि) adv. On, upon, over, at, to, nevertheless, yet. ⁴ conj. But. ⁵ (K.) f. A fault.

S. पैंड puend, f. ¹ Pace, step. ² A rising ground, an eminence. (S. पंड, root पड go.)

S. पैंडा puenda, m. A road, highway, path. पैंडामारना puenda marna, ¹ To stop a road. ² To rob in the road.

K. पैज puej, f. A vow, a promise. पैजकरना puej kurna v. a. To make a vow.

K. पैड़ी pueree, f. A ladder, a staircase,

a flight of steps.

S. पैद्‌ल *puedul*, [1] adv. On foot. [2] m. Infantry.

K. पैर *puer*, m. The foot.

K. पैरी *pueree*, (from पैर) f. An ornament worn on the legs.

S. पैहै *puehue*, 2 and 3 pers. sing. fut. tense of पवनैा q. v.

S. पोआ *po,a*, (S. पोत) m. [1] A plant. [2] A nursling of any animal. [3] A very young serpent.

S. पोखना *pok,hna*, v. a. To breed, to rear, to foster, to nourish, to tame. (From S. पोषणं.)

K. पोट *pot*, f. A bale, a bundle, a package.

K. पोटली *potlee*, f. A bundle.

K. पोतना *potna*, v. a. To besmear, to plaster.

S. पोता *pota*, (S. पैात्र) m. Grandson, son's son.

S. पोथी *pot,hee*, (S. पुस्त) f. A book.

K. पोना *pona*,
K. पोवनैां *powunuon*, } [1] v. a. To string (pearls), to thread, (a needle). [2] To make bread. [3] m. A spoon with holes in it like a colander for skimming, &c.

S. पोय *poe*, f
S. पोया *poya*, m, } (S. उपादिका) A kind of vegetable. (*Basella alba and rubra.*)

S. पोषन *poshun*, (S. पोषणं) m. Bringing up, rearing, fostering, cherishing.

S. पोषना *poshna*,
S. पोसना *posna*, } v. a. See पोखना (From S. पोषणं.)

K. पैाढ़ना *puor,hna*, v. n. To repose, to lie down, to rest.

S. पैात्र *puotru*, m. Grandson, son's son.

S. पैात्री *puotree*, f. Grandaughter, son's daughter.

S. पैार *puor*,
S. पैारी *puoree*, } (from पुर A town, a house, q. d. belonging to a town or house) f. A gate, a door.

S. पैारिया *puoriya*, (from पैार) m. A door-keeper, a porter.

S. पैाली *puolee*, See पैारी.

S. प्यावना *pyawuna*, v. a. To give or cause to drink. (From S. पानं.)

S. प्रकार *prukar*, m. Manner, method, kind, sort.

S. प्रकृत *prukrit*, (S. प्रकृति) f. Nature, disposition, property, quality.

S. प्रगट *prugut*, (S. प्रकट) adj. Obvious, notorious, publick, issued out, apparent, manifest.

S. प्रगटना *prugutna*, (from प्रगट) v. n. To issue forth, to become manifest, to appear.

S. प्रचंड *pruchund*, adj. Raging, mighty, predominant.

S. प्रजा *pruja*, f. A subject, tenant, renter.

S. प्रजापति *pruja-puti*, m. Lord of subjects; a prince; a name of BRUHMA. (प्रजा, and पति lord, ruler.)

S. प्रताप *prutap*, m. Glory, majesty, the high spirit arising from the possession of rank and power.

S. प्रतापवान *prutap-wan* } adj. Glorious,
S. प्रतापी *prutapee*, } potent.

S. प्रतिज्ञा *prutignya*, f. An agreement, compact, stipulation, engagement, promise.

S. प्रतिदिन *pruti-din*, adv. Each day, every day.

S. प्रतिपाल *prutipal*, } m. Patronising,
S. प्रतिपालन *prutipalun*, } fostering, rearing, breeding, cherishing.

S. प्रतिपालक *prutipaluk*, m. Cherisher, patron.

S. प्रतिबिंब *prutibimb*, m. An image or picture; the reflection of an image or figure from a mirror.

S. प्रतिष्ठा *prutishtha*, f. [1]Consecration of a monument, erected in honor of a deity, or of the image of a deity. [2] Celebrity, renown.

S. प्रतीत *pruteet*, (S. प्रतीति) f. Faith, confidence; प्रतीतकरना *pruteet kurna*, [1] To examine. [2] To believe. [3] To trust.

S. प्रत्यक्ष *prutyuchh*, or *prutyuksh*, [1]adj. Perceptible, perceived, present, obvious, apparent, publick. [2] adv. Before, in the presence, evidently, openly.

S. प्रदक्षिना *pruduchhina*, or *prudukhina*, (S. प्रदक्षिणा) f. Going round an object to which respect is intended with the right hand always towards it (a religious ceremony,) circuit, circumambulation.

S. प्रथम *pruthum*, adj. First, before.

S. प्रधान *prudhan*, m. A president, leader, chief, a minister or counsellor of state.

S. प्रन *prun*, (S. पण) m. Promise, agreement, vow, resolution.

S. प्रनाम *prunam*, (S. प्रणाम) m. Salutation, bow, obeisance.

S. प्रफुल्लित *prup,hoollit*, adj. Blooming, in blossom; gay, lively, cheerful.

S. प्रबल *prubul*, adj. Predominant, prevalent, violent, strong, powerful.

S. प्रभात *prubhat*, m. Dawn, morning.

S. प्रभाव *prubhav*, m. Power, influence, majesty, dignity.

S. प्रभु *prub,hoo*, m. Lord, master, principal.

S. प्रभुता *prub,hoota*, f. Government, superiority, influence.

S. प्रमान *pruman*, (S. प्रमाण) [1]m. Authority, proof, verification, attestation, limit, instance, example, measure, quantity, detail. [2] adj. Actual, authentick, substantial, real, approved of, agreeable, acceptable.

S. प्रयाग *pruyag*, m. A celebrated place of pilgrimage, the confluence of the *Ganges* and *Jumoona*, with the supposed subterraneous addition of the *Suruswutee ;* the modern *Allahabad.*

S. प्रलै *prulue*, (S. प्रलय) m. A general destruction, such as at the flood or resurrection.

S. प्रवास *pruvas*, m. Travelling, journey, sojourning in a foreign country, abroad.

S. प्रवासी *pruvasee*, m. A traveller.

S. प्रवाह *pruvah*, m. Stream, current.

S. प्रवीन *pruveen*, (S. प्रवीण) adj. Skilful, intelligent, accomplished, knowing.

S. प्रवेश *pruvesh*, m. Entrance, admittance, access.

S. प्रश्न *prushnu*, f. A question.

S. प्रसंग *prusung*, m. [1]Mention, discourse, subject of discourse. [2] Association.

S. प्रसंसा *prusunsa*, (S. प्रशंसा) f. Applause, praise, encomium.

S. प्रसन्न *prusunnu*, adj. [1] Rejoiced, pleased. [2] Gracious, kind.

S. प्रसन्नता *prusunnuta*, f. [1] Pleasure. [2] Kindness.

S. प्रसाद *prusad*, m. [1] Viand, victuals, food that has been offered to the deities. [2] Kindness, favor, blessing, gift. [3] Leavings of a great man or spiritual guide.

S. प्रस्थान *prust,han*, m. March, departure, going forth, march of an assailant.

S. प्रहार *pruhar*, m. The act of striking or beating, a blow, a stroke.

S. प्रहारी *pruharee*, m. A striker, smiter, destroyer, debaser, humbler.

S. प्राचीन *pracheen*, adj. Old, of former times, ancient.

S. प्रान *pran*, (S. प्राण) m. [1] Breath. [2] Soul, life. [3]Sweetheart, mistress. प्रानपति *pran-puti*, Soul's lord.

S. प्रानी *pranee*, (S. प्राणी) m. Having life, an animal, an animated being.

S. प्रारब्ध *prarubd,h*, } f. Fortune, lot, fate,
S. प्रालब्ध *pralubd,h*, } destiny, predestination, venture, chance.

S. प्रिय priyu, adj. m. } Beloved, dear ;
S. प्रिया priya, adj. f. } sweetheart.

S. प्रीतम preetum, adj. superl. Dearest, most beloved ; m. A lover, a sweetheart, a husband. (S. प्रियतम ; comp. of प्रिय beloved, and तम superlative affix.)

S. प्रेत pret, m. A departed soul, a spirit of the dead, a ghost, an evil spirit.

S. प्रेम prem, m. Love, affection, friendship, kindness, प्रेमरंगराता prem rung rata, adj. Coloured with the die of love, strongly attached or in love, loving.

S. प्रोहित prohit, See पुरोहित.

फ ph,

S. फंदा p,hunda, (from S. root पश bind) m. [1] A noose, a net, snare. [2]*Met.* Perplexity, difficulty.

S. फंदाना p,hundana, v. a. To cause to jump or leap over. (From S. फालनं)

S. फन p,hun, (S. फण) m. The hood or expanded head of a snake.

K. फबना p,hubna, v. n. To become, to befit.

K. फरकना p,hurukna, v. n. To flutter, to vibrate with convulsive involuntary motion, as the eye-lids and other muscles ; to throb, to palpitate ; to writhe (the shoulders, &c.)

S. फरसा p,hursa, (S. परशु) m. An axe, a hatchet.

S. फरी p,huree, (S. फर) f. A shield.

S. फल p,hul, m. [1] Fruit ; effect, advantage, children, progeny. [2] The iron head of a spear or arrow, &c. [3] A blade (of a sword, &c.)

S. फलना p,hulna, v. n. [1] To bear fruit. [2] To result, to be produced. [3] To be fortunate. (From S. फलनं.)

S. फहराना p,huhrana, v. n. To fly (as a flag), to flutter. (From S. स्फुरणं.)

K. फांक p,hank, f. A slice, a piece of fruit.

S. फांदना p,handna, v. a. To jump over, to leap over. (From S. फालनं.)

S. फांसी p,hansee, (S. पाश) f. A noose, a loop ; strangulation. फांसीदेना p,hansee dena, v. a. To hang. फांसीपरना or पड़ना p,hansee purna, or puṛna v. n. To be hanged.

K. फावड़ा p,hawra, m. A mattock, a spade, a hoe.

K. फिकारना p,hikarna, v. a. To uncover the head, to unplait the hair of the head.

K. फीका p,heeka, adj. [1] Weak, vapid, taste-

less, insipid. ² Pale, sallow, light (in colour.)

S. फुंकार p,hoonkar, (S. फुत्कार) f. The hiss of a snake.

S. फुंकारना p,hoonkarna, (from फुंकार) v. n. To hiss (as a snake.)

K. फुफी phoop,hee, f. A paternal aunt, father's sister.

K. फुफू p,hoop,hoo, m. Father's sisters husband, or father's sister.

K. फुफेरा p,hoop,hera, adj. Descended from, or related through a paternal aunt. फुफेरा भाई p,hoop,hera b,ha,ee, The son of a paternal aunt.

K. फुसलाना p,hooslana, v. a. To coax, to wheedle.

S. फुर्ती p,hoortee, (S. स्फूर्ति) f. Activity, quickness.

K. फेंट p,hent, f. Waist-band, a belt. फेंट बांधना p,hent band,hna, To get ready, to resolve.

S. फेन p,hen, m. Foam, froth.

S. फेनी p,henee, f. A kind of sweatmeat.

K. फैंटा p,huenta, m. ¹ Waist-band, fob. ² A small turband.

K. फैलना p,huelna, v. n. ¹ To be spread. ² To be expanded, to be diffused, to be scattered or dispersed. ³ To become publick.

K. फैलाना p,huelana, Trans. of the preceding.

ब bu,

S. बंकाई bunka,ee, (S. बंकता) f. A bending, a curvature, the reach or bend of a river.

S. बंदनवार bundunwar, m. A wreath or garland of leaves and flowers suspended across gateways on marriages or publick festivals. (S. बंधन tying, fastening, and वार a door-way, a gate.)

K. बंदी bundee, ¹ f. The name of an ornament worn on the forehead. ² m. Name of a tribe called B'hat q. v. who are generally bards or panegyrists.

S. बंध bund,h, m. Binding, bandage, bondage, imprisonment.

S. बंधक bund,huk, m. A pledge, a pawn.

S. बंधन bund,hun, m. Fastening, bandage, bondage; obstacle, hindrance. बंधमेंपरना या आना bund,h men purna, or ana, To become a captive.

S. बंधु bund,hoo, m. ¹ A friend, ² A relation or kinsman.

S. बंस *buns*, (S. वंश) m. ¹ Race, lineage, offspring. ² A bamboo.

S. बंसावलि *bunsawuli*, (S. वंशावलि) f. A genealogy.

S. बंसी *bunsee*, (S. वंशी) f. ¹ A flute. ² (S. वडिश) A fishing hook. ³ (in compos. from बंस) Of the race or lineage.

S. बंसीबट *bunsee but*, m. The fig tree underneath which Krishnu was accustomed to play the flute.

S. बक *buk*, (S. वक) m. A crane. (*Ardea Torra and Putea*, Buch.)

S. बकला *bukla*, (S. वल्कल) m. Bark, skin, rind, shell (of a fruit.)

S. बक् *buk*, }
S. बक्झक् *buk jhuk*, } (From S. वाक्) f. Prattle, foolish talk, garrulity. बक्झक्करना *buk jhuk kurna*, To prattle, to chatter, to gabble.

S. बक्ता *bukta*, (S. वक्ता) ¹ m. A speaker in general. ² adj. Eloquent, loquacious, talkative.

S. बक्वाद् *bukvad*, m. Prattle, foolish talk. (Comp. of बक् prattle, and वाद् dispute.)

S. बखान *bukhan*, (S. व्याख्यान) m. Explanation, praise, description.

S. बखानकरना *bukhan kurna*, }
S. बखान्ना *bukhanna*, } v. a. ¹ To praise, to commend. ² To explain, to define, to relate. (From S. व्याख्यान)

S. बग *bug*, (S. वक) m. See बक.

S. बगपांति *bug panti*, f. A row or line of cranes. (S. वक, and पंक्ति a row.)

K. बगूला *bugoola*, m. A whirlwind.

S. बचन *buchun*, (S. वचन) m. Speech, talk, discourse, word, promise, agreement. बचनदेना *buchun dena*, To promise, to agree. बचननिभाना *buchun nibhana*, To abide by a promise. बचनपालना *buchun palna*, To abide by a promise. बचन बंदकरना या बचनबंदकरलेना *buchun bund kurna*, or *buchun bund kur lena*, To bind by promise. बचनमान्ना *buchun manna*, To obey. बचनलेना *buchun lena*, To receive a promise.

S. बच्छ *buchh*, m. }
S. बछड़ा *buchhra*, m. }
S. बछरू *buchhroo*, m. } (S. वत्स) A calf.
S. बछिया *buchhiya*, f. }

S. बजंत्री *bujuntree*, m. One who plays on musical instruments. (From S. वाद्य a musical instrument, and यंत्रि a musician.)

S. बज्र *bujru*, (S. वज्र) m. ¹ A thunderbolt. ² A diamond.

S. बट *but*, (S. वट) m. The Indian fig tree.

(*Ficus Indica.*)

S. बड *bur,* [1] (S. बट) m. See the preceding. [2] In compos. a contraction of बड़ा (S. बड्) Great; as, बड़पन *bur pun,* Greatness, grandeur, dignity. बड़बोला *bur bola,* A noisy talkative person, &c. बड भकुआ *bur b,hukoa,* A blockhead.

K. बड़ना *burna,* v. n. To enter.

S. बड़ाई *bura,ee,* (S. वड्ता) f. [1]Magnitude, greatness, grandeur, dignity. [2] Magnifying, boasting. बड़ाईकरना *bura,ee kurna,* or मारना *marna,* To extol, to magnify, to boast, to vaunt.

S. बतराना *butrana,* v. n. To converse, to talk, to speak. (From S. वार्त्ता).

S. बदन *budun,* (S. वदनं) m. The mouth, face, countenance.

S. बदी *budee,* (S. बदि) f. The dark half of the lunar month from full moon to new moon.

S. बद्री *budree,* (S. बदरी) f. A place of pilgrimage in the north of India. *See Asiat. Res. Vol.* XI. *p.* 521. बद्रीदिस *budree dis,* Towards *Budree Nat'h.*

S. बध *bud,h,* m. Killing, slaying, slaughter.

S. बधना *bud,hna,* v. a. To smite, to kill. (From S. बधनं, root बध to kill.)

K. बधाई *bud,ha,ee,* f. } [1] A song in congratulation. [2] Presents, &c. carried to the house of a woman on the sixth or fortieth day after childbirth.
K. बधावा *bud,hawa,* m. }

S. बधिक *bud,hik,* m. A huntsman, sportsman, fowler, executioner. (From बध to kill.)

S. बधू *bud,hoo,* f. [1] A wife. [2] Daughter-in-law, woman, lady.

S. बन *bun,* (S. वन) m. A forest, a wood.

S. बनज *bunuj,* (S. वाणिज्य) m. Trade, traffic, merchandise.

K. बनठनके *bun t,hunke,* (plup. part. of बन्नाठन्ना) Being adorned or prepared, decked out, sprucely dressed.

S. बनमाल *bun-mal,* m. A garland of various flowers reaching to the feet; usually those of the *Toolsee* (*Ocymum Sanctum*), *Koondu* (*Jasminum Multiflorum*), *Mundar* (*Asclepias Gigantea*), *Parijatu* (*Erythrina fulgens*), and Lotus. (S. वन a forest, and माला a garland.)

S. बनमाली *bunmalee,* } m. One of the names of KRISHNU. (S. वनमाली, who wears a बनमाल q. v.)
S. बनवारी *bunwaree,* }

K. बनाव *bunaw,* verbal n. m. (from बनाना)

¹ Dressing, preparation, decking one's self. ² Concord, understanding, reconciliation.

S. बनिक *bunik*, (S. वणिक) m. A merchant, a trader.

K. बनी *bunee*, f. A bride.

S. बयार *buyar*, (S. वायु) f. Wind, air.

S. बर *bur*, ¹ m. A boon, a choice, a blessing, a good. ² A bridegroom. ³ adj. Excellent. ⁴ (S. वट) m. The *Indian* fig tree. ⁵ (S. वरम्) conj. But, moreover, even. बरदाई *bur da,ee*, Giver of a choice or blessing.

S. बरखना *buruk,hna*, v. n. To rain. (From S. वर्षणं).

K. बरजना *burujna*, v. a. To forbid, to prohibit.

S. बरत *burut*, ¹(S. व्रत) m. A meritorious act, a fast, a vow, a religious rite or penance. ² (S. वरत्रा) f. A thong, leathern girth, rope. ³ (pres. part. of बरना) Flaming, blazing.

S. बरन *burun*, ¹(S. वरम्) conj. Moreover, but even, rather. ² (S. वर्ण) m. Colour, sort. ³ A letter of an alphabet. ⁴ Praise, description. बरनकरना *burun kurna*, To hire a priest for the performance of a sacrifice or any religious ceremony. (From S. वरणं).

S. बरनन *burnun*, (S. वर्णन) m. Description, explanation, praise. बरननकरना *burnun kurna*, v. a. To explain, to describe, to extol, to praise.

K. *S.* बरना *burna*, ¹ v. n. To burn. ²(From S. बर a bridegroom) v. a. To marry.

S. बरख *burukh*, or *burukh*. (S. वर्ष) m. Rain; a year.

S. बरखा *burk,ha*, (S. वर्षाः) f. plur. ¹ The rains, the third season (of the six,) from the 15th of *Asharh* to 15th of *B,hadru*. ² Rain.

S. बरसगांठ *burus gant,h*, f. Birth-day, the ceremony of tying a knot on the aniversary birth-day of a child. (S. वर्ष a year, and ग्रंथि a knot.)

S. बरसौड़ी *bursuoree*, (S. वार्षिक) f. An annual tax or rent.

K. बरहा *burha*, m. A field where cows feed.

S. बरात *burat*, (S. व्रात) f. The marriage procession.

S. बराती *buratee*, (S. व्राती) m. The company and attendants at a marriage.

S. बरीस *burees*, (S. वर्ष) m. A year.

S. बरुन *burūn*, (S. वरुण) m. Vurūnu, the god of water; the *Indian* Neptune.

S. बरुनी burunee, (S. वरुणी) f. An eye-lash.

S. बर्त्तमान burtman, (S. वर्त्तमान) adj. Present, existent; the present tense.

S. बर्ष bursh, or burkh, (S. वर्ष) m. Rain; a year.

S. बल bul, m. [1] A name of Krishnu's elder brother. [2] Strength, power. [3] (S. बलि) Name of the king of *Patalu* or the infernal regions. [4] A sacrifice, an offering or oblation. [5] (K.) A coil, twist, convolution. बलखाना *bul-k,hana,* v. n. [1] To be angry. [2] To be twisted.

S. बलनिधि *bul nid,hi,* m. An assemblage of strength. (बल strength, and निधि.)

S. बलबीर *bul-beer,* m. The elder brother of Krishnu; *lit.* Bulu, the brave.

S. K. बलबीर *bul-beer,* m. A name of Krishnu. (बल as the preceding, and बीर (K.) brother.)

S. बलराम *bulram,* m. The elder brother of Krishnu.

A. बला *bula,* f. Misfortune, calamity, accident, vengeance. (A. بلا)

S. बलि *buli,* m. [1] A sacrifice, an offering. [2] Name of the sovereign of *Patalu* or the infernal regions.

S. बली *bulee,* adj. Strong, powerful.

S. बलूला *buloola,* (S. बुद्बुद) m. A bubble (of water.)

S. बस *bus,* m. Power, command, authority, advantage. (S. वश्य, root वश desire.) बसआना *bus ana,* To be obtained, to come into one's power. बसकरना *bus kurna,* To overpower, to bring to submission.

S. बसंत *busunt,* (S. वसंत) m. The spring season, comprehending *Chuetru* and *Vueshak'hu.* (From about the middle of March to the middle of May.)

S. बसन *busun,* (S. वसन) m. Cloth; a dress, a habit, a suit of clothes, apparel.

S. बसना *busna,* v. n. To dwell, to abide, to be peopled. (From S. root वस dwell.)

S. बसाना *busana,* (trans. of बसना) v. a. To people, to colonize, to bring into cultivation, to settle a country.

S. बस्त्र *bustru,* (S. वस्त्र) m. See बसन.

K. बहकना *buhukna,* v. n. To be balked, to be disappointed, to be deceived, to stray, to be intoxicated.

K. बहकाना *buhkana,* (trans. of बहकना) v. a. To balk, to disappoint, to mislead, to deceive.

S. बहधा *buhd,ha,* (S. बाधा) f. Pain, dis-

tress: obstruction, hinderance, prevention.

S. बहनेऊ *buhne,oo,* (S. भगिनीपति) m. A brother-in-law, sister's husband.

S. बहरमुख *buhurmookh,* m. The neglect or violation of any moral or religious duty; impious. (S. बहिर् without, and मुख the face.)

K. बहलाना *buhlana,* v. a. To divert, to amuse.

S. बहिजाना *buhi-jana,* v. n. [1] To flow or pass. [2] To go or swim with the stream. [3] To be ruined, to be destroyed. (From S. root वह् run, flow.)

S. बहिरना *buhir and,* [1] v. n. To issue, to come out. [2] (for बहलाना) v. a. To divert, to amuse.

S. बहु *buhoo,* adj. Much, many.

S. बहुधा *buhoodha,* adv. In many ways, usually, generally, mostly, often.

K. बहुरि *buhoori,* } adv. Again.
K. बहुरौं *buhooruon* }

S. बांक *bunk,* m. [1] A semicircular ornament worn on the arms. [2] A kind of dagger. [3] A crook, curvature, bending. [4] A reach or turning of a river. [5] Fault, offence, wickedness. (From S. वंक crooked.)

S. बांचना *banchna,* v. a. To read. (From S. वचन discourse.)

S. बांछा *banchha,* (S. वांछा) f. Wish, desire.

S. बांछित *banchhit,* (S. वांछित) part. Desired, longed for.

S. बांझ *banjh,* (S. वंध्या) adj. Barren.

S. बांट *bant,* m. [1] Share, distribution. (From S. वंटनं). [2] (S. वंटक) A weight (i. e. the standard by which things are weighed). [3] Food given to a cow while she is milked. बांटचोंट *bant chont,* Share, distribution.

S. बांटना *bantna,* v. a. To share, to distribute, to divide. (From S. वंटनं).

S. बांसुरी *bansooree,* (S. वंशी) f. A flute, fife, pipe.

S. बांह *banh,* (S. बाहु) f. The arm. बांहें चढाना *banhen churhana,* To get ready, to prepare.

S. बाक्य *bakyu,* (S. वाक्य) m. [1] Speech, a word. [2] A sentence.

K. बाखल *bakhul,* m. [1] An area or court yard. [2] Several houses contained within one enclosure.

K. बागा *baga,* m. A vestment; honorary dress.

S. बाघंबर *bag,humbur,* m. A tiger's skin.

(S. व्याघ्रांबर ; comp. of व्याघ्र a tiger, and अंबर covering, vestment.)

S. बाचा *bacha*, f. [1] Speech, language, word. [2]Affirmation, agreement. (S. वाचा, root वच to speak.)

S. बाछना *bach,hna*, v. a. To choose, to select. (From S. root वछ desire.)

S. बाजन *bajun*, m. plur. Musical instruments.

S. बाजा *baja*, (S. वाद्य) m. Any musical instrument. बाजागाजा *baja gaja*, m. The sound or clangour of various musical instruments.

S. बाट *bat*, (S. वाट) f. A road, a highway. बाटेघाटे *bate g,hate*, (बाट road, and घाट pass, ford, bathing place by a river side). adv. Somewhere or other.

S. बाड *bar*, f. [1] Edge (of swords, knives, &c.) [2] A fence, a hedge. [3] Verge, edge, margin. (S. root वट or वड surround.)

S. बाडी *baree*, (S. वाटी) f. An enclosed piece of ground, a garden, orchard, kitchen garden ; a house with the garden, orchard, &c. attached to it.

S. बाढ *bar,h*, verbal n. f. [1] Increase, promotion. [2] A flood.

S. वाढना *bar,hna*,
S. बाढनो *bar,hnuo*, } v. n. To increase, to go on, to proceed, to advance, to rise, to swell, to exaggerate, to be promoted. (From S. वर्द्धनं, root वृध increase.)

S. बातकीबातमें *bat kee bat men*, adv. Instantly.

S. बादी *badee*, m. A speaker, an accuser, a plaintiff. (S. वादी, root वद to speak.)

S. बाधा *bad,ha*, f. Pain, distress: obstruction, hinderance, prevention.

S. बान *ban*, [1] f. Temper, quality, manners. (S. वर्ण kind, quality.) [2] m. (S. बाण) An arrow ; a rocket used in battle. [3] A kind of rope made of *Moonj*, a species of grass. [4] The name of an *Usooru*, son of *Raja* Buli.

K. बाना m. [1] Habit, profession. (S. वर्ण class.) [2] A kind of weapon. [3] Fashion in dress, peculiar to individuals or to bodies taken individually.

S. बानी *banee*, (S. वाणी) f. Speech, voice, language ; name of the goddess Surus-wutee.

K. बापरे *bapruo*, adj. Helpless, poor.

S. बापी *bapee*, (S. वापी) f. A large oblong pond, a pool.

K. बाबर *babur*, m. A kind of sweetmeat.

S. बाम *bam*, [1](S. वाम्) adj. The left (side, &c.), reverse ; an enemy. [2] (S. वामा) f.

A woman.

S. बामअंग *bam-ung*, (S. बामांग) m. The left side.

S. बायां *bayan*, (S. बाम) adj. Left (hand, &c.).

S. बार *bar*, 1 f. Time, occasion, delay. 2 m. A day of the week. 3 (S. वार) Water. 4 m A door. 5 (S. बाल) A child. 6 Hair. 7 (S. बाला) f. A girl not exceeding sixteen. बारलगाना *bar lugana*, v. a. To delay, to hesitate.

S. बारन *barun*, (S. वारण) m. 1 An elephant. 2 Forbidding, prohibiting, preventing.

S. बाराह् *barah*, (S. वराह्) m. 1 A boar. 2 The third *Uvutar* or incarnation of Vishnoo in the form of a boar.

S. बारिज *barij*, m. A lotus. (S. वारि water, and ज produced.) बारिजनयन *bariju nuyun*, adj. Having eyes like the flower of the lotus.

S. बारी *baree*, 1 (S. वाटी) f. A garden, an orchard, a house. 2 (S बालिका) A young girl not exceeding sixteen. 3 (K.) A window. 4 An ornament worn in the ear and nose.

S. बारुनि *baroonee*, (S. वारुणी) f. Spirituous liquor.

S. बाल *bal*, 1 m. Hair. 2 A boy, a child. 3 (S. बाला) f. A girl not exceeding sixteen.

S. बालक *baluk*, m. A young child, an infant.

S. बालभोग *bal bhog*, m. An offering to Krishnu presented early in the morning. (S. बाल a child, and भोग्य eatable.)

S. बावन *bawun*, (S. वामन) 1 adj. Dwarfish, diminutive. 2 m. The fifth incarnation of Vishnoo in the shape of dwarf.

K. बावडी *baoree*,
K. बावली *baolee*, } f. A large well into which people descend by steps to get water.

S. बास *bas*, (S. वास) 1 m. Abode, residence. 2 f. Smell, scent, odour.

S. बासना *basna*, (S. वासना) f. Desire, inclination, choice.

S. बासना *basna*, v. a. To scent, to perfume. (From S. वासना; root वास perfume.)

S. बासी *basee*, part. (used substantively) An inhabitant; as, बनवासी *bun vasee*, Inhabitant of the woods; ब्रजवासी *Brujvasee*, Inhabitant of *Bruj*. (S. वासी, root वस to reside.)

S. बाहन *bahun*, (S. वाहन) m. A vehicle, any animal or other conveyance on which a person rides.

S. बिंजन *binjun,* (S. व्यंजन) m. [1] Sauce, condiments: particularly vegetables dressed with butter, &c. and added to flesh or fish. [2] (In grammar) A consonant.

S. बिंब *bimb,* m. The name of a tree bearing a red fruit. (*Momordica monadelpha* or *Byronia grandis.*)

S. बिकट *bikut,* (S. विकट) adj. Difficult: terrible.

S. बिकरार *bikrar,* (S. विकराल) adj. Terrifick, ugly.

S. बिकल *bikul,* (S. विकल) adj. Restless, uneasy, troubled.

S. बिकसना *bikusna,* v. n. [1] To blow or expand (as a flower.) [2] To be delighted, to smile. (From S. विकसनं).

S. बिकसित *bikusit,* (S. विकसित) adj. [1] Expanded, blown (as a flower.) [2] Delighted.

S. बिकास *bikas,* (S. विकास) s. Shining, blooming, expansion, display, pleased, happy, delighted.

S. बिघन *bighun,* (S. विघ्न) m. Hinderance, stop, prevention, interruption.

K. बिच *bich,* adv. In, among, between.

S. बिचार *bichar,* (S. विचार) m. Consideration, reflection, contrivance, judgment, opinion, thought, will.

S. बिचारना *bicharna,* v. a. To consider, to reflect, to investigate, to comprehend, to think, to apprehend, to conceive. (From S. विचारणं).

S. बिचित्र *bichitru,* (S. विचित्र) adj. Variegated, various; wonderful.

S. बिछरना *bich,hurna,*
S. बिछुरना *bich,hoorna,* } v. n. To be separated. (From S. वि, and root छुट cut.)

K. बिछुआ *bich,hooa,* m. [1] A sort of dagger. [2] An ornament worn on the toes.

S. बिछुराना *bich,hoorana,* (trans. of बिछुरना) v. a. To separate.

S. बिछोह *bich,hoh,*
S. बिछोहा *bich,hoha,* } m. Separation, absence. See बिछरना.

K. बिजायठ *bijayut,h,* m. A bracelet worn on the arm, an armlet.

S. बित *bit,* (S. वित्त) m. [1] Wealth, substance, thing. [2] Ability, power, means.

S. बितना *bitna,* v. n. To pass. (S. root वृत pass.) See बीतना.

S. बिताना *bitana,* (trans. of बितना) v. a. To spend, to pass.

S. बितीत *biteet,* (S. व्यतीत) adj. Passed, gone, elapsed.

S. बिथरना *bit,hurna,* (perhaps from विस्तरणं, root स्तृ to spread out or cover) v. a. To be scattered, to be sprinkled.

S. बिथरना bit,hrana, v. a. To scatter, to sprinkle.

S. बिथा bit,ha, (S. व्यथा) f. Pain, affliction, distress.

S. बिथुरना bit,hoorna, v. n. To be spread, to be scattered, to be sprinkled.

S. A. बिदा bida, (S. बिदाय or A. وداع) f. Dismission, taking leave, farewell, adieu.

S. बिदारन bidarun, (S. विदारण) m. Tearing, rending, breaking, cleaving, splitting, severing, dividing.

S. बिदारना bidarna, v. a. To rend, to tear. (From विदारण, root दृ to tear.)

S. बिद्या bidya, (S. विद्या) f. Science, knowledge, intellect.

S. बिद्यार्थी bidyart,hee, m. A student. (Comp. of S. विद्या, and अर्थी desirous.)

S. बिद्याधर bidyad,hur, (S. विद्याधर) m. A *Vidyad'huru* or celestial dancer; these demigods dance before the assembled deities in Indru's heaven.

S. बिद्यावान bidyawan, (S. विद्यावान्) adj. Learned, scientifick.

S. बिध bid,h, (S. विधि) f. [1] A sacred precept, law, statute, decree, command, injunction. [2] Bruhma or providence. [3] Fate, luck, destiny. [4] Manner, method, kind, sort.

S. बिधना bid,hna, (S. विधि) m. A name of Bruhma.

S. बिधवा bid,hwa, (S. विधवा) f. A widow. (Lat. *Vidua.*)

S. बिधि bid,hi, See बिध

S. बिधाता bid,hata, (S. विधाता) m. The deity Bruhma.

S. बिध्वंस bid,hwuns, (S. विध्वंस) m. Non-existence, annihilation, slaughter.

S. बिन bin, } (S. विना) adv. Without,
S. बिना bina, } except, unless.

S. बिनती bintee, (S. विनीति or विनति or विनय) f. An apology, submission, solicitation.

S. बिनास binas, (S. विनाश) m. Annihilation, disappearance, destruction.

S. बिनौना binuona, v. a. To adore, to venerate, to revere, to laud. (From S. विनय).

S. बिपत biput, (S. विपत्ति or विपत्) f. Adversity, misfortune, calamity, distress.

S. बिपरीत bipureet, (S. विपरीत) part. Contrary, opposite. f. Mischief, ruin.

S. बिप्र bipru, (S. विप्र) m. A man of the sacerdotal tribe, a *Brahmun.*

S. बिफरना bip,hurna, (perhaps from विपरीत) v. n. To be perverse, refractory disobedient, cross, obstinate, pert.

S. बिमान biman, (S. विमान) m. The car or vehicle of any deity.

S. बिमुख bimookh, (S. विमुख) adj. Having the face averted, turned from, averse.

S. बियोग biyog, (S. वियोग) m. Separation, absence, especially of lovers.

S. बियोगी biyogee, (S. वियोगी) m. A lover suffering the pain of absence.

S. बिरंच birunch, (S विरिंचि or विरंचिorविरंच) m. A name of BRUHMA.

K. बिरद birud, m. Fame, reputation, panegyrick.

S. बिरमना birumna, v. n. To stop, to remain, to delay. (From S. विरम).

S बिरमाना birmana, Trans. of the preceding.

S. बिरह biruh, (S. विरह) m. Separation, parting, absence, especially the separation of lovers.

S. बिराजना birajna, v. n. To be conspicuous or splendid; to enjoy one's self, to live in health, ease, content and independence. (From S. विराजन).

S. बिराट birat, (S. विराट) m. The embodied Spirit.

K. बिराना birana, adj. ¹ Strange, foreign. ² Belonging to another.

S. बिराम biram, (From S. वि, and root रम be quiet or at rest.) adj. Restless, unquiet, agitated.

K. बिरियाँ biriyan, f. Time.

S. बिरुद्ध biroodd,hu, (S विरुद्ध) adj. Opposite, opposed to, contrary to, against.

S. बिरूप biroop, (S. विरूप) adj. Disfigured, deformed, ugly. बिरूपहोना biroop hona, v. n. To be disgraced.

S. बिरोध birod,h, (S. विरोध) m. Enmity, quarrel, dispute, enmity, contrariety, opposition.

S. बिलंब bilumb, (S. विलंब) m. Delay, procrastination, tardiness.

S. बिलंबना bilumbna, v. n. To stay, to tarry, to delay.

K. बिलकना bilukna, v. n. ¹ To sob, to cry violently (as a child.) ² To long for, to desire eagerly.

S. बिलखना biluk,hna, ¹ v. a. To see, to look at, to perceive, to behold. (From S. विलक्षणं) ² (K.) v. n. To be displeased.

S. बिलग bilug, (S. विलग्न) ¹ adj. Separate. ² m. Separation, disunion, difference. बिलगमान्ना bilug manna, v. n. To be displeased, to be angry or offended.

K. बिलबिलाना bilbilana, v. n. To be restless, to be tormented with pain, to complain from pain or grief, to lament.

S. बिलमना bilumna, For बिरमना q. v.

K. बिललाना bilulana, v. n. To lament.

See बिल,बिलाना.

S. बिलाना *bilana*, [1] v. n. To vanish to retire, to be lost. [2] v. a. To cause to vanish, to dissipate, to dispose of, to distribute. (From S. विलय).

S. बिलास *bilas*, (S. विलास) m. Pleasure, delight.

S. बिलोकना *bilokna*, v. a. To see, to look at. (From बिलोकनं).

S. बिलोवना *bilowuna*, v. a. To churn. (From S. विलोडनं).

S. बिवाह *biwah*, (S. विवाह) m. Marriage. बिवाहरचाना *biwah ruchana*, To celebrate a marriage. बिवाहलाना *biwah lana*, To take in marriage, to bring home a wife, to marry.

S. बिश्रांत *bishrant*, (S. विश्रांत) adj. Rested, reposed.

S. बिश्रांति *bishranti*, (S. विश्रांति) f. Rest, repose, cessation from toil or occupation.

S. बिश्राम *bishram*, (S. विश्राम) m. Rest, ease, repose. बिश्रामकरना या लेना *bishram kurna*, or *lena*, To rest, to repose.

S. बिष *bish*, or *bikh*, (S. विष) m. [1] Poison, venom. [2] *Met.* it is sometimes applied to bitter things.

S. बिषई *bikhuee* or *bishuee*, (S. विषयी) adj. Sensual, worldly.

S. बिषधर *bishu-dhur* or *bikh dhur*, m. A snake. (S. बिष poison, and धर who has.)

S. बिषमज्वर *bishum jwur* or *bikhum jwur*, m. An inflammatory fever, a high fever. (S. विषम difficult *of cure*, and ज्वर a fever.)

S. बिषय *bikhue*, or *bishue*, (S. विषय) m. [1] Any object of sense, any thing perceivable by the senses, as, colour, sound, odour, flavour, and contact. [2] An affair, matter, &c.

S. बिसद *bisud*, (S. विशद) adj. [1] White (colour). [2] Pure, clean.

S. बिसरना *bisurna*, v. n. To forget. (From S. विस्मरणं)

S. बिसरना *bisrana*, } v. a. To forget, to
S. बिसारना *bisarna*, } cause to forget, to mislead.

S. बिसाल *bisal*, (S. विशाल) adj. Great, large.

K. बिसूरना *bisoorna*, v. n. To cry slowly, to sob.

S. बिस्तारना *bistarna*, v. a. To spread out, to extend, to diffuse. (From S. विस्तार).

S. बिस्व *biswu*, (from बीस, S. विंशति) m. The twentieth part (particularly, of a *Beeg'ha.*)

S. बिस्वकरमा *biswukurma*, m. The artifi-

cer of the gods, the *Indian* Vulcan. (S. विश्व the universe, and कर्म्मा work, act.)

S. बिस्वास *biswas,* (S. विश्वास) m. Trust, confidence, faith. बिस्वासघाती *biswas-g͟hatee,* m. A treacherous friend, one who seeks to take advantage of the confidence placed in him. (S. विश्वास, and घाती a killer or destroyer.)

S. बिह्वल *bihbul,* (S. विह्वल) adj. Agitated, alarmed, overcome with fear or agitation, &c. unable to restrain one's self.

S. बिहरना *bihurna,* [1] v. n. To rejoice, to take pleasure. [2] v. a. To enjoy, to take pleasure in, to rejoice, to delight. (From S. विहरणं).

S. बिहसना *bihusna,* v. n. To smile, to laugh. (From S. विहसनं).

S. बिहार *bihar,* (S. विहार) m. Diversion, amusement, sport.

S. बिहारी *biharee,* (S. विहारी) [1] adj. Sportive. [2] n. prop. A name of Krishnu.

S. बीड़ा *beeṛa,* m. [1] See 1st sig. of बीर. बीड़ाउठाना *beeṛa œt͟hana,* v. a. To undertake a business. बीड़ाडालना *beeṛa dalna,* To propose a premium for the performance of a task. (These expressions originate in a custom that prevailed of throwing a *beeṛa* of betel into the midst of an assembly, in token of proposal to any person to undertake some difficult affair then requisite to be performed; and, the person who took up the betel, bound himself to perform the business in question.)

S. बीतना *beetna,* v. n. To pass. (From S. व्यतीत).

S. बीन *been,* (S. वीणा) f. A kind of lute. (*See Asiat. Res. Vol.* I. *Art.* XIII.)

S. बीर *beer,* (S. वीर) [1] m. A hero. [2] adj. Brave.

K. बीर *beer,* m. [1] A brother. [2] A jewel worn in the ear.

S. बीरता *beerta,* (S. वीरता) f. Prowess, valour.

S. बीरा *beera,* m. [1] (S. वीटिका) A betel leaf made up with spices, &c. [2] (K.) A brother.

S. बीर्य्य *beeryu.* (S. वीर्य्य) m. [1] *Sperma genitale (viri aut mulieris).* [2] Power, strength.

S. बुध *bœdh,* m. [1] A wise or learned man, a sage. [2] The planet Mercury. [3] Wednesday. [4] (S. बुद्ध) The ninth *Uvutar* or *Hindoo* incarnation.

S. बुधि *bœdhi,*
S. बुद्धि *bœddhi,* } f. Sense, knowledge, understanding.

K. बुहारना *booharna*, v. a. To sweep.

S. बूंद *boond*, (S. विंदु) f. A drop,

K. बूड़ना *boorna*, v. n. ¹ To dive. ² To drown, to be immerged, to dip.

S. बृंद *brind*, (S. वृंद) m. A heap, a multitude, a quantity, an aggregation.

S. बृंदा *brinda*, (S. वृंदा) f. A plant worshipped by the *Hindoos*, commonly called *Toolsee*. (*Ocymum sanctum*, or sacred basil: this shrub is said to be a female metamorphosed; the circumstance however is variously told.)

S. बृंदाबन *brindabun*, m. The name of a place in the vicinity of *Mut,hoora*, and the scene of Krishnu's sports with the *Gopees*. (S. बृंदा see the preceding, and बन a wood; a wilderness of *Toolsee* trees.)

S. बृक *brik*, (S. वृक) m. A wolf.

S. बृक्ष *brich,h*, or *briksh*, (S. वृक्ष) m. A tree in general.

S. बृथा *brit,ha*, (S. वृथा) adj. Abortive, vain, in vain.

S. बृद्ध *bridd,h*, (S. वृद्ध) adj. Old.

S. बृहस्पति *brihusputi*, (S. बृहस्पति) m. ¹ The regent of the planet Jupiter, identified astronomically with the planet; in mythology he is the preceptor of the gods. ² Thursday.

K. बेंड़ा *benda*, adj. Crooked.

S. बेग *beg*, (S. वेग) m. Celerity, haste, rapidity. adv. Soon, quickly, with haste.

K. बेड़ी *beree*, f. ¹ Irons fastened to the legs of criminals, fetters. ² A basket used to irrigate fields with.

S. बेद *bed*, (S. वेद) m. A *Vedu*, or the *Vedus* in the aggregate: the original *Vedu* is believed by the *Hindoos*, to have been revealed by Bruhma, and to have been preserved by tradition, until it was arranged in its present order by a sage, who thence obtained the surname of Vyasu, or Veduvyasu; that is, compiler of the *Vedus*. He distributed the *Indian* scripture into four parts, which are severally entitled *Rig*, *Yujoosh*, *Samu*, and *Ut,hurvu*; and each of which bears the common denomination of *Vedu*.

S. बेदी *bedee*, (S. वेदी) f. An altar.

S. बेन *ben*, }
S. बेनु *benoo*, } (S. वेणु) f. A flute, pipe, fife.

S. बेर *ber*, ¹ m. (for बदर) The name of a fruit, that of the jujube, (*Zizyphus jujuba*); also, the name of the tree. ² f. (for वार) Time, turn, vicissitude, delay.

³ (for बेला) While.

S. बेलि *beli,* *S.* बेली *belee,* (S. वल्लि or वल्ली) f. A creeper, climber: tendril (of a vine.)

S. बेस्या *besya,* (S. वेश्या) f. A courtesan, a harlot, a prostitute.

S. बैंदी *buendee,* (S. बिंदु) f. ¹ An ornamental circlet made with a coloured earth or unguent on the forehead, and between the eyebrows. ² An ornament worn by women on the forehead.

S. बैकुंठ *buekoonth,* (S. वैकुंठ) m. ¹ A name of Vishnoo. ² The heaven or paradise of Vishnoo.

S. बैजंती *buejuntee,* (S. वैजयंती) f. A flag or standard; the standard of Vishnoo.

S. बैजंतीमाला *buejuntee mala,* f. A necklace especially worn by Vishnoo in his several forms, and composed of the following jewels, produced from the five elements of nature: namely, the sapphire, from the earth; the pearl, from water; the ruby, from fire; the topaz, from air; and the diamond, from space or ether. (S. वैजयंति conquering, and माला a necklace.)

K. बैठाना *buet,hana,* K. बैठारना *buet,harna,* K. बैठालना *buet,halna,* (caus. of बैठना to sit) v. a. To cause to sit down, to seat.

S. बैदक *bueduk,* (S. वैद्यक) m. The practice or science of physick.

S. बैदिक *buedik,* (S. वैदिक) m. A *Brahmun* well versed in the *Vedus.*

S. बैन *buen,* ¹ (S. वेणु) f. A flute, pipe, fife. ² (S. वाणी) m. A word, speech.

K. *S.* बैना *buena,* m. ¹ An ornament worn on the forehead. ² (S. वायन) Sweetmeats, cakes, &c. distributed at marriages and other ceremonies.

S. बैर *buer,* (S. वैर) m. Enmity, revenge.

बैर लेना *buer lena,* v. a. To revenge.

A. बैरख *bueruk,h,* m. A banner, ensign, colours. (*Arabic* بيرق)

S. बैराग *buerag,* *S.* बैराग्य *bueragyu,* (S. वैराग्य) m. Penance, devotion, the act of leaving the pleasures of the world.

S. बैरागी *bueragee,* (S. विरागी) m. The religious ascetick, or him who abandons terrestrial objects, thoughts, passions, &c.

S. बैरी *bueree,* (S. वैरी) m. An enemy.

S. बैस *bues,* ¹ (S. वयस) m. Age. ² (S. वैश्य)

The third of the four *Hindoo* castes. [3] A name of a tribe of *Rajpoots*.

S. बैसंदर *buesundur*, (S. वैश्वानर) m. Fire, or its deity.

S. बैसाख *buesak,h*, (S. वैशाख) m. Name of a *Hindoo* month, (April-May.)

K. बोल *bol*, verbal n. m. (from बोलना) [1] Word, speech, talk, conversation. [2] Words of a song.

S. ब्याकरन *byakurun*, (S. व्याकरण) m. Grammar.

S. ब्याकुल *byakool*, (S. व्याकुल) adj. Perplexed, confounded, restless, agitated (in mind), uneasy.

S. ब्याध *byad,h*, (S. व्याध) m. A hunter, a fowler.

S. ब्याधि *byad,hi*, (S. व्याधि) m. Sickness, disease in general.

S. ब्यापना *byapna*, v. n. To pervade, to occupy, to effect, to operate, to work, to act. (S. व्यापनं).

K. ब्यालू *byaloo*, m. Supper.

S. ब्यास *byas*, (S. व्यास) m. A celebrated saint and author, the supposed original compiler of the *Vedus* and *Pooranus*; also the founder of the *Vedantu* philosophy.

S. ब्याह् *byah*, (S. विवाह्) m. Marriage.

ब्याह्लाना *byah lana*, v. a. To take in marriage, to bring home a wife, to marry.

S. ब्याह्न *byahun*, (S. विवाह्ण) m. Marrying, marriage, to marry. ब्याह्नजोग *byahun-jog*, adj. Fit for marriage, marriageable.

S. ब्याह्ना *byahna*, v. a. To give or take in marriage. (From S. विवाह्). ब्याहीजाना *byahee jana*, To be married (a woman.)

S. ब्याह्। *byaha*, m. (S. विवाहित) } adj.
S. ब्याह्ता *byahta*, f. (S. विवाहिता) }
Married.

S. ब्यौपारी *byuoparee*, (S. व्यापारी) m. A merchant.

K. ब्यौरा *byuora*, m. [1] Difference, distinction. [2] Account, explanation, history, detail of circumstances.

S. ब्यौहार *byuohar*, (S. व्यवहार) m. Profession, calling, trade, negotiation, transaction, practice, custom.

S. ब्रज *bruj*, (S. ब्रज) m. Name of a district containing the several villages of *Mut'hoora*, *Gokool*, *Brindavun*, &c. being about 168 miles in circumference.

S. ब्रत *brut*, (S. व्रत) m. A meritorious act, a fast, a vow, a religious rite or penance.

S. ब्रथा *brut,ha,* (S. वृथा) adj. Abortive, vain, in vain.

S. ब्रषभ *bruk,hub,h,* or *brus,hub,h,* (S. वृषभ) m. A bull.

S. ब्रह्म *bruhmu,* God, the all-pervading, the divine cause and essence of the world from which all things are supposed to proceed and to which they return.

S. ब्रह्मअस्त्र *bruhm-ustru,* m. A fabled weapon, which consecrated by a formula addressed to Bruhma deals infallible destruction to those against whom it is discharged. (S. ब्रह्मास्त्र; comp. of ब्रह्मा, and अस्त्र a weapon in general.)

S. ब्रह्मचर्य *bruhmuchuryu,* m. The profession or way of life of a *Bruhmucharee.*

S. ब्रह्मचारी *bruhmucharee,* m. A religious student, a *Brahmun* from the time of his investiture with the sacerdotal thread till he becomes a householder, a person who continues with his spiritual teacher studying the *Vedu,* a *Pundit* learned in the *Vedu,* an ascetic.

S. ब्रह्मबान *bruhmu ban,* See ब्रह्मअस्त्र. (S. ब्रह्म, and बाण an arrow.)

S. ब्रह्मभोज *bruhmu b,hoj,* m. Feeding of *Brahmuns.* (S. ब्राह्मण, and भोजन eating, food, victuals.)

S. ब्रह्मरात्रि *bruhmu ratri,* f. A night of *Bruhma,* comprehending 1000 *Yoogus* of the gods, or 216,000,000 of mortals.

S. ब्रह्मा *bruhma,* m. The Deity in the character of Creator, or matter personified.

S. ब्रह्मांड *bruhmand,* m. The globe, the world. (Comp. of ब्रह्म, and अंड an egg, to which it is compared; in creation there are said to have been innumerable *Bruhmandus.*)

S. ब्राह्मनी *brahmunee,* (S. ब्राह्मणी) f. The wife of a *Brahmun,* a female of the *Brahmun* cast.

भ

S. भंग *b,hung,* [1] m. Breaking, splitting; defeat, discomfiture. [2] (for S. भग्न) adj. Torn, broken; overcome, defeated.

S. भंडार *b,hundar,* m. A place where household goods are kept, a storehouse. (S. भांडागार; comp. of भांड a vessel in general, and आगार a house.)

S. भंवर *b,hunwur,* (S. भ्रमर) f. A large black bee.

S. भई *b,hu,ee,* (S. root भू be) past tense or

part. of the verb subs. fem. Was, became, become.

S. भक्त b,hukt, [1] m. An adorer, a devotee, a votary. [2] A *Hindoo* performer for entertainment, a dancer, a player. [3] adj. Pious. [4] Desirous.

S. भक्ति b,hukti, f. Persuasion, religion, faith, attachment, desire. भक्तिवंत *bhukti wunt,* adj. Devoted, religious, pious.

S. भक्ष b,huch,h, or b,huksh, (S. भक्ष्य) [1] adj. Eatable. [2] m. Food.

S. भगंदर b,hugundur, m. A fistula (in ano.)

S. भगत b,hugut, m. See भक्त. भगतखेलना *b,hugut k,helna,* v. n. To act (a play), to imitate, to mimick. भगतहोना *b,hugut hona,* v. n. To be initiated as a devotee, to be affiliated to a religious order.

S. भगवंत *b,hugwunt,* } adj. Divine, glorious, illustrious; m.
S. भगवान *b,hugwan,* } God, the deity, the Supreme Being.

S. भजन *b,hujun,* m. Adoration, worship. भजनकरना *b,hujun kurna,* v. a. To say prayers, to worship.

S. भजना *b,hujna,* v. a. To worship, to count one's beads, to adore. (From S. भजनं).

K. भजना *b,hujna,* } v. n. To flee, to
K. भजिजाना *b,huji jana,* } run away.

S. भट *b,hut,* m. A warriour, a hero.

K. भटकना *b,hutukna,* v. n. To go astray, to wander, to miss the right path, to lose (the way.)

K. भडक *b,huruk,* (from भडकना) f. [1] Splendor, blaze, flash, glare, show. [2] Perturbation, agitation, alarm, starting (in animals.)

K. भडकना *b,hurukna,* v. n. [1] To start, to shrink, to be scared, to be alarmed. [2] To be blown up into a flame, to blaze forth.

K. भडकाना *b,hurkana,* v. a. [1] To frighten, to scare. [2] To blow up into a flame, to kindle (a fire,)

S. भभूत *b,hub,hoot,* (S. विभूति) f. Ashes of cow-dung which *Fuqeers* rub over their bodies.

S. भय *b,hue,* m. Fear, terrour. भयखाना *b,hue khana,* To be afraid, to be frightened.

S. भयंकर *b,huyunkur,* adj. Horrible, terrifick. (भय, and part. act. of the root कृ make, do.)

S. भयचक *b,huechuk,* adj. Alarmed, aghast, starting. (S. भय fear, and चकित astonished.) भयचकरहना *b,huechuk ruhna,* To be amazed or astonished at a sudden or unexpected event.

S. भयमान b,hueman, (from भय fear) adj. Frightened, alarmed, terrified, afraid.

S. भया b,huya, (S. root भू be) past tense or part. of the verb subs. Was, became, become.

S. भयातुर b,huyatoor, adj. Distressed or distracted with fear, terrified. (Comp. of भय, and आतुर agitated, distressed.)

S. भयानक b,huyanuk, } adj. Frightful, terrible.
S. भयावना b,huyawna, }

S. भयौ b,huyuo, for भया q. v.

S. भरत b,hurut, m. [1] The name of the son of Dushurut'hu and Kuekeyee, and brother of Ramu. [2] (K.) A mixed metal composed of copper and lead. भरतखंड b,hurut-k,hund, m. One of the nine divisions of the world, between *Lunka* and *Soomeroo*; *India.*

S. भरम b,hurum, (S. संभ्रम) m. [1] Credit, character, reputation. [2] (S. भ्रम) Error, mistake. भरमगंवाना b,hurum gunwana, v. n. To loose character.

S. भरमाना b,hurmana, v. a. [1] To deceive. [2] To excite by throwing out temptation. [3] To perplex, to alarm. (From S. भ्रम).

S. भरोसा b,hurosa, } m. Hope, confidence, dependence, faith. (S. भद्राशा; comp. of भद्र good, and आशा desire, hope.)
S. भरोसौ b,hurosuo, }

K. भलका b,hulka, m. A gold patch fixed on the nose-ring.

S. भव b,huvu, m. [1] Existence, the world. [2] A name of Shivu. भवसागर b,huvu-sagur, The ocean of the world or of existence.

S. भविष्य b,huvishyu, adj. Future, what will be, the future time.

S. भस्म b,husmu, f. Ashes.

K. भहराना b,huhrana, v. n. To shiver, to tremble, to totter, to stagger.

S. भांग b,hang, (S. भंगा) f. Hemp (*Canabis sativa*), of which an intoxicating potion is made.

S. भांजा b,hanja, (S. भागिनेय) m. A sister's son.

S. भांजी b,hanjee, f. [1] (S. भागिनेयी) A sister's daughter. [2] (S. भंजनी) Interruption, hinderance. भांजीदेना or मारना b,hanjee dena or marna, v. a. To interrupt, to put a stop to, to break in upon.

S. भांड b,hand, m. [1] An earthen pot. [2] (S. भंड) A mimick, an actor.

S. भांडीर b,handeer, m. The *Indian* fig tree.

K. भांति b,hanti, f. Manner, mode, method, kind, sort. भांतिभांति b,hanti b,hanti, adj. Various.

S. भांवर b,hanwur, S. भांवरी b,hanwree, f. Revolution, circulation. भांवड्पाड्ना or फिरना b,hanwur-parna or p,hirna, v. n. [1] To circle, to circumambulate. [2] To be sacrificed. (S. root भ्रम to go round.)

S. भाखना b,hak,hna, v. a. To speak, to call. (From S. भाषणं).

S. भाग b,hag, m. [1] A part, a share, a portion. [2] (S. भाग्य) Destiny, fate, fortune. भागजागना b,hag jagna, v. n. To be fortunate or prosperous.

S. भागी b,hagee, [1] m. A partner, sharer, participator. [2] adj. Fortunate.

S. भागीरथ b,hageerut'h, (for भगीरथ) m. The name of a king, whose austerities brought the river *Ganges* from heaven.

S. भागीरथी b,hageeruthee, f. The *Ganges*. (From भगीरथ a pious monarch, at whose intercession the *Ganges* first descended from heaven.)

S. भाजन b,hajun, m. A plate, a dish, &c.

S. भाजना b,hajna, [1] v. a. To fry. (From S. भजनं) [2] (K.) v. n. To flee, to run away.

S. भाजी b,hajee, f. [1] Greens. [2] A portion or share of food. (S. भाजित; root भाज divide.)

K. भाट b,hat, m. The name of a tribe, a bard: see बंदी and मागध.

K. भाना b,hana, v. n. To be approved of, to suit, to fit.

S. भानु b,hanoo, m. The sun.

S. भान्ना b,hanna, v. a. [1] To put into circular motion, to twist, to turn on a lathe, to wave, to brandish. [2] To break, to destroy. (From S. भंजनं).

S. भाफ b,hap,h, (S. वाष्प) f. Steam, vapour.

S. भाभी b,hab,hee, (S. भ्रातृवधू) f. A brother's wife.

S. भाव b,hav, or b,hao, m. [1] Sentiment, passion, choice, liking, will, disposition, notion, idea. [2] Blandishment. [3] Gesticulation, acting, pantomime, expressing a meaning by signs. [4] A sudden idea or emotion of the mind. [5] Living, being. [6]Existence, thing. भावबताना b,hao-butana, v. a. To gesticulate.

S. भावई b,hawu,ee, (S. भावी) adj. About to be, future, predestined.

S. भावना b,havuna, f. Consideration, anxiety, apprehension, contemplation, thought, doubt, concern.

S. भाविन b,havit, adj. Thoughtful, anxious, apprehensive, alarmed.

S. भाषा b,hasha, or b,hak,ha, f. Speech, dialect, language.

S. भिखारी b,hik,haree, m. A beggar. (S. भिक्षाहारी; comp. of भिक्षा begging, alms, and आहारी from root हृ to take.)

K. भिड़ना b,hirna, v. n. To close (as two armies), to come together, to be joined, to shoulder, to join, to be placed together touching each other, to be continuous.

S. भिन्न b,hinn, adj. Separate, different, other, apart. भिन्नभिन्न b,hinn b,hinn, adv. Various, one by one, severally.

S. भींत b,heent, (S. भित्ति) f. A wall.

S. भीम b,heem, [1] n. prop. The second brother of Yoodhishtiru. [2] adj. Dreadful, terrible, terrifick.

S. भुगतना b,hoogutna, v. a. To enjoy, to suffer; to receive the reward of virtue or the punishment of a crime. (From S. भोग).

S. भुज b,hooj, } f. The arm (above the el-
S. भुजा b,hooja, } bow. भुजबंध b,hooj-bund,h, m. An ornament worn on the arm, an armlet. भुजमूल b,hooj-mool, The upper part of the arm near the shoulder. भुज भरना b,hooj-b,hurna, To embrace.

K. भुट्टा b,hootta, m. *Indian* corn. (*Zea mays.*)

S. भुव b,hoov, (S. भुवस्) m. Heaven, ether, sky or atmosphere.

S. भुवंग b,hoowung, (S. भुजंग) m. A snake, a serpent.

S. भुवन b,hoowun, m. A world.

S. भू b,hoo, f. The earth.

S. भूं b,hoon, (S. भूमि) f. Ground, land, earth.

S. भूंसना b,hoonsna, v. n. To bark. (From S. root भष bark.)

S. भूत b,hoot, m. [1] A demon, a goblin. [2] The past, preterite tense. [3] An element, of which the *Hindoos* reckon five. See पंचतत्त्व.

S. भूतल b,hootul, m. The earth. (भू the earth, and तल essential nature, especially in composition: the earth *itself*, the *very* earth.)

S. भूप b,hoop, m. A king, a sovereign. (भू the earth, and प who protects.)

S. भूमि b,hoomi, f. Land, earth, the earth.

K. भूरा b,hoora, adj. Fair, auburne or brownish (as hair.)

K. भूलाबिसरा b,hoola bisra, } adj. Missing
K. भूलाभटका b,hoola b,hutka, }

the road; generally a person, who calls on another in consequence of some accident, &c. not intentionally to pay a visit.

S. भूषन b,hook,hun, (S. भूषण) m. An ornament, a jewel, dress, ornament, embellishment, decoration.

S. भृंगी b,hringee, (for भृंग) m. ¹ A kind of wasp, (*Vespa solitaria.*) ² A large black bee, a humble bee.

S. भृकुटी b,hrikootee, f. ¹ The eyebrow. ² A frown, a contraction of the brows.

K. भेट b,het, f. ¹ Meeting, interview. ² A present (to a superiour).

K. भेटना b,hetna, v. a. ¹ To meet, to join. ² To make a present (to a superiour.)

S. भेड़िया b,heriya, m. A wolf. (S. भेड़हा; भेड़ a sheep, and हा destroyer.)

S. भेद b,hed, m. ¹ A secret, secrecy, mystery. ² Separation, difference.

S. भेर b,her, (S. भेरी) f. A kind of pipe, a musical instrument, a kettle drum.

S. भेव b,hew, (perhaps for भाव) m. A state or condition of being, innate property, nature, disposition.

S. भेष b,hekh, or b,hesh, m. Disguise, assumed likeness, counterfeit dress, semblance. भेषधारी b,hekh-d,haree, adj. Putting on the dress, assuming the appearance.

S. भैचक b,huechuk, adj. See भयचक.

K. भोंपू b,honpoo, m. A horn, wind instrument.

S. भोग b,hog, m. ¹ Enjoyment, suffering. ² Pleasure, satisfaction. ³ Possession. ⁴ Eating, victuals. भोगकरना b,hog kurna, To enjoy, to suffer.

S. भोजन b,hojun, m. Eating, food, victuals.

K. भोर b,hor, f. Dawn of day.

K. भोरा b,hora } adj. Simple, artless, undesigning, innocent.
K. भोला b,hola, }

S. भोलानाथ b,hola-nath, m. A name of Muhadevu.

S. भौं b,huon, f. ¹ (S. भ्रू) The eyebrow. भौंटेढ़ीकरनी b,huon terhee kurnee, v. a. To scowl, to frown, to browbeat, to look angrily raising the eyebrows. भौंवें तान्नी b,huonwen tannee, To knit the eyebrows. ² (S. भूमि) Ground, land, earth.

S. भौंकना b,huonkna, v. n. ¹ To bark. ² *Met.* To talk foolishly. (From S. भषण).

S. भौजाई b,huoja,ee, (S. भ्रातृजाया) f. Brother's wife.

S. भ्रम b,hrum, m. ¹ Suspicion, apprehension, perplexity, doubt. ² Error, mistake.

S. भ्रमर *b,hrumur,* m. A large black bee.

S. भ्रष्ट *b,hrusḥt,* adj. Fallen, debased, polluted, abominable, vicious, dissolute. भ्रष्टकरना *b,hrusḥt kurna,* v. a. To pollute, to seduce. भ्रष्टहोना *b,hrusḥt hona,* v. n. To be polluted, to be debased. (Root भ्रष to fall down.)

म

S. मकर *mukur,* m. Name of the tenth zodiacal sign, the sign *Capricorn* (represented by a water animal, with the body and tail of fish, and the fore legs, neck and head of an antelope), a shark or alligator. मकराकृत *mukur-akrit,* Shaped like that animal.

S. मंगल *mungul,* m. [1] Welfare, happiness. [2] The planet Mars, or its deified personification. [3] Tuesday.

S. मंगलाचार *mungulachar,* m. Festivity, rejoicing, congratulation, a song of congratulation, a marriage song or epithalamium. (Comp. of मंगल joy, pleasure, and आचार conduct.)

S. मंगलामुखी *mungulamook,hee,* (S. मंगलमुखी) f. A musician or singer.

S. मंगली *mungulee,* adj. Triumphant, rejoicing. मंगलीलोग *mungulee log,* People employed on rejoicings.

S. मंगसिर *mungsir,* (S. मार्गशीर्ष) m. A month so called, the first of the *Hindoo* year, according to some systems. (Part of Nov. and part of Dec.)

S. मंच *munch,* m. A platform, a scaffold; a sort of throne or chair of state, or the platform on which it is raised, the dais; a bed, a bedstead.

S. मंजन *munjun,* m. [1] Tooth-powder, dentifrice. [2] (S. मार्ज्जन) Cleaning the person, by wiping, bathing, or rubbing it with oil, or fragrant unguents.

S. मंडल *mundul,* m. A circle, orb, sphere, disk of the sun or moon, circumference.

S. मंडलाकार *mundulakar,* adj. Round, circular. (Comp. of मंडल, and आकार form.)

S. मंडलाना *mundlana,* (from मंडल) v. n. To make a circuit, to hover (as birds, &c.) to be enveloped.

S. मंडली *mundulee,* f. An assembly.

S. मंडित *mundit,* part. Ornamented, overlaid, covered.

S. मंत्र *muntru,* m. [1] A charm, an incantation, philter, spell. [2] Secret consultation, private advice. मंत्रजंत्र *muntru-juntru,* (S. मंत्रयंत्र) Incantation.

S. मंत्री *muntree*, m. A minister, adviser, counsellor.

S. मंद *mund*, adj. [1]Abated, slow, tedious, foolish, dull. [2] Bad, ill. मंदगति *mund-guti*, [1] Slow pace; slowly, softly. [2] Saturday. [2] The planet SATURN. मंदमंद *mund-mund*, adv. Gently, softly.

S. मंदिर *mundir*, m. A house, dwelling, a temple.

S. मग *mug*, (S. मार्ग) m. A road. मगदेखना *mug dekhna*, To expect, to wait for.

S. मगन *mugun*, (S. मग्न) adj. Immersed; delighted, pleased, glad, happy, cheerful.

S. मगर *mugur*, (S. मकर) m. An alligator.

S. मगसिर *mugusir*, See मंगसिर.

K. मचना *muchna*, v. n. To be made, to be committed, to be perpetrated, to be produced.

K. मचलना *muchulna*, v. n. To be perverse, refractory, disobedient, cross, obstinate.

S. मचान *muchan*, (S. मंच q. v.)

K. मचाना *muchana*, (caus. of मचना) v. a. To make, to stir, to excite, to commit, to perpetrate, to produce.

S. मछ *muchh*, (S. मत्स्य) m. [1]A fish in general. [2] The name of the first *Uvutar*, or incarnation of VISHNOO in the shape of the small fish *Shuphuree* (शफरी).

S. मझार *mujhar*, (from मध्य) m. The middle, center, in the middle, in.

K. मटक *mutuk*, } (from मटकना) f. Coquetry, ogling.
K. मटकन *mutkun*, }

K. मटकना *mutukna*, v. n. To wink, to ogle, to coquet.

K. मटकाना *mutkana*, (caus. of मटकना) v. a. To wink, to ogle, to coquet.

S. मठ्ठी *muthree*, (perhaps, from मिष्ठ sweet) f. A sort of sweetmeat.

K. मडोडना *murorna*, v. a. To twist, to writhe, to contort, to distort, to gripe, to yearn.

K. मडोडा *murora*, (from मडोडना) m. A twisting of the bowels, pain in the bowels, flux, gripes.

S. मढना *murhna*, v. a. To cover (as, a book with leather or a drum with parchment), to gild. (From S. मंड the head, or root मड adorn.)

S. मढा *mudha*, (S. मंडप) [1]m. A temporary building, an open shed or hall, adorned with flowers and erected on festive occasions, as at marriages, &c. [2] (from मढना) adj. Lined, covered or topped (as, a drum with parchment.)

S. मढैया mud,hueya, (S. मंडपिका) f. A cottage, a hut.

S. मतंग mutung, m. An elephant.

S. मत mut, [1](S. मति) f. Manner, method, way, mode, system. [2] Wisdom, understanding, intellect. [3] (S. मा do not) prohib. and neg. part. Not, do not. मति हीन muti-heen, Void of understanding.

S. मता muta, } (S. मत) m. Counsel, advice.
S. मतौ mutuo, }

S. मति muti, f. Understanding, intellect.

S. मत्त mutt, adj. Intoxicated, drunk.

S. मत्तवत् mutt-vut, adj. Drunken, like one intoxicated. (मत्त, and वत् affix of resemblance.)

S. मथना mut,hna, [1] v. a. To churn. [2] m. A churn-staff. (From S. मंथनं).

S. मथनिया mut,huniya, (S. मंथनी) f. A churn.

S. मथनी mut,hnee, (S. मंथान) f. A churn-staff.

S. मथुरा mut,hoora, f. A town in the province of *Agra*, celebrated as the birth place, and early residence of Krishnu, and still an object of pilgrimage amongst *Hindoos*.

S. मथुरिया mut,hooriya, (S. माथुरीय) m. Name of a cast of *Brahmuns* of *Mut'hoora*.

S. मद mud, m. [1] Spirituous or vinous liquor, spirits, wine. [2] Pride, arrogance.

S. मदन mudun, m. A name of Kamudevu, the *Hindoo* Cupid.

S. मदिरा mudira, m. Spirituous liquor.

S. मधु mud,hoo, m. [1] Ardent spirit. [2] The nectar or honey of flowers. [3] Honey. [4] The season of spring. [5] The month of *Chuetru*, (March-April.) [6] Name of a demon, slain by Krishnu.

S. मधुकर mud,hoo-kur, m. A large black bee. (मधु honey, and कर who makes.)

S. मधुपुरी mud,hoo-pooree, } f. Names of
S. मधुबन mud,hoo bun, } *Mut'hoora*. (मधु the demon so called, पुरी a city, and बन a forest or grove.)

S. मधुमाखी mud,hoo-mak,hee, (S. मधुमक्षिका) f. A honey bee.

S. मधुमास mud,hoo-mas, m. The month of *Chuetru*, (March-April.)

S. मधुसूदन mud,hoo-soodun, m. A name of Krishnu, who slew a demon named Mud,hoo. (मधु the demon so named, and सूदन destroyer.)

S. मध्य mud,hyu, adv. Amidst, amid, the center, middle.

S. मन mun, (S. मनः) m. Mind, heart,

soul, spirit, inclination. मनभाना mun-b,hana, v. n. To be agreeable to the mind, adj. Grateful to the mind. मनभावन mun-b,hawun, or मनभावना mun-b,hawuna, adj. Acceptable, agreeable, pleasant. मनमाना mun-mana, or मनमानता mun-manta, adj. Agreeable, pleasing, as could be wished, to one's heart's wish. मनमारना mun marna, To resist one's own inclination, to be grieved or troubled in mind. मनमाररहना mun-mar ruhna, To suffer grief with patience. मनलाना mun lana, To fix the mind upon, to be attentive, to apply to.

K. मनघटा mung,huta, m. The raised masonry round the mouth of a well.

S. मनमथ mun-muth, m. A name of KAMUDEVU. (मन the mind, and मथ who agitates.)

S. मनहारी mun-haree, adj. m. Heart-stealer. (S. मनोहारी, from मनस् the mind, and root हृ steal.)

S. मनऊ munuhoo, (मन्य) adv. Suppose, as if, like.

S. मनाना munana, (caus. of मान्ना) v. a. To conciliate, to soothe, to propitiate, to coax, to assuage, to persuade, to cause to agree (to any thing). (From S. माननं).

S. मनि muni, (S. मणि) m. A gem, a jewel, a precious stone.

S. मनुष munook,h, or munoosh, (S. मनुष्य) m. A man individually or collectively, a man, mankind.

S. मनुहार munoohar, (S. मनोहारि) f. Charming, delighting, fascinating, captivating the mind.

S. मनोरथ munoruth, m. Desire, wish, design, intention.

S. मनोहर munohur, adj. Heart-ravishing, beautiful, pleasing.

S. मम mumu, pron. infl. My, mine.

S. ममता mumuta, f. The interest or affection entertained for other objects from considering them as belonging to or connected with one's self, affection.

S. मय mue, or muyu, (in comp.) Composed of, chiefly consisting or made of.

S. मरघट murg,hut, (S. मरघट्ट) m. The place where *Hindoos* burn their dead.

S. मरदनियां murduniyan, (S. मार्द्दनीया:) m. plur. Attendants whose business it is to rub oil, perfumed paste, &c. over the body.

S. मरन murun, (S. मरण) m. Death.

S. मरम murum, (S. मर्म्म) m. Secret meaning or purpose, a secret, any thing hidden or recondite.

K. मरोर muror, verbal n. f. (from मरोड़ना) Twist, flexion, turn, writhe, convolution.

S. मलागिर mula-gir, (S. मलयगिरि) m. A mountain or mountainous range, from which the best sandal wood is brought, answering to the western *G,hats* in the peninsula of *India*.

S. मलार mular, (S. मल्लारी) f. Name of a *Raginee* or musical mode sung during the rains.

S. मलिन mulin, } adj. [1]Foul, filthy, dirty.
S. मलीन muleen, } [2] Sad, vexed, indisposed, disturbed, troubled.

S. मलेछ mulech,h, (S. म्लेछ q. v.)

S. मल्ल mull, m. A wrestler, a boxer. मल्ल युद्ध mullu-yooddhu, Wrestling.

K. मष्ट musht, f. Silence. मष्टमारना musht marna, To remain silent.

S. मस्तक mustuk, m. [1] The head. [2] The forehead.

S. मसान musan, (S. श्मशान) m. A place where a dead body is burnt or buried, a cemetery.

K. महकना muhukna, v. n. To exhale agreeable smells, to emit odour, to perfume.

S. महत muhut, adj. Great, glorious. f. Greatness, grandeur, dignity.

S. महतारी muhtaree, (S. महत्तरा) f. A mother.

S. महना muhna, v. a. To churn. (From S. मंथनं).

S. महर muhur, [1] (S. महत्तर) m. A chief. [2] (S. महिला) f. A wife, a woman, a female.

S. महरि muhuri, (S. महिला) f. A woman.

S. महा muha, adj. Great, illustrious, very, extremely.

S. महाकाल muhakal, m. A name or rather a form of Shivu, in his character of the destroying deity, being then represented of a black colour, and of aspect more or less terrifick. (महा great, excessively, काल black, or time; Shivu or Muhakalu may be considered as a personification of time that destroys all things.)

S. महादेव muhadevu, m. A name of Shivu.

S. महाप्रलय muha-pruluyu, m. [1] A destruction of the world, occurring after every period of 4,320,000,000 years.

² A total destruction of the universe, happening after a period commensurate with the life of BRUHMA or 100 years, each day of which is equal to the period first stated, and each night of which is of similar duration; at the expiration of this term, the seven *Lokus* or divisions of the universe, with the saints, gods, and BRUHMA himself are annihilated. (महा great, and प्रलय destruction.)

S. महाभारत *muha-b,harut*, m. ¹ A grand epic poem by VYASUDEVU, containing an account of the dissentions and wars of the *Kooroos* and *Pandoos*, two great collateral branches of the house of *B'harut*, so called from B'HURUT its founder. ² The great war of the descendants of B'HURUT.

S. महावर *muhawur*, m. Lac, the red animal die so called extracted from lac insects.

S. महाशय *muhashue* or *muhashuyu*, adj. Magnanimous, liberal, munificent. (Comp. of महा great, and आशय mind.)

S. महिमा *mukima*, f. Greatness in general, literal or figurative.

S. मही *muhee*, f. ¹ The earth. महीपाल *muhee-pal*, m. Protector of the earth, a king. ² (S. मथित) Buttermilk.

S. महुआ *muhoo,a*, (S. मधूक) m. Name of a tree bearing flowers which are sweet, and from which a spirituous liquor is distilled. (*Bassia latifolia.*)

S. महेश *muhesh*, m. A name of SHIVU.

S. मह्यौ *muhyuo*, (S. मथित) m. Buttermilk.

K. मांग *mang*, f. ¹ A line on the top of the head where the hair is parted. ² A betrothed damsel. मांगनिकालना *mang nikalna*, To divide the hair in a straight line on the top of the head.

S. मांझ *manj,h*, (S. मध्य) m. The middle, in the middle, in. मांझधार *manj,h d,har*, f. The middle of the stream.

S. मांडना *mandna*, v. a. ¹ To rub, to tread or trample down. ² To knead. ³ To make, to stir, to excite, to commit, to perpetrate, to produce. (From S. मर्दन).

S. मांढा *mand,ha*, m. See मढा.

S. माईं *maeen*, (S. मामकी) f. An aunt, maternal uncle's wife.

S. माखन *mak,hun*, (S. मंथज) m. Butter.

S. मागध *magud,h*, m. A bard, a minstrel, whose duty it is, to recite the praises of sovereigns, their genealogy, and the deeds of their ancestors, in their

presence; and to attend on the march of an army, and animate the soldiers by martial songs: the minstrel forms a particular cast, said to spring from a *Vueshyu* father and *Kshutriyu* mother; in mythology, they are said to have been created at once by the will of SHIVU: under the name of *B̥hats*, they are still numerous in some parts of *India*, especially *Goojrat*, (see FORBES's Memoirs), where they are a privileged tribe. See भाट.

S. माघ *mag̥h*, m. The name of a month, (Jan.-Feb.) the moon of which is near मघा *mug̥ha*, or α *Leonis*. (*Regulus.*)

S. मातना *matna*, v. n. To be intoxicated. (From S. माद्नं, root मद् drunk or joyful.)

S. माता *mata*, ¹ f. Mother. ² (S. मत्त) adj. Drunk, intoxicated.

S. माथा *mat̥ha*, (S. मस्तक) m. The forehead. माथाठनकना *mat̥ha t̥hunukna*, (*lit.* Ringing or throbbing of the forehead) implies a presentiment of the conclusion, from certain marks, observed in the commencement of an affair: and, it is generally understood to indicate an unfortunate termination. माथेपरचढना *mat̥he pur chuṛhna*, v. a. To tyrannise, to oppress.

S. माथुर *mat̥hoor*, m. ¹ An inhabitant of *Muthoora*. ² Name of a cast of *Kayuths*; also, of *Brahmuns*.

S. माधव *mad̥huv*, } m. A name of KRISHNU
S. माधो *mad̥ho*, } or VISHNOO.

S. मान *man*, m. ¹ Character, dignity, honour, respect. ²Haughtiness, arrogance, pride. ³ Measure in general, whether of weight, length or capacity.

S. मानता *manta*, (S. मानित) f. Vow, promise.

S. मानहु *manuhoo*, (S. मन्य) adv. Suppose, grant, as if, like, resembling.

S. माया *maya*, f. ¹ Kindness, pity, sympathy, compassion, mercy, feeling, affection. ² A deception depending on the power of the deity, whereby mankind believe in the existence of external objects which are in fact nothing but idea; illusion, idealism. ³ Prosperity, riches, opulence. मायापात्र *maya-patru*, adj. Rich, opulent, wealthy.

S. मारग *marug*, (S. मार्ग) m. A road, a path or way.

K. मारू *maroo*, m. ¹ Name of a warlike

musical instrument, a kettledrum. [2] (S. मालव) Name of a *Rag* or musical mode.

S. मालती *malutee*, f. The name of two or three species of shrubs. *(Jasminum grandiflorum, Echites caryophyllata,* and *Gærtnera racemosa.)*

S. मावस *mawus*, (S. अमावस्या) f. The conjunction of the sun and moon, the change of the moon.

S. मास *mas*, m. [1] A month. [2] (S. मांस) Flesh.

S. मिटना *mitna*, v. n. To be effaced, to expire. (From S. मृष्ट wiped, root मृज cleanse.)

S. मित्र *mitru*, m. A friend.

S. मित्रता *mitruta*, f. Friendship.

K. मिर्गी *mirgee*, f. The epilepsy.

S. मिलना *milna*, v. n. To be mixed, to be confounded, to meet, to occur, to be got, to associate, to agree, to suit, to be united. मिलना जुलना *milna joolna*, To meet, to mix, to visit. मिले जुले रहना *mile joole ruhna*, To live together in harmony. (From S. मेलनं).

S. मिस *mis*, (S. मिष) m. Pretence, sham, stratagem.

S. मिह्दी *mihdee*, (S. मेनधी) f. The name of a plant, from the leaves of which a red dye is prepared with which the natives stain their hand and feet. *(Lawsonia inermis.)*

S. मीच *meech*, (S. मृत्यु) f. Death.

S. मीन *meen*, f. [1] A fish. [2] The sign *Pisces*. [3] The name of the first incarnation of VISHNOO.

S. मुट्ठी *moot'hee*, (S. मुष्टि) f. Fist, hand, handful.

S. मुंड *moond*, m. [1] The head. [2] A head man. मुंडमाला *moond-mala*, f. A necklace of human heads.

S. मुंडन *moondun*, m. Shaving; the first shaving of a child (a religious ceremony among the *Hindoos.*)

S. मुंडना *moondna*, v. n. To be shaved. (From S. मुंडनं).

S. मुंदना *moondna*, v. n. To be shut, closed. (From S. मुद्रणं).

S. मुंदरी *moondree*, (S. मुद्रा) A finger-ring.

S. मुंह् *moonh*, (S. मुख) m. Mouth, face, countenance, presence, orifice. अपनासा मुंह्लेआना *upna sa moonh le ana*, To return disappointed from any enterprise, to fail of success. मुंह्बाना *moonh bana*, To open the mouth, to gape. मुंह्लेकेरह् जाना *moonh leke ruh jana*, To be silent

from shame.

S. मुकुट mœkœt, m. A crown, a crest, a diadem.

S. मुक्त mœkt, [1] adj. Released, absolved. [2] (S. मुक्ता) m. A pearl.

S. मुक्ति mœkti, f. Release, pardon, absolution from sin, salvation, deliverance of the soul from the body and exemption from further transmigration.

S. मुख mœk,h, } m. The mouth, the
S. मुखडा mœk,hṛa, } face.

S. मुट्ठी mœtt,hee, (S. मुष्टि) f. Fist, hand, handful.

S. मुढ mœṛ,h, (S. मुंड) m. A head man, chief.

S. मुदित mœdit, part. Rejoiced, pleased, delighted.

S. मुद्रा mœdra, f. [1] A seal, a signet. [2] A seal ring. [3] The mark of a seal or similar impression, a stamp, a print, a coin, a medal, &c.

S. मुनि mœni, m. A holy man, a sage.

S. मुनीस mœnees, m. A saint, or chief of the saints or sages. (S. मुनीश; comp. of मुनि a sage, and ईश chief.)

S. मुरझाना mœrj,hana, v. n. To wither, to fade, to pine, to droop. (From S. मूर्छन, root मुर्छ faint.)

S. मुरारि mœrari, } m. A name of Krishnu,
S. मुरारी mœraree, } or Vishnœ. (Comp. of मुर a demon so named, and अरि an enemy.)

K. मुसकान mœskan, f. A smile, a grin.

K. मुसकाना mœskana, } v.n. To smile, to
K. मुसकुराना mœskœrana, } grin, to smirk.

S. मुसल mœsul, m. A wooden pestle. मुसल धार बरसना mœsul d,har burusna, v. n. To rain very heavily.

S. मुहूर्त mœhœrt, } m. A division of time,
S. मुहूर्त्त mœhoort, } equal to 12 *Kshunus* or 48 minutes.

K. मूंछ moonch,h, f. Whiskers.

S. मूंड moonḍ, (S. मुंड) m. The head. मूंड़फिकारना moonḍ p,hikarna, To bare or uncover the head.

S. मूंज mœnj, (S. मुंज) f. The name of a grass, of which ropes are made.

S. मूंदना moondna, v. a. To shut, to cover, to close, to imprison. (From S. मुद्रणं.)

S. मूदरी moodree, (S. मुद्रा) f. A finger-ring.

S. मूठ moot,h, (S. मुष्टि) f. Handle, hilt, fist, hand, handful. मूठ कीमूठ moot,h-kee-moot,h, Handful after handful, repeated handfuls.

S. मूड moor, (S. मुंड) m. The head.

S. मूढ moor̤h, adj. Foolish, stupid, ignorant, fool, simpleton.

S. मूर moor, m. See मूल

S. मूरख mooruk̤h, (S. मूर्ख) See मूढ.

S. मूरत moorut, } (S. मूर्त्ति q. v.)
S. मूरति mooruti, }

S. मूर्छा moorch̤ha, f. Fainting, loss of consciousness or sense, a swoon, stupefaction. मूर्छा आना या खाना moorch̤ha ana or k̤hana, To swoon.

S. मूर्छित moorch̤hit, adj. Fainted, in a swoon, insensible, entranced.

S. मूर्त्ति moorti, f. A statue, an image, an idol, a resemblance.

S. मूल mool, m. ¹ Origin, root, race, generation, principal or capital sum of money. ² Text (of a book, opposed to comment.) ³ The ninteenth lunar mansion (ν or υ *Scorpionis.*)

S. मूसल moosul, (S. मुसल q. v.)

S. मृग mrig, m. A deer. मृगनैनी mrig-nuenee, (S. मृगनयनी) adj. Deer-eyed, (an epithet of a mistress). मृगराज mrig-raj, m. The king of beasts, i. e. a lion. मृगछाला mrig-ch̤hala, The skin of any antelope used as a bed, seat, &c. by devotees.

S. मृगी mrigee, f. A doe, a female deer.

S. मृतक mrituk, m. A dead body, a corpse.

S. मृत्यु mrityu, } f. Death.
S. मृत्यु mrityoo, }

S. मृदंग mridung, f. A kind of drum.

S. मेंढा mend̤ha, (S. मेढ्र) m. A ram.

S. मेघ meg̤h, m. A cloud. मेघपति meg̤h-puti, m. ¹ Lord of the clouds. ² A name of Indru. मेघवरन meg̤h-burun, adj. Of the colour of the clouds.

K. मेटना metna, (caus. of मिटना q. v.) v. a. ¹ To efface, to blot out, to wipe out, to annihilate. ² To thwart.

K. मेलना melna, v. a. To thrust in, to stuff in, to cram, to penetrate, to force in.

S. मो mo, (S. मे) pron. Me.

S. मोकौं mo-kuon, pron. To me, me.

S. मोक्ष moch̤h, or moksh, m. Release, liberation, deliverance, absolution, salvation, beatitude, final and eternal happiness, the liberation of the soul from the body and its exemption from further transmigration. See मुक्ति.

S मोखा mok̤ha, (from S. मुख) m. A small hole for admitting light and air, an air-hole.

S. मोचना mochna, v. a. To let go, to set

free, to shed, to put of, to extinguish. m. Release, acquittal. (From S. मोचनं.)

S. मोर mor, (S. मयूर) m. A peacock. मोर मुकुट mor-mookoot, A crown or crest like that of the peacock.

K. मोर mor, [1] m. Twist, turn. [2] (S. मम) pron. My, mine.

S. मोह् moh, m. [1] Fainting, senselessness. [2] Pity, compassion, sympathy, kindness, affection, allurement, fascination, love. मोह्मेंआना moh men ana, To faint, as at the sudden appearance of a friend or mistress. मोह्लेना moh lena, To attach, to allure.

S. मोह्न mohun, m. A sweetheart; a name of KRISHNU. adj. Fascinating, charming, depriving of sense, captivating. मोह्न भोग mohun-b,hog, A kind of sweetmeat. मोह्नमाला mohun mala, f. Name of an ornament, a string or necklace composed of gold beads and coral.

S. मोह्ना mohna, v. a. To fascinate, to enchant, to allure, to charm, to delude. adj. Fascinating, captivating, charming, winning. (From S. मोह्नं).

S. मोह्नी mohunee, f. [1] An enchantress. [2] Fascination, a charm, philter. adj. f. Fascinating, depriving of the powers of reflection.

S. मोहि् mo-hi, pron. To me, me.

S. मोहि्त mohit, adj. Faint, senseless, charmed, fascinated.

S. मोही् mo-hee, pron. Me indeed, to me truly. (Comp. of मोहि्, and ई an intensive particle, or particle of identification.)

S. मैाड muor, (S. मैालि) m. A kind of high crowned hat, worn by the bridegroom at the time of marriage.

S. मैान muon, m. Silence, taciturnity. मैानगह्ना या साधना muon guhna or sad,hna, v. a. To remain silent, to practise taciturnity.

S. म्लेच्छ् mlechch,h, m. An unclean race, those who make no distinction between clean and unclean food, a barbarian or one speaking any language but *Sunskrit* and not subject to the usual *Hindoo* institutions.

य yu

S. यंत्र yuntru, m. [1] A diagram of a mystical nature, or astrological character. [2] A machine in general, any instrument or apparatus. [3] A musical instrument.

S. यक्ष् yukshu, m. A demigod, attendant

especially on *Kooveru*, and employed in the care of his gardens and treasures.

S. यज्ञ *yugnyu*, or *jugyu*, m. A sacrifice, or religious ceremony in which oblations are presented.

S. यज्ञोपवीत *yugnyopuveet*, m. [1] The sacrificial thread or cord, worn by the three first classes of *Hindoos* over the left shoulder and under the right. (Comp. of यज्ञ a sacrifice, and उपवीत the sacred thread.)

S. यथाजोग *yut,ha jog*, } adv. As is pro-
S. यथायोग्य *yut,ha yogyu*, } per, properly, sufficiently.

S. यदु *yudoo*, n. prop. The name of a king, the ancestor of Krishnu. यदुनाथ *yudoo-nat,h*, or यदुराइ *yudoo-rai*, or यदुराय *yudoo-rae*, are severally, names of Krishnu.

S. यदुबंस *yudoo-buns*, or *judoo-buns*, (S. यदुवंश) m. The tribe of Yudoo.

S. यदुबंसी *yudoo-bunsee*, (S. यदुवंशीय) m. A descendant of Yudoo.

S. यद्यपि *yudyupi*, conj. Though, although.

S. यम *yum* or *jum*, m. The name of the regent of the dead, or death personified.

S. यमन *yumun*, (S. यवन) m. A *Yuvun*: this name formerly meant an *Ionian* or a *Greek*, but now is applied to both the *Moohummudan* and *European* invaders of *India*, and is often used as a general term for any foreign or barbarous race.

S. यमल *yumul*, adj. Two, a pair, a brace, a couple.

S. यमुना *yumoona*, f. The *Yumoona* or *Jumoona* river: in mythology, the personified river is considered as the daughter of Sooryu or the sun, and sister of Yumu.

S. यश *yush*, or *jush*, (S. यशः) m. Fame, reputation, renown, glory.

S. यशस्वी *yushuswee*, adj. Famed, renowned, celebrated.

S. या *ya*, (S. अस्य) pron. This.

S. याचक *yachuck*, m. A petitioner, a beggar, one who asks or solicits.

S. याचना *yachna*, v. a. To want, to need, to require, to implore, to solicit; to ask, to beg. (From S. याचनं):

S. यातना *yatuna*, f. Pain, agony, sharp or acute pain.

S. यात्रा *yatra*, or *jatra*, f. [1] Pilgrimage. [2] Departure, march, journey. [3] Festival, procession.

S. यादव *yaduv*, or *jadub*, m. [1] A *Yaduvu* or descendant of Yudoo. [2] Krishnu, as descended from the family of Yudoo.

S. यादवपति *yaduv-puti*, m. Lord of the *Yaduvus*, a title of Krishnu.

S. यामनीभाषा *yamnee bhasha*, (S. यावनी भाषा) f. The language of the *Juvuns*. See यमन.

S. यामिनी *yaminee*, or *jaminee*, f. Night.

S. युक्त *yookt*, adj. Right, fit, proper.

S. युक्ति *yookti*, f. Skill, dexterity, contrivance, wit, art.

S. युग *yoog*, or *joog*, m. [1] An age, as, the *Sutyu*, *Treta*, *Dwapur*, and *Kuli*. [2] A pair.

S. युगल *yoogul*, or *joogul*, adj. A pair, a brace, a couple.

S. युत *yoot*, or *joot*, (in comp.) Connected with, united with, joined to, in contact with, as, धर्म्मयुत *dhurmu-yoot*, adj. Virtuous. श्रीयुत *shree-yoot*, adj. Prosperous. संकोचयुत *sunkoch-yoot*, adj. Bashful, abashed.

S. युद्ध *yooddh* or *joodh*, m. Battle, war, fight.

S. युवती *yoovutee*, f. A young woman, one from sixteen to thirty years of age.

S. युवा *yoova*, [1] m. A young man or one of the virile age, or from sixteen to seventy. [2] adj. Young, juvenile.

S. यूथ *yooth*, or *jooth*, m. A herd, a flock.

S. योगिनी *yoginee*, f. A female fiend or sprite attendant on, and created by Doorga; in some places, eight Yoginees are enumerated by name.

S. योगेश्वर *yogeshwur*, or *jogeshwur*, m. The god of devotion. (Comp. of योग religious observance, and ईश्वर chief, lord.)

S. योतिष *yotikh*, or *jotish*, (S. ज्योतिष) m. Astronomical, or astrological science, astronomy, astrology.

S. योतिषी *yotishee*, (S. ज्योतिषिक) m. An astronomer, an astrologer.

S. योद्धा *yoddha*, m. A warriour, a combatant.

S. यौतिक *yuotik*, See यौतुक.

S. यौतुक *yuotook*, or *juotook*, m. Dower, nuptial present.

र *ru*

S. P. रंग *rung*, m. [1] Colour. [2] Manner, method, hue, paint. [3] Amusement, merriment, pleasure. रंगभूमि *rung-bhoomi*, f. A place of amusement, theatre, palæstra. रंगमहल *rung-muhul*, m. An

apartment dedicated to voluptuous enjoyment. रंगरतना rung ratna, To be affected or imbued (with love), to become attached to any one.

K. रंहट runhut, m. A wheel for drawing water with.

K. रई ruee, f. [1] A churning staff. [2] Bran.

S. रकत rukut, } [1] adj. Red. [2] m. Blood.
S. रक्त rukt, }

S. रक्षक ruchchhuk, or rukshuk, m. A protector, a keeper, a guard, a watchman.

S. रक्षा ruchchha, or ruksha, f. Protection, preservation, defence, safety.

S. रचना ruchna, [1] v. n. To be set to work. [2] To be employed, to be about (a business.) [3] To stain, to colour. [4] To love, to like. [5] To keep time in musick. [6] To penetrate. [7] To predestinate. [8] v. a. To prepare, to make, to form, to invent, to compose, to perform. [9] (S.) f. Forming, composing, creating, making, invention. [10] Created thing, work, workmanship. (From S. रचनं, root रच to make, or do.)

S. रज ruj, (S. रजः) [1] f. Dust; the farina of flowers. [2] Menses. [3] m. The second of the qualities incident to the state of humanity, the *Rujo goon* or property of passion, whence proceed covetousness, anger, &c.

S. रजक rujuk, m. A washerman.

S. रतन rutun, (S. रत्न q. v.)

S. रति ruti, f. [1] Love. [2] Venery, coition. [3] The name of the wife of KAMUDEVU.

S. रती rutee, (S. रक्तिका) f. [1] A weight equal to eight barley corns. [2] Fortune. रतीचमकनी rutee chumuknee, To begin to prosper, to flourish. रतीवंत rutee-wunt, adj. Flourishing, prosperous, fortunate.

S. रत्न rutnu, m. A gem in general, a jewel, a precious stone. रत्नमाला rutnu-mala, f. A necklace of precious stones. रत्नसिंहासन rutnu-singhasun, m. A throne adorned with precious stones.

S. रथ ruth, m. A chariot, a car. रथवान ruth-wan, m. A coachman, a charioteer.

S. रथी ruthee, m. An owner of a car, or a person riding in one.

S. रन run, (S. रण) m. War, battle, combat. रनभूमि run-bhoomi, f. A field of battle.

S. रनवास runwas, m. The seraglio of a *Raju*, female apartments, the *Zunanu*. (Comp. of रनी from S. राज्ञी a

queen, or from रंडा a woman, and वास abode.)

S. रमना *rumna*, v. a. To enjoy, to copulate. (From S. रमणं).

S. रमा *ruma*, f. A name of Lukshmee, the wife of Vishnoo, and goddess of prosperity.

S. रवन *ruwun*, (S. रमण) m. A husband, a lover, a gallant.

S. रवि *ruvi*, m. The sun.

S. रस *rus*, m. [1] Flavour, taste, of which are reckoned six kinds, viz. sweet, sour, salt, bitter, acrid, astringent. [2] Taste, sentiment, emotion, as an object of poetry or composition; eight sentiments are usually enumerated, viz. (1) शृंगार *shringar*, love; (2) हास्य *hasyu*, mirth; (3) करुणा *kurωna*, tenderness; (4) रौद्र *ruodru*, anger; (5) वीर *veeru*, heroism; (6) भयानक *b͵huyanuku*, terror; (7) वीभत्स *veeb͵hutsu*, disgust; (8) अद्भुत *udb͵hωtu*, surprise; शांत *shantu*, tranquillity or content; or वात्सल्य *vatsulyu*, paternal tenderness, is sometimes considered as the ninth. [3] Quicksilver, from its being a semi-fluid metal, and according to certain alchymical notions possessed of supernatural power over the juices of the body, &c.

S. रसातल *rusatul*, m. The infernal regions below the earth. (रसा the earth, and तल below, underneath.)

S. रसोई *ruso͵ee*, (S. रसवती) f. [1] Victuals. [2] Cook-room, kitchen.

S. रहित *ruhit*, adj. Destitute, void of.

S. रंभना *ramb͵hna*, v. a. To low, to bellow, to cry out. (From S. रंभनं; root रभ sound, make a noise.)

S. राई *ra͵ee*, [1] (S. राजिका) f. A kind of mustard seed (with small grains). [2] (from रै wealth) A *Hindoo* title, a prince, chief. राईकाई *ra͵ee-ka͵ee*, adj. Broken to small pieces or atoms.

S. राक्षस *rach͵hus*, or *rakshus*, m. A demon, an evil spirit. राक्षस व्याह *rachch͵hus* or *rakshus byah*, (S. राक्षसी विवाह) A form of marriage, the violent seizure and rape of a girl after the repulse or destruction of her relatives.

S. राक्षसी *rach͵husee*, or *rakshusee*, fem. of the preceding word.

S. राख *rak͵h*, (S. रक्षा) f. Ashes.

S. राचना *rachna*, v. n. To be affected or imbued (with love), to be strongly attached. (From S. रचनं).

S. राज *raj*, (S. राज्य) m. Government,

sovereignty, reign, kingdom. ग्जकन्या *raj-kunya*, f. A princess. ग्जगद्दी or पट्ट *raj-gadee*, or *putt*, f. King's cushion, throne. ग्जद्वार *raj-dwar*, m. The gate of a royal residence. ग्जधानी *raj-dhanee*, f. The metropolis, seat of empire. ग्जमंदिर *raj-mundir*, m. A palace, a royal residence. ग्जरोग *raj-rog*, m. [1] A mortal disease. [2] A consumption.

S. ग्जना *rajna*, v. n. To shine, to be adorned. (From ग्जनं, root ग्ज shine.)

S. ग्जनीति *raj neeti*, f. The art of government, the duties of a prince both in peace and war. (ग्ज्ञ a king, and नीति polity, civil and military policy.)

S. ग्जसू *rajsoo*, (S. ग्जसूय) m. A sacrifice performed only by an universal monarch, attended by his tributary princes; as in the case of YOODHISHTHIR and others.

S. ग्जाधिग्ज *rajadhiraj*, m. Supreme ruler of kings. (Comp. of ग्ज a king, and अधिग्ज a great king.)

S. ग्जेश्वर *rajeshwur*, m. A sovereign prince, a lord, a governor. (Comp. of ग्ज a king, and ईश्वर a chief or head.)

S. ग्तना *ratna*, (from ग्ता) [1] v. a. To die (with colour), to stain. [2] v. n. To be strongly attached or in love (*lit.* stained with the die of love.)

S. ग्ता *rata*, (S. ग्क्त) adj. [1] Red. [2] Died, coloured.

S. ग्म *ram*, n. prop. The seventh *Hindoo* incarnation. See the next. ग्मनामीकपड़े *ram namee kupre*, m. plur. Garments worn by the *Vueshnuvus*, or sectaries of VISHNU, imprinted all over with the name of RAMU.

S. ग्मावतार *ramavutar*, m. The seventh incarnation of the deity in the form of RAMU-CHUNDRU for the purpose of destroying the tyrant RAVUNU. (Comp. of ग्म, and अवतार descent, especially of a deity from heaven.)

S. ग्य *ra,e*, (from ग्ै wealth) m. A *Hindoo* title, a prince.

K. ग्र *rar*, } f. Wrangling, quarrel.
K. ग्रि *rari*, }

K. ग्री *raree*, adj. Quarrelsome, contentious.

K. ग्वचाव *rao-chao*, or *raw chaw*, m. [1] Gayety, amusement, dalliance, merriment, mirth. [2] Affection, endearment.

K. ग्वत *rawut*, m. A hero.

S. ग्वन *rawun*, (S. ग्वण) m. The sovereign of *Lunka* (Ceylon), who carried

away SEETA and was killed by RAMU-CHUNDRU.

K. रवरा rawra, } pron. Yours.
K. रवरो rawro, }

S. रास ras, [1] m. A festival amongst the cowherds, including songs and dances, especially the circular dance as performed by KRISHNU and the GOPEES or cowherdesses. [2] (S. राशि) f. A heap. [3] A sign of the zodiack. रासचक्र ras-chukru, m. The zodiack. रासधारी ras-d,haree, A dancing boy who imitates the ras of KRISHNU.

S. रिझाना rij,hana, v. a. [1] To please. [2] (met.) To plague, to tease, to perplex. (From S. रंजनं).

S. रिद्धि ridd,hi, (S. ऋद्धि) f. Increase, wealth, prosperity.

S. रिपु ripoo, m. An enemy.

S. रिस ris, (S. रोष) f. Anger, passion, vexation.

S. रिसाना risana, v. n. To be displeased, to be angry, to be vexed. (From S. root रुष to be angry.)

S. रीता reeta, (S. रिक्त) adj. Empty.

S. रीझना reej,hna, v. n. To be pleased, to be gratified. (From S. रंजनं).

S. रुक्म rookmu, (S. रुक्मी) m. The name of the brother-in-law of KRISHNU, and son of B'HEESHMUKU.

S. रुक्मिनी rookminee, (S. रुक्मिणी) f. The name of one of KRISHNU's wives, and sister of ROOKMU.

S. रुचि roochi, f. [1] Desire, wish, avidity, desire of or pleasure from eating. [2] Light, lustre.

S. रुदन roodun, (S. रोदन) m. Weeping, crying, a tear, tears.

S. रुद्र roodru, m. A name or form of SHIVU.

S. रुधिर rood,hir, m. Blood.

S. रूखा rook,ha, (S. रूक्ष or रूक्ष) adj. Dry, plain, rough, harsh, unkind, pure, simple, unseasoned. रूखासूखा rook,ha-soo-k,ha, adj. Plain, blunt, harsh (words, &c.)

S. रूप roop, m. Countenance, shape, appearance, face, picture, manner, mode, method. रूपनिधान roop-nid,han, adj. Receptacle or abode of beauty. रूपसागर roop-sagur, Ocean of beauty.

S. रूसना roosna, v. n. To be angry, to be displeased. (From S. रोषणं).

S. रेख rek,h, } f. Writing, line, mark, fate, destiny.
S. रेखा rek,ha, }

S. रेत ret, (S. रेतक्ष B'hav. Pruk.) f. [1] Sand. [2] Filings.

S. रेनु *renoo*, (S. रेणु) f. Dust.

S. रेवत *rewut*, m. Name of a *Raja* who was father-in-law of Buluramu.

S. रेवती *rewutee*, f. [1] The twenty seventh mansion of the moon, consisting of ζ *Piscium* and 31 other stars. [2] The name of Buluramu's wife.

K. रैंकना *ruenkna*, v. n. To bray (as, an ass.)

S. रैन *ruen*, (S. रजनी) f. Night.

K. रोंगटी *rongtee*, } f. Wrangling, trick,
K. रोंटगी *rontgee*, } subterfuge, cheat.

K. रोंटना *rontna*, v. a. To deny.

S. रोझ *rojh*, (S. ऋष्य or रिष्य) m. The painted or white-footed antelope. (*Antilope picta.*)

S. रोम *rom*, m. Down, small hair of the body.

K. रोली *rolee*, f. A mixture of rice, turmerick, and alum, with acid, used to paint the forehead.

S. रोहन *rohun*, (S. रोहण) m. The name of a *Raja*.

S. रोहनी *rohunee*, (S. रोहिणी) f. [1] The name of the fourth mansion of the moon, comprising *Aldebaran*, and four other stars in *Taurus*. [2] (In mythology) the wife of Chundru or the moon. [3] The daughter of Rohun, wife of Vusoodevu, and mother of Buluramu.

S. रौर *ruor*, (S. रव) m. Noise, clamour, outcry; fame.

ल *lu*

S. लकुट *lukoot*, (S. लगुड) m. A staff, a stick, a club.

S. लच्छन *luchhun*, or *lukshun*, (S. लक्षण) m. Sign, mark, symptom, feature.

S. लछमन *luchhmun*, or *lukshmun*, (S. लक्ष्मण) m. The name of the son of Dushurut'hu by Soomitra, and half brother of Ramuchundru.

S. लछमी *luchhmee*, or *lukshmee*, f. [1] Lukshmee, the wife of Vishnoo, and goddess of prosperity. [2] Prosperity, wealth. [3] Beauty, splendor.

S. लखना *lukhna*, v. a. [1] To see, to look at, to perceive, to behold. [2] To understand. (From S. लक्षणं).

S. लग *lug*, adv. To, as far as, near, till, until, up to, close to. (From S. root लग come in contact.)

S. लगन *lugun*, } f. [1] A moment, the rising
S. लग्न *lugnu*, } of a sign of the zodiack. [2] Friendship, love, affection, attachment. [3] Appointing the day of marri-

age, espousal.

S. लजाना *lujana*, v. n. To be ashamed or abashed, to blush. (From S. लज्जा).

S. लज्जा *lujja*, f. Bashfulness, modesty, shame.

S. लज्जामान् *lujja-man*, adj. Ashamed, abashed.

S. लज्जित *lujjit*, adj. Abashed, ashamed.

K. लट *luṭ*, f. Tangled hair.

K. लटक *luṭuk*, f. 1 Hanging, dangling. 2 An affected motion in blandishment and coquetry.

K. लटकन *luṭkun*, m. 1 Any thing hanging. 2 Drops (worn in the ear.)

K. लटकना *luṭukna*, v. n. To hang, to dangle.

K. लटपटा *luṭpuṭa*, adj. 1 Playful, wanton, frisky, humourous. 2 Irregularly folded (a turband.)

K. लटपटाना *luṭpuṭana*, v. n. To stagger, to trip.

K. लटूरियां *luṭooriyaṉ*, f. plur. Tangled short hair.

K. लड़खड़ाना *luṛk,huṛana*, } v. n. 1 To stagger, to trip. 2 To stutter, to stammer.
K. लड़खड़ना *luṛk,huṛana*, }

S. लता *luta*, f. A creeper, vine.

K. लथड़ना *luṭ,huṛna*, v. n. To be draggled.

K. लथेड़ना *luṭ,heṛna*, (caus. of लथड़ना) v. a. To draggle or besmear with dirt.

K. लदना *ludna*, v. n. To be loaded.

K. लदाना *ludana*, v. a. To load.

K. लपट *lupuṭ*, f. 1 Odour. 2 Warmth, glow.

K. लपटना *lupuṭna*, } v. n. To cling, to adhere together, to stick.
K. लपटाना *lupṭana*, }

K. लपेटना *lupeṭna*, v. a. To wrap up, to fold, to enclose, to pack, to roll, to spread.

K. ललकारना *lulkarna*, v. a. To call, to bawl after, to hallo after, to challenge, to set up the war whoop.

S. लसना *lusna*, v. n. 1 To become, to befit. 2 To shine. (From S. root लसे embrace, adhere; be skilful: shine.)

K. लहकना *luhukna*, v. n. 1 To be kindled or lighted, to rise up into a flame. 2 To glitter, to shine. 3 To wave (as, herbage before the wind.)

S. लहना *luhna*, 1 v. a. To find, to get, to experience. 2 v. n. To answer, to avail, to boot, to signify. 3 m. Outstanding debt. 4 Fate, destiny. (From S. लाभ).

S. लहर *luhur*, (S. लहरी) f. [1] A wave. [2] Whim, fancy, vision. [3] The effect of the poison of a snake. [4] Emotion.

K. लहलहा *luhluha*, adj. Blooming, flourishing.

K. लहलहाना *luhluhana*, v. n. To bloom, to be verdant, to flourish.

S. लाख *lakh*, (S. लक्ष) adj. A hundred thousand.

S. लाठ *lath*, (S. यष्टि) f. A pillar, an obelisk, a club or staff.

S. लाड *lar*, m. Lovingness, coaxing, caress, play, sport, the playfulness of a child. (From S. root लड to play.) लाड लडाना *lar-lurana*, To fondle (a child.)

S. लाडला *larla*, adj. Darling, dear.

K. लादी *ladee*, f. A small load (particularly, a washerman's.)

S. P. लाल *lal*, (from S. root लड to play.) [1] adj. Darling, dear; an infant boy, a son. [2] (P. لال) Red, inflamed. [3] A ruby.

S. लालसा *lalusa*, f. Ardent desire.

S. लिलाट *lilat*, } (S. ललाट) m. [1] The fore-
S. लिलार *lilar*, } head. [2] Fate, destiny, fortune.

S. लिवैया *liwueya*, (from लेना S. root ला get.) m. Taker.

S. लीक *leek*, (S. लेखा) f. The marks of a carriage wheel, path, track, trace, stain, ignominy, disgrace.

S. लीन *leen*, adj. Absorbed, immersed, united, embraced.

S. लीपना *leepna*, v. a. To plaster, to besmear. (From S. लेपनं).

K. लीर *leer*, f. A strip or slip of cloth.

S. लीला *leela*, f. Play, sport, pastime in general.

S. लुकना *lookna*, v. n. To lie hid, to be concealed. (From S. लुक concealment.)

S. लुटाना *lootana*, (caus. of लूटना) v. a. To squander, to cause to plunder or be plundered. (S. root लुट plunder.)

S. लुढना *loorhna*, v. n. To roll, to be spilt. (From S. लोठनं root लुठ to roll about.)

S. लुढाना *loorhana*, (causal of लुढना) v. a. To cause to roll, to spill.

S. लुहांगी *loohangee*, (from S. लोह iron.) f. A staff armed with iron.

S. लेखा *lekha*, m. Account, reckoning.

S. लोक *lok*, m. [1] People. [2] A world, region, country. त्रिलोक *tri-lok*, The three worlds, viz. [1] स्वर्गलोक *swurgu-lok*, Heaven. [2] मर्त्यलोक *murtyu-lok*, Earth. [3] पाताललोक *patalu lok*, Hell. लोकपाल *lok-pal*, m. Supporter or cherisher of a world or people; a king. [2] See दिग्पाल.

S. लोकालोक *lokalok*, m. A mountainous belt, surrounding the outermost of the seven seas and bounding the world. (लोक seeing, and अलोक not seeing; causing light and darkness, as interposed between the *Dweepus*, and the sun.)

S. लौंग *long*, (S. लवंग) f. A clove.

S. लोचन *lochun*, m. The eye.

S. लोटना *loṭna*, v. n. To wallow, to roll about. (From लुट or लुठ roll on the ground, tumble.) लोटना पोटना *loṭna poṭna*, v. n. To wallow, to roll or turn over.

S. K. लोटपोट *loṭ-poṭ*, adj. Wallowing, tumbling and tossing, restless.

K. लोथ *lot,h*, f. A corpse.

S. लोभ *lob,h*, m. [1] Avarice, covetousness. [2] Temptation.

S. लोभी *lob,hee*, adj. Covetous, avaricious.

S. लोम *lom*, m. The hair of the body.

S. लोल *lol*, adj. Shaking, tremulous.

S. लोह *loh*, m. Iron. लोहाबजाना *loha bujana*, To fight with swords. लोहलाठ *lohu-laṭ,h*, m. An iron mace or club.

K. लौं *luoṇ*, adv. Till, to, up to.

K. लौटना *luoṭna*, v. n. To turn back, to return.

K. ल्यारी *lyaree*, m. A wolf.

व *vu*

S. वंत *wunt*, (S. वंतः plur. of वान q. v.)

S. वत् *wut*, (particle in compos.) As, like.

K. वसीठ *vuseeṭ,h*, m. Agent, ambassadour.

S. वस्तु *vustœ*, f. Thing, matter, substance. वस्तुभाव *vustœ-b,hav*, f. Chattels, things, baggage.

S. वसुदेव *vusœdev*, m. The name of the father of Krishnu.

S. वांछित *vanch,hit*, adj. Wished, desired, longed for.

S. वान *van*, (particle in compos.) Possessing, endowed with, &c. as, धनवान् *d,hun-van*, Possessing wealth, rich.

K. वार *war*, m. A blow, a wound.

S. वार *var*, [1] m. A day. [2] f. Leisure. [3] Delay, waiting, patience. [4] Time. [5] (S. अवार) m. The near bank of a river, on this side.

S. वारापार *warapar*, (S. अवारपार) adv. On this side and that, on both sides; through and through. m. Bounds.

S. वासुदेव *vasœdev*, m. A name of Krishnu, the son of Vusœdevu.

S. विपरीत *vipureet*, adj. Reverse, contrary, opposite. f. Mischief, ruin.

S. विभो *vib,huo*, (S. विभव) m. Substance, thing, property, wealth.

S. विवेक *vivek*, m. Judgement, discrimination, discretion.

S. विश्व *vishwu*, m. The universe, the world.

S. विष्णु *vishnoo*, m. VISHNOO, the deity in the character of preserver.

S. वैष्णव *vueshnuv*, adj. Relating or belonging to VISHNOO. m. A sectary or follower of VISHNOO.

S. वैश्य *vueshyu*, m. A *Vueshyu*, or man of the third or agricultural and mercantile tribe.

S. व्यवहार *vyuvuhar*, m. Profession, calling, trade, negotiation, transaction, practice, custom.

S. व्यासदेव *vyasdev*, See व्यास

श *shu*

S. शंकर *shunkur*, m. A name of SHIVU.

S. शंख *shunk,h*, m. A conch, a shell.

S. शकुन *shukoon*, m. Any lucky or auspicious object or omen. *Pers.* شگون

S. शक्ति *shukti*, f. [1] Power, strength. [2] The energy or active power of a deity, personified as his wife, as, GOOREE of SHIVU, LUKSHMEE of VISHNOO, &c.

S. शत्रु *shutroo*, m. An enemy. शत्रुभाव *shutroo-b,hav*, Like an enemy, as bad as an enemy.

S. शब्द *shubd*, m. [1] Sound in general. [2] A sound, a word. [3] (In grammar) A declinable word, as a noun, pronoun, &c.

S. शरीर *shureer*, m. The body of any animated being.

S. शस्त्र *shustru*, m. A weapon in general.

S. शांत *shant*, adj. Calm, tranquil, pacified, appeased.

S. शाकल *shakul*, (S. शाकल्य) f. A mixture of sesamum seed, barley, *G,hee*, coarse sugar, fruits, &c. used in oblations to the gods.

S. शाकिनी *shakinee*, f. A female divinity of an inferior character, attendant especially on SHIVU and DOORGA.

S. शाल *shal*, m. [1] A common timber tree. (*Shorea robusta, Rox. Pl. Cor.*) [2] (S. शल्य) A thorn. [3] (S. शृगाल) A jackal.

S. शाला *shala*, f. House, place.

S. शास्त्र *shastru*, m. [1] An order or command. [2] Scripture, science, institutes of religion, law or letters, especially considered as of divine origin or authority.

S. शिखर *shik,hur*, m. The peak or summit of a mountain or hill.

S. शिव *shivu*, m. Shivu, the deity in the character of the destroyer.

S. शिवरात्रि *shivu-ratri*, m. A festival held on the 14th of the dark fortnight in the month of *Phalgoonu* (Feb.-March), in honour of the anniversary of the birth of the *Lingu* or *Phallus*.

S. शिवा *shiva*, f. The goddess Doorga, the consort of Shivu.

S. शिष्टाचार *shishtachar*, m. Humility, complaisance, obligingness, good manners. (Comp. of शिष्ट that which is ordered, and आचार conduct, behaviour.)

S. शिष्य *shishyu*, m. A disciple, a scholar, a pupil.

S. शीघ्र *sheeghru*, adj. Expeditious, quick, hasty, fast, adv. Soon, quickly, speedily.

S. शील *sheel*, m. Nature, quality, disposition; good conduct or disposition, steady and uniform observance of law and morals. शीलवान *sheel-van*, adj. Of good or amiable disposition, well-conducted.

S. शुक *shook*, m. A parrot.

S. शुकदेव *shookdev*, m. The name of the son of Vyasudevu the author or narrator of the *Bhaguvut* and other *Pooranas*.

S. शुद्ध *shooddhu*, adj. [1] Accurate, correct. [2] Pure, clean, unpolluted.

S. शुभ *shoobh*, adj. Good, pleasant, agreeable, happy, fortunate.

S. शेष *shesh*, m. [1] Remainder, end. [2] The king of the serpent race, as a large thousand-headed snake, at once the couch and canopy of Vishnoo, and the upholder of the world which rests on one of his heads.

S. शेषशाई *shesh-shaee*, m. The sleeper on the serpent *Sheshu* or *Ununtu*, an epithet of Vishnoo. (S. शेष, and शायी a sleeper.)

S. शोक *shok*, m. Affliction, grief, lamentation, sorrow.

S. श्रद्धा *shruddha*, f. [1] Faith, confidence, trust, belief. [2] Fondness, affection.

S. श्रम *shrum*, m. Fatigue, toil, pains.

S. श्रवन *shruwun*, (S. श्रवण) m. [1] The ear. [2] The act of hearing. [3] (also श्रवणा) The 23d mansion of the moon; composed of the three principal stars in *Aquila*.

S. श्राद्ध *shraddhu*, m. Funeral obsequies, consisting in the feeding of priests, and other prescribed ceremonies, in honour of ancestors.

S. श्री *shree*, f. [1] A name of LUKSHMEE, the wife of VISHNOO, and goddess of prosperity. [2] Prosperity. [3] Beauty. [4] An auspicious syllable prefixed to the proper names of persons. श्रीपति *shree-puti*, m. VISHNOO, the husband of LUKSHMEE. श्रीमत् *shree-mut*, adj. [1] Prosperous, fortunate. [2] Wealthy, opulent.

S. श्रेष्ठ *shreshth*, adj. Best, excellent, most excellent, pre-eminent.

ष *shu*

S. षट् *shut* or *khut*, adj. Six.

S. षट्रस *shut* or *khut rus*, m. Six tastes; namely, sweet, sour, salt, bitter, acrid, and astringent.

S. षड् *shud*, adj. Six.

S. षष्ठ *shushth*, adj. Sixth.

स *su*

S. स *su* A prepositive particle, signifying, with, together, along with; as, in सजीव *su-jeev*, (with life) Alive.

S. सं *sung*, An inseparable preposition, signifying, together, altogether, with, together with: it often serves to denote fulness, completeness, wholeness, and perfection.

S. संकट *sunkut*, m. Vexation, misfortune, pang, agony, pain, anguish.

S. संकर्षन *sunkurshun*, (S. संकर्षण) m. A name of BULURAMU, the elder brother of KRISHNU.

S. संकल्प *sunkulp*, m. A solemn vow or declaration of purpose. संकल्पकरना *sunkulp kurna*, or संकल्पना *sunkulpna*, v. a. To give alms (by making a religious vow), to vow.

S. संका *sunka*, (S. शंका) f. Fear, terrour, doubt, suspicion.

S. संकोच *sunkoch*, m. Shame, bashfulness, reserve.

S. संख *sunkh*, (S. शंख) m. A conch, a shell.

S. संगति *sunguti*, f. [1] Coition. [2] Collection, congregation, company, society.

S. संगीत *sungeet*, m. Musick, singing. संगीत नाच *sungeet-nach*, A kind of dance.

S. संग्राम *sungram*, m. Battle, war.

S. संजम *sunjum*, m. Forbearance, soberness, abstinence from particular food on certain days. (S. संयम; root यम to cease, with the prep. सं).

S. संजोग *sunjog*, (S. संयोग) m [1] Accident, event, occurrence, chance, hap, luck. [2] Conjunction, union.

S. संजोवना *sunjowuna*, v. a. To prepare. (From S. संयोजनं).

S. संत *sunt*, (S. संतः) ¹ m. A kind of devotee, a saint. ² adj. Pious, virtuous.

S. संतान *suntan*, m. Progeny, offspring, children.

S. संताप *suntap*, m. Sorrow, pain, affliction.

S. संतुष्ट *suntoosht*, adj. Satisfied, gratified, content, pleased.

S. संतोष *suntok,h* or *suntosh*, m. Content, patience, satiety, satisfaction, pleasure, gratification.

S. संतोषी *suntok,hee* or *suntoshee*, adj. Patient, contented.

S. संदेह *sundeh*, m. Suspicion, doubt, hesitation, anxiety.

S. संदेस *sundes*, } (S. संदेश) m. A message.
S. संदेसा *sundesa*, }

S. संधान *sund,han*, m. Spying, prying into secrets. संधानपाना *sund,han pana*, v. a. To trace, to discover.

S. संधाना *sund,hana*, (S. संधान) m. Pickle.

S. संधि *sund,hi*, f. ¹ Union, junction. ² Peace, pacification. ³ A crack. ⁴ A hole.

S. संध्या *sund,hya*, f. ¹ Twilight, either morning or evening. ² A period of time, forenoon, afternoon, or mid-day. ³ Religious abstraction, meditation, repetition of *Muntrus*, sipping water, &c. to be performed by the three first classes of *Hindoos*, at particular and stated periods in the course of every day, especially at sun-rise, sun-set, and also, though less essentially, at noon.

S. संनिपात *sunnipat*, m. The name of a desease in which the body is seized with universal chilliness, Deliquium. (It is explained by the *Hindoo* physicians to be that in which the three humours, bile, phelgm and atrabilis are corrupted.)

S. संपत *sumput*, } f. Affluence, wealth, riches, prosperity.
S. संपदा *sumpuda*, }

S. संपोलिया *sumpoliya*, m. A young snake. (S. सर्प a snake, and पोत young of any animal.)

S. संबंध *sumbund,h*, m. Connection, affinity, relation.

S. संबंधी *sumbund,hee*, m. ¹ Relation. ² Son or daughter's father-in-law.

S. संबाद *sumbad*, (S. संवाद) m. Conversation, discourse.

S. संबोधन *sumbod,hun*, m. ¹ Comfort, soothing, encouragement, the act of consoling. ² Vocative.

S. संभारना sumb,harna, } v. a. [1] To support,
S. संभालना sumb,halna, }
prop, sustain, hold up. [2] To shield, protect, stop, retain, restrain, check, repress. (From S. संभारणं; root भृ to hold, with the prep. सं).

S. संभावना sumb,havuna, f. Probability.

S. संव्हारना sumharna, v. a. [1] To remember, to keep in memory. [2] To mention. (From S. स्मरणं).

S. संयम sunyum, m. See संजम.

S. संयुक्त sunyookt, adj. Joined, joined with, compounded.

S. संयोग sunyog or sunjog, See संजोग.

S. संवत् sumvut, m. A year, but generally means the era of VIKRUMADITYU.

K. संवारना sunwarna, v. a. To prepare, to dress, to decorate, to adjust, to adorn, to arrange.

S. संसार sunsar, m. The world.

S. संसारी sunsaree, adj. Worldly.

S. संसौ sunsuo, (S. संशय) m. Apprehension, fear, doubt, anxiety.

S. संस्कार sunskar, m. An essential and purificatory rite amongst the *Hindoos*; purification, consecration.

S. संहार sunhar, [1] m. Making away with, killing, murdering. [2] adj. Killed.

S. संहारना sunharna, v. a. To kill, to destroy. (From S. संहारणं).

S. सकट sukut, (S शकट) m. A cart.

S. सकल sukul, adj. All, the whole, every.

S. सकुचना sukoochna, v. n. To fear, to be afraid of, to be in awe of, to be abashed, to apprehend, to be apprehensive. (From S. संकोचनं).

S. सखा suk,ha, m. A friend, a companion.

S. सखी suk,hee, f. A woman's female friend or confidant.

S. सगड sugur, (S. शकट) m. A cart.

S. सगा suga, (S. स्वकीय) [1] adj. Related (of the same parents), full, own; as, सगा भाई suga-b,ha,ee, Own brother. [2] A relative. [3] m. Kin.

S. सगाई suga,ee, (S. स्वकीयता) f. [1] Relationship by the same parents, consanguinity. [2] Betrothing for marriage. [3] Second marriage of a woman of low tribe. सगाईकरना suga,ee kurna, v. a. To contract a marriage, to affiance, to betroth.

S. सगुन sugoon, (S. शकुन) m. Augury, omen. *Pers.* شگون

S. सघन sug,hun, adj. Thick (as, a head of hair, clouds, wood, &c.)

S. सच such, (S. सत्य) [1] adj. True. [2] adv.

Indeed. [3] In earnest, actually. सचमुच *such-mooch*, adj. True.

S. सचेत *su-chet*, adj. With circumspection, with caution, mindful, conscious, attentive, cautious. (S. स with, and चेतः wisdom, intelligence.)

S. सज *suj*, (S. सज्ज) f. Shape, ornament, appearance. सजदार *suj-dar*, Well-shaped, handsome. सजधज *suj-dhuj*, f. Preparation and appearance.

S. सजल *su-jul*, adj. Watery, filled with or containing water. (Comp. of स with, and जल water.)

S. सज्ञान *su-gnyan*, adj. With knowledge; knowing, intelligent, wise.

K. सटक *sutuk*, f. An elastick rod, thick at one end and thin at the other.

K. सटकना *sutukna*, v. n. To run away, to disappear, to flee, to be separated.

K. सटकाई *sutkaee*, (from सटक) f. Taperingness; vanishing of a tapering body at the extreme point, disappearance.

K. सटना *sutna*, v. n. To join, to adhere, to stick, to unite.

S. सत् *sut*, [1] adj. True, right, actual. [2] adv. Actually. [3] (S. सत्त्व) m. Power, strength, essence, the principle of goodness, &c.: see under गुन. [4] Juice, sap. [5] (S. सत्य) Virtue. [6] Truth. सतबादी *sut-badee*, (S. सत्यवादी) adj. Speaker of truth.

S. सतखन *sut-khun*, adj. Of seven divisions or stories (a house, &c. S. सप्त seven, and खंड part).

S. सतयुग *sut-yoog* or *sut-joog*, (S. सत्ययुग) m. The first or golden age of the *Hindoos*.

K. सतराना *sutrana*, v. n. To be angry.

S. K. सतलड़ा *sut-lura*, adj. Seven-fold, of seven strings or rows (a chain of pearls, &c.). सतलड़ी *sut-luree*, f. A necklace of seven strings.

S. सतलोक *sut-lok*, (S. सत्यलोक) m. *Sutyu-loku* or *Bruhmu-loku* is the abode of Bruhma, and translation to this world exempts beings from further birth.

S. सताना *sutana*, v. a. To tease, to vex, to fret, to trouble, to afflict. (From S. संतापनं).

S. सत्यवादी *sutyu-vadee*, adj. Speaker of truth. (सत्य truth, and वादी speaker.)

S. सदा *suda*, adv. Always. सदाशिव *suda-shivu*, A name of Muhadevu.

S. सदेह *su-deh*, With body.

K. सनना *sunna*, v. n. [1] To be impregnated. [2] To be stained, soiled, smeared or defiled. [3] To be kneaded, mixed up

(as, flour, dough, earth, &c.).

S. सनमंद *sunmund*, (S. संबंध q. v.)

S. सनमान *sunman*, (S. सन्मान) m. Respect, esteem, reverence.

S. सनमुख *sunmookh*, (S. सन्मुख) adv. Opposite, confronting, in face.

S. सनातन *sunatun*, adj. Eternal.

S. सनेह *suneh*, (S. स्नेह q. v.)

S. सन्यासी *sunnyasee*, m. A *Brahmun* of the fourth order, the religious mendicant.

S. सपना *supna*, (S. स्वप्न) m. A dream.

S. सपल्लव *su-pullus*, adj. With sprouts, shoots, or twigs. (स with, and पल्लव a sprout or shoot.)

S. सपुत्र *su-pootru*, (S. सुपुत्र) m. A tractable or dutiful son.

S. सबल *su-bul*, adj. Powerful, forcible. (स with, and बल strengh, force.)

S. सभा *subha*, f. An assembly, meeting, company.

S. सम *sum*, adj. Like, alike: all, entire.

S. समता *sumuta*, f. Equality, similitude, parallelism, resemblance, comparison, parity.

S. समय *sumue*, m. [1] Time, season. [2] Leisure, opportunity.

S. समस्त *sumust*, adj. All, whole.

S. समा *suma*, (S. समय) m. [1] Time, season. [2] Plenty, abundance. [3] State, condition. [4] Concord, harmony, union. समा बंधना *suma bundhna*, v. n. To be in concert.

S. समाचार *sumachar*, m. News, tidings, information, intelligence, account of circumstances or health, &c.

S. समाधान *sumadhan*, m. Consolation, comfort, solace, pacification, adjustment, the act of satisfying.

S. समान *suman*, adj. Like, similar, akin, equal, adequate. f. Equality, level, rank.

S. समानता *sumanuta*, f. Likeness, resemblance, equality.

S. समाना *sumana*, v. n. To be contained in, to go into. (From S. संमान).

S. समाप्त *sumapt*, adj. Finished, concluded, accomplished, perfected.

S. समीप *sumeep*, adj. Near, proximate.

S. समुद *sumood*, }
S. समुद्र *sumoodru*, } m. The sea, the ocean.

S. समुचा *sumoocha*, (S. समुच्चय) adj. Entire, whole.

S. समें *sumen*, } (S. समय) m. Time, sea-
S. समैं *sumuen*, } son, leisure, opportunity.

K. समेटना *sumetna*, v. a. [1] To collect together. [2] To constringe, to cause to shrivel or shrink.

S. सम्हारना *sumḥarna*, v. a. ¹ To remember, to keep in memory. ² To mention. (From स्मरणं).

S. सयन *suyun*, (S. शयनं) m. Sleep.

K. सयाना *suyana*, adj. ¹ Cunning, artful, clever, prudent. ² Mature.

S. सर *sur*, m. ¹ (S. शर) An arrow. ² (S. सरः) A pond, a tank. सरसाधना *sur saḍḥna*, v. a. To prepare to shoot an arrow. एकसर *ek-sur*, All at once, all together.

S. सरगुन *sur-goon*, (S. सर्वगुण) All qualities, possessing all qualities (an epithet of the deity).

S. सरट *suruṭ*, m. A lizard, a chameleon.

S. सरद *surud*, (S. शरत् or शरद) f. The name of one of the six seasons, the sultry season comprising *Ashwinu* and *Kartiku*, (from about 15th September, to 15th November).

S. सरन *surun*, } (S. शरण) f. An asylum; shelter, protection.
S. सरना *surna*, }

S. सरना *surna*, v. n. To be performed, to be carried on, to issue. (From S. सरणं going, proceeding).

S. सरनागत *surun-agut*, (S. शरणागत) m. A refugee, one who has come for refuge.

S. सरनागतवत्सल *surun-agutu-vutsul*, Merciful to those come for sanctuary, an epithet of the deity. (S. शरणागतवत्सल; comp. of सरण sanctuary, preservation, आगत come, and वत्सल compasionate).

S. सरप *surup*, (S. सर्प) m. A serpent.

P. सरबर *sur-wur*, ¹ m. (P. سرور) A chief, principle, leader. ² (K.) adj. Equal.

S. सरबर *surwur*, (S. सरोवर q. v.)

S. सरस *surus*, (S. श्रेयस्) adj. ¹ Best, excellent, prime. ² More, abundant, plenty.

S. सरसाई *sursa,ee*, (from सरस) f. Increase, abundance, excellence.

S. सरस्वती *suruswuṭee*, f. The wife of Bruhma, the goddess of speech and eloquence, the patroness of music and the arts, and the inventress of the *Sunskrit* language and *Devunagree* letters.

S. सराप *surap*, (S. शाप) m. Curse, imprecation.

S. सरापना *surapna*, v. a. To curse. (From S. शपनं).

K. सराहना *surahna*, v. a. To praise, to commend, to approve, to applaud.

S. सरिता *surita*, (S. सरित्) f. A river in general.

S. सरूप *su-roop*, ¹ With form, with appearance. ² (S. स्वरूप) m. Own or na-

tural shape or form, appearance, identity, shape, form, a spectacle.

S. सरोवर surovur, m. A pond, a tank.

S. सर्प surp, m. A serpent.

S. सर्बदा surbuda, } adv. Always, perpetu-
S. सर्वदा survuda, } ally.

S. सर्व surv, adj. All, the whole.

S. सर्वस surbus, } m. Every thing, whole
S. सर्वस्व surbuswu, } property. (S. सर्व, and वस्तु substance, wealth, thing.)

S. सलिता sulita, See सरिता.

S. सलोना sulona, (S. सलवण with salt) adj. [1] Salted, seasoned, tasteful. [2] Beautiful.

S. ससि susi, (S. शशि) m. The moon.

S. सहज suhuj, adj. Easy, not difficult. adv. Easily. सहजसुभावहि suhuj-swbhavu-hee, With natural ease.

K. सहरना suhrana, [1] v. n, To thrill, to have the hairs stand on end. [2] v. a, To stroke, to rub gently, to tickle.

S. सहस्र suhusru, adj. Thousand.

S. सहाई suhaee, (S. सहाय) m. Aider, assistant, helper.

S. सहायक suhayuk, m. A succourer, aider.

S. सहायता suhayuta, } f. Aid, help, assis-
S. सहार suhara, } tance.

S. सहित suhit, prep. Together with.

K. सहिरना suhirana, See सहरना.

S. सहेलि suhelee, f. A woman's female companion, a handmaid. (Comp. of S, सह with, together, and आली a female friend.)

S. सहोदर suhodur, (comp. of सह with, and उदर belly) adj. Born of one mother, as, सहोदरभाई suhodur-bhaee, Full brother.

S. सांकल sankul, (S. शृंखला) f. A chain.

S. सांगीत sangeet, (S. संगीत) m. [1] The art or science of music and dancing. [2] The exhibition of song, dancing, and music, as a public entertainment.

S. सांचा sancha, (S. सत्य) adj. True, right, proper, real.

S. सांवला sanwla, (S. श्यामल) adj. Of a dark or sallow (complexion).

S. सागर sagur, m. The sea, the ocean.

S. साजना sajna, v. a. To prepare, to dress, to decorate, to become, to regulate. (From S. सज्जना).

S. सात sat, (S. सप्त) adj. Seven. सातपांच करना sat panch kurna, To be in doubt, to be unable to decide what to do.

S. सात्विक satwik, adj. Relating to or proceeding from the Sutwu quality, sincere, good, true, gentle, amiable, &c. See गुन.

S. साथी *sat,hee*, (S. सार्थी) m. A companion, comrade, ally. साथीसाथ *sat,hee sat,h*, Together, in one company.

S. साद *sad*, } (S. श्रद्धा) f. Wish, desire,
S. साध *sad,h*, } inclination.

S. साध *sad,h*, } [1]adj. Virtuous, righteous,
S. साधु *sad,hoo*, } good, holy. [2]m. A religious person. [3](S. श्रद्धा) f. Desire.

S. साधना *sad,hna*, (from S. साधनं, root साध become perfect or accomplished) [1]v. a. To familiarize gradually to any habit, to teach, to learn, to rectify, to settle, to fix or determine, to practice, to regulate, to accomplish. [2]f. The act of familiarizing by habitude, practice. [3]Accomplishment.

K. सान्ना *sanna*, See सन्ना.

S. साबर *sabur*, (S. शांबर or संबर) m. An elk.

S. सामग्री *samugree*, f. Furniture, tools, apparatus, articles, materials.

S. सामर्थ *samurt,h*, (S. सामर्थ्य) m. Ability, power.

S. सामर्थी *samurt,hee*, adj. Powerful, mighty, able, capable.

S. सामा *sama*, f. Apparatus, provisions, furniture, articles. See सामग्री.

S. साम्हना *sam,hna*, (S. सम्मुख) m. Front, confronting, facing.

S. साम्हने *samhne*, (from साम्हना) postpos. or adv. Opposite, before, in front, confronting.

S. सार *sar*, m. [1]Manure. [2]Iron. [3]Pith, essence, quintessence. [4]Value, worth. [5](S. शार) The piece used in playing at *Chuopur*. [6]See सर.

S. सारंग *sarung*, m. [1]Name of a *Rag* or musical mode. [2]A peacock. [3]A snake or serpent. [4]A cloud. [5]The cry of a peacock. [6]A deer. [7]A woman. [8]Water. [9]The name of a country. [10]A lamp. [11]The *Nymphæa* lotus. [12](S. शार्ङ्ग) The name of the bow of VISHNOO.

S. सारथी *sarut,hee*, (S. सारथि) m. A charioteer.

S. सारदा *saruda*, (S. शारदा) f. [1]A name of SURUSWUTEE. [2]A name of DOORGA.

S. सारना *sarna*, v. a. To perform, to accomplish, to complete, to make, to mend, to manure. (From S. साधनं).

S. सारस *sarus*, m. A species of heron. (*Ardea antigone.*)

S. सालना *salna*, [1]v. a. To penetrate, to perforate, to bore, to prick, to pierce. [2]v. n. To ache, to be in pain, to smart. (From S. शल्य).

S. साला *sala*, [1] (S. श्याल) A wife's brother, brother-in-law. [2] (S. शाला in compos· mostly) House, place.

S. सावंत *sawunt*, (S. सामंत) adj. Brave, heroick. m. A hero.

S. सावधान *savud,han*, adj. With attention, attentive, cautious, cautiously.

S. सावधानी *savud,hanee*, f. Caution, attention.

S. सासन *sasun*, (S. शासन) m. [1] An order, an edict, a command. [2] A patent, a grant.

S. सासु *sasoo*, (S. श्वश्रू) f. A mother-in-law.

S. साहस *sahus*, m. [1] Violence. [2] Courage, valour, spirit, resolution.

S. साहसी *sahusee*, adj. [1] Violent. [2] Resolute, brave, undaunted, determined.

S. सिंगार *singar*, (S. शृंगार) m. Ornament, dress, embellishment, decoration. सिंगार रस *singar-rus*, m. One of the nine *Rus*: see रस.

S. सिंगारना *singarna*, v. a. To dress, to decorate, to embellish. (From S. शृंगार).

S. सिंधु *sind,hoo*, m. Sea, ocean.

S. सिंह *sing,h*, [1] m. A lion. [2] The sign *Leo*. सिंह्पौर *sing,h-puor*, The grand entrance gate (to a palace, &c.)

S. सिगरौ *sigruo*, (S. समग्र) adj. All, every, the whole.

S. सिथल *sit,hul*, (S. शीतल) adj. [1] Cold, cool. [2] Stupified, benumbed (with fear, &c.).

S. सिद्ध *sidd,h*, [1] m. A class of demigods inhabiting Indru's heaven. [2] A saint or holy man, he who has subjected to his will the eight *Siddhis*: see अष्टसिद्धि *ushtu-sidd,hi*. [3] adj. Successful. [4] Ready, completed, accomplished. [5] (S. सिद्धि) f. Success, accomplishment of an object.

S. सिद्धि *sidd,hi*, f. [1] Fulfilment, accomplishment, the entire completion of any undertaking or attainment of any object. [2] The result or fruit of the adoration of the gods or of ascetic severities. [3] The supposed acquirement of supernatural powers by the completion of magical, mystical or alchymical rites and processes. [4] Accuracy, correctness, indisputable conclusion or position.

S. सिधारना *sid,harna*, v. n. To go, to depart, to set off. (From S. सेधन).

S. सिर *sir*, (S. शिरः) m. The head. सिर चढाना *sir chur,hana*, [1] To exalt. [2] To assume, to be arrogant. [3] To shew respect. सिरधुन्ना or डुलाना *sir d,hoonna*, or *doolana*, To shake the head from affliction.

S. सिरजना *sirujna*, v. a. To create, to produce, to form. (From S. सर्जनं).

S. सिल *sil*,
S. सिला *sila*, (S. शिला) f. [1]A stone, a rock. [2] A flat stone on which condiments, &c. are ground with a muller.

S. सिष्टाचार *sishtachar*, f. Good manners, &c. See शिष्टाचार.

S. सिष्य *sishyu*, (S. शिष्य) m. A pupil.

S. सींग *seeng*, (S. शृंग) m. A horn.

S. सींगा *seenga*, (S. शृंग) A horn (musical).

S. सींगी *seengee*, (S. शृंग) f. A small horn (musical).

S. सीख *seek,h*, (S. शिक्षा) f. Admonition, lesson, learning, study.

S. सीठ *seet,h*, (S. सिक्थ) f. Dregs of betel, or any thing that has been chewed.

S. सीठा *seetha*, adj. Insipid, tasteless, weak, pale, pithless, sickly.

S. सीत *seet*, (S. शीत) f. [1]Cold or chilness. [2] Dew. सीतकाल *seet-kal*, Winter. सीत ज्वर *seet-jwur*, m. Ague.

S. सीतल *seetul*, (S. शीतल) adj. Cool, cold.

S. सीता *seeta*, f. Name of the wife of Ramu and daughter of *Raja* Junuku.

S. सीतांग *seetang*, m. Palsy, numbness, being chilled with cold. (S. शीतांग; comp. of शीत cold, and अंग body.)

S. सीरा *seera*, (S. शीतल) [1] adj. Cool. [2] m. A kind of sweetmeat made of meal and sugar.

S. सील *seel*, (S. शील) m. Habit, disposition; good conduct, complaisance, civility, benevolence, humanity, modesty, politeness, generosity. सीलवान *seel-van*, adj. Of good or amiable disposition, well-conducted.

S. सील *seel*, (S. शीतल) f. Cold, dampness.

S. सीला *seela*, adj. Damp, cool.

S. सीस *sees*, (S. शीर्ष) m. The head. सीस चढाना *sees churhana*, See सिरचढाना *sir churhana*. सीसफूल *sees p,hool*, m. An ornament for the head (worn by females).

S. सु *soo*, prepos. Good, well, easy, very (the reverse of दुर्); as, in सुमति *soomuti*, Good understanding.

K. सु *soo*, postpos. From, by, with, of, &c.; as, जासु *ja-soo*, From or of whom. It is, also, sometimes used for सो *so*, He, she, it, they, &c.

S. सुंदर *soondur*, adj. [1] Beautiful, handsome. [2] Good, virtuous.

S. सुंदरता *soondur-ta*,
S. सुंदरताई *soondur-ta,ee*, f. Beauty, handsomeness.

S. सुंदरी *sooduree*, f. A handsome wo-

man.

S. सुकड़ना *sookurna*, v. n. [1] To be shrunk or contracted, to shrink. [2] To draw in, to collect, to gather up, to constrain, to shrivel. (From S. संकोचनं).

S. सुकुचाना *sookoochana*, v. n. To be abashed, to be afraid. (From S. संकोचनं).

S. सुकृत *soo-krit*, adj. Well done, well performed; m. f. Virtue, a good action, moral merit.

S. सुख *sook,h*, m. Ease, tranquillity, easy circumstances, content, happiness. सुखचैन *sook,h-chuen*, m. Ease, rest, leisure, tranquillity. सुखदाई *sook,h-da,ee*, Ease-affording, comforter, giver of ease. सुखदान *sook,h-dan*, m. Giving of ease or comfort or content. सुखदायक *sook,h-dayuk*, adj. Giver of ease or content. सुखधाम *sook,h-d,ham*, Abode of happiness, &c. सुखपाल *sook,h-pal*, A kind of *palkee*. सुखबास *sook,h-bas*, Abode of happiness.

S. सुखी *sook,hee*, adj. At ease, happy, tranquil, contented.

S. सुगंध *soo-gund,h*, [1] f. Good smell, odour, perfume. [2] adj. Fragrant, sweet smelling.

S. सुघड़ *soog,hur*, (S. सुघट) adj. Elegant, accomplished, beautiful, virtuous.

S. सुच *sooch*, (S. शुचि) adj. Pure, undefiled, unpolluted, clean.

S. सुचकना *soochukna*, v. n. To be astonished or startled. (From S. सुचकित).

S. सुचित *soo-chit*, (S. सुचित्त) adj. [1] Thoughtless, easy, at leisure, disengaged. [2] Attentive, careful; occupied.

S. सुजान *soo-jan*, (S. सुज्ञ) adj. Intelligent, wise, knowing.

S. सुत *soot*, m. A son.

S. सुतन *sootun*, plur. of the preceding.

S. सुता *soota*, f. A daughter.

K. सुथरा *soot,hra*, adj. Well, excellent, neat, beautiful, elegant.

S. सुदरसन *soodursun*, (S. सुदर्शन) m. The discus or missile weapon of VISHNU or KRISHNU.

S. सुदी *soodee*, (S. सुदि) f. The light half of the lunar month, or from the new to the full moon.

S. सुद्ध *soodd,h*, (S. शुद्ध) adj. [1] Pure, clean, unpolluted. [2] Accurate, correct. See सुच

S. सुद्धां *soodd,han*, (S. सार्द्धं) adv. Together, with.

S. सुध *sood,h*, }
S. सुधि *sood,hi*, } (S. सुधी; comp. of सु

good, and धी intellect) f. Memory, remembrance, sensation, consciousness, notice, care. सुधबुद्ध *sood,h-boodd,h*, (S. शुद्धबुद्धि) f. Sense, perception, sensation, care. सुधलेना *sood,h lena*, To take care of, to accommodate, to look after, to enquire into.

S. सुधा *soo-d,ha*, m. Nectar. (सु good, and root धे drink).

S. सुफल *soo-p,hul*, adj. Bearing good fruit (literally or figuratively), profitable, useful.

S. सुबरन *soo-burun*, m. Gold. (S. सु good, and वर्ण colour.)

S. सुभ *soob,h*, (S. शुभ) adj. Good, well, right, fortunate, auspicious.

S. सुभाव *soo-b,haw*, m. Good disposition, nature, natural state, property, disposition. adj. Well-disposed, of good quality. (S. सु good, or स्व own, and भाव natural state of being, innate property, disposition, nature.)

S. सुमन *soo-mun*, [1] m. A flower in general. [2] adj. Good hearted, benevolent, virtuous.

S. सुमरना *soomurun*, } m. [1] (S. स्मरण) Re-
S. सुमिरन *soomirun*, }
membrance (continual theme), mentioning. [2] (S. स्मरणी) f. A small rosary, or string of beads.

S. सुमरना *soomurna*, } v. a. [1] To remem-
S. सुमिरना *soomirna*, }
ber, to keep in memory. [2] To mention. (From S. स्मरणं).

S. सुमेरू *soomeroo*, m. The sacred mountain *Meroo*, allegorically represented as composed of gold and gems, and the residence of the gods. In astronomical works, the north pole.

S. सुर *soor*, m. [1] A god, a deity. सुरपति *soor-puti*, A name of INDRU, सुरपुर *soor-poor*, The capital of INDRU. [2] (S. स्वर) Tone, melody, accent, song, note. सुर मिलाना *soor milana*, v. a. To sing in tune.

S. सुरत *soorut* or *soort*, (S. स्मृति) f. Recollection, consideration, reflection, memory, attention, caution, accuracy.

K. सुरसुरहट *soorsoorahut*, f. Creeping (sensation), titillation. (From S. root, सृ move.)

S. सुवाना *soowana*, v. a. To cause to sleep. (From S. शायनं).

S. सुशील *soo-sheel*, adj. Well-disposed, good-natured, of good manners, polite.

S. सुसर *soosur*, (S. श्वशुर) m. Father-in law.

S. सुहाग *soohag*, (S. सौभाग्य) m. [1] Auspiciousness, good fortune. [2] The affection of a husband.

S. सुहागन *soohagun*, (S. सौभागिनी) f. A woman beloved by her husband, a favorite wife; a married woman, whose husband is alive.

K. सुहाता *soohata*, See the following [1] sig.

K. सुहाना *soohana*,
K. सुहावना *soohawuna*, } [1] adj. Agreeable, pleasant, charming. [2] v. n. To be agreeable, to please, to be liked or approved of.

K. सूंट *soonṭ*, f. Silence. सूंट भरना या मारना *soonṭ b,hurna* or *marna*, To be silent. सूंटमारेजाना *soonṭ mare jana*, To depart in silence.

S. सूंड *soonḍ*, (S. शुंडा) f. Proboscis of an elephant.

S. सूकर *sookur*, (S. शूकर) m. A hog.

S. सूक्ष्म *sooch,hmu*, or *sookshmu*, adj. [1] Subtile, fine, slender, minute, small. [2] Shrill.

S. सूक्ष्मता *sooch,hmu-ta*, or *sookshmu-ta*, f. [1] Subtileness. [2] Shrillness.

S. सूजा *sooja*, (S. सूचि) m. A borer, a gimlet, an auger, an awl.

S. सूजी *soojee*, (from सूजा) [1] m. A tailor. [2] A needle.

K. सूझना *sooj,hna*, v. n. To be visible, to be seen, to be able to see.

S. सूत *soot*, m. A charioteer.

S. सूथन *soo,thun*, f. Drawers.

S. सूद्र *soodru*, (S. शूद्र) m. A *Shoodru*, a man of the fourth or servile tribe amongst the *Hindoos*.

S. सूधा *sood,ha*, (S. शुद्ध) adj. [1] Proper, true. [2] Straight. [3] Simple, artless.

S. सूनां *soonan*,
S. सूनों *soonon*, } (S. शून्य) adj. Empty, desert, void.

S. सूप *soop*, (S. सूर्प) m. A kind of basket for winnowing corn with.

S. सूर *soor*, m. [1] The sun. [2] (S. शूर) A hero.

S. सूरज *sooruj*, (S. सूर्य्य) f. The sun. सूरजगहन *sooruj-guhun*, (S. सूर्य्यग्रहण) m. Eclipse of the sun.

S. सूरता *soor-ta*, (S. शूरता) f. Valour, heroism.

S. सूरमा *soorma*, (from सूर) adj. Bold, brave.

S. सूर्य्य *sooryu*, m. The sun. सूर्य्यग्रहण *sooryu-gruhun*, m. Eclipse of the sun. सूर्य्यबंसी *sooryu-bunsi*, (S. सूर्य्यवंशी)

m. [1] Descendant of the sun. [2] The name of tribe of *Kshutriyus* who claim descent from the sun.

S. सूल *sool*, (S. शूल) m. [1] Colick. [2] A trident or pike. [3] The point of a spear. [4] (S. शूक) A thorn.

S. सूहा *sooha*, (S. शोण) [1] adj. Red, crimson. [2] m. Name of a *Rag*, or musical mode. सूहाकुसुंभा *sooha-koosoombha*, Red as the die of safflower.

S. सृष्ट *srisht*, } f. The creation, the world.
S. सृष्टि *srishti*, }

S. सैंकड़ा *senkra*, (from शत) adj. Hundred.

S. सेज *sej*, (S. शय्या) f. A bed, a couch.

S. सेत *set*, [1](S. श्वेत) adj. White. सेतद्वीप *set-deep*, (S. श्वेतद्वीप) The white island or a minor division of the universe so called, and supposed by Wilford to be Britain. [2] (S. सेतु) m. A bridge.

S. सेन *sen*, } f. An army. सेनापति *sena-puti*, m. The commander of an army.
S. सेना *sena*, }

S. सेव *sew*, See सेवा.

S. सेवक *sewuk*, m. A servant, a worshipper.

S. सेवना *sewna*, v. a. [1] To attend on, to serve. [2] To brood, to rear, to sit, to incubate, to hatch. (From S. सेवनं).

S. सेवा *sewa*, f. Service, worship, attendance on.

S. सेस *ses*, (S. शेष q. v.)

S. सैन *suen*, [1](S. सैन्य) f. An army, forces. [2] (S. शयनं) m. Sleeping, repose. [3] (S. संज्ञा) f. A wink, sign, token, hint, a signal. सैनकरना *suen kurna*, v. a. To beckon.

S. सैन्य *suenyu*, f. An army.

S. सो *so*, (S. सः) pron. He, she, it, that. सोई *so-ee*, He himself, that very. सोऊ *so-oo*, He also.

K. सों *son*, postpos. From, of, without, of, since, to, through, than; and sometimes redundant.

S. सोंह *sonh*, (S. शपथ) f. An oath.

S. सोंहीं *sonheen*, (S. सन्मुख) adv. Face to face, opposite, before, in front.

S. सोअर *sour*, (S. सूतिकागार) m. The chamber of a puerperal woman.

S. सोखना *sokhna*, v. a. To dry up, to soak up, to absorb. (From S. शोषणं, root शुष to dry.)

P. S. सोग *sog*, (S. शोक) m. Affliction, grief, sorrow, lamentation, anguish.

S. सोच *soch*, verbal n. m. (from सोचना) Consideration, reflection, thought, meditation.

S. सोचना *sochna*, v. a. To consider, to

meditate, to advert. (From S. शोचनं, root शुच् to be sorry or grieve).

S. सोध sod,h, (from सोधना) f. [1] Discharge (of debt). [2] Correction, search, inquiry, collation.

S. सोधना sod,hna, v. a. [1] To pay, to discharge (a debt), to liquidate. [2] To collate. [3] To refine metals. (From S. शोधनं).

S. सोभना sob,hna, v. n. To become, to befit. (From S. शोभनं).

S. सोभा sob,ha, (S. शोभा) f. Beauty, splendour, ornament, dress, decoration. सोभायमान sob,hayu-man, adj. Beautiful, splendid, conspicuous, adorning.

S. सैाच suoch, (S. शौच) m. Purification by ablution, &c.

S. सैात suot, (S. सपत्नी) f. Rival (wife), contemporary wife. (One wife is *suot* to another.)

S. स्त्री stree, f. A woman or female in general.

S. स्तुति stooti, f. Praise, glorification, eulogy.

S. स्थल st,hul, m. Place, scite, soil, dry or firm ground.

S. स्थान st,han, m. Place, abode, residence.

S. स्थापन st,hapun, m. Placing, founding, fixing, erecting.

S. स्थापित st,hapit, adj. Established, placed, fixed, founded, erected.

S. स्नान snan, m. Bathing.

S. स्नेह sneh, m. [1] Love, kindness, affection. [2] Oil.

S. स्फुटक sp,huțuk } m. Crystal.
S. स्फटिक sp,huțik }

S. स्मशान smushan, (S. श्मशान) m. A cemetery, a place where dead bodies are burnt or buried.

S. स्याम syam, (S. श्याम) adj. [1] Black, or dark blue. [2] An epithet of KRISHNU.

S. स्यामता syamuta, (S. श्यामता) f. Blackness.

S. स्यार syar, (S. शृगाल) m. A jackal.

S. स्रम srum, (S. श्रम) m. Fatigue, toil, pains.

S. स्वछंद swu-ch,hund, adj. According to one's own opinion or inclination, unrestrained, uncontrolled, self-willed. (स्व own, and छंद wish, desire.)

S. स्वधर्म swu-d,hurmu, m. Peculiar duty or occupation, as, praying, of a *Brahmun*; fighting, of a soldier, &c. (स्व own, धर्म virtue.)

S. स्वप्न swupnu, m. A dream.

S. स्वभाव swu-b,haw, m. Nature, natural state, property or disposition, (स्व own, and भाव property).

S. स्वयम्बर swuyum bur, m. A girl's selecting a husband for herself. (स्वयम् self, and वर selecting, a husband.)

S. स्वयम्बरा swuyum-bura, f. A girl choosing her husband.

S. स्वरूप swu-roop, m. Own or natural shape or form, appearance, identity.

S. स्वर्ग swurg, m. Heaven, INDRU's paradise, and the residence of deified mortals and the gods.

S. स्वस्ति swusti, A particle of benediction, approbation, &c. So be it, amen! स्वस्तिवाचन swusti vachun, m. A religious rite preparatory to any important observance, in which the *Brahmuns* strew boiled rice on the ground, and invoke the blessings of the gods on the ceremony about to commence.

S. स्वाति swati, f. The star *Arcturus*, the fifteenth mansion of the moon. स्वातिसुत swati-soot, The issue of *Arcturus*, a pearl; from a popular belief that drops of rain, falling when the moon is in that mansion, into shells, are converted into pearls; but, which turn to poison, if they happen to fall into the mouth of a serpent.

S. स्वाद swad, m. Relish, flavour, taste, sweetness; pleasure.

S. स्वाधीन swad,heen, adj. [1] Independent, being one's own master. [2] Absolute, despotick. (स्व self; and अधीन dependent.)

S. स्वाधीनता swad,heenuta, } f. Independence, liberty, freedom.
S. स्वाधीनी swad,heenee, }

S. स्वान swan, (S. श्वान:) m. A dog.

S. स्वामी swamee, m. [1] Master, owner, lord, proprietor. [2] A husband. स्वामीद्रोह swamee-droh, Injuring one's master, treachery, perfidy.

S. स्वारथ swart,h, m. [1] Mundane affairs, desire, object, end, aim, &c. [2] Self-interest, selfishness. (S. स्वार्थ; comp. of स्व own, and अर्थ purpose.)

S. स्वारथी swart,hee, (S. स्वार्थी) adj. Selfish.

S. स्वार्थिक swart,hik, adj. Answering its object or purpose, successful, useful, profitable.

S. स्वास swas, } (S. श्वास) m. Respiration, breath, life.
S. स्वासा swasa, }

S. स्वेत swet, (S. श्वेत) adj. White. See सेत.

ह hu

S. हुंकार hunkar, m. [1] Cry, outcry, bawl-

ing, calling. [2] Driving.

S. हुंकारना *hunkarna*, v. a. [1] To bawl to, to call, to hallo after. [2] To drive away, to expel. (From S. हुंकार).

S. हुंडा *hunda*, (S. हुंड) m. A cauldron.

S. हंसी *hunsee*, (S. हास्य) f. Sport, fun, mirth, laughter, ridicule.

K. हकबकाना *hukbukana*, v. n. To be confused or irresolute (when any thing is to be done), to be aghast.

S. हठ *huṭ,h*, f. Obstinacy, perverseness, unpersuadableness, disobedience. हठ करना *huṭ,h kurna*, or हठ की टेक पर होना *huṭ,h kee ṭek pur hona*, To resist or disobey obstinately, to be perverse or pettish.

K. हड़बड़ाना *huṛbuṛana*, v. n. To be confused, to hurry.

S. हतना *hutna*, v. a. To kill. (From S. हन).

S. हत्या *hutya*, f. Murder, slaughter.

S. हथ *hut,h*, (contract. of हाथ S. हस्त) m. The hand. हथकड़ी *hut,h-kuṛee*, f. A hand-cuff, fetter, manacle.

S. हनना *hunna*, v. a. To kill, to give a blow, to smite. (From S. हननं).

S. हय *hue*, m. A horse.

S. हर *hur*, [1] m. A name of MUHADEVU. [2] (*Pers.* هر) adj. Every, all. हरभांति *hur b,hanti*, Every kind, all sorts.

S. हरता *hurta*, m. A thief, a stealer, a taker away. (S. हर्त्ता, root हृ to take by force or fraud.)

S. हरन *hurun*, [1] (S. हरिण) m. A deer or antelope. [2] (S. हरण) Theft, plunder, taking away by force. हरन दुख *hurun-dook,h*, Taking away or dissipating grief or trouble.

S. हरना *hurna*, v. a. [1] To seize on, to take forcibly. [2] To steal, to spoil, to plunder, to take away. (From S. हरणं).

S. हरख *hurukh*, (S. हर्ष) m. [1] Blowing, blooming. [2] Delight, joy.

S. हरखना *hurukhna*, v. n. To blow (as, a flower). [2] To be delighted. (From S. हर्षणं).

S. हरा *hura*, (S. हरित) adj. Green, fresh, verdant.

S. हरि *huri*, m. A name of VISHNU. हरिपैड़ि *huri-pueri*, f. A *G,hat* or landing place dedicated to HURI. *Lit.* The steps or stairs of HURI. हरिभक्त *huri-b,hukt*, m. A *Vueshnuvu* or worshipper of VISHNU. हरिभजन *huri-b,hujun*, Adoration of VISHNU.

S. हरियाली *huriyalee*, f. Greenness, freshness, verdure. (From S. हरित).

S. हर्षित hurk,hit or hurshit, adj. Pleased, delighted, rejoiced,

S. हलधर hulud,huru, m. A name of Buluramu, the elder brother of Krishnu. (हल a plough, and धर who bears.)

K. हलरावना hulrawna, v. a. To amuse, to play with, to dandle.

S. हस्तिनापुर hustinapoor, m. Ancient Dihlee, the capital of Yood,hisht,hiru and his brethren, the remains of which still exist, about 57 miles N. E. of the modern city, on the banks of the old channel of the Ganges.

S. हांक hank, verbal n. f. (from हांकना) [1] Cry, bawling, calling to (loud.) [2] Driving. हांकमारना hank marna, To bawl after, to call to.

S. हांकना hankna, v. a. [1] To drive. [2] To bawl to. (From हुंकार).

S. हांन han, }
S. हानि hani, } f. Loss, deficiency, harm, injury, slaughter.

A. हांमीभरना hamee b,hurna, v. a. To believe, acknowledge, confess, allow, own, consent. (A. حامي).

K. हांपना hampna, } v. n. To pant, to be
K. हांफना hamp,hna, } out of breath.

S. हाट hat, (S. हट्ट) m. A market, a moveable market or fair.

S. हाथा hat,ha, (S. हस्त) m. [1] The hand. [2] Possession, power.

S. हाय hae, } (S. हाहा) interj.
S. हायहाय hae hae, } Alas! f. A sigh. हाय मारना hae marna, To sigh.

P. S. हार har, m. [1] A necklace of pearls, &c. a wreath, a chaplet. [2] (S. हारि) A flock (of cattle). [3] Pasturage. [4] Loss, forfeiture, discomfiture. हारमान्ना har manna, or——मानलेना man lena, To give up a dispute, to give up in despair, to acknowledge all lost.

S. हारना harna, v. n. To be overcome, to be unsuccessful, to lose (in play), to be tired out. v. a. To lose. (From S. हारणं).

K. हालना halna, v. n. To shake, to be moved.

S. हाव haw, m. Coquetry, airs, dalliance, blandishment. हाव भाव haw-b,haw, Dalliance, blandishment, charm, attraction.

K. हाहा haha, m. Flattery, importunity, earnest request, supplication. हाहाखाना haha k,hana, To flatter, to wheedle, to entreat.

S. हाहा haha, interj. of surprise or grief or pain, alas!

S. हित *hit*, m. Love, friendship, affection, benevolence.

S. हितकार *hit-kar*,
S. हितकारी *hit-karee*, } m. A friend, benefactor, lover.

S. हितू *hitoo*, (from हित) m. f. A friend.

S. हिमालय *himaluyu*, m. The name of the snowy range of mountains which bounds *India* to the north. (Comp. of हिम cold or frost or snow, and आलय abode.)

S. हिया *hiya*,
S. हियौ *hiyuo*,
S. हिरद *hirud*, } (S. हृद् or हृदय) m. Heart, breast, mind, soul, life.

K. हिलकना *hilukna*, v. n. To writhe or suffer contortions (from affliction or pain; chiefly applied to children.)

K. हींसना *heen̤sna*, v. n. To neigh.

S. हीरा *heera*, (S. हीर) m. A diamond.

S. हीरावल *heerawul*, m. A kind of chequered blanket worn by *Fuqeers*. (From S. हीरावलि a row or string of diamonds, comp. of हीर, and आवलि a row.)

S. हुंकार *hꝏnkar*,
S. हुंकारा *hꝏkara*, } m. Cry, outcry, alarm, uttering the sound *hꝏn̤* to terrify, or as a mystical monosyllable.

S. हुती *hꝏtee*,
S. हुतो *hꝏto*,
S. हुतौ *hꝏtuo*, } (from होनौं) Was.

S. हूंकरना *hoon̤ kurna*, To make the sound *hoon̤*, in anger, from fear, or as an incantation, &c. (S. हूम् a magical or mystical monosyllable, and करण making.)

K. हूल *hool*, f. A thrust, an attack. हूलदेना *hool dena*, v. a. To goad, to thrust, to push, to drive, to impel, to urge.

S. हृदा *hrida*, See. हिरद

S. हे *he*, [1] A vocative particle, O! [2] (from होनौं) Were.

S. हेत *het*,
S. हेतु *hetꝏ*, } m. [1] Meaning, object, intention, theme, cause, reason, account. [2] See हित

S. हेमंत *hemunt*, m. The cold season, winter, the two months *Ughun* and *Poos*, or about November-December.

K. हेरना *herna*, v. a. [1] To look after, to observe, to see. [2] To search for, to hunt, to chase, to pursue, to catch, to stop.

S. हो *ho*, [1] A vocative particle, Ho! [2] (from होनौं) Was.

K. हौंकना *honkna*, v. n. To pant, to puff and blow.

S. होतव्यता *hotuvyuta*, (S. भवितव्यता) f. Fate, destiny.

S. होनहार *honhar*,
S. हौंनहार *huon̤har*, } (from होना) adj. [1] What is to hap-

pen. [2] Possible.

S. ह्वोम *hom,* m. A kind of burnt-offering, the casting of clarified butter, &c. into the sacred fire as an offering to the gods, accompanied with prayers or invocations, according to the object of the sacrifice.

K. ह्वौंस *huoṇs,* (perhaps from A. هوس) f. Desire, wish, ह्वौंसकरना *huoṇs kurna,* To desire.

S. ह्वै *hwue,* }
S. हूकै *hookue,* } [1] part. pret. (of ह्वैबा or ह्वोनौं) Having been. [2] adv. Through, by.

K. ह्वोले *huole,* adv. Gently, slowly.

S. ह्वैह्वै *hwuehue,* Will be or become.

1830
کتاب کالج فورت ولیم
किताब कालिज फ़ोर्टवलियम
পুস্তক কালেজ ফোর্টউলিয়ম

10
30
21
31